TEXT FLY WITHIN
THE BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180459

UNIVERSAL
LIBRARY

उखड़े हुए लोग

लेखक की अन्य पुस्तकें

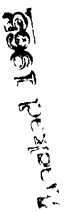

कहानी-संग्रह :

रेखाएँ लहरें और परछाइयाँ
देवताओं की मूर्तियाँ
खेल खिलौने
जहाँ लक्ष्मी कैद है

Checked 1989

उपन्यास

प्रेत बोलते हैं

संस्मरण

गुरुदेव चैखव : एक इण्टरव्यू

अनुवाद

अँधेरे के पार (रू
युग-नेता (जर्मन
चैखव के सर्वश्रेष्ठ नाटक (चे
(यन्त्रस्थ)

ी र[illegible] ो व्याकुल यौवन के—
ो की [illegible]र दनेवाले कही भी हो, कोई भी हों
सो क[illegible] इतना महत्व क्यो दे—?
ई तो [illegible] होंगे

जो रूढ़ियों के मुर्दों की छाती पर पाँव रोप कर—
जीवन का शख फूकेंगे— !
और जिनके रथ-चक्रो की लीकों पर
युग की गङ्गा अपनी दिशाएँ खोजेगी
ताकि जीवित लाशों की राखो मे
प्राणों का स्पन्दन और सपनो की चेतना जाग

तुम तो
स्टस्थ
पाठिका
बनती हो न ?
इन्हे भी
अपना स्नेह दो !

श्यामलता दी को

अट्ठाईस अगस्त की ओर से दो अक्टूबर को !

उखड़े हुए लोग

(युद्धोत्तर-कालीन स्त्री-पुरुषके बिगड़ते-बदलते-बनते सम्बन्ध)

राजेन्द्र यादव

आत्माराम एन्ड संस
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

राजकमल

राजकमल प्रकाशन
दिल्ली हजारीबाग पटना

कॉपीराइट १९५६
राजेन्द्र यादव

प्रकाशक :
राजकमल पब्लिकेशन्स लि०, बम्बई

मुद्रक :
प्रशांत रक्षित,
इन्टरनेशनेल इन्टरप्राइज़ेज़
१, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता-१

आवरण :
कमल बोस

मूल्य :
साढ़े-सात रुपये

बयान-इक़बाली

गुनहगार हूँ कि नहीं जानता 'सत्य' क्या है?—कहाँ रहता है, और कैसा है ? इसीलिये :

अपराधी हूँ कि 'सत्य की खोज' के इस युग में ऐसी कहानी सुनाने बैठा हूँ, जिसका 'सत्य' से कोई लेना-देना नहीं है; 'सत्य' पाने और 'सत्य-दर्शन' का जिसे कोई दावा या मुग़ालता भी नहीं ; हर पात्र काल्पनिक और हर घटना गढ़ी हुई—वार्तालाप और कथानक सब हवाई ! इसलिये प्रार्थना करूँगा कि वास्तविकता से प्रस्तुत कहानी की थोड़ी भी समानता या तुलना को आकस्मिक ही समझें। फ़ैण्टेसी जैसी नक़्क़ाशी भी इसमें नहीं है ; इसलिये हवाई-दुनियाँ में भटकते-भटकते आप कहीं झुँझला न उठें, इस दृष्टि से कहीं-कहीं कुछ सत्य नामों और घटनाओं की ओर इङ्गित हैं; विश्वास करें, 'सत्य' की भ्रान्ति या इल्यूज़न बनाये रखने के अतिरिक्त उसमें मेरा क़तई कोई बुरा उद्देश्य नहीं है। 'इन्डोर-सैट्स' में कभी-कभी जिस तरह मचमुच की चीज़ों का उपयोग किया जाता है, ठीक वही उपयोग उनका यहां है—इससे अधिक ज़रा भी नहीं। पाठक के साथ हाथ की यह सफ़ाई दिखाने के लिये पुनः लज्जित हूँ। क्या करूँ, आदत पुरानी है और 'छूटती नहीं है, काफ़िर मुँह से लगी हुई...'

शर्मिन्दा हूँ अपनी सीमित-सामर्थ्य पर कि—'अधिक उत्पादन बढ़ाओ' के नारों की छाया में भी ज़्यादा नहीं लिख पाता, और जो कुछ लिखता हूँ, उसे लेकर भी बहुत आश्वस्त नहीं हूँ। कभी-कभी विश्वास अपनी मेहनत पर होने लगता है, शायद यह भ्रम भी शीघ्र दूर हो जाय...उपन्यास के कथानक की पृष्ठभूमि प्रथम-चुनाव से पहले की है और इसे '५४-'५५ के पूरे दो वर्ष प्रतिदिन लिखा और सँवारा गया है, अतः मोह होना स्वाभाविक है कि अपने पाठकों की राय जानूँ; लेकिन उपन्यास की अन्तिम पंक्ति से पहले ही जिनका धैर्य छूट या टूट जाय, उनसे मेरी विनम्र-प्रार्थना है कि वे उपन्यास पर कोई राय न ही दें। उनकी यही राय मेरे लिये कम लाभप्रद नहीं है कि वे इसे पूरा नहीं पढ़ पाये...

स्वीकार करता हूँ कि कलकत्ता में दो साल रहकर अगर मुझे घृणा किसी से हुई तो दो आदमियों से। शुक्र है कि वे 'प्रथम-वन्दनीय' दो ही हैं, वर्ना हम जैसे सन्तों का जीना दूभर हो जाता ! ज्ञानियों ने कहा है कि— मनुष्य को अपनी कमज़ोरियों से घृणा करनी चाहिये, दूसरे उन्हें चाहे जो भी कहें... मुझे भी मनमोहन ठाकौर और कृष्णाचार्यजी से घृणा है। वैसे इस सूची में पहला नाम मुंशी भाई का होना चाहिये—मत-भेदों के बावजूद जिन्हें पता है कि उनके मैटर का दुरुपयोग नहीं हुआ है। और सचमुच कृतज्ञ हूँ आदरणीय भाई भँवरमल सिंघी और श्री बद्रीप्रसाद खेतान का।

आमीन !

६७-बी, डायमण्ड हार्बर रोड,
कलकत्ता—२३

—राजेन्द्र यादव

"हमारी माँगें ज्वलंत आवश्यकताओं, नारी के शर्मनाक-अपमान और पुरुषों के विशेषाधिकारों से ही निकाले हुए व्यावहारिक नतीजे हैं। जी हाँ, हमें उस सबसे नफ़रत है और हम उस हर चीज़ को चकनाचूर कर डालेंगे जो मज़दूर औरत के लिये, जो गृहिणी के लिये, जो किसान औरत और छोटे-मोटे व्यापारियों की स्त्रियों के लिये कष्ट और यातना का कारण बनती है—और तो और प्रभुत्व-प्राप्त वर्ग की नारी भी जिसके चंगुल से बची नहीं है।"

—लेनिन

"क्लारा ज़ैटकिन के संस्मरण"

हैड-टेल

शरद ने उठकर खिड़की चढ़ा दी। इस समय गाडी बड़े सुन्दर पहाड़ी 'लैण्डस्केप' से होकर गुज़र रही थी। पीछे और आगे पहाड़ थे और उर्दू अक्षर 'फ़े' के आकार में निरन्तर ऊपर उठता हुआ हरियाली का समुद्र दूर तक आसमान के नीचे लहराता चला गया था। सामने वाले क्षितिज पर घुमडते चले-आते बादलों से चौड़ी धारों की पट्टी बरस रही थी और ऐसा लगता था जैसे जल-चादर लहरा रही हो। बारिश यहाँ भी हो रही थी, लेकिन बौछारो का रुख अभी तक उधर नहीं था। काँतर-सी सरकती गाड़ी ने जैसे ही मोड़ लिया अचानक बूँदे भीतर आने लगीं।

कल्पना में दो उँगलियों के नीचे अंगूठा लगाकर चाँदी के रुपये से हैड और टेल करता हुआ दृश्य बिखर गया और आँखो की उत्सुकता दबाये अपलक देखती जया का चेहरा हरियाली के लहरीले सागर में घुल गया।

खिड़की के काँच से बूँदे टकराती और धार बनकर बह पडती। फिर उस बहाव को नई धारों से बल मिलता रहता। भीतर काँच सील रहा था। शरद बड़ी देर तक काँच से नाक और होंठ अडाये ठण्डे काँच और बूँदों के बहाव का काल्पनिक आनन्द लेता हुआ बाहर का दृश्य देखने की कोशिश करता रहा। बूँदों के निरन्तर पड़ने से खिड़की के नीचे का पानी सीट की ओर तो बह ही रहा था—काँच भी बुरी तरह धुँधला पड़ गया था। शरद को धीरे-धीरे अपना दम घुटता-सा महसूस हुआ। उसके बिल्कुल सामने इसी खिड़की के सहारे जो उसी की तरह की एक आदमी के बैठने की सीट थी उस पर बैठे एक सज्जन बुरी तरह बीड़ी का धुँआ छोड़ रहे थे। बिना फ़ीते के फुल बूट, घुटनो तक मोजे, नेकर, उसमें ठुँसी हुई कमीज़, निहायत गन्दे दाँत, काला रङ्ग, हाथों पर बड़े-बड़े बाल, सिर पर खड़े हुए दो-दो इञ्च के खिचड़ी बाल, तीन दिन की बढी दाढी, ऊँघती-सी मैल-भरी आँखें, जिनके कनपटियोंवाले कोनों पर सफेद कीचड़ की बूंदें लटकी थीं। यह आदमी देखने में सख्त बेवकूफ़ और उजबक-सा लगता था। शरद ने बड़ी नम्रता से कहा—"भाई साहब, डिब्बे मे बड़ी घुटन है, तकलीफ न हो तो बीड़ी उधर जाकर पी लीजिये—"उसने डिब्बे के दूसरी दिशावाली खिड़की की ओर संकेत किया। अनजाने ही उसकी निगाह ऊपर, अलार्म-चेन के नीचे, लिखे इस वाक्य पर पड़ गई —'अगर किसी मुसाफ़िर को ऐतराज़ हो तो बीड़ी-सिगरेट वगैरह न पीजिये।'

तभी कोई लम्बी सीट के ऊपरवाली सीट से गरजा—"सैम, बीड़ी बुझा क्यों नहीं देता!" स्वर में ऐसी हिक़ारत और झिड़क थी जैसे कोई कुत्ते को डाँट रहा हो।

वह नये क़िस्म का डिब्बा आमने-सामने सीटों के जोड़े लगाकर कुछ हिस्सों में बाँट दिया गया था। एक पतली-सी गैलरी सब हिस्सों को मिलाती थी। जिस हिस्से में शरद बैठा था उसकी दोनों ओर की लम्बी ऊपर-नीचे की सीटों को घेरकर एक ईसाई-परिवार जमा था। उसके सामने वाले सैम भी उन्हीं लोगों में से थे। बड़ा विचित्र था यह परिवार।

पिछले स्टेशन पर जैसे ही गाड़ी खड़ी हुई, मुसाफिरों के उतरने से पहले ही खिड़कियों के ज़रिये अटैची, बिस्तरबन्द, डिब्बे-डिबिया आ-आकर गिरने लगे। और कुछ ही क्षणों में ऊपर-नीचे की चारों सीटें इन्होंने घेर लीं। साँवले रङ्ग का छः फ़ीट का आदमी, ख़ाकी पैण्ट और कमीज में। छींट के फ़्रॉक में ठिगनी-सी लगने वाली इसी वर्ण की स्त्री, दो लड़कियाँ एक लड़का। लड़का दस-बारह साल का, छोटी लड़की भी लगभग इसी उम्र की, बड़ी लड़की सोलह-सत्रह की। बच्चों का रङ्ग साफ़ था और बड़ी लड़की की आँखें कुछ नीलापन लिये हुए थीं। साथ ही यह सैम भी। जिस रोब से यह सज्जन—अर्थात् परिवार के मालिक, कुलियों से बात कर रहे थे या इधर-उधर के मुसाफिरों को जिस तुच्छता से देख रहे थे उससे शरद को यही लगा कि ये कहीं छोटे-मोटे अफ़सर हैं। सीटों पर बिस्तरे लग गये—सामान ऊपर या नीचे इधर-उधर रख दिया गया। कुलियों को पैसे देने के बाद जता कर दो-दो आने 'बख़शीश' दी गई और उनके सलाम की ओर से ऐसा उपेक्षा का भाव दिखाकर, जैसे इसकी न तो उन्हें आवश्यकता है और न आकांक्षा, इस सबके वे बहुत अभ्यस्त हैं—वे ऊपर छोटे-छोटे डिब्बे सँभालने में लग गये। बच्चे और परिवार के लोग केवल अंग्रेज़ी में ही बातें करते थे।

दोनों छोटे बच्चे ऊपर चले गये थे, बड़ी लड़की शरद की ओर सिर करके सीट पर चित लेट गई थी, और किसी के द्वारा कई बार पढ़ी गई एक अंग्रेज़ी अमेरिकन-पत्रिका पढ़ रही थी। पति-पत्नी सामने बैठ गये थे। यह लड़की भी फ़्रॉक ही पहने थी और वह कमर के ऊपर से इतना चुस्त था कि छातियों का गोलाकार उभार दो लखनवी खरबूजों की तरह अलग ही दिखाई देता था। बार-बार न चाहने पर भी निगाह वहीं पहुँच कर रुक जाती थी। शरद सोचने लगा था—शायद अभी ही इन्होंने धर्म-परिवर्तन किया है, और जो वे सब नहीं थे वही, बनने की महत्वाकांक्षाएँ उनके इस व्यवहार की जड़ हैं। सच पूछा जाय तो ईसाई-धर्म उसे बुरा नहीं लगता, बल्कि दो-एक ईसाई तो उसके बहुत ही अच्छे मित्र थे। लेकिन इन लोगों को देखकर उसे कुछ अजब-अजब लग रहा था। उनके व्यवहार इत्यादि से उसे लगा शायद ये लोग बहुत निचले-वर्ग से आये हैं और ईसाई होने के बाद ही एकदम साहबी गुण-ग्रहण करके अपने को ऊपर वालों में गिनाना चाहते हैं। मानलें, यह ठीक है, तो क्या केवल नाम और धर्म-परिवर्तन से ही इनके सारे संस्कार और परम्पराओं का मोह बिजली के स्विच की तरह ऑफ़ और ऑन किया

जा सकता है ? वह सब पिछला क्या एक रात में ही समाप्त हो जाता है ?—सकता है ? सामने बैठे लड़की के माँ-बाप क्या यह अनुभव नहीं कर रहे कि हर दर्शक की निगाह उनकी लड़की के कुँआरे वक्षों के उभार पर ही पड़ती है। और खास तौर से जिस तरह वह लेटकर पढ़ रही है उससे तो फ्रॉक की गले की काट से झाँकती गोलाइयाँ दूर तक साफ दीख रही है। लड़की यदि अपने प्रेमी के साथ भी सामने बैठी होती तब भी शायद इन माँ-बाप को अधिक झिझक नही होती। पिछले संस्कार एकदम इस तरह कैसे धुल जाते है ? और विशेष रूप से इन बेचारों का आगे भविष्य क्या है ? यह लोग तो खैर 'साहब' बनने का (धर्म-परिवर्तन करके) विशेषाधिकार पा चुके है, लेकिन और लोगों के साथ भी तो यही बात है। उसे अपने परिचित कई व्यक्तियों का ध्यान आया। पीछे से कटे हुए और आगे से शून्य यह लोग जिन्दगी को जितना ही धकेल ले जाँय वही इनकी यात्रा है। कोई लक्ष्य नही, कोई गति नही। और यह लड़की अपने घने-काले बालों वाली दो चोटियों में से एक को, पढ़ते हुए ही अपनी छाती के ऊपर ताने हुए इस तरह झुला रही है जैसे पढ़ने में वह बुरी तरह डूबी है—और यह सब अनजान में हो रहा है.....जब हाथ एक तरफ़ हो जाता है तो शरीर की गुराई चमक उठती है.....और फिर काले बादलों में ढँक जाती है.....तभी शरद चौंका। साहब दाँत भीचकर गुर्रा कर कह रहा था—'मैम, पानी ले आ।" सैम सुराही उठाकर चल दिया। स्वर में जरा भी परिवर्तन लाये बिना साहब ने फिर आवाज दी—"जल्दी आना।" सैम कुछ अजब बीमार सा आदमी था। चलते समय उसके दोनो पाँव लड़खड़ाते थे।

मैम के जाते ही मैम-साहिबा ने पता नही कहाँ से कटे हुए डबलरोटी के बहुत से स्लाइस निकाल लिये और सामने प्लेट में उनका ढेर लगाने लगी। कुछ शायद सिंके हुए टोस्ट भी थे। साहब ऊपर बैठे बच्चों को हाथ बढ़ा-बढ़ाकर देने लगा और मैम एक डिब्बे में से छुरी से मक्खन निकाल-निकालकर लगाने लगी। फिर एक जैम की शीशी में से जैम दिया गया, थर्मस् से उँड़ेलकर तामचीनी के मगों में चाय दी गई। शरद चुपचाप जैसे उदासीन बनकर भी देखता रहा। पढ़ना छोड़कर लड़की सीधी बैठ गई। सैम पानी ले आया। फिर चुपचाप गर्दन झुकाये शरद के सामने वाली सीट पर आ बैठा। तभी मैम ने दो-चार किनारे की ओर वाले डबलरोटी के टुकड़े उठाकर सैम को दे देने का इशारा करके अपनी पुत्री की ओर बढ़ाये।

"मामा, ये ले लो"। लड़की ने निहायत लापरवाही से उन्हें बैठे-बैठे सैम की ओर बढ़ा दिया।

शरद चौंका—तो सैम नौकर नहीं है। और अचानक उसे इन सभी लोगों के प्रति प्रबल घृणा अनुभव हुई। कैसा भी भाई हो, वह बहन कैसी है जो सामने मक्खन और जैम लगाकर खुद खा रही है और बिल्कुल सूखे टुकड़े उसे दे रही

है। तभी और सुना—"इसे और ले लो" कह कर चाय का मग लड़की ने और बढ़ा दिया।

"सो रहा है ?" साहब ने जैसे फिर दाँत पीस कर डाँटा। सैम सिटपिटा गया और झट उसने मग ले लिया।

गाड़ी चल पड़ी थी। शरद व्यस्त होकर खिड़की से बाहर देखने लगा, कैसे हैं ये लोग ? कोई उससे सीधे-मुँह बात ही नहीं करता। लगता ऐसा है शायद इनके साथ जबर्दस्ती चला आया है। हुँह, सूरत शक्लों से बैरों-से लगते है, और हर बात में साहबी छाँट रहे हैं।

वे लोग सब अपने में ही व्यस्त थे। शायद किसी और को अपने स्तर और वर्ग का नहीं समझ रहे थे। शरद का संस्कारगत दम्भ जाग उठा। उनकी ओर अत्यन्त उपेक्षा का भाव दिखा कर वह और भी ध्यान से अपने हाथ में लगी अपनी सार्टिफ़िकेटों की फ़ाइल देखने लगा—सेक्रेटरी फ़ॉर डिबेट, कॉलेज यूनियन—बैस्ट स्टूडैण्ट ऑफ़ द कॉलेज,—प्रेसीडैण्ट ऑफ कॉलेज यूनियन—प्रिंसिपल के हस्ताक्षरो को घूरता वह मन ही मन बोला—'चाहे ज़िन्दगी सारी सफाई करते बीती हो, लेकिन साले, साहबी छाँटे बगैर नही मानेंगे, गुलाम ! नकलची।'

वह मन ही मन उनकी साहबी को गालियाँ देता हुआ उनके भूत और भविष्य की विचित्र-विचित्र कल्पनाएँ करने लगा—जहाँ केवल शून्य ही शून्य हो और जैसे अनजान दिशा की ओर बहती हुई धार पर पेड़ से टूटी शाखा चली जा रही हो। बीसियों बार देखे सार्टिफ़िकेट, देखने में उसका मन नहीं लग रहा था। खा-पी चुकने के बाद एक ओर की सीट पर साहब ऊपर जा लेटा था, और मेम तथा मिस साहिबा नीचे लेट गई थीं। नया आनेवाला महिलाओं को तो उठा ही नही सकेगा—शायद यही सोचकर। लड़की के कुच दूर तक दिखाई दे रहे थे। शरद ने झटक कर खिड़की चढा दी। नसों का रक्त सनसनाने लगा और उसकी उँगलियों ने फ़ाइल को जकड़ कर पकड़ लिया। वह सिर बाहर निकाल कर देखने लगा। नाचते आसमान में बादल घिरे थे। यह बादल कैसे झुके-झुके लटक आये है—पानी बरसने-बरसने को हो रहा है। उसे झुँझलाहट आ रही थी : यह लड़की इस तरह क्यों लेटी है ? कम्बख्त, बेशर्म ! दूसरी ओर सिर करके क्यों नही लेटती ? चली आती हैं यों दूसरों के धैर्य की परीक्षा लेने !

लेकिन यह सब उसे अब नही सोचना चाहिये। अब वह प्रतिश्रुत है !

मन दूसरी ओर मोड़ने के लिये उसने जेब से तार का लिफ़ाफ़ा निकाल लिया और दसियों-बार पढ़े हुए तार को फिर पढ़ा, टाइप की हुई पतली-सी चिट लगी थी, 'फ़ौरन चले आओ। बाक़ी बातें यहां होंगी। देशबन्धु'। देशबन्धु जी ने उसे क्यों बुलाया है ? साफ़ है, कोई नौकरी उनकी निगाह में आ गई है। लेकिन यह बात तो छः-सात महीने पहले की है—तभी उसने देशबन्धुजी को लिखा

था कि मैंने एल—एल० बी० कर लिया है। आई० ए० एस० की तैयारी के लायक़ घर की हालत नहीं है, और वकालत की लाइन इतनी जलालत, फ़रेब और धोखे से भरी हुई है कि उसमें जाने को आत्मा गवारा नहीं करती। वे साधन-सम्पन्न व्यक्ति हैं, यदि कोई सम्मान और रुचि का काम बता सकें तो वह विशेष कृतज्ञ होगा। वैसे वे इतने परिचय और पहुँच के व्यक्ति है कि यदि सचमुच चाहेंगे तो ऐसी कोई भी नौकरी तलाश कर देने में उन्हें ज़रा भी दिक्कत नहीं होगी। और जैसी उसे उम्मीद थी, व्यस्तता के कारण या किसी अन्य वजह से, उस पत्र का कोई उत्तर शरद को नहीं मिला। छः-सात महीने बीत गये और इधर-उधर काफ़ी रुपया एप्लीकेशनों और इण्टरव्युओं में ख़राब करके भी जब कोई जगह उसे नही मिली तो अन्त मे उसने फ़ैसला कर लिया कि जैसे भी हो वह धीरे-धीरे कम्पिटीशन की तैयारी करेगा ही। कैरियर उसका बहुत ब्रिलियेण्ट रहा ही है शायद तुक्का लग ही जाये। तब तक घर वालों को चुप रखने के लिये अपने पिता के परम मित्र, नगर के प्रसिद्ध वकील शिवकुमार झा के साथ ट्रेनिग प्राप्त करेगा। देशबन्धुजी की बात को वह लगभग यह समझ कर भूल ही चुका था कि बड़े आदमी है, बीस झंझट है, इतनी ज़रा-सी बात उन्हे क्या याद रही होगी। लेकिन एक दिन सन्ध्या जब वह बैडमिण्टन का रैकेट घुमाता हुआ क्लब से लौटा तो मेज़ पर तार मिला। यह तो वह समझ गया था कि तार नौकरी के सम्बन्ध में है लेकिन इस बीच मे उसने अपनी मानसिकता को जिस प्रकार सुव्यवस्थित कर लिया था वह सब इस तार से हिल गई। कैसी नौकरी है? क्या-क्या करना होगा? और क्या वह सचमुच इस लायक़ है कि उसके लिये अपने इस प्रोग्राम को छोड़ दिया जाय? पता नही क्या बात है?—देशबन्धु जी एम० पी० है। इस अगले चुनाव के बाद निश्चित रूप से कही न कही मिनिस्टर हो जाने की सम्भावना है। वैसे अभी ही क्या कम प्रभाव और पहुँच है? अपने प्रान्त के बड़े नेताओं में से हैं। हो सकता है, कोई बहुत अच्छी नौकरी आ गई हो सामने। वे इसी की राह देख रहे हों। तत्काल उत्तर न पाने के कारण उनको और कांग्रेस को लेकर उसने जो कुछ उलटा-सीधा सोचा था या आलोचना की थी, वह सब उसे अपनी जल्दबाज़ी लगी। भाई, बड़े आदमी है, बीस काम होते है। एक-दम नही भी होती नौकरी हाथ में; निगाह रखी, अब कोई सामने आ गई, भेज दिया तार। उसे इतनी जल्दी किसी के विषय में ग़लत राय क़ायम कर लेने की अपनी आदत पर बड़ी झुँझलाहट और खीझ भी आई।

लेकिन पता नहीं नौकरी कैसी है? हो सकता है कोई और ही काम हो, नौकरी हो ही नहीं। कुछ तो लिखना ही चाहिये था। अब इससे तो कुछ भी अनुमान नही लगाया जा सकता। यह एक लाइन एक ओर तो बड़ी अस्पष्ट और अस्थिर स्थिति का संकेत करती है, दूसरी ओर इससे यह भी प्रकट होता है कि हर

चीज़ तैयार है। पता नहीं !

और अब तो उसका यों उठकर कहीं भी चल देना पूरी तरह उसके हाथ में भी तो नहीं है। अब तो एक 'और' का जीवन भी तो उसके साथ बँध गया है.....

"मामा, हमारे पैर नहीं फैलते हैं, इस बास्केट को नीचे रख दो।" लड़की ने पढ़ना छोड़ दिया था और कुहनियों के बल आधी उठते हुए एक बार शरद के हाथ के तार की ओर, एक बार मामा की ओर देख कर कह रही थी। सफेद मोज़ों और सफेद ही किरमिच के जूतों में सजे पाँव सामने खिड़की के सहारे लगी बाँस की बास्केट के कारण उठे हुए थे और वह अपने पाँव इस तरह हिला रही थी जैसे तैर रही हो। मोज़ों से लेकर लापरवाही से पड़े फ़्रॉक के घेर तक, उसके घुटनों के मोड़ तक पाँव खुल गये थे और पुष्ट-पिण्डलियों की पेशियाँ उसके पाँव हिलाने से थिरक-सी जाती थीं। शरद ने दाँत पीस कर मन ही मन कहा 'कम्बख्त, बड़ी भूखी है। बाँस की हल्की-सी सन्दूकची है, उसे खुद उठा कर नहीं रखा जाता, ज्यादा से ज्यादा उसमें शीशा-कंघा होगा। मिस..साहब..मिस...

गोली-खाई चिड़िया की तरह मामा की गर्दन एक ओर लटक कर रेल की गति की ताल पर उसके कन्धों पर इधर-उधर लुढ़क रही थी। उसके होठों के कोने से लार की हल्की-सी धार सरक आई थी। आवाज़ सुनकर वह एक दम चिहुँका और सड़ाके से सारी लार की धार को मुँह में वापस खींच कर प्रश्न-दृष्टि से लड़की की ओर देखा। फिर ज़रा डरते-से साहब की ओर। साहब सो गये थे।

"मामा, तुमसे कबसे कह रहे हैं, हमारे पैर नही फैलते। इसे हटा दो।" लड़की ने सन्दूक़ के ढक्कन पर जूते से हल्के-हल्के ठोक कर, अर्थात् मामा को संकेत से बताकर, कहा। फिर शरद को देखती रही, क्योंकि वह तार को घूरे जा रहा था। लेकिन लड़की की, कहना चाहिये इस साहब-परिवार की हर हरकत पर, उसका ध्यान था। वह साहस करके लड़की की ओर देख नही पा रहा था, लेकिन उसकी एक छाया-सी उसके अवचेतन मन के आगे नाच रही थी। देखने वाले क्या कहेंगे, इस तार में पागलों की तरह न जाने क्या घूर रहा है, सोचकर शरद ने तह करके तार को जेब में रख लिया। लड़खड़ाते सैम ने बास्केट नीचे रख दी थी। और एक कुहनी पर टिके हुए ही लड़की सैम को मुड़कर बास्केट उठाते हुए देख रही थी। इस पोज़ में उसका सीना ज़रा आगे निकल आया था।

उठ कर शरद ने ज़ोर से आधी-खुली खिड़की को पूरा चढ़ा लिया। नहीं, अब उसे इधर-उधर नहीं भटकना चाहिये। वह जया का पति है ! जया का पति ! और उसके होठों पर एक विद्रूप-मय मुस्कराहट की रेखा खिंच आई। पति ? यह भी खूब अजब बेबकूफ़ी का मज़ाक रहा ! दो दिन-रेल में बैठे और शादी हो गई। सचमुच क्या उन लोगों ने जो कुछ किया है उसे 'विवाह'

का नाम दिया जा सकेगा ? वह विवाह था भी नहीं...बिल्कुल ऐसा लगता है जैसे सपना हो, न गाना न बजाना, न क़हक़हे, पार्टियाँ, भेंटें, लजाता-घूँघट, माँग की रेखा, चमकती-अँगूठी, फूलों भरा झालरदार मुकुट, चेहरे पर गोदना, सालियों—सहेलियों का हँसी-मज़ाक कुछ भी नहीं और शादी हो गई ? एक दिन मस्ती में चले आए और अपने दोस्तों में ख़बर दे दी कि मैंने शादी कर ली है। और क्या जया भी सचमुच ऐसा ही अनुभव करती है ? पता नहीं...न जाने कितनी होती हैं ऐसी शादियां बचपन में। जो भी हो, रहा यह भज़ाक ही कैसे डरते-से रेल में आते थे, डाइनिग-कार में आकर बठते थे...डाइनिग-कार तो इसमें भी होगी न...शरद के गालों पर एक मुस्कुराहट आई और आँखें फिर दूर खो गईं.....

...बैरा पास आकर खड़ा हो गया था।

शरद के माथे पर पसीने की बूंदें उग आई थीं और जया भी काफ़ी घबरा रही थी। गाड़ी रुकते ही डाइनिग कार में एक दरवाजे से जया दूसरे से शरद घुसे थे। कई खाली मेजें देखते हुए जब वे अपेक्षाकृत कोने में पड़ने वाली मेज-कुर्सी पर आकर बैठे थे, उनकी शंकित निगाहों और आने के ढंग से साफ़ था कि वे लोगों की नज़रों से बच कर यहां आए हैं।

नीला हाथ का बुना भूरी-बाहों का पुलोवर, गहरी-कत्थई टाई और बढ़िया कार्डराइ की गहरी-चाकलेटी पेण्ट पहने शरद अपने आप को काफ़ी निश्चिन्त दिखाने की कोशिश कर रहा था। सिनेमाओं में ऐसे अवसरों के दृश्य उसके दिमाग़ में आ रहे थे। जया क्रीम-कलर का चैस्टर पहने थी, कन्धे पर वैनिटी-बैग था, दो लम्बी-चोटियाँ और हाथ में सिर्फ रिस्टवाच। पतला-लम्बा चेहरा और खुलता-गेहुँआ रंग, तीखे नक्श। उसके कुर्सी पर बैठते ही सिर को ढँक रखनेवाला साड़ी का वह हिस्सा जो टोपा-सा बाहर निकला था, चैस्टर पर खिसक आया।

बैरे को खड़ा देख कर शरद ने जल्दी-से जेब रूमाल निकाल कर मुँह पोंछते हुए कहा "कॉफ़ी !" फिर जया को देख कर पूछा—"और...?"

"बस !" फिर उन लोगों ने एक बार पूरे डिब्बे मे निगाह घुमाई।

"तो तुम कल की बात का बहुत बुरा मान गई थी ?" बैरे के चले जाने के बाद शरद ने पूछा था।

"कल की क्या बात ? मुझे तो याद भी नहीं है ?" जया ने काँच पर नाखून से धीरे-धीरे ठोकना छोड़कर शरद की ओर पलकें उठाईं। शरद ने लक्ष्य किया कि जया ने उसका इशारा समझ लिया है, पर जैसे एकदम सबको टाल कर कहा—"हुँ:ह, छोड़िए भी ! हज़ारों बातें हैं—हज़ारों आती हैं। किस-किस बात का बुरा माना जाय। फिर आप जैसे ढीले बातूनी का !" उसने ओंठ खींचकर

मुँह को हल्का झटका दिया।

"अच्छा जी ! हम ढीले बातूनी है ?" शरद ने बनावटी बुरा मानकर कहा था। फिर गहरी साँस लेकर बोला'—'ख़ैर, दे लो सन्तोष, वैसे बात तो ठीक ही थी। लेकिन यह हुआ खूब ! किस क़िस्मतवर के भाग्य फूटे ? बेचारे को मास्टरनी मिली है, यों बैठो, यों उठो, यों खाओ, यों पढ़ो...मज़ा खूब रहेगा !" वह हँस पड़ा। उसे सन्तोष हुआ कि कल की बात के प्रभाव को उसने दूर कर दिया है। कल बात भी तो उसने कड़ी ही कह दी थी।

कल अचानक जब वे लोग सड़क चलते मिल गए तो पारस्परिक आक्षेपों और उलाहनों के बाद कुछ देर चुपचाप चलते-चलते अचानक जया बोली थी, "दादा, तुम तो जैसे सब कुछ भूल-भाल गए। हद हो गई कि एक ही शहर में रहनेवाले चार-चार, छः-छः महीनों बाद मिलें। आपसे एक ज़रूरी बात कहने के लिए हम तो न जाने कब से तड़प रहे हैं। कुछ सीरियस बातें करनी है।" वह उसी तरह कहीं दूर देखती रही थी।

"तुम्हारा और सीरियस बातों का क्या संबन्ध। सो भी मुझसे, ऐसी क्या सीरियसता ?" वह चौंका। मन ही मन वह अपनी नवपरिचिता शकुन और इसकी तुलना कर रहा था।

"कुछ करनी है।" ज़रा ज़ोर देकर वह बोली। फिर ज़रा अन्यमनस्क-सी कहती रही, 'हमें तो अब किसी बात के लिए समय ही नहीं मिलता। बड़ी मुश्किल से भाग-दौड़ कर तैयारी कर पाते है। वह तो कहिए मिसेज़ दास अच्छी है, वर्ना पता नहीं अब तक क्या हो चुका होता। हमें लड़कियाँ भी तो ऐसी कूढ़ मग़ज मिली हैं कि ज़रा-ज़रा सी देर बाद, "बहन जी, यह बात, बहन जी, वह बात ! मार दिमाग़ खा जाती है ! और शाम को दिन-भर की थकान और काम के मारे इतने चूर-चूर हो जाते हैं कि मन होता है, बस, जाकर पड़ जाँय। आज कुछ काम नहीं था, फिर भी चलते-चलते मिस क्रेन से भी झड़प हो गई। बड़ी मुसीबत है..."

"आख़िर तुम्हारी वह सीरियस बात भी तो पता चले।" यह देख कर कि वह लम्बी-कथा ले बैठी है, शरद ने बीच में ही टोका—"यह कथा छोड़ो !"

"भई, सीरियस बातें कहीं ऐसे चलते-चलते बताने की होती हैं ?" वह मुस्कराई थी।

"ऐसी क्या बात है आख़िर ? कहीं शादी-ब्याह हो रहा है क्या ?" पहले वह नीचे देख कर रास्ता चल रहा था, अब उत्सुकता से उसने जया के चेहरे को देखा।

"ऐसा ही समझिए।" दूसरे फुटपाथ पर जाने वाले एक सिख युवक और पंजाबी युवती को देख कर वह सोचती-सी बोली थी।

"ओ: गुड !" एकदम पुलककर बड़े उत्साह से अभ्यासवश हाथ मिलाने को उसने पतलून की जेब से हाथ निकाला, लेकिन सहसा याद आया कि साथ वाली लड़की है। हाथ जेब में वहीं पहुँच गया। वह उसी जोश में बोला—"हमने तो हजारों बार कहा था कि करलो शादी, फिर बुड्ढी हो जाओगी तो कोई नही पूछेगा। बड़ी-बड़ी खूबसूरत घूमती हैं यों ही। रोओगी फिर।"

जया ने कुछ नही कहा। वह यों ही सिर झुकाये चलती रही। शरद को उसी समय लगा था कि हँसी-हँसी में उसने चुभने वाली बात कह दी है। उसे यह कहना नहीं चाहिए था। एकदम इस बात से उसका ध्यान हटाने को वह बोला—"वही है न, जहां से बात चल रही थी ?"

"हां ऽऽ"

स्वर से लगा कि जया ने उसे 'फ़ील' किया है। शरद जानता था कि हँसी हँसी में उन दोनों मे हजारों ही उलटी-सीधी बातें होती है, जिन्हें दूसरे ही क्षण कोई भी याद नही रखता। लेकिन इधर इसने मार्क किया कि अपनी बढ़ती उम्र का संकेत जया को उदास बना देता है। बात का प्रभाव धोने को वह अपनी ही ओर से बोला—"अगर वास्तव मे कोई ऐसी ही बात हो तो जहां तुम कहो मैं आजाऊंगा।"

जया शायद अनुभव करती है कि उसकी उम्र की रेल एक-एक क्षण पर सरकती चली जा रही है, और उस क्षण को वह लौटा नही सकती, यह विवशता उसे उदास बना देती है। अचानक उसे ध्यान आया। बोला—"अच्छा, मैं बताऊँ, तूफ़ान पर मैं कल आजाऊँगा। रुकता-रुकाता इस शहर के आखिरी स्टेशन तक एक घण्टा ले लेता है। वहाँ से तुम्हारा स्कूल भी पास है। बस, वहाँ से तुम स्कूल चली जाना।"

"अच्छा।" उसने सिर हिलाया।

और सन्ध्या को जब शरद घूम कर आया तो बार-बार यही बात उस कचोट रही थी कि क्यो उसने हँसी-हँसी में ही सही, ऐसी बात कह दी। जया जिस वातावरण में पली है वहाँ सोलह-सत्रह के बाद ही लड़कियों की उम्र निकलने लगती है, तूफ़ान आने लगते हैं, और वह 'पहाड़', 'घोड़ी' 'हथिनी' 'धीगड़ी' इत्यादि न जाने किन-किन शुभ नामों से जानी जाने लगती है। एक-एक दिन में हज़ार-हज़ार बार विभिन्न मुखों से लगातार यह सुनकर कि—'इतनी बड़ी तो करली, अब कब शादी करोगी' शायद जया भी अपनी इस इक्कीस-बाईस की उम्र में ही यह अनुभव करने लगी है वह अपराधिनी है, कुछ निंदनीय कर रही है; कि सचमुच चिकने साँप-सी उसकी उम्र उसकी पकड़ से निकली जा रही है, और धीरे-धीरे सारी निकल जायेगी। रह जायेगी सिर्फ़ एक मरोड़दार रेखा, एक कैंचुली, उसका वह क्या करेगी ? लहरें सरक जायेंगी तो तट की कीचड़ का क्या होगा ? एक लड़की की

स्थिति वास्तव में कितनी दयनीय होती है जब उसकी हर धड़कन हथौड़े की चोट की तरह उसकी छाती पर पड़कर यह कहती भागी जाती हो—'देख, मैं यह चली ! पकड़ सके तो पकड़ । यह क्षण फिर नहीं आयेगा ।' जाते-जाते मुँह मोड़कर देखते उस क्षण को लड़की कैसी याचना की आँखों से देखती होगी ।

तब दिनभर शरद को ऐसा लगता रहा था जैसे वह धक्के से किसी बच्चे को गिरा कर बिना उसकी ओर देखे वह साइकिल भगा लाया हो । बड़ा उचाट-सा मन रहा दिनभर । अब इस समय सचमुच ही उसे बड़ा संतोष हुआ कि जया ने उस बात को दरगुज़र कर दिया है ।

जया उसकी बात का जवाब दे रही थी—"जो भी होगा वह आपसे अच्छा होगा ।" वह उसके मज़ाक पर हँसी नहीं थी, बस तीखी आँखों से उधर देखा भर था ।

बाहर गार्ड की सीटी गूँज उठी । बैरा ने प्याले और पॉट ला रखे ।

"ज़रूर, ज़रूर ।" प्यालों को अपनी और उसकी ओर खिसकाता हुआ शरद बोला—"आख़िर कुमारी जया वर्मा, बी० ए०-बी० टी०, के होने वाले हस्बैण्ड और फटीचर-राज शरद कुमार वशिष्ठ में फ़र्क तो होना ही चाहिये न ?" गाड़ी खिसकी और शरद खुलकर हँस पड़ा ।

बैरा ने पूछा—"कुछ और सा'ब ।"

"बस" कहकर शरद ज़रा तन कर बैठ गया । खींचकर कोट के कॉलर ठीक किये और तेजी से गुजरते प्लैटफ़ार्म को देखने लगा । जया ने कॉफी प्यालों में डालने को हाथ बढ़ाया तो उसने रोक दिया और पूछा, "हाँ, आपको कितनी चीनी ?"

"आप दादा, सच, बहुत ही बेशरम हैं । बैरा क्या सोचता होगा ? देखो वह काले चश्मे चढ़ाये सीधे-सादे से लगने वाले साहब किताब पढ़ने के बहाने हमारी ही बातें सुन रहे है । हाय देखो, चश्मे से घूर-घूर कर देख रहा है वह तो ।"

"बैरा सोचता क्या होगा, तुम्हारे लिये भले ही नया हो, उसे तो रोज़ ही एक-दो ऐसे दृश्य देखने को मिलते होंगे । हाँ, फिर तुम्हारे लिये भी नया क्यों होने लगा... !"

"क्या मतलब ?"

"भई, ऐसे ज़िन्दादिल मुसाफ़िरों से मतलब था ।" अभी जिस बात की ओर उसने संकेत किया था उसी के साथ उसे शकुन—उस पंजाबी लड़की का भी ध्यान आया ।

"अच्छा, आप चुप रहिये ।"

प्यालों में कॉफी ढाली गई ।

"अब चुप रहूँ, या तुम अपनी सीरियस बात शुरू कर रही हो ? आधा वक्त

तो बेकार की बातों में गुजार दिया।" शकुन का ध्यान आते ही उसे अपनी यह बातें बड़ी बचकानी लगी। वह गम्भीर हो गया। बोला—"हाँ तो, तुम्हारी शादी हो रही है। कहिये, मैं उसमें क्या मदद कर सकता हूँ?"

"मदद क्या, मिठाइयों का ठेका आपको देना है टेण्डर दीजिये।" फिर देखकर कि शरद एकदम गम्भीर है, वह चुप हो गई। उसने कॉफी 'सिप' की, फिर प्याला रख कर थोड़ा दूध डाला, उसे चला कर फिर एक घूँट ली, फिर एक चम्मच में जरा-सी चीनी लेकर कप में हिलाते हुए गला साफ़ करके बोली—"आपको मालूम है मैंने क्यों नहीं अभी तक शादी की?"

"जो कुछ मैं सोचता हूँ वह बताऊं या जो कुछ तुम कहती हो वह?" शरद ने पूछा।

"अपनी ही बात बताइये।" जया शीशे के पार देखने लगी। गाड़ी दूसरे स्टेशन पर आ रही थी।

"तो सुनो, इस शिक्षा ने तुम्हें ज़रूरत से ज्यादा स्वतन्त्र कर दिया है। तुम यह जानती हो कि शादी या विवाहित जीवन का जो नक्शा तुम्हारे दिमाग में है वह अच्छा चाहे जितना हो आसान जरा भी नहीं है। इसके अलावा तुम यह भी जानती हो कि जहाँ भी तुम्हारा विवाह होगा, या जहां भी तुम जाओगी, वहां की स्थिति में और तुम्हारे सपनों में कोई संगति नहीं होगी। सीधे-सादे शब्दों में तुम बने-बनाये सपने चाहती हो, उन्हें बनाना नहीं। और उसी बनाने से डरती हो।" शरद ने इधर-उधर देखकर कि उन लोगों की बातों में कौन-कौन रुचि ले रहा है, कहा—"यह तो है मेरा विचार और जो दिन-रात तुम कहती हो—मेरा मतलब आज की लड़की से है—कि मैं शादी नहीं करूँगी, आजन्म यों ही रहूँगी, यह सब झूठ है, ग़लत है। इस बात को तुम खुद जानती हो। वैसे भी यह सम्भव नहीं है। उस झूठ और धोखे को पालते हुए जो भी समय तुम्हारा बीता जा रहा है उसका खुद तुम्हें कम अफसोस नहीं है। बोलो, मैं गलत कह रहा हूँ?"

"ग़लत न भी सही—" गाड़ी के रुकने से प्लेटफ़ॉर्म की ओर देख कर जया बोली—"लेकिन क्या वे सपने इतने ग़लत या अनुचित हैं कि सच हो ही नहीं सकते?"

"यह तो मैंने नहीं कहा। मैं तो कहता हूँ सपने बने बनाये नहीं, बनाने का धैर्य और प्रयत्न उससे ज्यादा जरूरी है। सपने दूकानों पर नहीं बिकते कि गये और रैडीमैड कपड़े ले आये। उन्हें तो उगाना पड़ता है। पता है, बाहें जब पसीने के मोती बोती हैं तब सपनों की फ़सल होती है?"

"कविता छोड़िये, अगर पसीने के मोती से आपका तात्पर्य परिश्रम से है तो..." जया ने कप रखकर उसके ऊपर हथेली ढँकते हुए कहा—"तो क्या आप कह सकते हैं कि मैं या हम परिश्रम से डरते हैं? यह सुबह से शाम तक की भाग-दौड़, यह छः-छः घण्टे लगातार क्लास में खड़े होकर भौंकना, कॉपियां देखना, खुद तैयारी

करना—और इस सबके अलावा घर की जो भी देख-भाल होती है वह तो करनी ही पड़ती है। आख़िर आदमी से आप कितना परिश्रम चाहते हैं? दस घण्टे, बारह घण्टे, सोलह घण्टे—हां, परिश्रम में सिर्फ चौका-बर्तन झाड़ बुहारी, चूल्हा-चक्की और सास की डाँट फटकार सेवा-टहल को ही आप मानते हो, और इसके अलावा किसी काम को मेहनत न मानते हों तब तो फिर कुछ कहना ही नहीं है। मैं कहती हूँ यह सब भी परिश्रम है, लेकिन केवल इसे ही परिश्रम मानना हो तो दिमाग़ और बौद्धिक-विकास के लिये यह सब लिखाने-पढ़ाने की जरूरत क्या है? फिर तो आप वही मानिये कि लड़कियों को इतना पढ़ाना चाहिये कि पतिदेव के पत्रों का जबाब दे सकें। जहां उनकी अन्य सारी दुनियाँ पतिदेव तक है—वहां दिमाग़ भी।" जया का स्वर तेज़ हो गया। वह एक क्षण यों ही देखती रही, फिर बोली—"किसी ज़माने में डाक्टरनी और मास्टरनी बनना भले ही फैशन की बात रही हो, लेकिन आज वह ज़रूरत है। घर में एक कमानेवाला है और दस खानेवाले है। कुछ लोगों की जो अच्छे खाते-पीते हैं बात छोड़िये, लेकिन ९९ से अधिक प्रतिशत लोगों की ज़िन्दगी बद से बदतर होती जारही है।"

"हां, सो तो ठीक ही है।" शरद बोला—"आज संघर्ष—जीवित रहने का संघर्ष इतना तेज़ है कि आदमी खुद अकेला जीवित रहले तभी काफी है—आधी दुनियाँ को वह कहां से बैठा कर खिला सकता है? और सचमुच इससे बड़ा मज़ाक हो भी क्या सकता है कि आधी दुनिया, लड़े-मरे, खून-पसीना एक करे और आधी दुनियाँ मजे में घर में बैठी शृङ्गार करे और खाये! इस समय यदि स्त्री पुरुष की मदद नहीं करती है तो स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में सचमुच बड़ा संकट उपस्थित हो जायेगा।"

"संकट की बात छोड़िये"—जया ने बात आगे बढ़ाई—"बिना पढ़ी या घर की नयी या पुरानी चहारदीवारी में बन्द स्त्री की बात छोड़िये, लेकिन सारी दुनियाँ की स्त्रियों को आप 'अबला' या 'फ़ैयरसैक्स' कह-कह कर नहीं बहकाये रख सकते। लाख बुरी और अनुपयुक्त होते आज की शिक्षा स्त्री को राजनीति, इतिहास, विज्ञान और कला के प्रति समझ और आकर्षण उत्पन्न करती है, फिर आप क्या यह चाहते हैं कि स्त्री को यह जानने की ज़रा भी जरूरत नहीं है कि विज्ञान में कब कहां क्या होता है? उसे बढ़ते हुए राजनैतिक खिंचाव या पैंतरों से जानकारी रखने की ज़रा भी जरूरत नहीं है? कला और साहित्य के क्या संकट हैं, इससे उसे कोई मतलब नहीं है? शिक्षा का अर्थ क्या इतना ही है कि औरत जान ले शहर के किस हिस्से में डबल रोटी क्या हिसाब मिलती है? ज़रा सुन्दर और साफ़ ढङ्ग से कपड़े पहिनना सीखले, बच्चों को पहना दे—? और पति देव के मित्रों के बीच में बैठकर चाय बनादे—नये-नये फैशनों की चर्चा और प्रदर्शन करती रहे?"

"लेकिन भैया, मैंने यह सब कहा कहाँ?"

जया अपनी उत्तेजना पर थोड़ा झेंप गई, बोली—"मैं तो एक बात कहती हूँ।"

"लेकिन क्या शिक्षा, यानी दिमाग़ी जागरूकता में और इस तरह के परिश्रम में कोई विरोध है ?" उँगलियाँ चटखाते हुए शरद ने पूछा।

"ज़रा भी नहीं।" जया तेज़ी से बोली—"लेकिन इन दोनों में से कौन-सा श्रेष्ठ है यह भी तो देखना होगा। श्रेष्ठ से मेरा मतलब यह भी है कि किस पर आपका अधिकार है ? आपने ज़िन्दगी भर तैयार तो किया है अपने आपको दिमाग़ी परिश्रम के लिये, या कहना चाहिये दिमाग़ी परिश्रम को प्रमुख रख कर ही आपने सारा हाथ-पांव का परिश्रम किया है और फिर आपकी सारी दुनियाँ—ध्यान दीजिये मैं कह रही हूँ सारी दुनियाँ—कैद कर दी जाती है शारीरिक परिश्रम में, इसके लिये कौन बेवकूफ तैयार होगी ? यह तो ऐसा ही हुआ कि कुत्ते को खिला-पिला कर आपने तगड़ा किया और फिर ले जा कर जोत दिया गाड़ी में—।"

"लेकिन आप मुझे यह तो बताइये"—बात काट कर शरद बोला—"दोनों ही बाहर मुँह कर लेंगे तो घर को कौन देखेगा ?"

"जी नहीं, 'स्त्री घर की रानी है' 'उसकी दुनिया चहारदीवारी के भीतर है' इन या इस के वाक्यों को आप पुरानी संस्कृति के रद्दी तोतों के लिये छोड़ दीजिये। कैसा सुन्दर वाक्य है—'घर की रानी ?' "—जयाने मुँह बनाकर कहा—"इसका सीधा अर्थ तो यह हुआ न, प्रमुख कार्य करने वाला पुरुष, और स्त्री केवल गति बनाये रखने के लिये 'मोबिल-ऑइल'। फ़र्क क्या रहा, कल वह चर्खे का तेल थी आज मोटर का मोबिल-ऑइल हो गई ? लेबिल बदल गया है, उपयोग वही रहा। स्त्री को संतोष मिल गया—चलो बड़ी भारी क्रांति करली।" जया ने ऐसे तीखेपन से सारी बाते कही जैसे ऐसी बातें सुनते-सुनते वह आजिज आ गई है। एक घूँट में शेष सारी कॉफी समाप्त करके वह बोली—"आज के ज़माने में आप आख़िर शादी का अर्थ क्या समझते है ?"

"शादी का अर्थ ?" बात के इस तोड़ के लिये शरद तैयार नहीं था, अच-कचा गया। पीछे से गर्दन खुजाई। खाली कोट की दोनों जेबों में हाथ डालकर कुछ फेंका, फिर दूसरी बार प्याले भरे, बोला—"यह तो मुझे आपसे पूछना चाहिये ?"

"मुझसे ही पूछना चाहिये तो आपकी इस वक्त जरूरत क्या थी ?"—जया मुस्कुराई।

"यों कुछ बना बनाया जवाब तो मेरे पास नहीं है।" शरद सोचते हुए बोला —"लेकिन सुनी-पढ़ी देखी बातों के आधार पर मैं कोशिश करूँगा। वैसे टाइम बहुत कम रह गया है। बात आधी रह जायेगी।" उसे गार्ड की सीटी सुनाई दी।

"नहीं, कोई बात नहीं", जया ने कहा—"शुरू तो कीजिये, पूरी फिर कभी हो जायेगी या फिर कल इसी डिब्बे में हो जायेगी।"

शरद गम्भीर होकर सोच रहा था, उसकी यह बात सुन कर मुस्कुराए बिना

न रह सका—"अच्छा ! बड़ी हिम्मत आती जा रही है ?"

"क्या करें, आप लोगों के भरोसे कब तक सड़ें—" धृष्टता से जयाने कहा—"और शायद आप ही ने बताया था कि इस 'को-एजूकेशन' ने पुरुषों को ज़नाना और स्त्रियों को मर्दाना बना दिया है। पुरुष स्त्रियों की तरह नज़ाकत और शृङ्गार प्रिय हो गये हैं और स्त्रियां पुरुषों की तरह दुस्साहसी !"

दोनों ज़ोर से हँस पड़े थे।

हँसते वक्त जया के चेहरे की सारी रूप-रेखाएँ उसके सामने साकार हो आई और वह जैसे उस ईसाई-परिवार, सैम या औंधी होकर पढ़नेवाली लड़की, सबके अस्तित्व को बिल्कुल ही भूल गया। पता नहीं वह कब तक मुस्कुराता रहा। किस तरह उसके बाद उन लोगों में बातें और हुई, लगातार एक अभ्यस्त भाषणकर्ता की तरह उसने जया को विवाह पर भाषण दिये। और उसी रेल के तीन दिन के भाषणों में उसने स्त्री की प्रारम्भ से लेकर आज तक की सामाजिक-स्थिति का विश्लेषण करके यह बताया था कि विवाह की कहानी स्त्री की गुलामी की कहानी है। 'पतिव्रता' का जो मध्यकालीन नशा हमारे दिमाग़ में भर दिया है वह वास्तव में स्त्री के दिमाग को कुन्द करने का एक संगठित और परम्परागत प्रयत्न रहा है। इसके माध्यम से वास्तव में पुरुष ने अपने विशेषाधिकारों को क़ायम रखा है। पुरुष की अधिकार-लिप्सा तो यहां तक थी कि अपने मर जाने के बाद भी वह नहीं सह सकता था कि स्त्री जीवित भी रहें, इसलिये 'सती' के नाम पर उसे भी साथ ही जलवा देता था। बाद में आखिर उसने स्त्री से ही इसे उसके 'सौभाग्य' का चरम चिन्ह मानकर उसकी इस सामाजिक-प्रतिष्ठा को आदर्श घोषित किया। राजा और सामन्तों की अन्य सम्पति में स्त्री या स्त्रियां भी एक सम्पत्ति थीं। इस काल में जिस चीज़ को बल-पूर्वक कुचला गया वह स्त्री या 'सम्पत्ति' की 'स्वतन्त्र' इच्छा थी। किन्तु इस महाजनी-युग में जब इच्छा को स्वतन्त्रता मिल गई है, समस्या कुछ दूसरे रूप मे आ गई है। पहले जिसके पास शक्ति थी वह इच्छा पर अपना 'शासन' रखता था आज जिसके पास धन है वह इच्छा को ख़रीद लेता है। इच्छा की स्वतन्त्रता का आज यही अर्थ है कि वह बिकने में स्वतन्त्र है, अर्थात् किस मोल को स्वीकार करके बिके। असल में नकेलें जिसके हाथ में है 'इच्छा' भी उन्ही के साथ है। ऐसी स्थिति में विवाह का जो रूप वास्तव में स्त्री की गरिमा और इज्जत को सुरक्षित रखेगा वह तो तब तक सम्भव नहीं है जब तक कि 'इच्छा' और 'अर्थ' दोनों दृष्टियों से नारी को बराबर का स्थान नहीं मिल जायेगा। आज तो नारी के श्रम का उचित मूल्य ही नहीं आँका जाता और शरीर को खिलौना बना दिया गया है। और यह रूप तो आर्थिक-समानता के ही युग में सम्भव है कि स्त्री-पुरुष अपनी वास्तविक स्वतन्त्र इच्छाओं को महत्व देकर ही विवाह के बन्धन में बँधें। दोस्ती दो समान व्यक्तियों में होती है। या उसी समय उसमें हार्दिकता आ पाती है जब उन दोनों में कहीं न

समानता हो। अर्थात् नारी पुरुष की आश्रिता न हो। प्रेयसी पत्नी की अपेक्षा शायद इसीलिये अधिक प्रिय होती है कि वह आर्थिक रूप से पर-निर्भरता की स्थिति तक नहीं आ पाती।

और अपने उन तीन दिन के लगातार दिये गये लैक्चरों को याद करके शरद हँसता रहा। कैसी गम्भीरता से वह क्रमशः लेक्चर दिये जा रहा था। कभी-कभी सुनती जया की एकाग्रता उसे विचलित कर देती थी। लेकिन इसके आगे जो कुछ हुआ उसकी तो कल्पना भी नही की थी। तीसरे दिन की बात है। आज उसने अपना भाषण समाप्त कर डाला था, और जया की प्रतिक्रिया जानना चाहता था। इस बीच में उसके भीतर भी कुछ ऐसा होता रहा था जिसे वह निश्चित शब्द देने में असमर्थ था।

झटके से रेलगाड़ी रुक गई थी, और बिल के पैसे रख कर आगे-आगे शरद और पीछे जया गाड़ी से उतर आये। उतरते हुए जया ने कहा—"दादा, आप क्यों इस वकालत के चक्कर मे पडे है, कही नेतागीरी कीजिये और मौज में भाषण झाड़िये।"

शरद जोर से हँस पड़ा—"सचमुच लगता तो मुझे भी बहुत बुरा है। और अभी क्या है, अभी तो वकीलों के पीछे लगे कोर्ट की इमारतों के चक्कर काटो। अभी तो ट्रेनिग पीरियड यानी 'एपरेंण्टिसशिप' चल रही है, पता नही वकालत करने लगूँगा तो चलेगी भी या नही।"

जब दोनो अलग होने लगे तो जया ने प्रार्थना के स्वर मे कहा—"दादा, कल और!"

"अब कल क्या?"

"अभी मैने अपनी बात तो कुछ कही ही नही!"

"अच्छा!" शरद मुस्कुरा दिया।

फिर अगले दिन।

जया बोली—"विवाह को जो आपने यह सैद्धान्तिक पक्ष बतलाया, मैं इससे हर्फ-ब-हर्फ सहमत हूँ, लेकिन इससे तो निराशा और बढ़ती है। जानना मैं यह चाहती हूँ कि आज विवाह का प्रैक्टीकल रूप, सम्भव क्या है?"

"प्रैक्टिकल से क्या मतलब?" शरद ने पूछा। दिन भर वह तरह-तरह के विचारों में डूबा रहा था। उसने हर-क्षण अनुभव किया जैसे कल की बातों ने जया की आँखों के आगे एक नई दुनियाँ के पर्दे हटा दिये हों और इस दृष्टिकोण से देखी गई विवाह की इस दुनियाँ को वह चकित और विस्फारित आँखों से देख रही हो।

"आज के दिन सम्भव क्या है?" आज जया एक स्वेटर ले आई थी। चाय जब तक नहीं आई उसकी उंगलियाँ उन सलाइयों पर खेलती रहीं। वह आँखें नीची करके फन्दों और बुनाई को देख रही थी, लेकिन उसकी हर चेष्टा से व्यक्त हो रहा था कि वह शरद की बात सुन रही है। कभी-कभी वह पलकें ऊँची करके

उधर देख लेती।

"सम्भव ?" शरद बोला—"आज हमारे समाज या हम सभी पर, सामन्तवाद के ध्वंसावशेषों की राख छाई है और दूसरी ओर महाजनी-समाज की ह्रासकालीन छाप अपने 'गुणों' के साथ गहरी पड़ती जा रही है। इस विचित्र-किस्म की संक्रान्ति के दौर से गुज़रना हमारे समाज की एक ट्रेजेडी है। हमारे सपनों को एक से नहीं, दो व्यवस्थाओं से लड़ना है। इन दोनों बोझों के नीचे हमारी आत्मा कराह रही है।"

"यह तो आप फिर भाषण की शैली में आ गये।" जया ने झुँझलाकर कहा। जब वह अपनी झुँझलाहट को व्यक्त करना चाहती है तो नाक के स्वर में बोलने लगती है। नाक के स्वर में ही उसने कहा—"यह तो भाई, मैं आपकी बात समझ गई कि जब तक यह समाज नहीं बदलेगा हमारी आत्मा इन छापों से मुक्त हो भी नहीं सकती। लेकिन जब तक नहीं बदलता तबतक क्या करें ?"

"रास्ता तो खोजने से ही निकलेगा। किसी ऐसे रास्ते की खोज करो जहां दोनों के व्यक्तित्व एक दूसरे पर लदें नहीं, एक दूसरे से दबें नहीं और एक दूसरे को खा न जाँय; और जब दोनों के व्यक्तित्व इतने मुक्त रहेंगे कि एक दूसरे के बनने में, उसे मानसिक बल देने मे समर्थ हो सकें, तभी तो एक का प्यार दूसरे को उठायेगा और आत्मा-आत्मा का सच्चा प्यार निखर कर आयेगा।" फिर शरद ने ग़ौर से उसकी चलती सलाइयों और गहरे पीले ऊन के छल्ले को देखकर कहा—"मुझे अगर दुनियाँ में सबसे बुरा काम लगता है तो यही, कि बैठे-बैठे मक्खियां-सी मारा करो।"

"और स्वेटर पहनना ? बुरा लगता है तो आप देखते ही क्यों हैं इधर ?" जया मुस्कुरा पड़ी। शरद की इस आदत को वह जानती थी। लेकिन अपनी बात पर आकर बोली—"फिर भी उसका रास्ता आखिर क्या हो ?"

"तुमने तो नाक में दम कर दिया ! इतना सारा भाषण तो मैने कभी नहीं दिया। और अब एक के बाद एक प्रश्न करके मेरी खोपड़ी खाए जा रही हो।" हल्की-सी अँगड़ाई लेकर उसने टालते हुए कहा—"अरे भाई, बिल्कुल सीधी-सी बात है, तुम टीचर हो ही, वह भी कही नौकरी कर करा ले—चलो छुट्टी हुई। हां, इसमें परम्परागत रूपमें देखने में ज़रूर यह लग सकता है कि जब दोनों ही नौकर होंगे, तब पतिराम पत्नी का भरण-पोषण भी नहीं करेंगे; तब शास्त्रों में दिए 'भर्ता' शब्द को कैसे सार्थक किया जाएगा, और ऐसी शादी से लाभ ?"—जब बैरा प्याले इत्यादि रख गया तो उन्हें अपने अनुसार लगाकर शरद बोला—"जब तक युग-युग के संस्कारों से पीछा नहीं छुड़ाया जाएगा नई बातें सोचना भी व्यर्थ है। फिर तो किसी भी बूढ़े-खूसट की लिखी हुई 'आदर्श-गृहस्थी' जैसी कोई किताब लेलो और बैठकर घोटो !"

"हूँ..." जया गम्भीर हो गई, बोली—"चाय ज़रा आप ही बना लीजिए न, बस, ये दो फन्दे रह गए हैं ज़रा।"

"मैं आपका नौकर लगा हूँ !" शरद कहने ही वाला था कि जया की इस

गम्भीरता से सहम-सा गया। चुपचाप ध्यान से प्यालों में चाय डालते हुए बोला—"कल से सारा भेजा तुमने चाट डाला; लेकिन उस कम्बख्त के बारे में ज़रा भी नहीं बताया, कौन है ? क्या करता है ? कहां रहता है ?"

जब काफी देर तक उसे जया की ओर से कोई जवाब नहीं मिला तो उसने चाय बनाने के बीच में ही उधर देखा और देखते ही जैसे चौंक गया। जया की उँगलियाँ मशीन की तरह चली जा रही थीं—उनकी ओर झुकी पलकों पर क्रम-क्रम से पानी की चमकदार बूंदें आती और चुपचाप स्वेटर पर टपक पड़तीं। शरद की समझ में नहीं आया कि क्या करे ! वह जैसे घबरा गया। उसने हड़बड़ा कर इधर-उधर देखा, कोई उनकी तरफ देख तो नहीं रहा। ऐसी आखिर बात क्या हो गई, मैंने तो कुछ कहा नहीं। कोई देखे तो क्या कहे। उसके मुँह से निकल गया—"अरे !"—उसकी समझ में नहीं आया क्या करके स्थिति को सम्भाले। फिर उसने मेज के नीचे जया के घुटने को अपने घुटने से धक्का देकर, गला भीचकर बड़े आहिस्ते, लेकिन डाँट के स्वर में कहा—"जया, जया ! यह क्या बेवकूफ़ी है ?...कोई देखे तो क्या कहे ? कुछ तो बताओ...आखिर बात भी हो कुछ ? मैंने अगर कुछ कह भी दिया हो तो यहाँ से चलकर मुझे डाँट लेना...मैं माफ़ी माँग लेता हूँ...सुनती हो कि नहीं...देखो, पीछेवाला वह आदमी हमें उसी तरह घूर रहा है। यह अच्छा हमारे पीछे पड़ा है कम्बख्त रोज इसी गाडी में मिल जाता है, और हमारी बातें सुनने की कोशिश करता है...ये और लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे ?..."

एक बार तो ऐसा लगा कि जैसे धार तेज़ हो गई, लेकिन फिर धीरे-धीरे आँसू धीमे पड़ गए। खिड़की का शीशा उठाकर जया ने नाक साफ की। लाल पड़े हुए नथुने फड़क रहे थे। पर्स से रूमाल निकाल कर उसने ज़ोर से मुँह-नाक और आँखों पर मला, और सिर झुकाये चुपचाप चाय पीने लगी। शरद की जैसे जान में जान आ गई। शंकित दृष्टि से उसने फिर इधर-उधर देखा—यह जया भी कितनी बड़ी मूर्खा है ! थोड़ी देर में स्वस्थ होने पर वह बोला—"किसी ने सच कहा है, बन्दर और स्त्री के साथ का कोई विश्वास नहीं। कुछ नहीं तो बैठ कर आँसू ही बहाने लगी।"

जया ने मुंह उठाकर देखा और आँखें मिलते ही अपनी बेवकूफ़ी पर मुस्कुरा उठी—जैसे वर्षा से भीगे पल्लवों पर किरणें चमक उठी.....

शरद कहे जा रहा था—"आखिर रो पड़ने की कोई बात भी तो हो ? उसके बारे में कुछ बताना नहीं चाहती थीं ? या कुछ और !" शरद की आँखों में झिड़की स्पष्ट थी।

थोड़ी देर की चुप्पी के बाद जया ने कहा, जैसे स्वर बड़ा घुटा-घुटा था, "दादा, वहां की बात सुन कर रूह क़ब्ज़ होती है। वे मुंशी लोग हैं। वही जन्म-जन्मान्तर के पुराने रूढ़िवादी संस्कार—टिपीकल मुंशी जैसे वे खुद। उस घुटन

और सँड़ाद का ध्यान करके बेतहाशा रो पड़ने को मन करता है।"

"फिर वही बात ! अपनी तरफ़ भी तो देखो। शादी आप आख़िर किससे करेंगी ? और आख़िर कब करेंगी ?" शरद ने ज़रा तेज़ स्वर में कहा—"मुझे तुम्हारा यही ढुलमुलपना ही तो पसन्द नहीं है। या तो बिल्कुल निश्चय करो कि विवाहित जीवन तुम चाहती हो, या यह कि नहीं। तुम्हारे दिमाग़ में साफ़ तो है नहीं कि तुम चाहती क्या हो ?" जया की इस मूर्खता पर शरद खीझ उठा। इसी मूर्खता ने तो घरवालों को यह कहने का मौक़ा दिया कि इतनी उम्र बढ़ाली है और जल्दी भी चाहती है, साहस भी नहीं है। और आख़िर उम्र भी क्या ऐसी बढ़ गई है कि यों मरी जा रही है ? तभी उसे शकुन का ध्यान हो आया। पता नहीं वह कैसी होगी और दिन-रात क्या सोचती रहती होगी। कहीं उसके दिमाग़ में भी तो इसी प्रकार के कम्प्लैक्स नहीं पैदा होने लगे ? माना वह जया से ज्यादा खूबसूरत है, ज्यादा मैनरली और कल्चर्ड है...लेकिन वह उसके बारे में और तो कुछ जानता ही नहीं कि यूनिवर्सिटी-कन्वोकेशन में दीदी की क्लास-फ़ैलो होने के नाते वह उन्हीं के साथ आकर ठहरी थी और बाद में जो अपनी पर्स भूल गई उसीको लेकर उन लोगों में कुछ पत्र-व्यवहार हुआ। लेकिन यही सारा परिचय तो ऐसे सम्बन्धों के लिये पर्याप्त नहीं है.....

"आप मेरी परिस्थिति में अपने को रखकर देखिये, मैं आख़िर करूँ क्या ?" —जया कह रही थी। धीरे-से प्याला उसने मेज़ पर रख दिया।

अचानक बड़ा झिझकता हुआ सकुचाता-सा शरद का हाथ उसके हाथ पर पड़ा—कांपते स्वर में उसने कहा—"क्या हमलोग आपस में सम्मिलित जीवन पर विचार करलें ?" अगली कुछ भी बात कहने से पहले वह सहसा चुप होकर बात के औचित्य पर विचार करने लगा।

जया ने कोई जबाब नहीं दिया और स्वेटर बुनती रही। शरद अपने कान उधर लगाये गाड़ी में इधर-उधर लगे देश के प्रसिद्ध स्थानों के चित्र देखता रहा। जया बड़े धीरे-से बोली—"हमारे घरवाले जो हैं !" फिर उसने एक गहरी साँस ली। एक बार पलकें ऊँची करके शरद को देखा।

"सोचलो !"

शरद चुपचाप डायरी में कुछ लिखता रहा था।

और जब थोड़ी देर बाद वे उठे तो एक दूसरे से आँखें नहीं मिल पा रही थीं। जया के गालों पर मुस्कुराहटों के भँवर नाच रहे थे और दोनों के होंठों से सलज्ज उल्लास झरा पड़ता था। चलते हुए शरद ने जया को वह अपना लिखा हुआ पढ़ने को दिया था। जल्दी-जल्दी में उसने पढ़ा :

'हम लोग सम्मिलित-जीवन बिताने का आज निश्चय कर रहे हैं। प्रकृति को अनिवार्य मानकर दो इकाइयों के सामूहिक-जीवन की सामाजिक-स्वीकृति का नाम

विवाह है। परिवर्तित सामाजिक रूपों में व्यक्तियों—स्त्री-पुरुष—के बीच की यह अण्डर्स्टैण्डिंग भी बदलनी चाहिये। विवाह के सम्बन्ध में मैं हर टीम-टाम के विरुद्ध हूँ। सामन्तों की तरह फौज-फांटा लेकर लड़कीवालों के घर पर चढ़ दौड़ने और चौथ वसूलने के ऐतिहासिक दौर से हम लोग गुज़र आये हैं। उसकी नक़ल की भी जरूरत नहीं रह गई है। यह सब जब होता था तब होता था। आग जलाकर एक मृत और साधारणतः दुर्बोध भाषा में कुछ जाहिलों को बीच में डाल कर अर्थहीन वाक्यों को दुहरा भर लेना हद दर्जे की जहालत और अंध-विश्वास है। दोस्तों को दिखा कर फोटो अख़बारों में छपा कर यह घोषित करने के भी मैं पक्ष में नहीं हूँ कि सारा संसार गवाह रहे—हमने विवाह किया है, सनद रहे और वक़्त ज़रूरत काम आये। विवाह सामाजिक धरातल पर एक व्यक्तिगत मसाला है—लेकिन आज का सामाजिक रूढ़िजर्जर मिटना हुआ रूप, व्यक्ति के अनुकूल ही नहीं उसके विकास में सबसे बड़ा बाधक है। किन्हीं भी कारणों से जब तक समाज का यह रूप नहीं बदलता तबतक व्यक्ति को पूरी स्वतन्त्रता है कि इस मसले को भविष्य के समाज की दृष्टि से आज शुद्ध व्यक्तिगत स्तर पर ही हल करे। आज विवाह एक समझौता है, और इसके सिवा कुछ हो भी नहीं सकता। जब आपस में यह गुजायश नहीं रहेगी कि इसे चलाया जा सके या इस पर स्थिर रहा जा सके तो यह समझौता टूट जायेगा। आज से हम लोग एक दूसरे के प्रति ईमानदार रहने का प्रयत्न करेंगे। मानवीय भावनाएँ और सम्भावनाएँ मनुष्य के हर क़दम की माप-दण्ड होती है—इस वक़्त भी वे हमारे सामने है तब भी होंगी।'

उसे अच्छी तरह याद है इसे पढ़ कर जया बुद्धिमानी से मुस्कुराई थी—कैसी हवाई और भावुकता की बातें है...!—कहीं यह टूटना होगा !

यह जया उसकी हर बात को इतनी सहजता और अगम्भीरता से लेती है कि उसे कभी-कभी तो बहुत ही गुस्सा आ जाता है। जैसे खुद बहुत बड़ी-बूढ़ी हो न। चाहे कुछ कहो, पढ़ाने में एक अप्राकृतिक किस्म की गम्भीरता काफी छोटी उम्र में आ जाती है। अपने से कम उम्र के या कम पढ़े-लिखे लोगों के बीच में हरवक्त रहने से आदमी अपने को जरूरत से अधिक गम्भीर समझने लगता है। धीरे-धीरे यहाँ के लिये चलने से पहले का सारा दृश्य उसके सामने उभरने लगा—हैड-टेल के लिये टॉस करते रुपये का चित्र उसे इस तरह दिखाई देने लगा जैसे अभी-अभी वह सैम के साथ ही यह खेल कर रहा है.....

'अच्छा, तो मैं टॉस करता हूँ, हैड आया तो देशबन्धुजी के तार पर जाऊंगा नहीं तो....."

"नहीं तो क्या.....? नहीं जी, साफ़ सुन लीजिये, ज़िन्दगी को हैट-टेल के जुए से नापना हमें पसन्द नहीं है....."

"तब भी भाई, आखिर कहीं सैटिल तो होना ही है न ! यों आखिर कबतक

यह कोर्टिङ्ग चलेगी...!"

"कोर्टिङ्ग—? व्हॉट डू यू मीन...?"

"तो नहीं जाऊँ ? भई, जैसा कहो वैसा कर डालूं। मेरा तो दिमाग़ काम नहीं कर रहा।"

"मेरे ऊपर क्यों डालते हैं—जो मन हो सो कर डालिये।"

"अच्छा तो लो।" और खनखनाता हुआ चमकदार रुपया उछला और चौड़ी हथेली पर हैड आ गिरा। रुपये को एक बार उछालकर दोनों हाथों की मुट्ठी में बन्द करते हुये उसने कहा—

"तो जब तक मैं आऊं, आप अपने दिमाग़ को हर अप्रत्याशित बात के लिये तैयार रखेंगी। हो सकता है कुछ न हो, हो सकता है सब कुछ हो जाय।"

जया ने कुछ भी नहीं कहा था, लेकिन वह जानता था कि इस तार को पाकर यों चल खड़े होने में बहुत बड़ा हाथ जया का भी है, आखिर अब हमें कहीं सैटिल होना है !...लेकिन यह मजाक़ है न खूब ! वह बाहर देखने लगा..... सब कैसी आसानी से हो गया।

वर्षा समाप्त हो गयी थी। सीली हवा के झोंके बड़े अच्छे लग रहे थे बहुत दूर हरियाले पेड़ों के झुण्ड में घुली-मिली चिमनी और माथे पर सलीब उठाये गिरजाघर की चोटी दीख रही थी—यही तो वह शहर है—अरे, सपनों में वह बिलकुल ही भूल गया था। निगाह घड़ी पर गई, ग्यारह बजने में आठ मिनट है—ठीक ग्यारह पर गाड़ी स्टेशन पर पहुँचेगी। भींगी तारकोल की सड़क के पुल से गाड़ी गुजरी।

और बर्मा-शैल के लेटे हुये भारी रुपहले पीपे पीछे छूट गए। क्वार्टर इधर-उधर निकल रहे थे। इञ्जन ने जोर की 'घों' की आवाज़ की और पास से एक सिग्नल गुजरा। रेल पटरियाँ छोड़ने लगी। दोनों ओर इधर-उधर लावारिस से मालगाड़ियों के डिब्बे खड़े थे। शरद उठ खड़ा हुआ। उसने अटैची उठाई और अपनी खाली सीट पर रख दी, फिर झुका हुआ झाँक कर इस अपरिचित नगर को देखने लगा। रेलवे सीमा की बाड़ के पार एक सड़क और सामने दूकानों की लाइन चल रही थी। अचानक केबिन आया, टङ्की आई और रेल से सटा हुआ प्लेटफॉर्म दौड़ने लगा। जगह-जगह शतरञ्ज की बिसात पर रखे हुये मोहरों की तरह सीमेण्ट की चौकियों से बने प्लैटफॉर्म पर कुली और मुसाफ़िर एकदम झपट पड़ने को स्थिर साँस रोके ताक रहे थे। अभी बारिश होकर चुकी थी—प्लेटफॉर्म भीगा था। झटके से गाड़ी खड़ी होगई। शरद दरवाज़े की ओर बढ़ा। एकबार फिर साहब परिवार की ओर दृष्टि डाली। साहब पलकें मिचमचाकर आँखें खोल रहा था। मेम दीवार की ओर मुँह करके बेखबर सोई पड़ी थी। लड़की बाँह पर माथा रखकर बिल्कुल औंधी सोगई थी। दो चोटियों में बँटे ढीले बाल गर्दन

पर इस तरह बिखर गये थे जैसे चौड़े फ़व्वारे से धारें नीचे बह-बहकर आरही हों। उसकी माँसल बाँह पर रखा हुआ सिर और अबोध लापरवाही से बिखरे बाल! शरद के मन में प्रबल इच्छा हुई कि चलते-चलते हाथ से लड़की के बिखरे बालों को शरारती बच्चे की तरह अस्त-व्यस्त करदे। लेकिन वह मुड़ पड़ा—ये बेचारे छिन्न-मूल भविष्य-हीन लोग! स्टेशन पर भीड़ आकर जगह न घेर ले, इसीलिये साहब-परिवार साँस रोके पड़ा था।

शरद ने जैसे ही प्लेटफॉर्म पर पाँव रखा उसे कुलियों ने घेर लिया। अटैची हल्की थी, लापरवाही से उन्हें मना करता, भीगे फ़र्श पर क्रेप के जूते फिसल न जाँय, इस डर से पाँव जमाता हुआ वह गेट की ओर बढ़ा।

टिकट देकर जब वह स्टेशन से बाहर आया तो उसका हृदय इस जगह के नयेपन के कारण धड़क रहा था। स्टेशन के सामने रिक्शे, तांगों इत्यादि के लिए काफी चौड़ी सड़कें बीच में बने हरियाली के एक चौड़े गोले के चारों ओर घूम कर गई थी और दूर पर एक अपेक्षाकृत ऊँची बिल्डिंग पर ऊपर से नीचे की ओर एक-एक अक्षर की खडी लाइन में अंग्रेजी में लिखा था, "होटल-डी पैरिस!" एक बार तो मन में आया कि यहां सामान रख दे और तब मिलने चला जाय। नई जगह है, पता नहीं कैसे लोग है, कैसी जगह है। शहर कैसा है। वह सोचने लगा, पता नही यहां उसका मन लगेगा भी या नही—कहीं ऐसा उजाड़ तो नहीं है कि जया सोचने लगे, कहाँ काले कोसों ला पटका। जया को यहां लाने और स्वतन्त्र रूप से पति-पत्नी के रूप में रहने की कल्पना से उसका हृदय एक विचित्र मादक फुरहरी से रोमांचित हो आया। तभी झटके से वह सचेत हो गया, क्योंकि उसकी अटैची को लेकर दो रिक्शेवाले आपस में एक दूसरे को अपनी 'प्यार की शब्दावली' में सम्बोधित करने लगे थे।

"बाबूजी, आपणे जाणा कित्थै ऐं जी!" आखिर एक पञ्जाबी ने अपने नम्बर का अधिकार जताकर अटैची शरद के हाथों से लगभग छीन ली, और रिक्शे में रखता हुआ बोला।

"भाई, देशबन्धु जी हैं एक? पटेल रोड पर 'स्वेदश-महल' है कोई?" —इस सबसे कुछ थककर और क़दरे-परेशान होकर उसने कहा, और जब देखा कि रिक्शेवाला तब भी नही समझ पाया है तो और भी सोचकर बोला—"काँग्रेस के बहुत बड़े नेता हैं"...

"नेता भैया?" रिक्शेवाला 'नेता' शब्द को लपककर बोला। और अपने एक साथी को सम्बोधित करके पूछा—"यह पटेल रोड किद्रां पड़ती है, साँई?" जिससे पूछा था वह सिन्धी था।

"कच्हैरी वाली सरक पर तो नहीं...?" वह दिमाग़ कुरेदकर बोला—"काँग्रिस के लोग तो वहीं जाते हैं...वही तो है न, एक पिरैस है?"

"हाँ...हाँ—" एकदम शरद बोला। देशबन्धु जी एक पत्र के सम्पादक-संचालक हैं इस बात को वह जानता था, लेकिन पत्र का नाम मौक़े पर याद नहीं आया। वह आराम से रिक्शे में बैठकर बोला—"वहीं लेचलो, न होगा तो पता तो लग ही जायेगा।"

रिक्शा सड़क के गड्ढों के पानी को उछालता हुआ तारकोलकी सड़क पर स्टेशन की बरसाती के सामनेवाले हरियाली के उस बड़े गोले का चक्कर लगा कर चल पड़ा। शरद ने रूमाल निकाल कर मुँह पर फेरा, बालो को हाथ फेरकर अनुमान से ही सँवारा, कोट का कालर झटककर उसकी सिकुड़नें ठीक की, सामने ज़रा सँवारा, और फिर पैण्ट की क्रीज़ को पकड़ कर ज़रा ठीक किया। जूते पर आ पड़ी कीचड़ की कुछ बूँदे हाथों से हटाकर रूमाल से पोंछा। यद्यपि अपनी थोड़ी सँवार स्टेशन आने से पहले संडास में जाकर वह कर आया था फिरभी "इण्टरव्यू" का नाम बुरा होता है, नये आदमी के आगे ऐसे ही तो कोई जा नहीं खड़ा होता। पता नहीं क्या बात आँखों में अटक जाय। एक तरफ़ तन कर जेब में रूमाल रखते हुए उसने व्यस्तता से पूछा—"यहाँ यह बारिश कब से होरही है?"

"अजी कोई ठीक है! ये कोई बारिश के दिन है? आज तीन दिन होगये। ज़रा-सी देर को खुल जाता है, फिर टपर-टपर। बड़ी मुसीबत है। एक दिन और बरसा तो सारी फ़सल चौपट हो जायगी, एक तो वैसे ही जान निकली जारही है मँहगाई के मारे...।" रिक्शेवाले ने जरा-सा सूत्र पाकर अपनी झुँझलाहट व्यक्त करना शुरू कर दिया।

सड़क के दोनों ओर गुज़रनेवाले बँगलों और मकानों को देखकर शरद सोच रहा था, शहर तो बुरा नही लगता। जीवन ने तो बिल्कुल ऐसा खाका खीचा था जैसे बिल्कुल रेगिस्तान या उजाड़ ही हो—हुँह, जीवन 'साहब' ठहरे, बम्बइया प्राणी उन्हें तो अपना शहर भी क़स्बे-सा ही लगता है, तब तो यह ज़रूर उजाड़ लगेगा।·· कैसे शुरू होगा उसका और जया का सम्मिलित जीवन... नये सिरे से हरेक चीज़ शुरू करनी होगी...हुँह...मै तो बहुत दूर की बात सोचने लगा, पहले तो उसका यहाँ आने को तैयार होना ही मुश्किल है। वैसे है तो हिम्मती लड़की, शायद कर जाय हिम्मत...जो भी हो, आना तो चुपचाप ही पड़ेगा...पर उसके चले आने पर पीछे तूफ़ान मच जायेगा। जो भी जिसके जी में आयेगा, सो कहेगा। बड़े सीधे लगते थे—भाग गये न! खूब चरित्र पर लांछन लगाये जायेंगे। होगा... यह तो हमेशा ही होता रहा है...भोंक-भाँक कर लोग चुप हो जाते हैं, फिर सभी कुछ ठीक-ठाक चलने लगता है। लोग स्वाभाविकता से ग्रहण करने लगते हैं—पहले यहां आ तो जाऊँ। पता नहीं यहां क्या तय होगा?

"बाबूजी, आप इस शहर में नवे हैं?" रिक्शे वाला अपना भाषण समाप्त

करके पूछ रहा था। बड़े-से चौराहे पर बाएँ हाथ को मोड़ लेते ही सामने कुछ घने-से सफेदी किये मकानों का समूह दिखाई दे रहा था। उसने पूछा—"किस शहर से आये हैं।"

"आगरे से!" बड़ी जल्दी में उसने कहा और पत्थर पर सड़क का नाम पढ़कर बोला—"सरदार पटेल रोड तो यही है।"

"हाँजी, वो कोठी रही नेता भैया की, जो जिप पर झण्डा लगा है।" रिक्शेवाला फिर नये आदमी को परिचय देने के दृष्टिकोण से बोला—"बड़ा लम्बा चौड़ा कार-बार है इनका, गांव हैं जमीन-जैजात है, दो-दो मिलें हैं। पर साँब आदमी भौत ही भले हैं, एकदम शरीफ़। हमेशा मुस्कुराते ही रहते हैं और बिना हाथ जोड़े बात नहीं करते। तभी तो इतनी बरक्कत है। रुपया आदमी के पास हो तो उसे चाहिये, हमेशा नब कर चले—यह नहीं कि घड़ी में तोला घड़ी में माशा…"

लेकिन एक लम्बी-चौड़ी लहरदार पीली सफ़ेद पुती बाउण्ड्री से घिरी कोठी को देखते ही शरद घबरा-सा गया था। उसका दिल फिर बुरी तरह धड़क उठा। पता नहीं अब कैसे मुलाकात हो—क्या नतीजा निकले। घड़ी के फ़ीते के सिरे को छल्ले में दबाया, और सहमी-डरी निगाहों से उस कोठी को देखा। रिक्शेवाले के इस धारा-प्रवाह लैक्चर को बन्द करने के लिये उसने झुँझलाकर कहा-"अब क्या पता है, यहीं हैं या दूसरे।"

"कोई हों, पता तो इनसे लग ही जायगा। ये तो भौत रसूख के आदमी हैं—हज्जारों आदमी आते रहते हैं। कोई कलकत्ते से, कोई बम्बई से। चौबीस घण्टे टेलीफून किलल-किलल करता ही रहता है। एक कान पै टेलीफून रखलिया, दूसरे से आपकी बात सुनेंगे…"

और सचमुच चिट के जवाब में जैसे ही नौकर के साथ उसने एक बीच का गलीचे-बिछा कमरा पार करके दूसरे द्वार में प्रवेश किया, कि उत्साह के कारण टेलीफ़ोन कान से चिपकाये ही कमरे के दरवाजे तक वे निकल आये। सफेद कुर्ता, टखनों तक धोती, सादा-सी चप्पल, स्वस्थ शरीर, गौर रंग, आंखों पर चश्मा, चौड़ा माथा जो इधर-उधर के दो पंखे-से छोड़कर ऊपर चांद की गंज से जाकर मिल गया था। लगभग पैंतालीस की उम्र, पतले-पतले होठों पर मधुर मुस्कान, क्लीनशेव, फ़ोनकी डोरी को उसकी पूरी लम्बाई तक ताने हुए, चोगा कान से चिपकाये—शरद को उनका व्यक्तित्व बड़ा ही भव्य और प्रभावशाली लगा। यों उसने उन्हें देखा पहले भी था, लेकिन पता नहीं कैसे कल्पना ने उनके पुराने चित्र में कुछ फेरफार कर लिया था। श्रद्धा से विगलित विवश-सा होकर उसने लपक कर उनके चरण छू लिये। इससे जैसे बहुत ही अस्त-व्यस्त और गद्गद-सा अनुभव करते हुए उन्होंने उसे एक बाँह में भर लिया, फिर बड़े दुलार से बोले—"सीधे स्टेशन से ही आ रहे हो न अरे भले आदमी, तार ही दे दिया होता—गाड़ी भेज देते। बारिश में वैसे

ही दिक़्त होती है। रास्ते में कोई तकलीफ़ तो नहीं हुई न ?"

"जी नहीं, मुझे तो यहाँ तक रिक्शावाला अपने आप ले आया।" उसकी बग़ल से लगे शरद ने इस आत्मीयता के बोझ से झुक कर बहुत ही नम्र-स्वर में कहा।

"हाँ...हाँ...जी नहीं, मै खुद गाडी लेकर आऊँगा...नाराज़ क्यों होती हो माया बहन....."टेलीफ़ोन का उत्तर देकर देशबन्धु जी ने शरद से कहा—"अच्छा शरद बाबू, अब तो आ ही गये हो, आराम से बातें करेंगे, तुम थके-थकाये आये हो। ज़रा सुस्ताओ, नहाओ, कपड़े-अपड़े बदल लो...जिस चीज़ की ज़रूरत हो, निःसंकोच माँग लो। संध्या को किसी भी वक्त बैठ जायेंगे...कोई खास बात तो करनी ही नहीं है...और बैठना क्या, हमने तो तुम्हें पूरी तरह ही बुलाया था...कोई खास जल्दी तो है नहीं न...?"

"जी नही, मुझे जल्दी काहे की.....?" कृतज्ञता के बोझ से शरद के शब्द नहीं निकल रहे थे, उसका हृदय पुलक आया था।

"अच्छा, पद्मा से कहना चाचा को सब सुनाना पड़ेगा...नहीं...कोई बहाना नही चलेगा...हाँ, सो तो है ही...हाँ-हाँ...।" वे फ़ोन की किसी बात पर बड़े ज़ोर से हँस पड़े, फिर शरद से कहा—"मेरे एक बड़े पुराने मित्र की पत्नी यहाँ आ रही है--साथ में उनकी लड़की भी है—एम० ए० के बाद बाहर कहीं संगीत का कोई कोर्स पूरा करने चली गई थी...अब लौट आई है—संध्या को स्टेशन जाना होगा मुझे, उन्हें लेने...! हाँ, केशव जी, भैया को सम्पादक जी के बग़ल वाला कमरा ठीक कर दो, और देखो नहाने-धोने का, गरम ठण्डा जैसा कहें, इन्तज़ाम कर दो, नहाने-धोने में कोई तकलीफ़ नहीं हो—यह अब यही रहेंगे, समझ लेना। शरद बाबू, आप इनके साथ चले जाइये।" पीठ थपथपा कर वे बोले।

शरद ने मुड़कर देखा तो केशव पीछे खड़ा था। इसी व्यक्ति ने उसकी अटैची ली थी। वह बोला—"आइये।"

ऊब और हस्त-रेखा-विज्ञान

"आइये, आइये !" शरद ने बड़े उत्साह से उन सज्जन को बुलाया। यह महाशय बहुत पुराना गैबर्डीन का पैण्ट और कोट पहने थे, बुरी तरह हाथ पैण्ट की जेबों में ठूँसे हुए, नीचा सिर किये आँखे अपने जूतों या ज़मीन पर गड़ाए एक-एक क़दम इस अन्दाज़ से तोल-तोल कर रखते हुए टहल रहे थे जैसे अपने क़दमों से उस स्थान की दूरी नाप रहे हों। स्पष्ट था कि वे बहुत अधिक चिन्ता-मग्न होकर किसी गहरी समस्या के ताने-बाने उधेड़े दे रहे थे क्योंकि कभी-कभी वह स्वयं ही अपनी गर्दन को ऐसे झटक देते थे जैसे किसी बात को अस्वीकार रहे हों। (227)

खाना खाकर अपनी अटैची से पीठ अड़ाए अध-लेटा शरद अपने हाथ के पंजे मिला कर सिर को उन पर इस तरह टेके था कि दोनों कुहनियाँ कनपटियों के दोनों तरफ़ सामने की ओर निकल आई थी। दिमाग उस समय घुड़दौड़ का मैदान था। कल वह इसी समय रेल पर बैठने के लिये अपने नगर के स्टेशन पर था और जया के साथ हुए वार्तालाप का जादू एक मीठी गन्ध की तरह उसके सिर में लहरा रहा था। लेकिन कुछ होगा, इसका जया को विश्वास नहीं था। यहाँ अधिक से अधिक दो-तीन दिन लग जायेंगे, जब वह उसे एकदम बतायेगा तो जया चकित रह जायेगी। देशबंधुजी ने तो बड़े विश्वास-पूर्वक कह ही दिया है। कैसे स्नेहपूर्वक बात करते हैं। तो क्या फिर सचमुच यहाँ आना निश्चित है ? जब वह जया से कहेगा कि "चलो", तो क्या वह बिना किसी आपत्ति के चली आयेगी ? शायद नहीं। स्कूल की नौकरी है, पता नहीं एकदम छोड़ने को कम्बख्त तैयार भी होगी या नहीं। अब जो भी हो, जब उन्होंने "सम्मिलित-जीवन" बिताने को निश्चित कदम उठा ही लिया हैं तो आखिर कभी न कभी उसे शुरू करना ही है। और तो जो है सो है ही, लेकिन यह नाटक हुआ खूब ! जया उसकी जीवन-संगिनी बने, या कभी बन जायेगी, इस बात को तो उसने सोचा भी नहीं था। उन दिनों तो उसके विचारों में बसा हुआ था वह पंजाबी सौन्दर्य। निश्चित रूपसे "वह" जया से अधिक खूबसूरत थी, अधिक कल्चर्ड और अधिक नारी-सुलभ स्नेह से परिपूर्ण ! सब कुछ होते हुए भी जया में एक ऐसा बौद्धिक तीखापन या कहिये रूखापन है जो उसके स्त्रीत्व को उभरने नहीं देता। शकुन उससे दो-एक साल भी तो उम्र में बड़ी अर्थात छोटी नहीं है, इसबात को न जाने क्यों उमा दीदी ने सूचित कर देना अवश्यक समझा था। एक पत्र में वह दीदी को शकुन के पर्स की बात या उसके सीधेपन की प्रशंसा में कुछ लिख गया था तो फौरन् ही उमा ने बड़े व्यंग्यपूर्ण लहजे में लिखा था—"शरदजी, अपनी हैसियत देखिये, शकुन मेरी सहेली है।" उमा दीदी उसके साथ बहुत खुली हैं, ऐसे मजाक तो अक्सर उनमें बहुत खुलकर

होते हैं—लेकिन यह सांकेतिक लाइन जैसे मज़ाक़ नहीं, अपराध का आरोप थी। यदि अवसर आये, जो उसके लिये अप्रत्याशित ही होगा, तो वह शकुन से विवाह के विषय पर सोच सकेगा यह नहीं, इस सम्बन्ध में उसके दिमाग़ में कुछ भी साफ नहीं था। बिल्कुल अस्वीकार वह एकदम इसलिये नहीं कर सकता कि शकुन उसे पसन्द आई थी, और सबसे अधिक विचित्र बात जो उसे पसन्द आई थी वह थी बिल्कुल उमादीदी की टोन में उसी ढंग का उसके साथ व्यवहार! —लेकिन उनसे भी अधिक स्निग्ध, अधिक सुसंस्कृत और उसमें कुछ ऐसी सरस सम भावना थी जो उमा दीदी के व्यवहार में नहीं थी। और यही वह चीज़ थी जिसने उसे बाँध लिया था। उसके जैसे लापरवाह या दुनियादारी में अयोग्य व्यक्ति को एक ऐसा ही साथ तो चाहिये था जो उसका पूरक हो—लेकिन वह व्यक्ति शकुन ही है, यह स्वीकार करने का उसमें साहस नहीं था! ख़ैर जो हुआ सो ठीक ही हुआ...

शरद ने एक गहरी साँस ली। अगर यहीं रहना पड़े तो शायद यही जगह भी मिलेगी। "आउट हाउस" के नामपर बना जो भी हो इस समय तो दो क्वार्टरों का रूप दे दिया गया है और उसमें से एक में इस समय शरद बैठा था। यह कमरा लगभग १६ × १८ फ़ीट का होगा। भीतर वह खुलता है एक छोटे-से बरामदे में। इस कमरे के बग़ल में जो छोटा-सा पौलीनुमा कमरा है उसका दरवाज़ा भी इसी बरामदे में खुलता है। इस बरामदे के एक और रसोई, दूसरी और ग़ुसलख़ाना है क्योंकि पास ही बरामदे से नीचे उतर कर एक छोटे-से सीमेण्ट के चबूतरे पर नल है। बरामदे से उतर कर ही एक छोटा-सा चौक है जो चारों ओर दस-दस- फीट ऊँची दीवारों से घिरा हुआ है। इसी आँगन के एक कोने में पाख़ाना है, वहाँ चौक या मकान का पिछला दरवाज़ा। शरद को यह आँगन बड़ा घुटा-घुटा-सा लगा। यदि व्यक्ति चौक में खाट डालकर लेट जाय तो एक चौकोर आसमान का टुकड़ा ही ऊपर दिखाई दे पाएगा; जिसके एक ओर अवांछित अजनबी की तरह झाँकता मकान के बाहर खड़ा जामुन का पेड़, और फिर उसके पीछे ही देशबंधु जी की विशाल कोठी की बाउण्ड्री है। शरद सोच रहा था कि पता नहीं जया इस सबको पसन्द भी कर पायेगी या नहीं—पहले तो उसे भी बड़ा घुटा-घुटा-सा और 'डल' लगेगा, यहां तो कोई 'कम्पनी' भी नहीं है उसकी, कुछ साथ के होते तो मन लगा रहता। यद्यपि देशबन्धुजी की बातचीत और स्वागत के ढंग से पूर्णरूप से निश्चित था कि उसे यहीं रहना है, फिर भी वह सहसा अपने इस शेख-चिल्ली के स्वप्नों पर झुंझला उठा—इस बात का क्या निश्चय कि वह यहीं रहेगा, और मानलो यहीं रहा तो उसे यही क्वार्टर मिलेगा? इसके अलावा एक चीज़ उसने और भी मार्क की कि वह हर चीज़ को जया के दृष्टिकोण से ही देख रहा है—हर चीज़, यहाँ तक कि रास्ते के दृश्योंको भी उसने जया की ही आंखों और पसन्द से देखा है, जया को कैसा लगेगा, जया पसन्द करेगी या नहीं! जया! जया!

जैसे जया यहाँ आ ही रही हो—या उसका अपना कोई दृष्टिकोण ही नहीं...इन लड़कियों का क्या ठीक है ! न कर पाई हिम्मत !

तभी उन महाशय का उसके खुले दरवाजे के सामने ज़रा ठिठकते हुए तीसरा चक्कर लगा। अभी तक वह सूनी आंखों से उपर देख रहा था, अब उसका ध्यान उधर खिंचा। उसने निश्चय किया अगर इस बार वे सामने से आयेंगे तो वह ज़रूर उन्हें बुला लेगा—दो बजे हैं आखिर वह करेगी क्या ? वैसे भी वह यहां के बारे मे इतना कुछ जानना चाहता है, कि उसके लिये कोई सूत्र मिलता ही नहीं दिखाई देता। यह सब, यहाँ का वातावरण उसे बड़ा आश्चर्य-जनक लग रहा था जैसे किसी अकेले द्वीप में लाकर छोड़ दिया गया हो, जहां की हर चीज़ को जितना प्रयत्न करके जान पाता है बस उतना ही जान लेता है—आगे एक पग नही। लेकिन नये आदमी को अचानक क्या कहकर पुकारे—उसके मनमें बड़ी झिझक हुई, और वे महाशय दरवाज़े के सामनेसे दो-एक बार और चहलक़दमी कर गये। एक बार उसने सोचा कि इसबार आयेंगे तो वह जरूर ही बुला लेगा, लेकिन नही बुला सका। आखिर इस बार जैसे ही वे सामने आये उसने बड़े आग्रह से पुकारा—"आइये ! आइये ! भीतर आइये न।" और वह 'झपाक' से उठ बैठा। ज़ोर से दोनों जूते फ़र्श पर बजे।

वे महाशय जैसे इसकी प्रतीक्षा ही कर रहे थे। जेब से हाथ निकाल कर टाई की गाठ इधर-उधर झटक कर बीचमें लाते हुए भीतर आगये। बोले—"नहीं, नही, आप लेटिये। खाने के बाद जरा यो ही चहलक़दमी...सोचा आप डिस्टर्ब होंगे। बादल छाये हैं, जरा अच्छा-अच्छा लग रहा है। फिर कभी फ़ुर्सत में बैठेंगे। सूरज में यही तो बात अच्छी है कि वह अपने आपको किसी पर ज़बर्दस्ती लादता नही है...और आप मानेंगे, यह है भी ठीक। आखिर दूसरे की भी सुविधा का ध्यान रखना चाहिये...।"

"ये सूरज कौन है ?" शरद खड़ा होगया—उत्सुकता से पूछा।

बड़े अन्दाज़ से छाती पर हाथ रखकर थोड़ा झुकते हुए वे बोले—"बन्दे का नाम सूरज है...यहां देशबन्धु जी के साप्ताहिक-पत्र 'बिगुल' की देख-भाल करता हूँ... अच्छा फिर कभी आऊंगा...।" कहकर वे बड़े इत्मीनान से खाटपर बैठ गये, सिर ऊंचा करके खड़े हुए शरद को देख कर बोले— "बैठिये, बैठिये, देखिये सूरज तकल्लुफ़बाजी के खिलाफ़ है।"

"ओ:" शरद ने परिचय के जवाब में नमस्कार करके उनके पायताने बैठते हुए कहा—"मुझे यह तो मालूम था कि देशबन्धु जी के यहां से कोई पत्र निकलता है लेकिन नाम नहीं याद था...'बिगुल' तो बहुत ही प्रसिद्ध पत्र रहा है। आपसे मिलकर बड़ी प्रन्नता हुई।" वह मन ही मन हँसा। अपने विषय में अन्य-पुरुष सर्वनाम लगाना उसे कुछ अजब-सा लगा।

उन्होंने जेब से एक चौकोर-सी पान की डिबिया निकालकर खोली और लाल गीले कपड़े को इधर-उधर करके उसकी ओर बढ़ाकर बोले-"लीजिये, शौक़ कीजिये।"

"नहीं, मैं तो पान खाता नहीं हूँ—।" लेकिन खाने के बाद पान खालेने में उसने कोई हर्ज नहीं समझ एक उठा लिया, और शिष्टता से माथे तक लेजाकर मुँह में रखलिया; उसमें सुपारी इत्यादि कुछ भी नही थी।

खुद दो पानों को मुँह में रखकर उन्होंने डिबिया कोट की जेब में डाली। दूसरी जेब से एक लाल-से मखमल का बटुआ निकालकर खोलते हुए शरद की ओर बढ़ा दिया, ओर बोले—"आपके बारे में मैंने कुछ सुना तो था लेकिन..."

"जी, मेरा नाम शरद कुमार है।" कुछ सुपारी और इलायची उसने उठालीं। वे छोटी-छोटी शीशियों-डिबियों में से न जाने क्या-क्या निकाल-निकालकर मुँह में भरते रहे। शरद को तम्बाकू की खुशबू बड़ी मधुर लगी—"इसी साल एल-एल० बी० किया है, अब यहाँ देशबन्धु जी ने..."

"ओ : आई सी, बहुत अच्छा किया, टो आप डेशबंधु जी को पहले शे जानटे होंगे...!" उन्होंने अपना पान की पीक से भरा हुआ मुँह ऊपर उठाकर तुतलाकर कहा—जैसे कोई ऊँट मुँह ऊपर करके गिलबिला रहा हो।

शरद से उधर बिना देखे नहीं रहा गया, गेहुँआ रङ्ग, पतली निकली हुई नाक पिचके हुए गाल—कुछ-कुछ झुर्रियाँ लिये हुये, इकहरा पतला-दुबला शरीर—हल्के नीले-से शेड के काँचों वाला चश्मा, टाई की गांठ से ऊपर काफ़ी निकला हुआ टेंटुआ। कमीज, कपड़े सब साफ़, बाँई ओर को माँग निकालकर कुछ पीछे झोक लिये हुये बाल, उम्र कोई तीस-बत्तीस साल। तो यही हैं सम्पादक जी! 'सम्पादक जी' का जो शुद्ध देशी वेष-भूषा में एक पण्डित-नुमा व्यक्ति का चित्र उसके दिमाग में था, उसे इससे बड़ा धक्का लगा। शरद की बड़ी प्रबल इच्छा हुई कि इसी तुतलाहट में उनकी बात का जवाब दे, लेकिन मुस्कान दबाकर उसने बड़े सँभल कर कहा—

"हमारे वकील साहब थे न, झा साहब, उन्ही के अण्डर में तो मैं ट्रेनिंग ले रहा हूँ. देशबन्धुजी उन्हीं के यहां आये थे। शायद कोई मीटिंग थी। तभी झा साहब ने मेरा इनसे परिचय करा दिया। मुझे बड़े ही अच्छे लगे ये। कॉलेज में हमने एक भाषण भी रखवा दिया। तभी से शायद मुझसे खुश थे, खुद ही पूछा था—"कॉलेज छोड़ने के बाद क्या करोगे?" मैंने वकील साहब को देखकर कह दिया, 'जो चाचाजी, सजैस्ट करें।' इन्होंने कहा—"हमें लिखना।" बस, इतनी ही बात थी। मैंने इन्हें लिख दिया...."

"ओ:, आई सी, शरड बाबू आप यहाँ आ जाइये, बड़ा अच्छा रहेगा।" फिर वे पीक को घूँट भर पी गये। आनन्द के उद्घोष-स्वरूप ज़ोर से गला साफ़ करके बोले—"यहां अकेले मन उकता जाता है।"

"अकेले की क्या बात है?" शरद ने उनके चश्मे में खुले दरवाजे और दूर

पर स्वदेश-महल को बिल्डिंग इत्यादि की परछाईं को देखते हुये ज़रा रुचि और आश्चर्य से पूछा—"मुझे तो इस लम्बी-चौड़ी कोठी में पूरा मुहल्ला बसा दिखाई देता है, शायद इधर नौकरों की कोठरियाँ है, सामने प्रेस और 'बिगुल' ऑफिस है, यह गैस्ट-हाउस है..."

"गैस्ट-हाउस नहीं, आउट-हाउस कहिये।" सूरज जी शरद को इस स्थान के सम्बन्ध में परिचय देखकर विद्वता से मुस्कुराये और सुधारकर बोले—"गैस्ट-हाउस उधर ही है, कोठी के ऊपर के हिस्से में..."

"हां-हां, सभी तो हैं, फिर कैसे आप अकेलेपन की बात कहते हैं ?" बड़े झिझकतेस्वर में शरद ने पूछा—"फ़ैमिली नहीं है ?" इस प्रश्न के अवचेतन में भी जया की कम्पनी के विषय में जानने की भावना थी, लेकिन फिर एकदम इस प्रश्न के उजड्डपने से बचने के लिये वह बोला—"और अपना ठीक ही क्या है कि आही जायेंगे।"

"अजी, क्या बात कही है आपने।" अपने मुँह के पास मक्खी उड़ाने की तरह हाथ झटकारकर वे बोले—"सूरज की आदत नहीं है इधर-उधर मारे-मारे फिरने की। जिस साले को ग़रज़ हो खुद आ जाय,...हाँ और आपने क्या पूछा ?" उन्होंने उँगली माथे पर टिका कर एक क्षण सोचा, फिर बोले—"फ़ैमिली-वैमिली अपने कुछ नहीं है, पता नहीं, भगवान ने यहां भेज कैसे दिया दुनियाँ में—"

"आप किस ओर के हैं ?" असल में शरद पूछना चाहता था कि किस जाति, प्रान्त या प्रदेश और वर्ग के हैं, लेकिन इतना सीधा प्रश्न पूछने की उसकी हिम्मत नहीं पड़ी। उसने झिझक कर पूछा और फौरन ही अपनी ओर से बोला —"तो अब अपना ही क्या ठीक है, क्या हो ?" लेकिन देशबन्धु जी के व्यवहार को याद करके उसे बड़ी गुदगुदी-सी दिल में महसूस हुई।

'अब तो आप आ ही गये, अब क्या होना हवाना है। सुना शरद बाबू।" लापरवाही और कुछ स्नेह से उसके कन्धे पर हाथ रख कर वे बोले, शरद को लगा पहली बात उन्होंने टाल दी।

"हांऽऽ।" शरद फिर जैसे चिन्ता में पड़ गया—"मुझे यह भी तो नहीं मालूम कि करना क्या होगा ?"

"ख़ैर, करना जो भी हो, अब आप निश्चित रहिये कि आ ही गये।" फिर कुछ सोच कर बोले—"अभी बातें तो हुई नहीं होंगी न..."

"न्न, मैं तो अभी आया हूँ, नहाया-धोया, नौकर खाना दे गया था, सो बस खाकर ही चुका हूँ। सन्ध्या को शायद बातें हों। आज कोई और भी तो आ रही हैं न..."

"कौन ?" फ़िर खुद ही बोले—"हांऽऽ, वे आ रही हैं देशबन्धु जी की एक मित्रा, और उनकी लड़की।" अत्यंत अरुचिकर विषय की तरह 'हाँ' को कुछ खींच कर सूरज जी ने बताया, फिर जल्दी से बोले—"जब आप आये थे तो मैं ऑफिस में

था—" शरीर को कुछ आराम देने के लिये उन्होंने अपने दोनों हाथ पीछे पाटी पर टिका लिये और उन पर ज़रा से झूल आये। पीक का रस लेकर बोले—"कुछ लिखा टो होगा .."

'मित्रा' शब्द शरद के दिमाग़ में टकराया, लेकिन उसके पीछे यह प्रश्न ऐसा था जिसका जवाब देना ज़रूरी था—' नहीं, बस तार दिया...यह मित्रा या मित्र की..."

"आई सी...कोई बात नहीं, सब हो जायेगा..." उन्होंने फिर पिछली बात पर कोई ध्यान ही नहीं दिया—किसी अदृश्य बिन्दु पर दृष्टि केन्द्रित करके भौंहें सिकोड़ कर पूछा—"पे-वे के बारे में कुछ भी नहीं लिखा ?" पीक सटकने में उनका टेंटुआ ऊपर नीचे गया।

उनका कुछ बातों को चबा जाना, कुछ को पूछना, बात करने का ढङ्ग, मुद्राएं सब शरद को बड़े अजब-से लगे। उसने कहा—"मैंने बताया न, कि खाली तार था....।" शरद को लगा कि क्या एक ही बात को वे लोग घसीट रहे हैं। उसने विषय बदल कर कहा—"यह 'बिगुल' तो बड़ा ही मशहूर पेपर है; लेकिन इधर तो कुछ....पता नहीं शायद हमारी तरफ ही न जाता हो।"

"हाँ, वैसे इधर तो यह चलता ही है।" सूरज जी बहुत गहरे डूब गये।

"आप तो इसमें बहुत शुरू से होंगे..."

"हाँऽआं—छोड़िये, क्या रखा है इन बातों में, अपना होना न होना बराबर है। सब चलता है।" सूरज जी ने टाल दिया।

"तो अब आपके ही हाथ में है ?" शरद ने उत्सुकता से पूछा।

"अरे साहब, अपने ही हाथ में होता तो रोना क्या था, क्यो यह एक-डेढ़ हज़ार रुपये का घाटा देता ?" इस बार सूरज जी जोश में आ गये। वे सीधे बठ गये।

"अभी तो आपने कहा कि इधर तो खूब चलता है।" शरद इस आदमी की बातचीत देख कर चकित हो रहा था।

सूरज जी खूब ज़ोर-से हँस पड़े—"अभी आप अखबारी दुनियाँ से बिल्कुल ही अपरिचित मालूम होते हैं....लीजिये, मैंने अभी एक नया क़िस्सा पढ़ा है उसे सुनाये देता हूँ। एक बार एक बहुत बड़ा भक्त भगवान से वरदान माँगने जा पहुँचा। और आप जानते हैं, भगवान का भी आखिर मूड ही तो था। हो गई होगी लक्ष्मी जी से कुछ कहा-सुनी, सो ज़रा ऑफ़ मूड में बैठे थे। उन्होंने निश्चय कर लिया था कि आज जो भी वरदान माँगने आयेगा उसे भयंकर अभिशाप देंदेंगे। सो उन्होंने एक काग़ज़ पहले ही लिखकर रख लिया था—उसमें अभिशाप लिखा था। भगवान के पास जब अपना वरदान मांगने की चिट भक्त ने पहुँचवाई तो उसमें लिखा था—'हे भगवान, मुझे पत्रकार बना।" लेकिन अभिशाप पहले ही लिखा रखा था। आप ते हैं वह क्या था ?"—उन्होंने दो-तीन बार मुंह चलाकर और यह देख कर कि

वह उत्सुकतापूर्वक बात सुन रहा है, स्वयं उत्तर दिया—"भगवान ने लिख रखा था—'जा तू पत्रकार बनेगा !' बात समाप्त करके सूरज जी खूब ज़ोर-से हँस पड़े। शरद ने भी साथ दिया, फिर अपनी कहानी का निष्कर्ष निकालते हुए उन्होंने हँसने की क्रिया जारी रखते ही कहा—"सो भाई साहब, पत्रकारिता बहुत बड़ा अभिशाप है, बहुत बड़ा वरदान है। और पता नहीं, कम्बख्त सूरज को वह वरदान बनेगा भी या नहीं, अभी तक तो है नहीं।"

"क्यों ?" शरद उसके कथा कहने के ढङ्ग से प्रसन्न हो गया था, अतः कुछ सहानुभूति से बोला।

"अब इसमें 'क्यों' क्या ?"—एकदम सीधे बैठकर झुँझलाहट में दोनों हाथ ज़ोर से अपनी जाँघों पर पटक कर बोले—"बारह पन्नों का तो वह साप्ताहिक-पत्र है बेचारा। अब आप उसमें हर बार एक भाषण भर देंगे, ऐडीटोरियल अलग उनसे पूछ कर आओ, कि यह जायगा, फिर पूरे अख़बार में यह भरा हो कि फलाने मन्त्री ने यह कहा, फ़लाने नेता ने यह भाषण दिया, उसने वहाँ शिलान्यास किया, उसने यहाँ उद्घाटन किया—तो आप ही बताइये, इन सब बातों से कहीं अख़बार चलते हैं ? आप सूरज की यह बात गांठ बांध लीजिये—वे जमाने लद गये जब एक आदमी की सनक, व्यक्तित्व और उसके अपने ही विचारों से अखबार चला करते थे। वन मेन्स शो !—दुनिया का कोई अच्छा अखबार आज वनमेन्स शो नहीं रह गया है। आज तो जब तक आप लोगों की अपनी बात नहीं कहेंगे कोई अख़बार चल ही नहीं सकता—क्यों खरीदे वे आपका अख़बार ?" उत्तेजना से सूरज जी की नाक के नथुने फड़कने लगे। कुछ देर दीवार पर आँखें गड़ाए रहने के बाद वे बोले—"अब सूरज क्या उसमें अपना सिर झोंक दे ? अपने आप अख़बार घाटे में चलेगा। हम तो कहे, साला बन्द हो जायेगा। और बन्द हो भी तो, बवाल कटे, जिन्दगी झोक दी और..." किसी भाव को छिपाने या घृणा व्यक्त करने के लिये उन्होंने होठों को झटके से दायीं ओर को खींचकर उपेक्षा से गर्दन झटक दी।

इस बार शरद थोडा चौंका। सामने बैठा व्यक्ति यह सब देशबन्धु जी के बारे में कह रहा है ! तो यह बात है ! लेकिन उसने फौरन ही इस विचार को दिमाग़ से इसलिये निकाल दिया कि हो सकता है देशबन्धुजी के इससे कोई ख़ास सम्बन्ध हों ! दूसरे की बातें सुनकर अपना आइडिया क्यों बिगाड़ा जाय ? नहीं, यह आदमी काफ़ी भरा बैठा है। ज़रा-सा इशारा भर किया कि शायद और भी बहुत कुछ उगलदे। वह यहाँ के वातावरण इत्यादि के बारे में अधिक से अधिक जान लेना चाहता था। उसने उनकी हाँ में हाँ मिलाई "हाँ, तब तो मुश्किल ही है। वैसे ये आपको देते क्या हैं ?"

"अजी देते हैं अपना सिर ! क्या बात कही है आपने भी।" सूरज जी ने उसकी बुद्धि पर तरस खाकर कहा—"और सॉब, सूरज की ज़रा भी ख्वाहिश नहीं

है कि सम्पादक की जगह या सह-सम्पादक की जगह उसका नाम जाये, या ऐसा कोई पुछल्ला लगे; आप उसे क्लर्क कहिये, लेकिन कहिये तो खुलकर।" जोश में आकर उन्होंने फिर तम्बाकू की डिबिया में से तम्बाकू निकाली और फ़ुर्ती से चुटकी भरकर मुँह में झोंक ली। फिर जीभ घुमाकर उसे इधर-उधर करने लगे।

शरद बैठा गम्भीरता-पूर्वक सोचता रहा। वह पीठ झुकाकर जाँघ पर कुहनी रखे हाथ धीरे-धीरे अभी प्रयत्न और परिश्रम से बनाई शेव पर घुमाता रहा। यह सब सुनकर उसके मुँह से निकल गया—"पता नहीं, हमे क्यों बुलाया है।"

सूरजजी एकदम अप्रत्याशित रूप से उठकर खड़े हो गये और पुराने आत्मीय की तरह उसका हाथ पकड़कर उठाते हुये बोले—"अरे, सब बुलाया ही होगा! एक बात शरद बाबू, बहुत साफ़ सुन लीजिये। मेरी बातों से ज़रा भी किसी के बारे में प्रेजूडिस्ड होने की जरूरत नहीं है, समझे। अच्छा आइये, चलें ज़रा खाने के बाद थोड़ा घूम-घाम लिया जाय। यों बैठे-बैठे तो जड़ हो जायेंगे। बादल छाये है, मौसम भी जरा अच्छा है।" कोई गीत या शेर गुनगुनाते शरद के कन्धे पर हाथ रखकर थपथपाते हुये वह बोले—"आइये- कहीं चाय-कॉफ़ी पियेंगे। न हो तो, बगल में ही अपना कमरा है, यही बना लेंगे, दूध रखा होगा। कभी सूरज के हाथ की कॉफ़ी पीजिये, न मान जायँ तो कहिये।"

"चलिये, घूमेंगे कहीं। फिर लौटकर देखा जायेगा।" पैण्ट को ऊपर खिसकाता हुआ शरद उठ खड़ा हुआ। मुस्कुराकर मज़ाक के लहजे में बोला—"हम आपको वैसे ही माने ले रहे हैं.....।"

सूरज जी खुलकर हँसे।

लेकिन सन्ध्या को जब वह लौटा तो बहुत अधिक उद्विग्न था: उस समय सन्ध्या के लगभग छः बजे थे, और बादलों के बावजूद पश्चिम का आसमान लाल पड़ गया था। बादलों को फोड़कर एकाध जगह किरणों का फव्वारा बड़ा ही सुन्दर दिखाई दे रहा था। बहुत दूर क्षितिज में एक धुँधली चिक-सा कुछ लहरा रहा था जिसे चलते-चलते सूरज जी ने बताया कि कहीं पानी बरस रहा है, और अन्यमनस्क-सा वह सुन रहा था। मन ही मन कभी वह झुँझला भी उठता था।

असल में वह समझ नहीं पाया था कि सूरज जी के रूप में उसका कैसे आदमी से पाला पड़ा है। जिस समय यह लोग कोठी के बाहर निकले तो मन ही मन शरद इन सूरज जी पर काफ़ी खीझ उठा था। पहले ज़रूर उनकी बातें उसे रुचिकर और मनोरञ्जक लगीं, फिर तो धीरे-धीरे उसके मन में आने लगा, यह आदमी ख़ासा 'बोर' है। लौटकर आते समय तो उसकी यह धारणा इतनी दृढ़ हो गई थी कि उससे वह काफी उद्विग्न और आन्दोलित-सा हो उठा। लेकिन

यह तो सब था ही पर वातावरण और घटनाएँ कुछ इस रूप में जुड़ गए थे कि वह इस समय सच्चे अर्थों में बेचैन ही हो उठा था। वह जया के सिवा कुछ सोच ही नहीं पाता था।—उसके सोचने का दूसरा केन्द्र था, पद्मा पुरी···

कोठी की बनावट, हरियाली, क्यारियों इत्यादि को देखते हुये उसने ज्यों ही साथ चलते सूरज जी से पूछा—"क्यों सूरज जी, वैसे यह शायद आपकी व्यक्तिगत बात हो, फिर भी मुझे जानने की उत्सुकता तो है ही कि क्या यह आपका उपनाम है ?"

कोठी के फाटक के एक ओर खड़े होकर उन्होंने सीधा हाथ छाती पर रखा और ज़रा-सा झुककर रास्ते में खाये हुए पान की ढेर-सी पीक का 'पिच्' से कुल्ला कर के वे आसमान की ओर मुँह करके खिलखिलाकर हँस पड़े—"शरद बाबू हर नया आदमी मुझसे यह सवाल पूछता है। लोग यह समझते हैं कि मैं बड़ा भारी कवि हूँ या लिखता हूँ। बाई द वे, क्या मैं आप से पूछ सकता हूँ कि आप भी क्या कविता-कहानी में —मेरा मतलब किसी फ़ाइन आर्ट में इन्टरैस्टेड हैं—?"

"नहीं !" शरद ने फ़ौरन ही उत्तर दिया, और उसके उत्तर से स्पष्ट ध्वनित होता था कि न तो वह किसी ऐसी चीज़ में रुचि रखता है और न उस जैसे व्यक्ति से ऐसी उम्मीद करने की धृष्टता करनी चाहिये। पर फिर जैसे अपने उत्तर की उजड्डता को ध्यान करके फौरन ही जोड़ा—"आप जैसे लोग लिखें तो पढ़ ज़रूर लेता हूँ।" उसने फिर पकड़ा कि सूरज जी ने प्रति-प्रश्न करके अपने नाम की बात को उड़ा दिया।

"अजी लानत है ऐसे लिखने वाले पर। कभी लिखते थे तब लिखते थे, अब तो श्री देशबन्धु जी एम० पी० के क़लमघसीट रह गये हैं," सूरज जी ने फिर मुँह के सामने हाथ झटकारा, और एकदम पूछा—"तो क्या आप सचमुच किसी ऐसी चीज में इण्टरैस्टेड नही हैं ?"

"नहीं जी, वैसे सुनना सब पसन्द है। कोई अच्छे ढङ्ग से कविता सुनाये, गीत सुनाये, बाजों में सबसे अधिक वॉयलिन। बांसुरी आप बजायें तो सुन सकते हैं। लेकिन मैं तो आपसे पूछ रहा था न ?"

वे लोग अब सड़क से चल रहे थे जिससे सुबह शरद रिक्शे में आया था। सूरज जी ने एकदम सोच में सिर लटका कर कुछ चिन्तन की मुद्रा में हवा में पंजा घुमाकर बड़ी गहरी साँस लेते हुए कहा—"क्या कहें शरद बाबू, न अब वो दिन रहे, न दिल रहा, न हमसफ़र रहे, न हम ही रहे। अब तो बकौल शायर—"ज़िन्दगी नहीं है और जिये जा रहा हूँ मैं..." "या कट रही है कुछ इस तरह ज़िन्दगी मेरी जैसे इसे अब किसी और की आरज़ू भी नहीं...।"

शरद एकदम चौंक गया। उनके बात करने का लहज़ा और यह भूमिका

उनके जीवन से सम्बन्धित—कल्पित या वास्तविक—किसी लम्बी-चौड़ी कहानी की भूमिका है इसे वह समझ गया लेकिन चौंकने का कारण यह नहीं था--कारण था यह आदमी अभी जो एक वाक्य पहले ही बड़े उत्साह और मज़ाकिया टोन में बातें कर रहा था--एकदम ठण्डी साँसें लेकर इस तरह की बातें कह उठेगा--उसने इस बात की कल्पना भी नहीं की थी। उसकी चेतना आंशिक रूप से सूरजजी की बातें सुन रही थी और आंशिक रूप से इस नई जगह और स्थानों को पहचानने में सजग थी। वह हर मकान और कोठी पर लगी नेमप्लेट को पढ़कर उस सम्बन्ध में जानने की कोशिश करता। बिना बोले हुए भी जैसे किसी पूर्व-निश्चय के अनुसार ही ये लोग स्टेशन की ओर चहल-क़दमी करते हुए चल दिये थे। देशबन्धु जी के बग़ल की कोठी पर बाएँ हाथ के खम्भेपर चौकोर संगमरमर की पटिया में शरद ने खुदा देखा था---के० आर० आहूजा, वकील--और दूसरी ही निगाह में मेंहदी की कटी-छँटी इधर-उधर जाती लाइनों के पीछे एक निहायत ही शानदार कोठी जब उसने देखी तो उसे लगा कि वकालत की लाइन छोड़कर यहां आने--अब यहां जो भी करना पड़े--की बात सोचते समय वह अधिक ग़लती तो नहीं कर बैठा..या करने जा रहा है...

सूरज जी जैसे अपने आप ही कहते आ रहे थे। इस समय बड़े शायराना तरन्नुम में वे कह रहे थे--"अजीब है ज़िन्दगी की मंज़िल, कहां से आये कहां पै पहुँचे ! और आप विश्वास नहीं करेंगे शरद बाबू, जब मैं सोचता हूँ कि कहाँ से मैंने ज़िन्दगी शुरू की थी और कहाँ उसे घसीट लाया हूँ। यह भी तो अब याद नहीं रहा कि कम्बख़्त को शुरू कहां से किया था। मै कभी-कभी खुद ही चकित रह जाता हूँ। आप कल्पना भी नहीं कर सकते, कितने संघर्षों का मेरा जीवन रहा है। वह तो सूरज ही था कि इतनी जद्दो-जेहद, मुसीबत और द्वंद्वों में भी अपने छकड़े को भूखा-प्यासा रख कर भी घसीटता आया है। कोई और होता तो या तो आत्म-हत्या कर लेता या कहीं भाग खड़ा होता। लेकिन अब...? अब कुछ नहीं, एक आग थी जो ठण्डी पड़ गई है और यहां आकर मानना पड़ता है कि भाग्य भी कोई चीज़ है, वर्ना सूरज---?" और स्वयं ही वे किसी अनुपस्थित शंका करने वाले की मूर्खता पर विद्वत्ता से 'हिह' करके हँसे---"सूरज तो कह देता था कि क़िस्मत ? क़िस्मत साली की परवाह ही कौन करता है, वह तो अपने हाथ में है।" उन्होंने एक सफल अभिनेता की तरह हाथ फैला दिया। निरन्तर पानों का स्पर्श करने से उंगलियाँ लाल पड़ गई थीं। वे बोले—"बाई द वे, शरद जी आप क्या पामिस्ट्री में विश्वास करते हैं ?"

"नहीं—अभी तो कोई ऐसा अच्छा पामिस्ट मिला नहीं है, कि विश्वास करने लगूं।" शरद अपने में डूबा था, प्रश्न से सजग होकर उसने कहा। वैसे यह स्वीकार करते हुए भी कि सूरजजी निहायत ही सफल और दिलचस्प बातूनी हैं, और जीवन में बड़े कष्ट और मुसीबत के दिन उन्होंने देखे हैं, उसे न जाने क्यों उनकी इस भूमिका से बड़ी मानसिक विरक्ति हो उठी। वह चाहता था कि दोनों इस समय चुप-

चाप ही चलें, और नई जगह का आनन्द लेता हुआ वह अपने ही विचारों में डूबा रहे...कभी-कभी किसी स्थान का नाम पूछले...

"खैर, इस विषय पर आप जब चाहें सूरज से बातें कर सकते हैं। मुझे ज़रा इसमें शौक़ है—हालाँकि इससे फ़ायदे की बजाय नुकसान ही बहुत हुआ है। पामिस्ट्री अपने आपमें एक साइंस है, और इस पर भी बड़ी-बड़ी रिसर्च और खोजें हुई हैं। तो क्या कह रहा था मैं—? हाँ, इस वक्त अपना सितारा कुछ गर्दिश में है, और ज़िन्दगी का सबसे ज्यादा डिप्रेशन का वक्त है—फ़ेट लाइन यहां लाइन ऑफ हैड से टकराकर टूट गई है, और हार्ट-लाइन के ऊपर सन के नीचे आइलैण्ड आया है। आप जानते हैं इसका मतलब क्या हुआ ?"—पंजा फैलाकर उन्होंने ठीक फ़ुटपाथ के ज्योतिषियो की तरह दूसरे हाथ की उँगली से वे स्थान बताये, और डिबिया खोलकर झुकते हुए फिर दो पान मुँह में दबा लिये। अचानक जैसे याद आ जाने पर शरद की ओर भी बढ़ा दिया। शरद के इन्कार कर देने पर उसे बन्द करके जेब में ठूँसते हुए तुतलाकर बोले—"इशका मटलब हुआ, डिल-डिमाग और फेम शबका डिप्रेशन, समझे ! और आप शच मानिये, डिल और डिमाग पर कभी-कभी इतना बोझ हो जाता है कि लगता है, कुलैप्श न कर जाऊं।" नमक-मिर्च-ज़ीरे की तरह उन्होंने बटुए से मुँह में मसाले बुरके। फिर ठोड़ी कुछ निकाले हुए निचले होठ को फैलाकर गर्दन ऊँची किये वे बोले—"कुछ नही, शा'ब, कहा है, इश्क ने ग़ालिब टिकौना कर डिया, वर्ना हम भी आदमी चौकोर थे....."

लेकिन तभी शरद जैसे उछल पड़ा। उसके मुँह से निकल पड़ा—"अरे, यह !"

अब ये लोग स्टेशन के पास आ गये थे। शरद ने अनुमान लगाया, स्टैशन कोई चार फ़र्लांग होगा। स्टेशन की बिल्डिंग के सामने बने हरियाली के गोल घेरे को पार करके जैसे ही यह लोग बरसाती में घुसे. बरसाती के दूसरी ओर खड़ी आस-मानी, लम्बी बढ़िया चमचमाती कार का दरवाजा 'खटाक' से बन्द हो गया, और एक बहुत बेमालूम घर्राटे से कारके स्टार्ट होते ही बड़ा संगीतमय मधुर हॉर्न बजा—पीछे की दोनों चौकोर लाल-बत्तियां चमकीं, लाल-सा साइड-सिग्नल उठा और पीछे की ओर. मोड़ लेती हुई कार खिसकी, फिर एकदम अर्धगोलाकार चक्कर काटती हुई सर्राटे से गोल घेरे के एक ओर होकर चली गई। हल्की लाल-सी जाकट और चांद के बीच के गंजेपन के साथ इधर-उधर बालों के दो पंखे—चश्मे की कमानी—शरद ने पहचान लिया देशबन्धु जी थे, लेकिन जैसे ही कार मुड़ी थी, बिल्कुल आधुनिक फ़ैशन में सिर पर ज़रा ऊपर की ओर जूड़ा बाँधे हुए नुकीले नक्शवाली पतली-दुबली जिस लड़की का सिर और हरे उल्टे-पल्ले की साड़ीवाला कन्धा, कत्थई रङ्ग के ब्लाउज़, वाली बांहें जैसे ही उसने देखीं तो वह एकदम उछल पड़ा, उसके मुँह से निकल गया —"अरे ! यह—पद्मा पुरी !"

सूरज जी झटके से जैसे एकदम आपे में आ गये। बात रोककर उधर

देखते हुए कुछ व्यंग्यात्मक स्वर में बोले—"कोई जान-पहचान का दीख गया क्या ?"

शरद ने उसके मज़ाक पर ज़रा भी ध्यान नहीं दिया, बल्कि अधिक से अधिक गंभीर चिंता का भाव दिखा कर बोला—"सूरज जी, इस कार में आपने देखा, कौन था ?"

"क्यों—? क्या कोई खास बात है ? देशबंधु जी की कार थी। वे खुद आगे बैठे थे। पीछे शायद वे ही लोग थे जिन्हें रिसीव करने आनेवाले थे। लेकिन आप चौंके क्यों--?--कि देशबन्धु जी ने आपको देखकर भी नहीं देखा ! अरे भाई, अभी आप बड़े लोगों के सम्पर्क में आये नहीं है।" सूरज जी ने समझाया—"यह कोई नई बात नहीं है—वैसे इस साले शहर का कुछ क़ायदा ही अजीब है, आपका घनिष्ट से घनिष्ट मित्र भी अगर मान लीजिये रास्ते में मिल जाय, तो यदि उसकी इच्छा हुई तो बात भले ही करले—नहीं तो ऐसे मुँह फेर लेगा जैसे चेहरे से भी नहीं जानता। मानते हैं, कभी-कभी आदमी बिज़ी होता है—या उसे फ़ुर्सत नही होती, लेकिन उधर ऐसे में भी दुआ-सलाम तब भी हो जाती है...यहां वह भी कम्बख्त नहीं..."

बिना उनकी बात को अधिक महत्व दिये शरद ने जरा गम्भीर स्वर में कहा —"नही, इसमें मेरी एक क्लास-फ़ैलो थी।"

इस बार सूरज जी ने ज़रा मुड़कर उसकी ओर देखा और उसके गम्भीर चेहरे को देखकर चुप हो गये। फिर दो चार क़दम चल कर बोले—"तब तो यह अच्छा ही हुआ, अभी लौट कर चलेंगे तो मिल लीजियेगा—शायद देशबन्धु जी के मेहमानों के साथ आगई होंगी कोई।"

शरद चुप था, लेकिन भीतर खलबला रहा था—सचमुच यह वही थी ? असल में वह आश्वस्त होना चाहता था क्या वास्तव में वह 'पद्मा' ही थी।

"चलिये तो, ज़रा प्लेटफ़ॉर्म पर चलेंगे न, कुछ चाय-वाय पी जाय। थोड़ी चहल-क़दमी की जाय। गाड़ी अभी आई है, ज़रा रंगीनी होगी।" अर्थपूर्ण मुस्कुराहट से सूरज जी ने उसके मुख की ओर देख कर कहा—"कौन जाने कोई और क्लासफ़ैलो मिल जाय।"

"नहीं, मेरी इच्छा नहीं है, सूरज जी।" शरद ने प्रार्थना की। उसकी इच्छा एकदम लौट पड़ने की हो रही थी।

"अरे, आप भी बड़े अजब आदमी हैं। बड़ी जल्दी अपसैट हो जाते हैं। आइये, अभी लौटे आते हैं।" और उसकी पीठ पर हाथ रख कर वे प्रायः उसे धकेलते हुए टिकट कलैक्टर से—"अभी लौटकर आ रहे हैं।" कहते हुए प्लेटफ़ॉर्म पर ले गये। शरद ने अनुमान लगा लिया कि वे यहां के रोज़ आने-जाने वालों में से हैं।

दूसरे प्लेटफ़ॉर्म को लक्ष्य करके पुल की ओर चलते हुए उन्होंने कहा—"कोई पुराना ज़ख्म उभर आया है क्या ?"

एक क्षण तो शरद को लगा अजब झक्की आदमी से पाला है, एक मिनट चुप नहीं रह सकता। उसने दृष्टि की भर्त्सना को भरसक दबाने का प्रयत्न करते हुए उनकी ओर देखा, और पुल की सीढ़ियां चढ़ने लगा। बोला—"घायलों के ज़ख्म ही दिखाई देते हैं, यहां तो सीरत और सूरत कम्बख्त कुछ भी तो ऐसा नही मिला कि कोई अपने पर मरता !"

"प्रेमी का पता लगाने की सबसे बड़ी और सीधी पहचान आप जानते हैं, क्या है ?" सीढ़ियां चढने में शरद के कदम से कदम मिलाने का ध्यान रखते हुए उन्होंने पूछा।

सीढियां खत्म हो गई थी। शरदने मुडकर उनकी ओर प्रश्नदृष्टि से देखा। फिर उधर ही घूम कर सूरज जी के कन्धे के ऊपर से देखता रहा—पीछे दूर क्षितिज में समाती आपस में गुँथी चली जाती पटरियाँ, लाल सफेद रँगे सिग्नलों में हरी-लाल आंखे, बेतरतीबी से इधर-उधर खड़े माल-गाड़ी के डिब्बे, कोयले के चौकोर ढेर, टंकी, नल, केबिन और तारों का जाल.....उतरता गहरा होता धुंधलका !

"जो अत्यन्त साधारण से साधारण बात को भी सख्त दार्शनिक मूड, मुद्रा और मुखाकृति से कहे—आप निस्संकोच समझ लीजिये वह प्रेमी बनने वाला है, या कभी रह चुका है और उसकी वह स्थिति उमड़ रही है।" सूरज जी कह रहे थे।

वे लोग पुल के पार आ गये थे और सीढ़ियाँ उतरने लगे थे।

प्लेटफ़ॉर्म पर आने के कुछ क्षण बाद तक वह चुप रहा। सचमुच वह इस समय चुप ही रहना चाहता था और उसकी इच्छा थी जैसे भी हो इस दुष्ट से पीछा छुड़ाकर जल्दी से जल्दी अपने कमरे में पहुँचे और बिस्तरे में पड़कर सोचे, पद्मा पुरी यहाँ कैसे आ गई ? झुँझलाहट में बिना इस बात का ध्यान किये कि कहाँ तक यह कहावत फ़िट है, उसने जरा रूखेपन से कहा—"सूरज जी, आप तो यों ही मक्खी को मल-मल कर हाथी बनाये जा रहे हैं, न यहाँ प्रेम, न प्यार ! यह समझिये एम० ए० मे एक-दो साल नाममात्र का साथ रहा, या कहिये, एक छत के नीचे बैठने का ही साथ, वर्ना कोई परिचय भी नही, अपने क्लास में बैठे, चुपचाप पढ़ लिया। और खासतौर से यह तो बहुत ही चुप रहने वाली लड़कियों में से थी। इससे तो शायद दो बार से अधिक बोले भी नहीं होंगे...।" शरद कॉलेज के दिनों में डूब गया—"हमलोग भी सा'ब, बहुत ही तङ्ग करते थे इनलोगों को। इनमें एक लड़की थी, सन्याल, सुषमा सन्याल। इतनी शोख और चञ्चल कि आफ़त।" क्लास की बातों की याद कर के वह पुलक कर हँस पड़ा—"हमलोगों ने उसका नाम रख लिया था, तमञ्चा, ऐसे महीन आरकण्डी के ब्लाउज़ पहन कर आती कि बस। एक और थी ईसाई, क्या नाम था उसका ? डिसिल्वा। वैसी बेशर्म लड़की तो देखी नहीं। ये चार लड़कियाँ थीं हमारे क्लास में, पुरी, सन्याल, डिसिल्वा और खन्ना। हमलोग क्या करते थे, कभी कांछ (खुजलीवाली) फलियाँ लाकर इनकी

डैस्कों पर छिड़क देते, कभी इनकी सूरतें ब्लैकबोर्ड पर बना देते, और कभी तो ऐसी अजब और भद्दी बात लिख देते थे कि बस.....लड़के भी सूरज जी, बड़े बदमाश होते हैं, कॉलेज के।" शरद का चेहरा खिल उठा—"और बदमाश क्या, वो दिन ही कुछ अजब मस्तियों के होते हैं! माँ-बाप का पैसा होता है, चिन्ता किसी की होती नहीं है, हुँह, देखा जायेगा। लॉर्ड का जीवन होता है.....।" प्लैटफ़ॉर्म पर आते-जाते मुसाफ़िरों, कुलियों और अन्य लोगों से बच-बचकर चलते हुए शरद कहे जा रहा था और सूरज जी उसका हाथ पकड़े, चाय के स्टॉल की तरफ़ ले जा रहे थे। स्टॉल पर रुकते ही उसने पूछा—"आपने कभी कॉलेज लाइफ़ एंजॉय की है?"

"अजी, कहाँ की कॉलेज लाइफ़। सूरज की किस्मत में यह सब कहां रहा है। अपना तो कॉलेज या यूनिवर्सिटी, यही प्लैटफ़ॉर्म है, सो कभी-कभी घूमने चले आते हैं। यही अपनी ज़िन्दगी का एंजॉयमेण्ट समझिये, वर्ना इस साले शहर में रखा ही क्या है? वही दो-चार सिनेमाघर हैं—उनमें वही घिसे-पिटे उन्नीसवीं सदी के पिक्चर, सस्ते-वाले अंग्रेज़ी स्टण्ट; कोई अच्छा रेस्त्रां नहीं, कोई घूमने-फिरने वाली जगह नहीं। किसी रेस्त्रां में जाकर बैठो तो टुटपुँजिये। अकेले बैठे मक्खियाँ मारा करो। कुछ अजीब मैंटैलिटी है लोगों की। न हँसेंगे न बोलेंगे, वही मुँह लटकाये चले जायेंगे। बोलो, जिन्दगी के दो दिन मिले हैं, उसमें भी तुम बना लोगे मुहर्रमी सूरत, जिओगे क्या खाक! कहीं इस समय लखनऊ में होते, अपने हज़रतगञ्ज में...च्च् आहा! चहक रहा होता.....।" सूरज जी के भाषण को तोड़ा स्टॉल वाले ने यह पूछकर कि—"बाबू जी कोल्ड या हॉट?"

"दो चाय, स्पेशल, कुछ केक-टोस्ट खाओगे, शरद बाबू?" उन्होंने पूछा।

"नहीं बस, चाय ही बहुत है, धन्यवाद!" शरद दाहिने हाथ की तर्जनी को धीरे-धीरे होठ पर पटकते हुये फिर चुप होकर कुछ सोचने लगा था। प्लैटफ़ॉर्म पर एक और गाड़ी आने वाली थी, इसलिये चहल-पहल बढ़ गई थी। शरद सोच रहा था—तो ये पद्माजी थीं, जिसके बारे में देशबन्धु जी बातें कर रहे थे, साथ में क्या उनकी माँ थी? उन्हें तो कभी देखा नहीं। शायद अभी तो कुछ दिन यहाँ रहेंगी। सङ्गीत सीख आई हैं। पता नहीं ठीक से मिलेंगी भी या नहीं! पहचान तो लेंगी ही। नोट्स वाली बात भी याद होगी। उसे भूली थोड़े ही होंगी। उस दिन भी क्या अजब बेवकूफ़ी हुई.....लेकिन सब बदमाशी उसी साले वर्मा की थी.....

सूरज जी कहे जा रहे थे—"एंजॉयमेण्ट शब्द तो सूरज ने सीखा ही नहीं, शरद बाबू, अपनी ज़िन्दगी भी कोई ज़िन्दगी है।" सङ्गमरमर के काउण्टर पर एक प्याला शरद की ओर और एक अपनी ओर खिसकाते हुए उन्होंने कहा, फिर एक ज़ोर का सड़ाकेदार 'सिप' भर के बोले—"हमारे जीने का तो इतिहास ही यह रहा

है कि "तिफ़्ली गई, अलामते पीरीं अयां हुई, हम मुन्तज़िर ही रह गये अहले शबाब के....."

लेकिन शरद जो चुप हुआ तो रास्ते भर चुप रहा। उसके दिमाग़ में पद्मा छाई रही, और उसे ऐसा लगता रहा, जैसे न चाहने पर भी एक प्रश्न रह-रहकर उसके दिमाग़ में उठ आता है। जया से विवाह करके क्या उसने जल्दबाज़ी की? वह धीरे-धीरे उदास होता चला गया, और उसकी इस उदास मनःस्थिति में और अधिक उद्विग्नता भर देते सूरज जी के यह निर्बाध भाषण। कई बार सर पर पांव रखकर उस जगह से भाग जाने की उसकी प्रबल इच्छा होती, और कई बार यह सोचकर अपने को समझा लेता कि इस एकरस और रूखी जगह में शायद पहली बार उन्हे एक धैर्यशील श्रोता मिला है। वह जैसे स्वप्न की-सी स्थिति मे उनकी बातों पर हाँ-हूँ करता चला आया।

"आप बुरा न मानें तो, एक बात कहूँ..." सूरज जी की इस बात पर शरद एकदम सजग हो उठा। उसने उनकी हर बात को सचेत बने रहकर सुनते चले आने का नाट्य करते हुये कहा—"कहिये।"

"आप बहुत अधिक सैल्फ़सैण्टर्ड है यानी अपने में ही मस्त आदमी है।"

"मैं समझा नहीं..." शरद अचकचा उठा कि किस सिलसिले मे यह बात कही जा रही है।

"मैं समझता हूँ, असल मे आप या तो भूतकाल मे जीते है, या भविष्य में। वर्तमान मे रहते ही नही। और सबसे मज़ेदार बात यह कि इसका कारण यह है कि आप वर्तमान से इस बुरी तरह चिपके है कि बस उसे ही नही देख पाते, आगे-पीछे खूब दूर तक देख लेते है। शायद वर्तमान की विभीषिका भी उसे न देखने देती हो। यहीं सूरज का दूसरा सिद्धांत है, लगातार भविष्य के सपने देखना अन्धविश्वास है; हवाई उड़ान है। लगातार पीछे देखना पलायनवाद है। मै दोनों में क़तई विश्वास नही रखता और भाई, वर्तमान हमारा है भी इतना कटु कि उसे सह नही सकते। अतः उसके जिस क्षण को जीते है, उसे ही ग़नीमत समझते है। हँस-खेलकर जी लेना चाहते है। लिव इन द मोमेण्ट—क्षण मे जियो, जो क्षण सामने है, उसका बैस्ट यूज़ करो, एजॉय करो। सूरज मे और दूसरे क्षण-वादियों मे यही तो फ़र्क है। मै दुःख को पास नही फटकने देता। अरे, जो क्षण है, उसे हँस-खेलकर खत्म करो, और होगा अपने हिसाब मे, और मिलेगा, वर्ना अफ़सोस तो नही होगा। और यही वजह है कि मै इतना झक्की और मस्त हूँ, वर्ना जैसी हालतों में मै रहा हूँ, कोई दूसरा होता तो मर जाता, मर! आपको सुनाऊँगा किसी दिन, आपके रोंगटे खड़े हो जायेंगे, आप थर्रा उठेंगे कि यह पागल-सा दिखाई देने वाला सूरज, यह ज़िन्दगी भी देख चुका है। महीनों मैंने बम्बई में डॉक्स पर कुलीगीरी की है, दिनों भूखा रहा हूँ, लेकिन यह क्षण में रहने की मस्ती है, जो मुझे ज़िन्दा रखे हुये

है। आपने एक पद्मा जी की बात सुनी और तीन घण्टे से सोचने में लगे हैं—यहाँ ज़िन्दगी बर्बाद हो गई..." फिर जैसे एकदम बहाव में ब्रेक लगाते हुये बोले—"आप जानते हैं, निराशावादी और आशावादी में फ़र्क क्या है ?"

अपने मनोविज्ञान का विश्लेषण कर डालने वाले इस अप्रत्याशित भाषण से शरद हत-बुद्धि-सा रह गया। उसकी बिल्कुल भी समझ में नहीं आया उसने क्या सुना और वह विश्लेषण उसका था या सूरज जी का अपना। किवाड़ खोलने को बढ़ा हुआ उसका हाथ रुक गया, और उसने सूरज जी की ओर मुँह घुमाकर नकारात्मक सिर हिलाया—"नहीं....."

"हाँ।" बड़े अन्दाज से सूरज जी ने ऐसे कहा जैसे वे युगों पहले से जानते थे कि इस अन्तर को शरद नहीं जानता होगा—"निराशावादी और आशावादी में फ़र्क यह है : निराशावादी उसे कहते हैं जो भविष्य के बारे में जानता तो कुछ नहीं है—और कोई नहीं जानता—लेकिन वह भूत-भविष्य के विषय में तरह-तरह की बातें लेकर दिन-रात चिन्तित और उदास रहता है : और आशावादी वह है जो निराशावादी की तरह भविष्य के विषय में कुछ नहीं जानता लेकिन उसे उसकी ओर से बिल्कुल निश्चितता रहती है। और भाई, ज़िन्दा रहने का तो सिद्धान्त ही यह है कि पेड़ के नीचे हो या पलंग पर, रहो बिल्कुल निश्चित !" फिर अत्यन्त ही आत्मीयता से उसके दोनों हाथ अपने हाथों में पकड़ते हुए बोले—"अच्छा, आज का भाषण समाप्त। मैंने सचमुच शरद जी आपको बहुत बोर किया, इसके लिये मैं माफ़ी चाहता हूँ। क्या करूं, आदत से लाचार हूँ। अकेले बैठे-बैठे मन नहीं लगता इसलिये इधर आ गया था। अब जाकर देखूँ, देशबन्धु जी ने क्या आज्ञायें भेजी हैं हमारे लिये, ऐडीटोरियल घसीटना है। लेकिन आपसे मिल कर सचमुच बहुत खुशी हुई। आप सचमुच आ जाइये, 'खूब गुज़रेगी जब मिल बैठेंगे दीवाने दो'। अब आप बैठिये और पद्मा जी के विषय में चिन्तन कीजिये। औरत जब दिमाग़ पर छा जाती है तब यही होता है।" रटी हुई बातों की तरह सूरज जी कह गये, इसी सिलसिले में बोले—"नारी ? नारी बड़ी डॉमीनेटिंग होती है, बड़ी क्रूएल। इसके सम्पर्क में आने पर आदमी की बरबादी को कोई रोक नहीं सकता, और इसके सम्पर्क से वंचित आदमी सड़ जाता है और विकास नहीं कर सकता,—कर ही नहीं पाता। खैर, लेकिन सोचिये और मस्त रहना सीखिये, ये बातें तो ज़िन्दगी में आती हैं और चली जाती हैं, अच्छा टा-टा ! अब तो अगर आप रहे तो कल दोपहर बाद ही मुलाक़ात होगी—परसों अख़बार निकालना है, कल तो बहुत सुबह ही चला जाना है। न हो तो इधर आइये, घूमते हुए ही। यहां पड़े-पड़े क्या करेंगे.....अच्छा तो फिर विदा—" और सूरज जी बड़े लखनवी ढङ्ग से अबाउट-टर्न होकर गुनगुनाते चले गये—"तरी झूलती रहे लहर पर, यह भी एक समाँ कैसा ! डांड तोड़, पतवार छोड़ कर कवि तू निर्भय गान करे...कश्ती को तोड़ दूँ, लङ्गर को छोड़ दूँ..."

कमरे में अँधेरा-सा था। लेकिन शरद बिना बत्ती की चिन्ता किये ही जैसे बहुत थका हो, खाट पर जा पड़ा। खाट ज़ोर से चरमरा उठी। अन्दाज़ से अटैची खींच कर सिरहाने रख ली। "हुँह!' नाक से ज़ोर की साँस फेंक कर उसने मुँह टेढ़ा करके कहा—"दुनियाँ में भी कैसे-कैसे क्रैक भरे पड़े हैं, आप माँगिये, न माँगिये, अपनी राय देने लगेंगे। बने हैं मस्त कहीं के। दिमाग़ चाट गया। इनकी तो इच्छा है कि सुने जाय चुपचाप, नहीं तो निराशावादी..." उसी क्षण शरद को निश्चय हो गया कि चाहे जिस रूप में भी उसे यहां रहना हो, इस व्यक्ति से उसकी पटने की नहीं है।

उसकी उद्विग्नता और उदासी बढ़ती रही। दूर कहीं बादल गरजा—और यह गरज ध्वनित-प्रतिध्वनित होती हुई-सी दूर—बहुत दूर लुढ़कती चली गई,—जैसे दिल के पर्दों के पार एक हल्की-सी टीस सरकती चली जाय.....जया इस समय क्या कर रही होगी.....

पता नहीं शरद कब सो गया। केशव की आवाज़ से जाग कर उठा।

"बाबूजी आपको नेता-भैया ने याद किया है।" वह दरवाज़े में खड़ा कह रहा था। पूरी तरह अँधेरा हो चुका था। झपट कर कलाई आंखों के सामने की —रेडियम की सुइयां साढ़े आठ पर झलमला रही थी।"

ज़रा बाल-वाल ठीक करने के लिये फ़ुर्ती से उठकर उसने इधर-उधर स्विच टटोला तो पता चला कमरे में बिजली नहीं है। उसने नौकर से कहा—"चलो, आते हैं।"

तीन-कोनोंवाला रहस्य

"कहो, दिन भर मन लग गया न, ?" बिल्कुल सीधे कुर्सी पर बैठ कर सामने की मेज़ पर रक्खे कागज़ को धीरे-धीरे पेन्सिल से ठोकते हुए देशबन्धु जी ने कभी शरद को कभी पेन्सिल को देख कर स्निग्ध स्वर में पूछा।

"जी, सूरज जी के साथ ज़रा घूमने चला गया था। अभी थोड़ी देर पहले आया, वैसे मौसम भी तो आज ज़रा अच्छा था।" इतने बड़े आदमी होकर वे उस जैसे तुच्छ व्यक्ति से, उसके अपने विषय में पूछ रहे हैं—इस कृतज्ञता से झुककर उसने कहा। वह मन-ही-मन अपने अन्य इण्टरव्युओं के चित्र दुहरा रहा था और लगभग उसी तरह के प्रश्नों के लिये बने-बनाये उत्तर तैयार कर रहा था। बाएं हाथ की फैली हुई हथेली पर दाहिने हाथ की तर्जनी से सिर झुकाये व्यर्थ ही त्रिभुज और चतुर्भुज बनाता रहा। उसने एक बार मेज़ पर रखी अपने प्रमाण-पत्रों और डिग्रियोंकी फ़ाइल की ओर देखा।

दो नम्बरों के मिले हुए कटावदार शीशोंवाले चश्मे के पीछे से एकबार उसके चेहरे की ओर देख कर वे मुँह उठाकर ज़ोर से लेकिन अत्यन्त ही संयत भाव से हँस पड़े—बोले—"वाह, साथी तो तुम्हें खूब मिला, तब तो सारी थकान दूर हो ही गई होगी। आदमी सूरज जी खूब मज़े के हैं। बस, दो ही बातें हैं, एक तो ज़रा मुँहफट हैं, दूसरे ज़रा झक्की हैं। उनसे मिलते ही आप अपने दोनों कान उनके हवाले कर दीजिये और आनन्द से दो-चार घण्टे बिता दीजिये।"

"मुझे तो बड़े मनोरंजक आदमी लगे।" हिन्दी उन्हें अधिक प्रिय होगी, यह सोचकर उसने शुद्ध उच्चारण मे एक बार पलकें ऊँची उठाकर उनकी ओर ज़रा ग़ौर से देखते हुए कहा। यहाँ आने से पहले उसका दिल बुरी तरह धड़क रहा था। वह जानता था कि इस समय एक-एक हरकत, एक-एक वाक्य महत्व रखता है। औपचारिक इन्टरव्यू से पहले यह भी एक तरह का उसका इण्टरव्यू ही तो लिया जा रहा है। इसलिये वह बहुत सावधान था। देशबन्धु जी के चेहरे की हल्की से हल्की रेखा—प्रतिक्रिया को वह भाँप लेना चाहता था।

"हां, सो तो है ही!" हाथ की पेन्सिल को बड़े आहिस्ते से सामने रखे साफ़ सुन्दर क़लमदान में अटकाते हुए वे बोले। फिर दोनों हाथ ऊँचे उठाकर पंजे फँसाए हुए हल्की अँगड़ाई ली और मुस्कुराये, बोले—"थक गया हूँ। इस कुर्सी पर मुझे एक-एक बार में आठ-आठ घण्टे बैठना पड़ता है। हालांकि इस उम्र में यह कोई ज्यादा नहीं है, फिर भी इस देश के काम ने किसी लायक़...।" फिर हँसे—"और देश का क्या, अपना ही कहो। कोई डण्डा लेकर तो पीछे पड़ता नहीं है

अपना सन्तोष ही तो है। न कीजिये कोई काम, आत्मा है, रो-पीटकर चुप हो जायगी। अपनी आत्मा के सन्तोष के लिये ही तो यह सब दिखावे हम करते हैं—इससे ज्यादा स्वार्थ और क्या होगा ?"

"तो भी अपने स्वास्थ्य को तो ध्यान में रखना ही चाहिये,—" आत्मा और स्वास्थ्य में से शरद ने स्वास्थ्य पर ही अपनी राय देना उचित समझा—"जब आप पिछली बार आये थे, तब से स्वास्थ्य काफ़ी गिर गया है।"

"हाँऽऽ !, सब चलता है भाई...।" बड़ी लापरवाही से उन्होंने ऐसे कहा जैसे यह कोई खास बात नहीं है, फिर उसकी ओर ग़ौर से देखकर बोले—"हाथ का काम भी तो नहीं छोड़ा जाता। फिर इस सबको आखिर करे कौन ? शरद बाबू, मेरा तो अपना चौवालीस साल सात महीने का अनुभव यह है कि काम से बढ़कर आनंद देनेवाली कीई चीज़ नहीं है। मैं तो जब तक कुल मिला कर अठारह घण्टे काम नहीं कर लेता—मन में बड़ा अजब-अजब-सा लगता रहता है।" फिर उस 'अजब-पने' को उन्होंने समझाया—"कभी-कभी ऐसा लगता है न, कि आप जैसे मुफ्त की खा रहे है, कुछ काम नहीं कर रहे—आत्मा पर बड़ा बोझ-सा...।'

"अठारह घण्टे !" अथाह आश्चर्य का भाव दिखाकर मुँह पर प्रशंसाकी चिकनाहट लाते हुए शरद ने दुहराया। उसके मन में बड़ी श्रद्धा हुई।

"क्यों ?" निहायत सीधेपन से उसकी आँखों में देखकर उन्होने कहा—'अठारह घण्टे कोई खास तो नहीं है। यह तो यहाँ की बात मैं कहता हूँ। बाहर तो कभी-कभी दो-दो तीन-तीन दिन तक सोना नसीब नहीं होता। अब आपही खुद सोचिये, किस-किस काम को आदमी छोड़े ? यह तो जिन्दगी ही ऐसी ही है भाई, कि अपना आराम तो है ही नहीं। एक कॉज, लक्ष्य के साथ अपने को एकाकार कर देना पड़ता है। अब बकनेवालो का क्या है..."

"खैर उनके मुँह में तो लगाम ही नहीं होती। कुछ लोगों का तो बकना पेशा ही हो गया है।" शरद ने बात पूरी की।

"न्न !" एकदम दांतों से उन्होंने जीभ काट ली जैसे पश्चाताप कर रहे हों, "ऐसा नहीं कहना चाहिये किसी को। भाई, हर आदमी को सोचने-समझने और सभी को अपनी बात कहने का अधिकार है।" उन्होंने शीशे की सतहवाली मेज़ पर रखी उँगलियों को सरगम निकालने की तरह उठा गिरा कर कहा। फिर ज़रा मुस्कुराकर बोले—"क्या, अठारह घण्टे की बात सुन कर तुम्हें बड़ा ताज्जुब हुआ ? तुम कितनी देर काम कर लेते हो ?"

"मैं...?" शरद ज़रा मनही मन सचेत हुआ—"छः घण्टे से ज्यादा एक साथ बैठा ही नहीं जाता।"

"काफ़ी है।" प्रोत्साहनपूर्ण स्वर में वे बोले—"इस उम्र में काफ़ी है। यह उम्र तो भाग-दौड़ की है, कहीं इन दिनों एक जगह बँधकर बैठा जाता है ? और

जब बोझ पड़ेगा, तो दस-बाहर घण्टे बैठ ही सकोगे।"

"जी हां, सो तो आवश्यकता पड़ने पर बारह-पन्द्रह घण्टे कोई बात नहीं है। मैंने तो नॉर्मली कहा....." शरद जल्दी से बोला।

"यह हिम्मत और आत्मविश्वास भी बहुत है भाई।" स्नेहसे प्रसन्न हो कर वे बोले—"तुम्हारी उम्र में जब मै इलाहाबाद-युनिवर्सिटी में था तो चार घण्टे से ज़्यादा मुझसे जमकर बैठा ही नही जाता था। लड़के रात-रात और दिन-दिनभर घोंटते थे। मैं मज़े में सोता और घूमता था। लीडरी का नशा भी (यह नशा तो है ही) उन्हीं दिनों चढ़ा था, लेकिन रात में दो बजे उठे, और छः बजे तक पढ़कर फिर सो गये। लोग ताज्जुब करते थे, कम्बख्त पास होता चला जाता है, पढ़ता-लिखता दिखाई नहीं देता। शरद बाबू, मेरा तो ज़िन्दगी भर का उसूल यही रहा कि दुनियाँ के अच्छे-बुरे सारे काम करो, लेकिन अपने काम में कभी मत ढील डालो। और साफ़ बात है, किसी काम को या तो उठाओ मत, और जब उसे अपने ऊपर लेलेते हो तो उसे बिल्कुल अपना समझो। आप की व्यक्तिगत पसन्द—नापसन्द व्यक्ति से ही तो होगी, काम से क्या दुश्मनी ? और फिर उसे पूरा करने में दिन और रात का विचार क्या" ?—दो उँगलियों से काँच का पेपरवेट उलटा रखकर उसे घुमाते हुये वे निरन्तर शरद पर निगाहें जमाये रहे। एक दूसरी पर रखी टाँगें कुर्सी के नीचे हिलाते रहे।

"हाँ, सो तो है ही।" शरद ने उनका वाक्य समाप्त होते ही कहा। पेपरवेट उनके हाथ से लेकर, खुद उसे उनकी तरह घुमाने की इच्छा को वह बड़ी मुश्किल से रोक पा रहा था। बोला—"या तो फिर साफ़ ही मना कर दो कि मैं सा'ब यह काम नहीं कर सकूंगा, और नहीं तो फिर उसे पूरा करने में रात-दिन का सवाल ही क्या ?"

"नहीं भाई," बड़े नाटकीय ढङ्ग से उन्होंने गर्दन को झटककर स्निग्ध मुस्कान और स्वर में कहा—"इसमें भी मेरा एक अलग सिद्धात है। मेरा जीवन तो बड़े ऐक्सपैरीमेण्ट्स और अद्भुत प्रयोगों का जीवन रहा है न, इसलिये मेरे हर चीज़ के विषय में अलग सिद्धांत बन गये हैं। मेरा कहना तो यह है कि जब काम करने का निश्चय ही है तो उसमें चुनाव वाली चीज़ ग़लत है, जो सामने हो सो करो। चुनाव में वक्त बरबाद करने की ज़रूरत नहीं है। असल में जब आप चुनाव को महत्व देते हैं तो आपके मन की अनिश्चयात्मक स्थिति ही प्रगट होती है। साफ़ है उस समय तक आप अपने मन को काम करने के लिये तैयार नहीं कर पाये होते हैं"—और सहसा बीच में ही चुप होकर वे शायद अपनी बात का प्रभाव देखने लगे, फिर सहसा ही बोले—"शायद आप ठीक से मेरी बात को फ़ौलो नहीं कर पाये। देखिये, काम करने की इच्छा-शक्ति को में एक ऐनर्जी मानता हूँ। बिजली के करेण्ट को जैसे आप पङ्खे में लगा दीजिये, पङ्खा चलने लगेगा, हीटर में लगा

दीजिये, हीटर जलने लगेगा। तो महत्व चुनाव और पसन्द की नहीं एक विशेष स्थिति तक काम में लग जाने की ऐनर्जी की तैयारी ही प्रमुख है। मैं ग़लत तो नहीं कह रहा ?" अत्यन्त भोलेपन से उन्होंने शरद को देखा।

"जी, नहीं...जी हाँ, आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं।" शरद एकदम थोड़ा अव्यवस्थित हो उठा। उसे लगा सामने बैठा व्यक्ति भोला और नम्र चाहे जितना हो, मूर्ख ज़रा भी नहीं है।

"आप की उम्र क्या होगी, शरद जी.....?" वे जैसे यों ही पूछ बैठे।

"मेरी ? चौबीस साल कुछ महीने—" सामने रखी सार्टिफ़िकेटों की फ़ाइल शरद ने एकदम उधर खिसका दी। असल में उसे बड़ी बेचैनी हो रही थी कि फ़ाइल न तो यह स्वयं देखने की उत्सुकता प्रकट कर रहे हैं और न उसे दिखाने का ही कोई मौक़ा मिल पा रहा है। उम्र के बहाने उसे फ़ाइल दिखाने का अच्छा अवसर मिला।

"यही !" फ़ाइल को उपेक्षा से यों ही शरद की ओर वापिस खिसका कर उन्होंने उत्साह से उठे हुये घूँसे को अत्यन्त सावधानी और आहिस्ते से मेज़ पर रखते हुये कहा—"यही तो उम्र है जब ऐनर्जी जेनरेट होती है। इस वक्त तो आप ज़मीन में ठोकर मार दें तो सोता फूट पड़े। यह दिन है आप लोगों के। अब हमारी क्या है ? सुबह के तारे हैं—आपलोग अपनी इस ऐनर्जी को ठीक गाइडैन्स में और ठीक तरह लगा देंगे तो अच्छा है, कुछ कर जाएँगे। हमलोग तो बुझते दिये हैं, दिये।" फिर ज़रा कुटिलता से हँसकर बोले—"हमारे कम्यूनिस्ट भाइयों ने तो हमारे नाम, पते और फांसी लगाने को घर का सबसे पास पड़ने वाला बिजली का खम्भा, सब अपनी लिस्ट में नोट कर रखे हैं। वे आये और पकी तोरइयों की तरह हमलोग इधर-उधर लटके दिखाई देंगे।" वे छत की ओर मुँह करके बड़ी ज़ोर से हँस पड़े।

शरद भी साथ हँसा। लेकिन उसकी मानसिक स्थिति बड़ी विचित्र थी। वह उनकी बातों की प्रतिक्रिया दिखाने में, उत्तर देने में—उनके दिल को पढ़ने में और साथ ही यह सब प्रगट न होने देने में, इतना अधिक सचेत था कि खुलकर किसी बात में साथ नहीं दे पाता था। हँसने की जगह है या चुप रहने की, केवल 'हाँ' करने की जगह है या एकाध वाक्य कहने की, और वह क्या, कैसा हो, इसी अनिश्चयात्मकता में वह उलझा रहा। एकाध बार उसकी इच्छा कुछ कहने की भी हुई, लेकिन उसके दिमाग़ में शब्द ही नहीं आये। इस बार वह हँस तो पड़ा, पर अब क्या कहे, यह उसकी समझ में नहीं आया। फिर भी हँसने के बाद की मुस्कुराहट को क़ायम रखते हुये, स्वर को लापरवाह और विनोदी बनाकर उसने कहा—"उनका क्या है ? उनका तो रोज़ एक नया फ़रमान, सरकुलर निकलता है।"

"सरकुलर नहीं बुलैटिन, वार बुलैटिन !" देशबन्धु जी ने सुधारा, फिर

बोले—"वाह, यह आपने खूब कही, उनकी है कैसे नहीं ? ज़रा उनके दफ़्तरों में जाकर तो देखिये। एक कॉमरेड दूसरे को सलाम करता है तो यों"—उन्होंने अपनी घड़ी बँधी कलाई वाला घूँसा ताना—हथेली के पीछे काफ़ी बाल थे। बात जारी रही—"जैसे पकड़ना भाई, नहीं तो हम एक दूसरे पर झपटते हैं। उनका बस चले तो स्टैलिन की फ़ोटो का तावीज़ गले में लटका लें—दे आर मोर कम्यूनल दैन अवर मोहम्डन्स...मेरी समझ में नहीं आता कैसे लोग अपने दिमाग़ों को ताक़ पर रखकर इतने जड़ हो जाते हैं कि वहाँ की हर उलटी-सीधी बात का समर्थन करने लगते हैं...।" फिर एकदम स्निग्ध स्वर में बोले—"आप का क्या ख़याल है ? मैं तो यह सोचता हूँ कि दुनियाँ को किसी दूसरी चीज़ से नहीं इतना नुकसान पहुँचा है, जितना इन मज़हबों से—इन जड़ मज़हबों से। और कम्यूनिज्म आज का सबसे कट्टर मज़हब बन चुका है.....।"

अब शरद से नहीं रहा गया। उसने ज़रा गला साफ़ करके बहुत ही मुलायम स्वर में कहा—"जहाँ तक सिद्धांतों का सवाल है, इसके सिद्धांत अपील तो बहुत करते हैं।"

"सिद्धांत किस धर्म के ख़राब हैं ?—आप मुझे जड़ से जड़ धर्म बता दीजिये। और मैं तो समझता हूँ कि ईसाई धर्म से ज़्यादा अच्छे उदार सिद्धांत किसी दूसरे धर्म के होंगे भी नहीं—लेकिन जो कुछ भी ईसाई धर्म के नाम पर दुनियाँ में हुआ, उसका एक तिहाई भी हमारे हिन्दुस्तान—पाकिस्तान में नहीं हुआ..." और वाक्य की समाप्ति पर ज्यों का त्यों मुँह खोलकर, कुछ क्षण वे एकटक शरद की ओर देखते रहे, फिर वही स्निग्ध मुस्कान लाकर बोले—"ख़ैर, दुनियाँ की भलाई-बुराई से अपने को क्या है ? जो जैसा भी है अपने आपको सबसे ज़्यादा ठीक समझता है.....।"

शरद को लगा जैसे वह ज़रा-सा चूक गया। उसे इस समय देशबन्धु जी का विरोध नहीं करना चाहिये था। बात सँभालने के लिये उसने कहा—"जी हाँ, तब भी हर सिद्धांत का अन्तिम लक्ष्य मानवता ही होना चहिये। हमारे हिन्दुस्तानी कम्यूनिस्टों में यही ख़राबी है—वे डॉग्मैटिक बहुत है। हर बात में रूस और चीन की तरफ़ भागते हैं ...।"

"छोड़ो भाई शरद, ये पचड़े की बातें हैं। हमारे-तुम्हारे लिये नहीं हैं।" वे पुनः गम्भीर हो गये—"वैसे तुमने इन सबको पढ़ा तो ख़ूब होगा—आदमी तो यार निहायत ही पढ़ाकू क़िस्म के दिखाई देते हो.....'।'

इस आत्मीयता और निकट के सम्बोधन से शरद गद्‌गद् हो आया। अनजाने ही पिनकुशन को अपनी ओर खिसका कर उसमें से एक पिन को निकालता और पुन. वहीं लगाता हुआ, बोला—"जी कुछ नहीं.....यों ही थोड़ा.....हमलोगों का क्या है, यों ही किताबों का पल्लवग्राही ले-भगू ज्ञान है। बेकार दिमाग़ी

क़ब्ज़ और करता है। असली ज्ञान तो आपलोगों का है—सीधे कार्य-क्षेत्र से लिया हुआ...।"

"तभी तो हाल यह है कि कोई पढ़ा-लिखा आदमी मिल जाता है तो चुप हो जाना पड़ता है।" देशबन्धु जी फिर हँस पड़े, लेकिन तुरन्त सँभल कर बोले—"अच्छा है, शरद बाबू तुम आ जाओ। कुछ कभी-कभी बता दिया करना। एक छोटी-सी लाइब्रेरी मेरी है, और जो किताबें चाहो, निस्संकोच मँगवा लेना, तुम्हारे ज़रिये हम भी कुछ सीख लेंगे। यहाँ ये भाषण मेरी जान खाये जाते हैं। कभी-कभी भाषणों में तुमसे मदद लेलेंगे। लोग हमें भी पढ़ा-लिखा समझने लगेंगे, वर्ना असलियत तो तुम देख ही रहे हो।"

"नहीं जी, इतना व्यस्त रहते हुये और इतनी जिम्मेदारी. भाग-दौड़ की ज़िन्दगी में भी आपने खूब सोचा है, खूब समझा है। और इसकी वजह यह है न, कि आपलोग ज़िन्दगी मे सीधा लेते है, सीखते हैं..." शरद ने देशबन्धु जी के पीछे वाली काँच की आलमारी में चमकती, चमड़े की ज़िल्द और सुनहरी अक्षरांकित किताबो पर निगाह जमाये हुये, इस तरह कहा, जैसे यह बात काफी चिन्तन के बाद कह रहा हो। वह उसी तरह बोला—"पिछली बार जब आप आये थे तो मैं आपकी जिस बात से अधिक प्रभावित हुआ था, वह यही थी। आपने अपनी ज़िन्दगी को सिर्फ जिया ही नही, जिये हुये को निचोड़कर उसूल और सिद्धांत भी निकाले हैं। किताबों का यह रटा-रटाया ज्ञान तो सभी जगह मिल जाता है। जहाँ कहीं लाइब्रेरी है, किताबी ज्ञान भरा है, लेकिन सीधा जीवन के अनुभवों का निचोड़ और फिर उसका ठीक उपयोग, यह दोनों बातें मिलना आसान नही है।"

वह बात कह चुकने के बाद भी सीधा उधर ही देखता रहा—यों ही गम्भीर और अपलक जैसे अभी भी उसी चिन्ता में डूबा हो : फिर भी ज़रा-सा मौक़ा निकाल कर उसने अपनी बात की प्रतिक्रिया देखी।

देशबन्धु जी का चेहरा खिल उठा था। अपनी प्रसन्नता को दबाकर वे चुपचाप आंखें फाड़े इस तरह देख रहे थे, जैसे यह बातें उनके सम्बन्ध में ज़रा भी नहीं, किसी तीसरे आदमी के सम्बन्ध में हैं। थोड़ा हँस कर बोले—"आपलोगों की यही बातें तो मेरा दिमाग खराब कर देती हैं। अभी हमलोग हैं किस लायक़। और मैं तो खासतौर से कुछ हूँ ही नहीं। शरद बाबू, आप विश्वास नहीं करेंगे. मैंने सड़कों पर खुद दियासलाइयाँ बेची हैं, दियासलाइयाँ। और फिर उसी से आज मैं धीरे-धीरे जो हूँ, सो आप देख ही रहे हैं। मैं गर्व नहीं करता, मैंने मनुष्य की बुरी से बुरी स्थिति देखी है और अच्छी से अच्छी, लेकिन एक सिद्धांत मैंने हमेशा अपनाया। विचार हमेशा ऊँचे रखो और माथा नीचा। यही चीज़ है जो आपके चरित्र को बनाती है। और चरित्र वह चीज़ है, जो आदमी को लाख मुसीबतों में भी बचाता रहा है। सा'ब मानना पड़ता है कि चरित्र में एक अद्भुत शक्ति है, बड़ा

बल है। कोई आँख नहीं मिला सकता। वर्ना जिन गड्ढों में मैं रहा हूँ, वहाँ से आना तो असम्भव समझिये....."

शरद के मन में एक क्षण को कौंधा, कहीं यह व्यक्ति सचमुच मैस्मेरिज़्म तो नहीं जानता। उनकी आँखों से जो एक क्षण को चमक निकल कर बुझ गई और उसे अपने इस तरह इतनी देर चुपचाप बैठे रहने की बात याद आई तो आश्चर्य हुआ। लेकिन यह विचार उसे बहुत ही मूर्खतापूर्ण लगा। जैसे ही देशबन्धु जी रुके, उसने कहा—"जी हाँ, चरित्र को लोग जीवन की मोटर का पेट्रौल कहते हैं।"

शरद की बात को स्वीकार करके उन्होंने अपनी बात जारी रखी। इसी बीच में पेपरवेट को जहाँ का तहाँ रखकर उन्होंने बढ़िया महीन नक्काशी वाला हाथी-दाँत का क्रीमकलर पेपरनाइफ़ उठा लिया था और उसे एक हाथ से दूसरे हाथ की हथेली पर मारते रहे—"और उसी जीवन का, इन्हीं लोगों का दर्द है, जो मुझे निरन्तर मानवता की सेवा करने की प्रेरणा देता रहा है। आप विश्वास कीजिये, शरद बाबू, मैं चाहूँ तब भी इस जीवन को नहीं छोड़ सकता। लोगों की जब ये हालतें देखता हूँ तो पुरानी यादें ताज़ी हो जाती है—आँखों मे आंसू आ जाते है। इन बेचारों की ज़िन्दगी में क्या रखा है? मैने तो खुद देखा है..."

शरद को लगा जैसे सचमुच उनका गला भर्रा आया है। उसने कहा—"इङ्गलैंड वग़ैरा में तो ज़रूर सुना जाता है कि होटल में प्लेटें साफ़ करने वाले लोग प्रधान मन्त्री तक बन गये हैं, लेकिन भारत में ऐसे अध्यवसाय से उठे हुये लोगों के उदाहरण कम ही हैं।" यह बात उसने इस चर्चा के आधार पर कही कि अगले इलैक्शन में देशबन्धु जी कहीं के मिनिस्टर हो जायेंगे, यह निश्चित है।

"कभी-कभी तो मन होता है, इन सबको बैठकर लिख डालूं।" देशबन्धु जी अपनी उसी बात के बहाव में इस तरह बहे, मानों यह वाक्य अचानक ही फूट पड़ा हो। फिर अपने को सँभालते सुस्थ होते-से चुप हो गये।

"नहीं...नहीं...यह तो आपको ज़रूर लिख डालना चाहिये। जैसे भी हो। हमारे यहाँ यही तो ख़राबी है। जो लिखने लायक है, असली अधिकारी है, वह तो लिखता नहीं है और ऐरे-गैरे लिखते फिरते हैं, जिन्होंने ज़िन्दगी की सूरत नहीं देखी होती। अब आप लिखेंगे तो उसमें कुछ ज़िन्दगी तो बोलती दीखेगी। क्योंकि आपने यह सब देखा है, अनुभव किया है और समझा है...।" शरद ने ऐसे उत्साह से कहा, जैसे वह वास्तव में उनके जीवन से बहुत ही प्रभावित हो गया हो।

अपनी बातों के प्रवाह को एकदम रोककर, एक गहरी साँस खींचते हुये देशबन्धुजी दुख-कातर शब्दों में बोले—"यही तो मुश्किल है, शरद बाबू, लिख तो सब डालें, और लिखना ज़रा भी मुश्किल नहीं, लेकिन भाई, कम्बख़्त फ़ुर्सत तो मिले। मैं तुमसे सच कहता हूँ कि रात में जब कभी लेटता हूँ और बड़ी देर तक

नींद नहीं आती तो पिछली सारी बातें घूमा करती हैं। तब बड़ी-बड़ी इच्छा होती है कि बैठकर सब लिखूं। लेकिन इतना थक जाता हूँ कि हाथ हिलाने की हिम्मत नहीं होती। अब आपने आज फिर जोश दिला दिया है, पता नहीं कितनी बेचैनी रहे। चाहे जिस भी रूप में हो शरद बाबू, यह सब मैं लिखूंगा जरूर।" और अपनी विवशता पर एक गहरी साँस उन्होंने खींची और दुखित से बैठ रहे।

"नहीं, इसे तो जरूर ही लिख डालना चाहिये।" शरद ने अधिकाधिक उत्साह से कहा। इस प्रकार प्रसन्न करके वह प्रभावित कर रहा है—यह उसकी समझ में आ रहा था।

"तुम आ जाओ, इसी तरह जोश दिलाते रहे तो जरूर ही लिख दूंगा। शरद बाबू, मैं अपने आप काम करने वाला आदमी हूँ नहीं। मैं तो उस बैल की तरह हूँ जिसे निरन्तर 'गोड' किया जाता है, कोंचने की जरूरत है। अगर इस देश-सेवा के काम के लिये मेरी आत्मा मुझे निरन्तर 'गोड' न करती तो आप विश्वास कीजिये, मेरी तीन-पीढ़ियों को ठाठ से जिन्दगी बसर करने को काफ़ी है। लेकिन एक अंकुश है कि हर वक्त कोंचता है। शरद बाबू, यह सेवा की भावना जब तक आदमी में नहीं होती, आदमी कुछ नहीं कर सकता, ज़रा भी नहीं उठ सकता। हम देश के लिये, इन्सानियत के लिये कुछ कर रहे हैं, या करने में कुछ निमित्त बन रहे हैं यह भावना आदमी में आना बड़ा मुश्किल है। लेकिन जब आ जाती है तो वह देवता बन जाता है।" देशबन्धु जी की आँखें चमक उठीं। छाती में दुगुनी साँस भर कर वह कुछ करने जा ही रहे थे कि कहीं अचानक, जैसे कोठी के भीतर किसी गहरी जगह में घण्टी बजी।

उन्होंने हाथ के चाकू को जहाँ से उठाया था, वहीं ठीक वैसे ही रखा और सारी भावुकता जैसे समाप्त करके कुर्सी की दोनों बाहों पर हाथ रख कर उठते हुए बोले—"चलिये शरद बाबू, खाना खायें, बुलावा आ गया।"

"चलिये आप, मैं वहीं खालूँगा, शायद नौकर रख आया होगा।" उसने समझा शायद वे खाना खाने जाने की आज्ञा मांग रहे हैं, फिर भी उनके व्यवहार की इस कृपा से वह कृतार्थ हो उठा, उसने दोनों हाथ जोड़ दिये।

"अरे भाई, हमें इतना पराया मत समझो।" वे उठ कर मेज़ के पार घूम कर उसके पास पहुँच गये। शरद भी उठ चुका था। प्यार से उसके कन्धे पर हाथ रख कर बोले—"नौकर यहां कोई नहीं है शरद बाबू! सभी एक परिवार के सदस्य हैं। यह नौकर-मालिक की भावना मुझसे चल नहीं पाती। भाई, मैं तुम्हारी आवश्यकता-पूर्ति का ख़ल करता हूँ, तुम मेरी जरूरतों को पूरा करो, इसमें क्या नौकर और क्या मालिक ह सब पुराने पचड़े हैं, नवाबी बातें हैं, आजके ज़माने में नहीं निभ सकतीं। सब अप ापनी उत्थान की यात्रा के राही हैं, पता नहीं जिसे हम आज नौकर समझते हैं वह अपनी महान-यात्रा के इसी दौर से गुज़र रहा

हो, और कल न जाने क्या बनने वाला हो। मैं तो भाई, साफ़ कह देता हूँ, आओ, रहो, जो भी चीज़ है उसे समान अधिकार से, समान आवश्यकता से, तुम भी उपभोग करो, हम भी करें—उत्तरदायित्व अनुभव करोगे, कुछ काम तुम्हारे लायक पड़ा दीखेगा, खुद करोगे—और मालिक की हैसियत से करोगे।"—अपने इस भाषण की गूढ़ता पर वे हँसे, और कन्धे पर हाथ को थपक कर बोले—"चलो, तुम्हारा खाना यहीं लगाया गया है। आज तुम हमारे ही साथ खाओगे, चलो। शरद बाबू, एक बात के मै सख्त खिलाफ़ हूँ और वह है यह तक़ल्लुफ !" अचानक फिर अपनी बात का सूत्र पकड़ कर बोले—"तुम आओ, थोड़ी तुम मदद कर देना, मैं अपनी आत्म-कथा ज़रूर लिखूँगा।"

"जी हां, जितनी मदद हो सकेगी मै ज़रूर कर दूँगा। मेरा इसमें क्या जाता है ! मैं एक महान कृति का निमित्त बनूँगा, इससे ज्यादा गौरव और सौभाग्य का विषय मेरे लिये और क्या होगा।" शरद विभोर हो आया ! उसने एक बार तिरछी दृष्टि से मेज़ पर पड़ी सार्टिफ़िकेटो की फ़ाइल को देखा, उसे देखने की देशबन्धु जी ने ज़रा भी उत्सुकता नही दिखाई थी, और वह समझ गया कि यह आदमी खुद तौलता और परखता है, दूसरों के दिये डिग्री और सार्टिफ़िकेटों पर विश्वास नहीं करता। उसे देशबन्धु जी के प्रति बड़ी श्रद्धा हुई।

"तो फिर बस तुम आ जाओ !" एक हाथ एक कन्धे पर रखकर दूसरा पीठ के पीछे से दूसरे कन्धे पर रख कर उन्होने उसकी बुश्शर्ट की क्रीज़ और नयेपन का ध्यान किये बिना उसे लगभग बाहों में भर लिया—"लिखने का तो तुम्हें शौक होगा न।"

विचित्र है यह इण्टरव्यू। ऐसे हर प्रश्न पर वह सचेत होकर सोच लेता और फिर पता नहीं किस धुएँ और कुहासे में खो जाता। लेकिन अवचेतन रूप से लगातार एक बात मनमें घुमा रहा था कि अवसर मिलते ही वह नौकरी, तनुखा और अन्य प्रबन्धों के विषय में पूछ-ताछ करेगा। लेकिन इस सबका उसे मौक़ा ही नही मिल रहा था। उसकी समझ में नहीं आया कि वह आखिर आ क्यों जाय ! बातों का सिलसिला ही कुछ इस तरह चल रहा था कि यह सब पूछने की जगह ही नहीं आई। जब देशबन्धु जी ने कई बार आने की बात दुहराई तो भावुकता के ज्वार में भी उसे वे सब बातें ध्यान हो आई। उन्हें एक बार फिर मन में दुहराकर उसने फिर उनकी बात का उत्तर दिया—"कुछ अधिक तो नहीं, यों ही कॉलेज मैगज़ीन में कभी-कभी लिखा था....."

"वैसे क्या लिखना पसन्द करते हो...?" स्वर में शीरीनी की कमी नहीं थी, फिर भी आलिंगन की पकड़ ज़रा ढीली कर दी।

"लेख में ज्यादा मन लगता है, ज़रा आउट ऑफ़ प्रैक्टिस है दो साल से; एल-एल० बी० में क्रिमिनल लॉ, सिविल लॉ रटते-रटते सब भूल-भाल गये—और अब

ता मुवक्किल, मुहर्रिर, पेशकार और मिसिलबाज़ी में ही उलझे थे।" शरद ने ज़रा खुलकर कहा। सच बात तो यह थी कि लिखना उसे अच्छा नहीं लगता था, लेकिन देशबन्धु जी का मूड देखकर बोलना था।

"कोई बात नहीं, कोई बात नहीं।" फिर वे हँसकर बोले—"जहाँ ज़रा सूरजजी ने दिमाग़ चाट कर, दो लेख 'बिगुल' के लिये लिखवाये नहीं कि सब प्रैक्टिस हो जायगी। यह बहुत ही अच्छा है कि तुम्हारी रुचि लेख लिखने की ओर भी है। तुमने हमारी लाइब्रेरी नहीं देखी? अच्छा, कल दिखायेंगे। तबीयत खुश हो जायेगी। लेख लिखने में बड़ी मदद मिलेगी। तुम और उसे ज़रा अपटूडेट बना देना।" दूसरी बार उन्होंने कहा, और अलग हो गये। एक हाथ अब भी वैसे ही कन्धे पर रखा रहा।

कल की बात से शरद को सारी बातें याद हो आईं। उनकी बात से प्रसन्नता और कृतज्ञता का भाव दिखा कर उसने झिझकते हुए कहा—"अगर आप कहें, तो कल मैं ज़रा जाना चाहता हूँ।"

"हा हा, जरूर, इसमें पूछने की क्या बात है? सामान-आमान ले आओ, अकेले ही तो हो न?" उन्होंने उसी प्रकार उत्साह से कहा।

"साथ में वा.....जया और है।" कोशिश करने पर भी उसके मुँह से 'वाइफ़' शब्द नहीं निकल सका। वह 'जया' को वाइफ कहने जा रहा था, इस बात से ही जैसे वह कट उठा। उसका शरीर रोमांचित हो आया।

"नेता भैया, खाना कब का ठण्डा हो रहा है!"

आवाज से चौंक कर शरद ने मुड़ कर देखा—बाईं ओर के दरवाजे पर पड़े नीले रंग के दोनों पर्दों को हाथ से हटाए हुए हल्की हरी साड़ी में पद्मा खड़ी थी।

कमरे में हल्के नीले रंगके दो चौकोर ग्लोब चांदनी जैसी झीनी-झीनी रोशनी फैला रहे थे और हर चीज एक आसमानी अतीन्द्रिय वातावरण में डूबी हुई थी। देशबन्धु जी के साथ एक नया अतिथि देखकर पद्मा चौंक पड़ी और उसने बिना उसे पहचाने ही जल्दी से शिष्टता के नाते नमस्कार किया। शरद ने तपाक् से नमस्कार का उत्तर दिया। बोल उसके मुँह से नहीं फूट पाये, और पद्मा ने जिस मशीनी शिष्टता से उसे नमस्कार किया था उससे साफ़ था कि उसे पहचाना नहीं गया है।

"शायद आप किसी जरूरी काम में विजी हैं, इस समय!" पद्मा उधर से मुँह फेर कर देशबन्धु जी से बोली। दूसरे व्यक्ति की उपस्थिति से स्वर में कुछ अधिक शिष्ट, स्निग्ध सँवार आ गया था। फिर वह बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये ही घूम पड़ी।

"नहीं पद्मा बेटी, हम लोग आ ही रहे हैं न।" उन्होंने बहुत अधिक स्निग्ध स्वर में कहा—और शरद के कन्धे पर रखे हाथ को ज़रा दबा कर बोले—"चलो मैं कह रहा था न, कि देर हो जायेगी।"

कुछ बात सुन कर जाती हुई पद्मा का हाथ पर्दा छोड़ते-छोड़ते रुक गया। उसके बाएं कन्धे पर पड़ा हुआ जॉर्जेट की साड़ी का पल्ला पार्श्व में कमर के नीचे पिंडलियों तक झूल रहा था, और हवा के ज़ोर से तनी पतंग की तरह नीचे सँकरी होती आती—पूरी पीठ खुली थी—उस पर चुस्त-फ़िट ब्लाउज़ का कपड़ा कमर पर तीन इञ्च पहले ही ख़त्म हो गया था, और कुन्दन से शरीर की चम्पई पट्टी चमक रही थी। इसके बाद अर्ध-गोलाकार पत्थर से फिसलती हुई पानी की धार की तरह साड़ी का मोहक फ़ॉल। पद्मा के शरीर की गठन बहुत ही सुन्दर है—देशबन्धु जी और शरद दोनों ने ही उधर प्रशंसा से देखा। कन्धों के ऊपर गोल अजन्ता-जूड़ा और उसमें अर्ध-चन्द्राकार खिले हुए सफ़ेद मोतिये के फूलों की माला। परिचय न कराये जाने की या पहचाने न जाने की बात शरद भूल गया। वह मंत्रमुग्ध-सा उसे देखता रहा। इसके पहले इसका शरीर इतना सुन्दर नहीं था.....

ज्यों की त्यों खड़े रहकर—बस ज़रा-सी गर्दन और दृष्टि दरवाज़े की चौखट की सीध में घुमाकर पद्मा ने कहा—"काम ख़त्म करके आ जायें।"

"हमारी पद्मा बेटी तो नाराज़ बड़ी जल्दी हो जाती है।" स्नेह से गद्गद् स्वर में देशबन्धु जी उसे मनाते-से बोले—"अरे भाई, चल तो रहा हूँ।"

शरद उस प्रोफ़ाइल को देख रहा था। उसकी बड़ी प्रबल इच्छा हुई, काश, इस समय कैमरा होता। झटके से सिर घुमाकर पद्मा चली गई, और नाव सरक जाने पर पानी में जैसे मिटती हुई लकीर छूट जाय—वैसी एक सुगन्धि की रेखा-सी बनती चली गई। शरद को कोई संदेह नहीं रह गया था कि यह वही पद्मा है। पुरानी सैकड़ों बातें धीरे-धीरे उसे याद आने लगीं। पाँव चलते रहे।

तीन-चार संगमरमरी या क़ालीनी फ़र्श वाले बड़े-बड़े कमरों के दरवाज़ों के पर्दे हटा-हटाकर देशबंधु जी उसे रास्ता दिखाते चल रहे थे, नम्दों और गलीचों पर क़दम रखता शरद स्वप्नाविष्ठ की तरह चला जा रहा था। सभी कमरों में विभिन्न शेडों की रोशनियां हो रही थी।

"आओ, आओ, चले आओ!" एक कमरे का पर्दा हाथ से ऊँचा करके उन्होंने कोमल स्वर मे कहा। शरद ठिठक गया था।

कमरे में लहराते साँपों जैसी पत्तियोंवाला एक दूधिया ख़ूबसूरत झाड़ लटक रहा था। रोशनी तेज़ थी। ठीक बीच में एक लम्बी-चौड़ी डाइनिंग-टेबिल के चारों ओर चार कुर्सियां पड़ी थीं—शेष दीवारों के साथ रखी थीं। एक कुर्सी पर ज़रा भारी से शरीर की काला चश्मा लगाये एक महिला बैठी थीं—दूसरी के आगे मेज़ से टिक कर खड़ी पद्मा हाथ में किसी चीज़ का डोंगा लिये प्लेट में चम्मच से कुछ परोस रही थी। शेष दो कुर्सियों पर नैप्किन के काम के लिये सफ़ेद खद्दर के तौलिये झूल रहे थे।

"फ़ुर्सत मिल गई आपको—।" सिर उधर उठा कर महिला बोलीं।

स्वर बड़ा शान्त था लेकिन जरा-सा अधिकार-व्यंजक।

'माया बहन, ज़रा इनसे कुछ ज़रूरी बातें कर रहा था। ये हैं हमारे मित्र श्री शरद कुमार···।" उनकी उस बात को अत्यंत ही स्वाभाविक और ज़रा गर्व—गद्‌गद् प्रसन्नता से ग्रहण करते हुए देशबंधु जी ने उसे एक कुर्सी पर बैठ जाने का संकेत किया। शरद का दिल धड़क रहा था। मित्र कहने से वह संकुचित हो उठा।

वे कह रही थीं—"आपका तो हर काम ज़रूरी होता है—" लेकिन परिचय कराने से उन्हें अपना यह वाक्य बीच में ही तोड़ देना पड़ा।

इस बार शरद ने उधर देखा—आँखों पर काला चश्मा, गोल चेहरा, सफ़ेद खद्दर की सीधे पल्ले की धोती, कानों को आधा ढँकते हुए लहरदार बाल, दोनों कानों मे ज़रा ही झटके में हिल उठने वाले चमकदार इयरिंग, नाक में किसी चमकदार नग वाली पतली-सी मीक—चेहरे पर गर्दन तक ज़रा उदारतापूर्वक लगाया गया पाउडर, उम्र लगभग ४० वर्ष—शरद ने शिष्टतापूर्वक हाथ जोड़ कर माथे तक उठाये। तभी पद्मा ने ज़रा गौर मे उधर देखा और चौक उठी—रायते को प्यालों में करते हुए उसने कई बार पलकें उठाकर उधर देखा, मुँह पर हठात् विस्मय की जगह अब हल्की मुस्कान आ रही थी।

"और आप कायदे मे हमारी भाभी, लेकिन पुकारने में बहन, श्रीमती माया देवी पुरी!" देशबन्धु जी परिचय करा रहे थे। वे अभी तक बैठे नहीं थे। उनका एक हाथ मायादेवी की तरफ़ उठा था—"ये पुरानी सामाजिक कार्यकर्त्री हैं और ये हमारी पद्मा बेटी..."

"सब्ज़ी कितनी लेंगे?" पद्मा ने शरद के सामनेवाली खाली प्लेट की ओर अपने हाथ के डोंगे और चम्मच को बढ़ा कर कहा, फिर जरा झेंपी-सी मुस्कान मे चबा-चबा कर बोली—"नेता भैया, हम लोग एक-दूसरे से परिचित हैं।"

देशबधु जी और मायादेवी दोनो चौक गये—शरद भी चौके बिना नहीं रहा। दो-एक बार देख कर भी उसने परिचय का कोई भाव नहीं दिखाया था। जब वह खुद ही ऐसा कोई भाव नही दिखाती तो शरद को ही क्या ज़रूरत है, यह सोच कर वह चुप था। लेकिन इस अप्रत्याशित परिचय के लिये वह तैयार नहीं था। वह अस्त-व्यस्त हो उठा। माथे पर पसीना आ गया।

"एं ऽऽ...कब भाई?" देशबंधु जी बोल उठे।

इस बार गला साफ़ करके धीरे से शरद ने उत्तर दिया—"यह एम० ए० में मेरे साथ दो साल थीं। बी० ए० तो कही और से करके गई थीं..."

"हां, बी० ए० पंजाब से कर लिया था।" मायादेवी ने बताया।

"ओ:" देशबन्धु जी ने बड़ी गहरी साँस ली और बड़े आराम से कुर्सी पर बैठ कर बोले—"भई वाह, यह खूब रही।"

शरद और पद्मा एक दूसरे को देख कर मुस्कुराये और इतनी देर तक इतने समय का सारा अपरिचय धुल गया। देशबन्धु जी और मायादेवी ने एक दूसरे की ओर देखा और वे भी मुस्कुरा उठे।

पहले शरद ने चुप रहने का, या कम से कम बोलने का निश्चय कर लिया था, लेकिन उसे लगा कि अब यह नही चल पायेगा। उसने मायादेवी की ओर, जो बिल्कुल उसके सामने पड़ती थीं, देख कर कहा—"माता जी, जिन दिनों ये आगरे में पढ़ी थी, आप भी वहीं थीं क्या ?" उसे रात में भी उनका काला चश्मा लगाना बड़ा अजीब-सा लग रहा था।

"नहीं, यह अपने मौसा जी के यहाँ पढ़ी थी। मै दो-एक बार भले ही गई होऊँ। इसके मौसा जी के वहाँ बड़े अफ़सर...क्या है पद्मा ?" अपने सामने प्लेटों को खिसका कर वे एक बार सीधे उसकी ओर देख कर बोली।

"शरद जी, जरा आपको कष्ट तो होगा। मेज़ के नीचे की तरफ बटन लगा होगा घण्टी का, उसे ज़रा दबा दें। महाराज रोटियाँ ले आयेगा।" पद्मा ने कहा। पता नहीं क्यों उसे हँसी आ रही थी। लेकिन होठ कस कर उसे दबाये हुए थी। मां की बात पर उसने ध्यानन हीं दिया।

शरद मेज़ के नीचे दोनों हाथों से टटोलता ही रह गया, कि देशबन्धुजी ने उठकर उसके बाईं ओर कहीं घण्टी का बटन दो-तीन बार दबाया। इतनी-सी चीज़ न कर सकने पर, शरद संकुचित हो उठा। उसने सँभलकर पद्मा की ओर मुड़कर पूछा—"एम० ए० के बाद फिर तो आप कहीं और चली गई थी न..."

'एक साल कुछ नही किया, फिर पारसाल लखनऊ से इम्तहान दे डाला सङ्गीत में...।" पद्मा कुछ सोच-सोच कर मुस्कुराती और एक-टक प्लेट में रखी सब्ज़ी को देखती रही।

"वोकल या इन्स्ट्रूमेण्टल ?"

"वोकल तो नाममात्र को ही है—इन्स्ट्रूमेण्टल में ही मेरी रुचि थी, पहले से ही थोड़ी बहुत।" पद्मा ने ज़रा भौहें खीचकर, गम्भीर होने की कोशिश करते हुये कहा। उसकी दोनों भौहों के बीच में भी बालों की एक हल्की रेखा थी।

"तब तो खूब ही अभ्यास कर लिया होगा। किस खास इन्स्ट्रूमेण्ट में आप की रुचि है ? फ़ेयरवैल पार्टी में तो हमलोगों की इतनी ज़िद पर भी आपने कुछ नही बजाया था। उस पर सान्याल ने तो शायद कुछ कह भी दिया था कि बड़ा घमण्ड है—क्या। उन्होंने शायद इसे अपना अपमान समझा। आपको भी ज़िद आ गई थी।" बात करते समय लगातार उसके चेहरे को देखते रहना शायद अच्छा न लगे, इसलिये शरद एक बार रोटी रखने की खाली प्लेट की ओर देख लेता और एक बार पद्मा की दृष्टियों की ओर।

"देखिये, वो तो उनलोगों की बेकार की ज़िद थी। अब इसमें वे अपना

अपमान समझ बठीं। इसके लिये कोई क्या करे ? नाक पर तो उनका अपमान रहता था।" फ़ेयरवैल पार्टी की याद करके पद्मा झेंपकर मुस्कुरा उठी।

"वाह, बेकार की ज़िद कैसे ? वैरायटी शो मे कव्वालों के साथ आपकी सारङ्गी के हल्ले मे तो महीनो कॉलेज गूंजता रहा था। उस वक्त ज़रा सुना ही देतीं। उसबार को तो कई लोगो ने फील किया—प्रोफ़ेसर दत्ता भी मुँह फुलाये थे....." H83 Y12 H2577

"प्रोफ़ेसरो की बात छोड़िये, और रही लड़कियो की, सो उसका मुझे पता है कि उन्हें भड़काने में आप जैसे दो-चार लड़को का ही हाथ था !" अपनी प्रशंसा से पद्मा का मुंह झलझला आया। अपनी इसी कमजोरी को छिपाने के लिये उसने ज़रा दृढ़ता से कहने की कोशिश की—"अब हमें आता होता तो कुछ सुनाते। वैरायटी शो खाली लड़कियो का ही तो था। यहां तो इतने लोगों मे....."और उस सब दृश्य की कल्पना करके ही पद्मा लजा उठी, चेहरा लाल हो गया।

"उसमे लड़के और लड़कियो का क्या ? और उस शो मे कॉलेज के लड़के चाहे न हों, इन्वाइटेड गैस्ट तो थे, स्टाफ के लोग तो थे ही। और आप समझती है कि कॉलेज के लड़के बिना उस शो को देखे माने ? बुरा मानने की बात ही थी कि इतने सारे अपरिचित और नये लोगो मे तो आप तैयार हो गईं और वर्षो के साथी लड़कों से झेंप मानने का बहाना; और फिर जब आदमी कुछ जानता है तो झेंपना क्या ? कहीं पब्लिक परफ़ॉरमेन्स देना पड़े तो..."

"भई, वो तो पार्टी की बात थी—कोई हम अकेले थे ? फिर मेकअप था, पूरी चौकडी थी।"

"लो भाई, माया बहन ! अब हमलोगो की तो कोई जरूरत रह नहीं गई, दो पुराने क्लासफ़ैलो मिल गये..." कहकर देशबन्धु जी ने बडे ज़ोर का ठहाका लगा—मायादेवी भी साथ हँसी।

अपनी बात छोडकर हँसे पद्मा और शरद भी, लेकिन शरद बुरी तरह कट उठा। पद्मा का मुंह झनझना आया। झेप के मारे गर्दन जैसे उसने मेज मे घुसा दी। फिर एकदम झटके से कुर्सी पीछे खिसका कर यह कहती हुई, तेजी से भीतर भाग गई—"बड़ी देर लगा दी, देखें अभी तक रोटी ही नहीं सिकी..."

शरद को लगा कि बहुत बड़ी बदतमीजी हो गई है। देशबन्धु जी से पहली भेंट, और वह भी बहुत ही महत्वपूर्ण। और सचमुच वे लोग तो ऐसे बातों मे लग गये, जैसे कमरे में कोई बैठा ही न हो। क्या सोचेंगे ये लोग ? उसे एकदम बातें करने को कुछ उचित विषय ही नहीं मिल रहा था।

"अब तो बोलने तब भी लगी हैं—वर्ना क्लास में तो चुपचाप गुडिया-सी बैठी रहतीं थीं।" शरद ने बात का प्रभाव मिटाने के लिये, आधा मायादेवी और आधा देशबन्धु जी की ओर देखकर कहा।

"बड़ी शर्मीली लड़की है। मेरी तो गोद में खेली है।" देशबन्धु जी बोले।

"इसकी तो यह हमेशा की आदत है। बहुत कम बोलती है।" मायादेवी ने पुत्री की प्रशंसा में गद्‌गद् होकर कहा—"अपने पूरे इम्तहानों में फ़र्स्ट-क्लास सैकिंड आई है।"

"बस एक ही खराबी है, दिमाग़ के दो-एक पेच ढीले है। वर्ना लड़की तो बुरी नहीं है।" देशबन्धु जी ने देख लिया कि पद्मा दूसरे कमरे में ठीक पर्दे तक आ गई है, ज़रा ज़ोर से उसको सुनाकर बोले। फिर खुद ही हँस पड़े।

पद्मा झेंपी-झेंपी-सी आ कर बैठ गई। नौकर ढक्कनदार थाली में रोटी लाया और उसे रखकर चला गया। पद्मा ने ढक्कन खोलकर सब को रोटियाँ दी—उसकी कलाई में केवल एक काली पतली-सी चूड़ी थी—दूसरे में सोने की पतली चेन में रिस्टवाच। जैसे पिछली सारी बातें वह भूल गई है और इस सब मजाक में उसे कोई रुचि नहीं है, उसने कहा—"आप यहाँ कबतक है, शरद जी?" फिर उसने देशबन्धु जी की ओर एक बार देखा क्योंकि उसका रहना न रहना उनपर भी तो है।

"मै वैसे कल की किसी गाड़ी से जा रहा हूँ, लेकिन बहुत जल्दी ही इसी हफ़्ते लौटूँगा।" इस बार शरद ने पूरा ध्यान रखा कि कहीं बातचीत करने वाले वे ही दोनों न रह जाँय—अतः उसने दो-एक बार देशबन्धु जी की ओर भी देखा। वे हर सब्ज़ी को चम्मच से खाते थे। रोटी को क्रीम-रोल-सा बनाकर मुँह-भर ग्रास तोड़ने के बाद वे इधर-उधर, सब्जियां या चटनी, रायता मुँह में डाल रहे थे। शरद को सूरज जी का तम्बाकू खाना याद आ गया। वह जानता था कि उसके जाने की बात के साथ ही जया की बात भी आयेगी और जया की बात को पता नहीं क्यों टालना चाहता था। उसने एकदम, सामने बैठी मायादेवी की सीध में देखते हुये पूछा—"तब तक आप चली तो नहीं जायेंगी? कितने दिन यहां रहने कार्यक्रम है?"

"हमारा?" मायादेवी ने जरा झिझक कर पूछा। उनकी और देशबन्धु जी की निगाहें कुछ विचित्र ढङ्ग से आपस में टकराईं—काले चश्मे के बावजूद, शरद ने यह बिल्कुल साफ़ देखा। पद्मा सिर झुकाये खा रही थी। शरद को एक क्षण को लगा, जैसे उसके इस प्रश्न से स्थिति कुछ विचित्र-सी हो उठी है। उसने फिर मायादेवी की तरफ देखा, वे देशबन्धु जी के जवाब में कुछ मुस्कुरा रही थीं। शरद को उनका काला चश्मा उनकी बड़ी ढाल-सा लगा। वे थोड़ी खिसियानी-सी हँसी हँसकर देशबन्धु की ओर देखती हुई बोली—"अब यह तो इन नेता भैया के ऊपर है, कितने दिनों रहने देते हैं यहाँ। कल निकाल दें तो कल भाग जाँय।" वे फिर कुछ अर्थ-पूर्ण ढङ्ग से मुस्कुराईं।

"अरे मेरा क्या जाता है, इसमें। तुम्हारा घर है। हम तो यह कहते हैं कि तुम कहीं मत आओ-जाओ, पद्मा की शादी मैं किये देता हूँ, तुम ठाठ से यहाँ रहो और लड़कियों के स्कूल में जाकर लैक्चरबाज़ी करो। क्यों है न, शरद जी ?" उन्होंने उसी मुस्कान-पूर्ण वाणी मे कहा, फिर समर्थन के लिये शरद को देखा।

शरद को न जाने क्यों, यह भाषा कुछ विचित्र सांकेतिक लग रही थी। और शायद इसी बात को बचाने के लिये, बाद मे शरद को भी घसीटा गया था। कहना वह यह चाहता था—मुझे क्या मतलब ? लेकिन उसने देशबन्धु जी की बात का समर्थन किया। बोला—"जी हाँ, फिर तो आप निश्चिन्त-सी ही हो जायेंगी।" उनके पति क्या हैं ? इस बात को जानने की उसे उत्सुकता हुई। पता नहीं, पद्मा अपने विवाह की बात मे या किसी अन्य कारण मे इस बात मे जरा भी रुचि नहीं ले रही थी—वह सिर मोड़ कर एकदम अन्यमनस्क-सी महाराज की राह देखने लगी थी।

"अरे जब दो दिन को आये है तब तो यह है, पहले ही दिन। फ़ुर्सत ही नहीं मिल रही। मान लिया हमने, आप बहुत बड़े नेता है, एम० पी० है, बहुत-सी ज़मीदारी है, मिलें हैं, सिनेमा है और जायदाद है, और सबसे ऊपर हज़ार मिलने वाले एक के बाद एक पीछा ही नहीं छोड़ते, एक के बाद एक बड़े आदमी चले आ रहे हैं—आते ही आपने सूचना दे दी कि इन्ही दिनो इधर मन्त्री जी का भी दौरा लग रहा है—आपको फ़ुर्सत कहा, भई जिसे गरज़ पड़े अपना पड़ा रहे। आने की देर नही हुई, तीन पार्टियो की बात तो मुझे बता चुके हैं—मिनिस्टर साहब, कलक्टर साहब, और कौन-कौन—!" और मुँह फुलाकर नाराज़ी का भाव दिखाते हुए माया देवी चम्मच से किशमिश का रायता निकाल कर खाने लगी।

"भई, ये तो तुम्हारी ज़्यादती है, माया बहन।" फिर शरद की ओर देखकर बोले—"शरद बाबू, तुम्हीं बताओ, जबसे ये लोग आये है मैं कहीं गया हूँ ? वर्ना दम मारने की फ़ुर्सत मिलती है मुझे ? आप जब यहाँ रहेंगे तो खुद देख लेंगे—दिन भर फोन अटेण्ड करने पड़ेंगे। और बाहर तो फिर कहना ही क्या है ? अब तुम्हीं देखलो, इतनी तो इनकी ज़्यादती है कि आते ही इन्होने शुक्लाजी को हुक्म दे दिया—मौत और आग का ही फ़ोन हो तो भले ही बुलाया जाय वर्ना, कोई बोले, यहाँ किसी भी बात को कहने की जरूरत नही है। जो कुछ बोला जाय ऐक्सटेंशन से ही खुद ही निपट लें यहाँ आने की आवश्यकता नही है। और कुछ हुक्म बच रहा हो, सो भी सुना दो।" उन्होंने मायादेवी की ओर देखा, फिर चम्मच को यों ही सब्जी की प्लेट मे चलाते हुए नीचे सिर झुकाये हुए बोले—"पूरा गैस्ट-हाउस, इनके ऊपर छोड़ दिया है कि जब तक इच्छा हो रहो, एक गाड़ी आपके डिस्पोज़ल पर है, जहां इच्छा हो घूमो। उधर भीड़-भाड़ है, इसलिये सारा इन्तज़ाम इधर ही कर डाला है—अब भाई, जो कुछ और ग़लती रह गई हो या बच रहा हो सो और

कह दो...।"

"बड़ी कृपा है...।"

मायादेवी की इस बात से शरद एकदम चौंक उठा। उसे ऐसा लगा जैसे उनका गला भर्रा आया है। उसे यह सब कुछ ज़रा भी समझ में नहीं आ रहा था। देशबन्धु जी सिर झुकाए बैठे थे। जरा-सा सिर उठाकर उसने देखा—झाड़ की तेज़ रोशनी में देशबन्धु जी की चमकती झुकी चाँद पर ऊपर लटके पंखे की परछाँई साफ़ घूम रही थी।—कांच के साफ गिलासों में झाड़ और पंखे लटके थे। उसने पूछा था, "आप कबतक यहां हैं ?" आर यहाँ के इस विचित्र परिवर्तन की तो उसने कल्पना भी नहा की थी। अचानक मायादेवी ने देशबन्धु जी की प्लेट को बहुत हल्के से चम्मच से छुआ और जब एकदम उन्होंने सिर उठाया तो बहुत बेमालूम तरीक़े से चम्मच पद्मा की ओर उठा दी—जैसे यह सब वे बहुत अस्वाभाविक रूप में कह रही हों। शरद की भी आँखें पद्मा की ओर उठीं। एक ओर सिर मोड़कर अपलक नौकर की राह देखती हुई पद्मा की भवें इस बुरी तरह तनी थीं, जैसे यह सब उसे ज़रा भी पसन्द नहीं।

महाराज रोटियाँ लाया तो वह बरस पड़ी—"महाराज, यह क्या हो रहा है ? एक-एक रोटी के लिये कबतक बैठे रहेंगे।" सुबह आई है और शाम को नौकरों को डाँटने लगी या ऐसी ही इन बातों को शरद किस रूपमें ग्रहण कर रहा है, इसे जानने के लिये पद्मा की निगाह शरद पर टिक गई। उसने जानबूझ कर उधर देखा।

"हाँ भई, ऐसे कैसे होगा ? पहले ही बता देते, ज़रा देर से बैठ जाते हम-लोग।" देशबन्धु जी ने सँभल कर कहा।

"बस नेता भैया, अब कोई देर नही होगी।" महाराज फ़ुर्ती दिखाता चला गया।

"फिर आप तो कल दोपहर को जायेंगे न ?" पद्मा ने वातावरण में आये गतिरोध से जैसे शरद और अपने-आपको अलग रखते हुये सीधे उसकी ओर देखकर पूछा।

"जी, कुछ ज़रूरी सामान ले आऊँ। कुछ काम पड़े है, उन्हे कर आऊँ। अपने वकील साहब से भी कह आऊँ।" शरद बोला। जया का नाम वह जानबूझ कर बचा गया।

"क्या ?"

"शायद आपको नही मालूम। एल०-एल० बी० का कोर्स पूरा करने के बाद, मैने वकालत करने का निश्चय कर लिया था।" शरद बोला और उसे ऐसा लगा जैसे वातावरण में इस गाँठ के आ जाने से वे लोग और भी निकट आ गये या अलग पड़ गये है।

"अब यहाँ क्या करेंगे ?"—पद्मा ने पानी के गिलास की ओर हाथ बढ़ाया ।

शरद ने गिलास उठाकर बढ़ा दिया । बिल्कुल यही प्रश्न वह स्वयं पूछना चाहता था—लेकिन उसका कोई अवसर नहीं मिल रहा था । वास्तव में वह इस प्रश्न को लेकर काफ़ी परेशान था कि सुबह से इस समय तक दुनियां भर की बातें हुई हैं और तार देकर जिस काम के लिये बुलाया गया है—बस उसी सम्बन्ध में कुछ बात नहीं हुई । और मज़ा यह कि उससे कुछ नहीं पूछा गया, खुद ही सब कुछ पूछते रहे । उसके सार्टिफ़िकेट भी नहीं छुये—मेज़ पर ही पड़े हैं । उसने देशबन्धु जी की ओर देखकर ज़रा ज़ोर से कहा—"यह तो देशबन्धु जी ही जाने । अभी इस सम्बन्ध में कुछ बातें ही नहीं हुईं ।"

वे दोनों फिर इस तरह बातें करने में लग गये, इस बात को लेकर देशबन्धु जी इस बार कोई परिहास नहीं कर सके । वे जैसे इन लोगों के बीच में आ पड़ने की राह देख रहे थे । अवसर आते ही बोले—"काम क्या है ? यही पूरी कोठी में झाड़ू लगाना, छिड़काव करना, फ़र्नीचर झाड़-पोंछकर साफ़ कर देना, कार का दरवाजा खोलना और बन्द कर देना, वग़ैरा.....।" वे स्वयं भी क़हकहा लगाकर हँस पड़े । शेष तीनों ने भी साथ दिया

रोटियाँ आईं तो महाराज को देखकर वे विनोद से बोले—"अब देखिये, इन दुष्टराज ने आज जोश में, हमारे लिये सब्ज़ी ही नहीं निकाली, न अभी तक फल-वल आये—यह सब देख-भाल आपको ही करनी होगी—"

"क्यों, अलग क्यों निकालना है ?" शरद ने पूछा ।

"नेता भैया, नमक नहीं खाते न ।" शरद को जवाब देकर पद्मा ने कहा—"नेता भैया, यह गलती तो अम्मा की है, कह दिया, सब खा लेंगे ।"

"क्या बिल्कुल नहीं ?" शरद ने पद्मा की तरफ सिर घुमाकर पूछा ।

"बिल्कुल तो नहीं,—हाँ, कभी-कभी ऐसी हालत में खाना ही पड़ता है ।" देशबन्धु जी खुद बोले ।

शरद ने झटके से सिर घुमाया । उसे लगा, वह ज़रूरत से ज्यादा ध्यान पद्मा की ओर दे रहा है । यह अधिक अच्छा नहीं है ।

"दूसरे लोगों की इच्छा भी तो रखनी ही पड़ती है ।" देशबन्धु जी ने कहा —"जैसे तुम ही देखो, मैं तो खद्दर के अलावा दूसरी चीज इस्तेमाल ही नहीं लेकिन जब यह पद्मा बेटी आ जाती है तो सब सहना पड़ता है । इसे तो एक-से-एक बढ़िया चीज चाहिये ।" लेकिन उनकी बात से स्पष्ट लगता था कि पद्मा की पिछली नाराज़ी के लिये ही वे सब परिहास की बातें कर रहे हैं ।

"कहाँ नेता भैया ?" पद्मा झेंप कर, मुस्कुराते हुये, इठलाती-सी बोली—"अपनी याद में पहली ही बार तो आई हूँ, और आप यों....."

शरद को फिर याद आ गया कि उसकी नौकरी की बात फिर उड़ गई। इस बार उसके हृदय में शङ्का के बादल भी उमड़ने लगे—आखिर क्यों, देशबन्धु जी उसकी नौकरी की बात उड़ा दे रहे हैं ? कहीं कोई गड़बड़.....लेकिन देशबन्धु जी बहुत बड़े नेता हैं, भले आदमी हैं, कुछ नहीं देंगे, तो भी उसकी उम्मीदों से अधिक होगा। यहाँ यह सब देखकर, उसे देशबन्धु जी के प्रति बड़ा आदर उत्पन्न हो गया था।

तभी बड़ी-सी प्लेट में फल और बड़े-से सुन्दर 'जग' में केसरिया-सा जूस आया। खाना लगभग समाप्ति पर था।

"नेता भैया, आपने बताया नहीं, आखिर शरद जी यहाँ क्या करेंगे ?" पद्मा पूछ रही थी। उसे वे पहली बातें रुची नहीं और जैसे शरद के मन की बात दुहराई।

"माया बहन का तो लड़-भिड़ कर किसी तरह वक्त निकल जायेगा, मगर तू किसका दिमाग़ चाटेगी ?" मायादेवी के इतनी देर से चुप रहने की उपेक्षा नहीं कर पा रहे थे—उन्होंने व्यङ्ग कर के, कुटिलता से उधर देखा।

"देख लीजिये शरद बाबू, अब आप ही, मुझे लड़ाका और न जाने क्या-क्या कहे जा रहे हैं। मैं एक बात कह दूँगी तो...इसीलिए मैं यहाँ आती नहीं हूँ। आने की देर नहीं हुई और..." मायादेवी का गला भर्रा आया—पता नहीं आंखों में आंसू आये या नही, लेकिन पल्ला उन्होंने उधर बढ़ाया ज़रूर।

"अम्मा, यह क्या कर रही हैं, जबसे ?" इस बार पद्मा से नहीं रहा गया, उसने तीखी नज़र से उधर देखकर, उन्हें झिड़क दिया। शरद को आश्चर्य हुआ कि इससे न सिर्फ मायादेवी चुप हो गईं, बल्कि देशबन्धु जी भी जैसे सहम गये। शरद इस अजब वातावरण से बड़ा उचटा-उचटा-सा अनुभव कर रहा था।

इस तीखेपन के प्रभाव को कम करने के लिये, पदमा ने देशबन्धु जी को लक्ष्य कर के, शरद की ओर देखकर कहा—"दिमाग़ चाटने को नहीं यह मुझसे ज्यादा पढ़े हैं ? बस, इन्होंने एल-एल० बी० ही तो ज्यादा किया है, सो मैंने भी..."

"इस ग़लत-फ़हमी में भी मत रहिये।" शरद ज़रा खुलकर बोला—"इधर मैं अपने शहर की सारी लाइब्रेरियाँ चाट गया हूं। जब इच्छा हो, तब चाहे जिस विषय पर बात कर देखिये।" उत्तर देते समय उसने मुड़कर, देशबन्धु जी की ओर देखा फिर चुपचाप जूस का गिलास उठाकर पीने लगा। फ्रिज (ठण्डा) किया हुआ गाढ़ा आम का रस, रबड़ी और कुछ ऐसी ही चीज़ों का जूस और वैनीला की हल्की-हल्की लपट, दिल और दिमाग़ शीतलता और आत्मिक-शान्ति से पुलक उठे। खाना भी बहुत ही अच्छा था—कम से कम उस जैसे आदमी को किसी बड़े आदमी की दावत में ही भले मिला हो, लेकिन शायद उन लोगों का यह दैनिक खाना था। वह अपने अध्ययन के विषय में देशबन्धु जी को कुछ सूचना देना चाहता था, अत. यह

बात उसे अच्छा अवसर जान पड़ी ।

तभी बगल के कमरे में टेलीफ़ोन की घण्टी घनघना उठी । मायादेवी की नाराज़ी में से कुटिल मुस्कुराहट फूट रही थी, और देशबन्धु जी कुछ सिटपिटा उठे थे । देशबन्धु जी गिलास उठा-उठा कर पीते रहे । हर बार वे मायादेवी को देख लेते । शरद ने देशबन्धु जी की ओर आश्चर्य से देखा ।

"मैं देखती हूँ ।" पद्मा गिलास खत्म करके उठती हुई बोली ।

शरद को ध्यान आया कि वह उनका मेहमान नहीं, नौकरी का इच्छुक है; और चाहे काम कुछ भी करना पड़े । ऐसे अवसरों पर उसे दौड़ कर टेलीफ़ोन का रिसीवर उठाना पड़ेगा । उसने गिलास आधा ही छोड़ कर रखते हुए कहा—"आप रहने दीजिये, लाइये मैं देखता हूँ ।"

"इस वक्त क्या आफ़त आ गई ऐसी ।" मुँह में भरे हुए रस को एक साथ देशबन्धुजी ने दो-एक घूँटों मे पिया—तब तक एक हाथ का पंजा फैला कर दोनोंको रोके रहे, फिर उठते हुए बोले । इसी बीच में घण्टी एक बार और बज चुकी थी ।

वे दूसरे कमरे में चले गये ।

शरद परेशान था । कुछ अद्भुत रहस्य के डोरों से यहां के वायुमण्डल का ताना-बाना बुना गया था । हजारों बातें उसके दिमाग़ में उमड़ रही थीं, जिन्हें वह दिन भर में देख पाया, सुन पाया या समझ पाया था—लेकिन उन सबको यहां पूछे किससे । यहाँ मिली है पद्मा, सो उसके साथ बड़ी विचित्र स्थिति है, चाहते हुए भी न तो उससे वह अधिक बातें ही कर सकता है, न बिल्कुल उसकी उपेक्षा ही कर सकता है ।

"पद्मा जी, आपसे जिक्र नहीं किया देशबन्धु जी ने. मेरे लिये क्या काम सोच रखा है ?" उनके जाते ही उसने ज़रा दबे स्वर में पूछा ।

"अजब बात है, आप खुद नहीं जानते ?" मां की ओर देखकर पद्मा उसकी बेवकूफ़ी पर गम्भीरता से मुस्कुराई ।

"अब इतनी बार तो मैंने बात चलाई ।" शरद की इच्छा हुई कि फिर वह जानबूझ कर कोई बेवकूफी की बात कहे कि पद्मा मुस्कुराये ।

"हुँः" होंठ खींच कर गर्दन झटकते हुए मायादेवी ने जवाब दिया—"इनकी ऐसी ही बातों से तो आदमी चिढ़ जाता है । कोई बात सीधी कहते ही नहीं—वही घुमा फिरा कर.....।"

"ख़ैर" शरद इस तरह बोला जैसे हमें क्या लेना-देना । फिर एकदम पूछ बैठा—"आप लोग तो अभी रहेंगी कुछ दिन ?" किन्तु फिर यह सोच कर संकुचित हो उठा कि इसी बात ने अभी वातावरण को कैसा बोझिल बना दिया था ।

मायादेवी मुस्कुराई—जैसे पिछला सारा अभिनय हो। वे ध्यान करती हुई बोलीं—"अब क्या महीना है ? हाँऽऽ, सितम्बर-अक्टूबर तक तो हैं ही ।"

"यह बड़ा अच्छा रहा।" शरद बोला—"वर्ना यहाँ तो हमें किसी से बात करने के लिये भी परिचय बनाना पड़ेगा।"

"हमें किसे ?" पद्मा ने उत्सुकता से पूछा।

तभी एकदम अपनी उसी स्वाभाविक मुस्कुराहट से खिले चेहरे से देशबन्धुजी ने पास आकर कहा—"क्यों सूरज जी तो हैं न ? उनके बाद भी क्या किसी के बात करने की ज़रूरत रहती है ?" देशबन्धु जी ठहाका लगा कर हँसे। शरद और माया देवी केवल मुस्कुराए।

"नेता भैया, इन सूरज जी से मिलाये न हमें। इनके बारे में जब से आये हैं कई बार सुना है।" पद्मा ने बच्चों जैसी उत्सुकता से पूछा।

"क्या करोगी मिलकर ?" देशबन्धु जी अपनी जगह आ बैठे—"लेकिन हाँ, यह बात जरूर है, इनसे न मिलीं तो यहाँ कुछ न किया और इनसे मिलीं तो बाकी किसी से मिलना शेष रह नही जाता ! क्या भजन है वह ?—'पाकर तुम्हे पाना न कुछ रहता जगत में शेष है...।" वे फिर उन्मुक्त हँसे।

"आपसे इनका परिचय कैसे हो गया ? वे तो कुछ अक्खड़ टाइप के है।" शरद ने हँसकर पूछा। उसे सन्ध्या की सारी बातें ध्यान हो आईं। उसने अनुभव किया कि सूरज जी का ज़िक्र आ जाने से इतनी देर की बोझिलता कम हो गई। उसे उनका अपने ऊपर दिया गया पिछला रिमार्क याद आया।

"भाई शरद जी।" गहरी साँस लेकर ज़रा लम्बा स्तर खींच कर वे बोले —"अक्खड़ या आपकी तरह हँस-मुख होना या यह सब कोई ऐसी महत्वपूर्ण बातें नहीं हैं। उस आदमी ने ज़िन्दगी में संघर्ष किया है, 'सफ़र' किया है। और ज़िन्दगी के कड़वे-मीठे अनुभव होते ही है—कोई उनसे रस बना लेता है, जो जीवन को सरस रखे, बल देता चले, कोई सिरका बना लेता है कि खुद अपने तीखेपन में बिफरे और आस-पास वालों को भी ज़रा तेज़ रखे। यही ज़िन्दगी में सफलता-असफलता का रहस्य है। वर्ना मै और सूरज जी, क़रीब-करीब एक-सा ही सघर्ष-पूर्ण जीवन बिताकर आ रहे है। जेल में मेरा इनसे परिचय हुआ और यह जीवन की समानता ही है जिसने मुझे इनकी ओर खींचा। इस आदमी में आग है, लगन है। और एक बात मैं मानता हूँ, चाहे यह आदमी अक्खड़ हो, बेहद बातूनी हो —वह है आदमी ईमानदार और दिल का अच्छा। आप दुनिया के हर विषय पर उससे बातें कर लीजिये। उसे पढ़ने का शौक़ है। आदमी इन्टरैस्टिंग है।"

"अब छोड़िये भी, उस आदमी का मेरे सामने ज़िक्र मत किया कीजिये, मेरा तो जी जल के खाक हो जाता है।" घृणा से नाक सिकोड़ कर मायादेवी बोलीं। शायद इतनी देर से वे किसी तरह चुप बैठी थीं।

चकित होकर एकदम शरद ने उधर देखा। वैसे देशबन्धु जी की इस प्रशंसा से वह किसी भी तरह अधिक सहमत नहीं हो पाया था। लेकिन मायादेवी उनके प्रति

ऐसे विचार रखती हैं, इस बात ने उसे चकित कर दिया। उसके मुंह पर प्रश्नवाचक छाप थी।

"क्यों ?" आखिर पद्मा ने पूछा—"तुम्हारा उसने क्या बिगाड़ा है ?" यही बात शरद पूछना चाहता था, लेकिन इस वाक्य में जो मुखर अवज्ञा थी—वह उसे चुभी। पद्मा अपनी माँ से इस तरह क्यों बोलती है ? वह आखिर पढ़ी-लिखी लड़की है। और चाहे जो भी बात हो, आखिर नये आदमी के सामने तो...

"हमारी माया बहन तो उस बेचारे से चिढ़ गई हैं।" देशबन्धु जी उठते हुए बोले—"एक बार उसके पीछे पड़ गईं, मेरा हाथ देख, मेरा हाथ देख। उसने कहीं कोई उल्टी-सीधी बात बता दी, बस तब से तलवार लिये फिरती हैं।"

"अच्छा, सूरज जी हाथ देखना जानते हैं ?" पद्मा ने उत्सुकता से पूछा।

"जानता है पत्थर ?" जवाब दिया मायादेवी ने।

देशबन्धु जी खड़े थे—शरद भी उठ खड़ा हुआ, पद्मा भी। मायादेवी बैठी रहीं। देशबन्धुजी मुस्कुराये—आँखों से पद्मा की ओर इशारा किया कि अपनी माँ को देखो। फिर वे अपना खास तौलिया लेकर हाथ धोने चल दिये।

"उनका तो कहना है कि—"शरद ने पद्मा को बताया—"वे पामिस्ट्री को एक साइन्स मानते है। उसी तरह इसका अध्ययन भी किया है उन्होंने। मेरा हाथ देखने को कह रहे थे।"

"हम भी अपना हाथ दिखायेंगे।" बच्चों की तरह मचलकर वह बोली। फिर अपनी लाल हथेली खोल कर देखने लगी। शरद के मन में आया, वह उसका हाथ देखने लगे।

"आप पढ़ी-लिखी होकर इन बातों में विश्वास करती हैं ? मुझे तो है नहीं।" शरद ने कहा।

"तब भी हर्ज़ क्या है।" पद्मा ने दृढ़ता से कहा।

तौलिये से मुँह पोंछते हुए शबन्धु जी परदा हटाकर बाहर आ गये। हँसते हुए उन्होंने कहा—"मेरे बारे में तो उन्होंने यह बताया कि अन्तिम समय बहुत बुरा है। सारी पब्लिक लाइफ खत्म हो जाएगी। वैसे लोगों का कहना है, कुछ बातें ठीक बताता है। शरद बाबू, बाथ-रूम इधर है।" उन्होंने पीछे की ओर इशारा किया—"कमरे के सामने ही दरवाज़ा है।"

एक कमरा पार करके सामने पर्दा हटाने पर उसने अपने को काफ़ी लम्बे-चौड़े गुसलखाने में पाया। बल्ब पहले ही जला था। सफ़ेद दूध जैसा चाइना-टाइल्स का फ़र्श झकझका रहा था। छाती की ऊँचाई तक यही फ़र्श था जो एक पट्टी के साथ पीले शेड के डिस्टैम्पर की पॉलिश में मिल कर खत्म हो गया था। सामने ही काफी लम्बा-चौड़ा शीशा, चौड़े-से टॉड पर शैम्पू, साबुन, तेल, पाउडर, मंजन, ढेरों डिब्बे-डिब्बियां, शीशियां, दो पेस्ट, ट्यूब और ब्रुशों के प्लास्टिक केस रखे

थे—रबर के स्पंज, नाइलोन के छोटे-बड़े ब्रुश तथा ऐसी ही और दो-एक चीजें। शीशे के ऊपर जलता बल्ब हर जगह प्रतिच्छवित हो रहा था। दो-नलवाले दो वॉश-बेसिन सामने ही लगे थे। और इसी तरह के गर्म और ठण्डे पानी के नलवाला बड़ा-सा चीनी का टब रखा था। नीचे बैठकर नहाने के लिये लकड़ी का जालीदार पटरा रखा था जो भींग गया था। इसके दूसरी ओर अन्य चीनी की चीजें थी। दरवाज़े के दोनों ओर दो स्टैण्ड रखे थे जो स्त्रियों के कपड़ों और तौलियों से लदे थे। कही जलती अगरबत्ती की भीनी मदिर गन्ध हवा में भरी थी। उसने ऊपर देखा तो निगाह पंखे और शॉवर-बाथ के लिये फ़व्वारे पर पड़ी। घुसते ही शरद के मुँहसे निकला—"ठाठ हैं!" वैसे यहाँ की हर चीज़ को देख कर यह शब्द उसके मुँह से निकलने को हुआ था लेकिन अब तो एकान्त में जैसे उससे रहा नहीं गया। उसके क्रेप के जूते फिर फिसलने लगे थे, उसने बढ़ कर एक पाँव उस लकड़ी के पटरे पर रख दिया—और बेसिन में झुक कर मुँह धोने लगा। सबसे अधिक आश्चर्य की बात तो यह थी कि हर बार काम का ज़िक्र आया और टल गया। उसे लगा जैसे ज़बर्दस्ती टाला जा रहा हो। पता नहीं क्यों—?

शरद को रह-रहकर लगता कि अजब रहस्यमय लोक में वह आ गया है जहाँ हर आदमी कुछ दबा-भिचा-सा, जैसे कुछ कहना चाह कर भी न कह पा रहा हो, जैसे एक कहानी है जो सबमें इधर से उधर घूमती है। सबसे अधिक आश्चर्श उसे मायादेवी पर था...अद्भुत स्त्री है! बालों की पत्तियों से आधे ढँके कान और झूलते इयरिंग जब उसके मस्तिष्क में कोंध गये तो पता नहीं क्यों, उसे बड़ी विरक्ति लगी।

"अरे शरद जी, सो गये क्या?" बाहर स्वर पद्मा का था, ज़रा बेचैन-सा।

शरद हड़बड़ा कर बाहर निकल आया। देखा पद्मा खड़ी थी।

"क्या ज़्यादा देर हो गई—?" उसने जेब से रूमाल निकाल कर व्यर्थ ही हाथ पोंछते हुए कहा।

"नहीं...नहीं।" पद्मा ने मुस्कुराने की कोशिश की, लेकिन उसके चेहरे पर जो मुखर झुँझलाहट थी उसने उसे मुस्कुराने नहीं दिया, और यह मुस्कान एक खिसियान-सी बनकर रह गई।

कमरे में कोई नहीं था। उसकी इच्छा हुई पद्मा से कुछ बात करे। उसका हृदय धड़कने लगा। लेकिन पद्माकी तनी भवें देख कर उसकी हिम्मत नहीं पड़ी। इस अचानक परिवर्तन को देखकर वह बड़ा चिंतित-सा, खाने वाले कमरेमें आ गया। देशबन्धु जी कमरे के बीच में खड़े थे और मायादेवी वैसे ही बैठीं थी। उन्होंने मुँह दीवार की ओर घुमा लिया था। शरद को लगा जैसे इन तीनों के बीच में कुछ हो चुका है। एकदम सब कुछ जैसे बदल गया है—बड़ी उमस—बोझ। यह सब क्या चलता है चुप-चुप? थोड़ी देर वह निरुद्देश्य खड़ा रहा।

"नेता भैया, मैं अब चल रहा।" यहां का वातावरण देखकर उसने वहां

से चले जाना ही उचित समझा। उसने यह वाक्य जानबूझ कर इस तरह सिर झुकाये झिझकते हुए कहा कि वे समझें कुछ और भी कहना चाहता है। फिर थोड़ी देर रुक कर वह बोला—"कल सुबह सातवाली गाड़ी ज़्यादा ठीक रहेगी। उसी से चला जाऊँगा।"

उन्होने एक क्षण उसकी ओर देखा—बड़ी शून्य-सी दृष्टि से, जैसे अभी वे कुछ और सोच रहे थे। उसीमें इतने डूबे थे कि बात समझ ही नहीं पाये। फिर एकदम अपने स्वाभाविक मूड में आकर बोले—"अच्छा, हां-हां ठीक है कल चले जाओ। कब तक आ जाओगे ?"

"एक हफ़्ता तो लग ही जायेगा।...पर...पर..." शरद सिर झुकाये ही बात कह डालने का साहस संचित करने लगा। फिर बड़ी हिम्मत से एकदम सिर उठा कर बोला—"मुझे कुछ पता चल जाता काम का, क्या करना होगा ?" उसके माथे पर पसीना आ गया।

देशबन्धु जी उसके पास आ गये। स्नेह से उसके कन्धे पर हाथ रख कर बोले—"भले आदमी, इतना क्यों घबराये जाते हो ? काम की क्या यहाँ कमी है ? भाई मेरे, बेसब्री से काम मत लो, मिल की मैनेजरी करोगे ? सिनेमा के गेटकीपर बनोगे ?"

शरद ने उनकी ओर आंखें उठा कर उत्सुकता से देखा—मज़ाक है या स्नेह।

"अच्छा जाओ, मेरी चिट्ठियां लिख दिया करना और मौज करना। लाइब्रेरी मे बैठकर पढ़ना।"

तो प्राइवेट-सेक्रेटरी नुमा चीज है ! शरद ने मन-ही मन कहा। अब वह पूछना चाहता था, कितने पैसे ? लेकिन यह बात तो लाख हिम्मत करने पर भी वह ज़बान पर ला ही नहीं सका। उसने भी सोचा, छोड़ो, ज्यादा बेसब्री दिखाना ठीक नही है। इतना लम्बा-चौड़ा कारबार है, कम नहीं मिलेगा।

"अच्छा, नमस्कार।" साकार कृतज्ञता और नम्रता की खीसें निपोरने वाली मुद्रा में मुस्कुराहट लाकर एक बार उसने उनकी ओर हाथ जोड़े, दूसरी बार मायादेवी की ओर—"माता जी, नमस्कार !"

मायादेवी ने जैसे सुना ही नहीं। शरद ने जैसे ही कमरा पार किया, पीछे सुना तीखी आवाज में मायादेवी कह रही थीं—"मैं तुम्हारी नस-नस जानती हूँ।"

वह कुछ और सुनने को ठिठक गया, लेकिन तभी दरवाज़ा खोलकर ग़ुसलख़ाने से पद्मा निकली।

"अच्छा पद्माजी, नमस्कार। फिर तीन-चार दिन बाद दर्शन करेंगे।" उसने शिष्टता से उधर हाथ जोड़े।

पद्मा ने किवाड़ का गुटका नहीं छोड़ा था। उधर मुड़े हुये ही दरवाज़े को ठीक से बन्द करते हुये ही उसने कहा—"अच्छा, शरद जी तबतक ज़िन्दा रहे तो

मिलेंगे, फिर ।"

"यह क्या बात....."

लेकिन शरद की बात आधी मुँह में ही रह गई। जैसे ही पद्मा ने सिर घुमाया—उसे लगा, पद्मा गुसलखाने में रोई है। उसके नथुने अबतक फड़क रहे थे। होंठ खिचे हुये थे। वह चौंक कर चुप हो गया। जैसे किसी ने छाती में घूंसा मार दिया हो।

"अच्छा, नमस्कार !" दोनों जुड़े हुये हाथों क माथे से लगाये, पद्मा बहुत तेज़ी से, एक ओर चल दी। उसके पाँव डगमगा रहे थे।

शरद की समझ में नही आया—यह क्या चीज़ है, जो इन लोगों में चल रही है। उसे लगा—जैसे कोई बिजली के करेण्ट-सी धारा है, जो इस त्रिकोण में घूमती है ? कहीं घूमने वाले उस चक्र में उसका तो नाम नहीं है ? तभी तो उसे उससे छिपाया जा रहा है। लेकिन पद्मा के इस रोने की मुद्रा ने उसके हृदय को मथ डाला था।

वह उत्सुकता, जिज्ञासा और इस घुटन से व्यथित हो उठा। बाहर जैसे ही उसने क़दम रखा, कोठी में मेंहदी की लाइनों के आस-पास सड़क पर जगह-जगह लगे हुये, चौकोर लैम्पों और ग्लोबों में जलते हुये बल्बों की रोशनी उसे ऐसी लगी—जैसे किसी ने मुट्ठी-भर अङ्गारे बिखरा दिये हों। उसे अभ्यस्त होने के लिये रुकना पड़ा। हल्की-हल्की बूंदें पड़ रही थीं और आकाश के वातावरण में घुप अँधेरा फैला था। कोठी के किसी हिस्से में रेडियो बज रहा था।

यही होता आया है ...

एक पत्र

तारीख लिखकर गहराई से कटी हुई

उमा दीदी,

मेरा एक पत्र आपकी ओर ड्य है, फिर भी एक आवश्यक कार्यवश यह पत्र आपको डाल रहा हूँ।

मैं पूरे घर-भर में आपसे जितना खुलकर हर बात कह-सुन सकता हूँ, उतना खुलकर किसी से नहीं, यह आप जानती हैं, इसलिये रेल से ही यह पहला पत्र डाल रहा हूँ। मैं विश्वास करता हूँ कि आप इसे उचित रूप में (जब और जैसे चाहें) और अच्छे रूप में ही घर पहुँचा देंगी। बाबूजी को समझाना मेरे वश का है नहीं। मैं वहाँ लिखूं किसे? पिछले पत्र में आपने शकुन जी को लेकर मेरी हैसियत में शङ्का प्रगट की थी! आपको नाराज़ तो करना नहीं चाहता, इसलिये लाइये ज़रा चौंका ही दूं।

इधर मैंने दो काम कर लिये हैं, एक तो ज़रा दूर जाकर एक अजब-सी नौकरी; दूसरे, जया नामकी एक परिचित लड़की के साथ विवाहित-जीवन बिताने का निश्चय। और इन्हीं दोनों कामों की दिशा में प्रस्थान किये हुये, रेल में यह आठवाँ घण्टा है। जया मेरे बिल्कुल बगल में बैठी, खिड़की के बाहर पता नहीं अपलक क्या देख रही है—कहना तो मैं यह चाहता हूँ कि अपनी उपस्थिति से मेरी रग-रग में एक मादक पुलक और भास्वर प्रेरणा भरे दे रही है। खैर, और मैं, या हम, अपनी नौकरी की ओर जा रहे हैं। कभी-कभी काँपती रेल में ऐसा सँभाल कर मैं किसे ख़त लिख रहा हूँ इसे देखने को जया मेरी कलम की गति को भी देख लेती है। अपने इस प्रयाण, प्रस्थान या पलायन—आप जो भी नाम दें—के बारे में हमने किसी को भी नहीं बताया है और अन्धाधुन्ध यों ही चल खड़े हुये हैं। पीछे जो तूफ़ान-उफान उठ रहे होंगे—उनकी कल्पना हमलोग बड़ी आसानी से कर सकते हैं—या ज्यादा सही होगा यह कहना कि उनकी कल्पना ही धुंए के बगूलों की तरह बुरी तरह दिमाग़ पर छाई हुई है। स्वयं मेरा मन बड़ी-बड़ी शङ्काओं-आशङ्काओं और आशाओं से विचित्र तरह उद्विग्न हो रहा है। पता नहीं, हमलोग ग़लती कर बैठे या...अब जो भी हो। अपनी और जया की मानसिक या सामाजिक स्थिति में आपको कैसे समझाऊं? शायद आप समझ भी नहीं सकतीं। हमलोग क्या कर रहे हैं, शायद इसका "सामाजिक-क्रांति" के रूप में आप मूल्य भी नहीं आँक सकतीं। मैं, आपका भाई—एक लड़की के साथ 'भाग' रहा हूँ, इसलिये भले ही आप इस बात को उदारतापूर्वक क्षमा कर दें—शायद बुरा भी न मानें, लेकिन कल्पना कीजिये, आप का विवाह बाबूजी न करते और इसी तरह आप भी किसी के साथ 'भाग' जातीं तो

हमलोग क्या करते ? आपके पड़ोस की कोई लड़की किसी के साथ भाग जाती तो आप क्या समझतीं ?—आप सोच सकती हैं जया की स्थिति ? अर्जुन की गोद में पड़ी रुक्मिणी की स्थिति ?—पृथ्वीराज की छाती से चिपकी संयोगिता की मानसिक अवस्था ?—एक लड़की की स्थिति जो अपने पिछले सारे जीवन को सलेट पर लिखी इबारत की तरह मिटाकर सिर उठाकर किसी के साथ चल देती है ? उस साहस को गाली सभी दे लेते हैं, लेकिन उसको—उस साहस को—बाँहें खोलकर भेंटने का है साहस आप में ? दीदी, हमें गर्व है कि हम समाज को हवाई आदर्शों और ज़बानी बहस-मुबाहिसों से नहीं, सक्रिय-रूप से बदलने निकले हैं। देखें, अब ज़िन्दगी क्या रङ्ग लाती है ? शायद आप इस जया को नहीं जानतीं।

और सच मानिये दीदी, इतने पुराने परिचय के बाद, इतने नाटकीय ढङ्ग से विवाह हो जाने के बाद भी, जबतक मैंने यह नहीं कहा कि "चलो जया, अब समय आ गया है कि हम इस जीवन को शुरू कर दें" तबतक मैं भी नहीं जानता था यह कैसी लड़की है, यह जया। और यों तो "स्त्री चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं, देवो न जानाति कुतो मनुष्यः" वाली कहावत है ही।

तो पहली बात तो फिर कभी विस्तार से बताऊँगा, दूसरी बात लीजिये। लेकिन प्रकृति के इस रहस्य—नारी—से माफ़ कीजिये, कुछ क्रिटिकल स्थितियों में खेलना तो और भी रहस्यमय हो जाता है। उदाहरण के लिये एक ऐसी लड़की को लीजिये, जो काफ़ी पढ़ी-लिखी है—बी० ए० हो या एम० ए० हो, मतलब दुनिया भर के विषयों पर बहस कर सकती है, या अपने विवाह के बारे में ही, ऐसी तट-स्थता से बातें कर सकती है, जैसे किसी दूसरे के बारे में बातें कर रही हो, स्वतन्त्र साथी चुनने के भी पक्ष में है, और उसी जोश में, वह ऐसा साथी चुन भी डालती है।—फिर ? आती है बात, कहीं सैटिल होने की, जमने की। ऐसे समय में आप विश्वास कीजिये, एक साधारण लड़की और उस लड़की में कोई अन्तर नहीं होगा। अब मैं अपना ही उदाहरण लूँ :

"कहिये जया जी, कैसा स्वास्थ्य है ? क्या हाल-चाल है ? आप प्रसन्न तो हैं न ?" असली बात शुरू करने से पहले, ज़मीन तैयार करने के लिये मैं पूछता हूँ।

"क्यों, मेरा स्वास्थ्य ख़राब कब था ?" वह पतली-दुबली लड़की ऐंठती, मुस्कुराकर उत्तर देती है, जैसे मैंने बहुत बड़ा मज़ाक कर दिया हो। फिर ज़रा मान से कहती है—"और आपको मेरे स्वास्थ्य से क्या है ? आपकी तो दुनिया बहुत बड़ी है, सैर-सपाटे हैं।"

"हूँ:, तो इस तरह आप हमारी पत्नी बन रही हैं, क्यों ? यह तो नहीं हुआ कि 'हे पतिदेव, कहाँ घूम आये ? आपके चरणों को बड़ा कष्ट हुआ। लाइये मैं दबा दूँ, माथा दाब दूँ—और पति कहाँ घूमता है, क्या करता है इन सबसे

पतिव्रता स्त्री को क्या मतलब है ?"

"हिश्ट, बेशर्म कहीं के, कोई सुने तो।" एक बार इधर की कनखियों से उधर और उधर की कनखियों से इधर देखती है—कहीं कोई सुन तो नहीं रहा है। फिर मेरी मेज़ पर रखी कलाई पर हल्के से हाथ रखकर, पूछती है—"बताइये न, कहाँ थे इतने दिन ?"

"इतने दिन ?" मैं आश्चर्य का भाव मुँह पर लाकर दुहराता हूँ—"कुल तीन ही तो दिन हुये हैं, और 'इतने दिन' हो गये ? जैसे आप से पूछकर गया ही नहीं था ?"

"आपको तो तीन ही दिन लगते हैं—और यहाँ....." फूले हुये गाल में अगली बात खो जाती है।

"ओ होऽ" मैं ज़ोर से हँस पड़ता हूँ, फिर धीरे से उसके फूले गाल पर चपत मार कर, कहता हूँ—"जया, तुम्हें तो कहीं ऐक्टिङ्ग का काम शुरू कर देना चाहिये।" फिर मैं एकदम गम्भीर होकर कहता हूँ—"मैं गया था न जहाँ, सो मेरा हैड फला, और नौकरी पक्की हो गई है। अब मैं आया हूँ...तुम्हें लेने।"

"मुझे लेने ?" एकदम चिहुँक कर जया इस तरह देखती-दुहराती है, जैसे कहीं बिजली गिरी हो। उसके चेहरे का सारा उल्लास और विनोद एकदम ऐसे ग़ायब हो जाते हैं, जैसे किसी ने स्विच दबा दिया हो। शायद उसे हैड-टेल वाली बात याद आ रही थी। चिन्ता के घने बादलों में से पूछती है—"मज़ाक तो नहीं कर रहे ?"

अब तो मैं सोचता हूँ कि मुझे कह देना चाहिये था कि मेरा और तुम्हारा मज़ाक का रिश्ता नहीं है, तुम्हारी कोई छोटी बहन होती तो शायद उससे मैं मज़ाक कर सकता था। लेकिन उस समय तो मेरे मुह से निकला—"मज़ाक का क्या सवाल है ?" पहले तो मैं उसकी घबराहट समझ नहीं पाता, फिर ज़रा तीखे स्वर में कहता हूँ—"हमलोग अपने को विवाहित मानते हैं, तो कभी न कभी यह ज़िन्दगी शुरू होगी ही—या सिर्फ ज़बानी जमा-खर्च करके ही बात ख़त्म हो गई ?"

"ज़िन्दगी तो शुरू होगी ही.....लेकिन....."

"लेकिन क्या ?" मैं कहता हूँ—"साफ़ कहो न कि मेरे साथ यह दिक्क़त है। घरवालों की चिन्ता है या जाना नहीं चाहतीं या...आखिर क्या ?"

"जाना न चाहने का तो कोई सवाल ही नहीं है। और घरवाले ?" फिर कई सैकिण्ड चुप रहकर कहती है—"हाँ, घरवालों से भी निपटा जा सकता है, किसी न किसी तरह, लेकिन नौकरी..."

"नौकरी !" मैं चिढ़ कर कहता हूँ—"हुँ:ह, क्या फटीचरी की बात कही है, आखिर हो तो टीचर ही न। अरे, छोड़ो नौकरी के झंझट को, और ज़रा हिम्मत

से काम लो।" मैंने उसे झिड़क दिया है।

"और सब तो ठीक है।" वह अपनी एक घिसी-घिसाई-सी अंगूठी को उंगली में घुमाती हुई कुछ सोचती रही, फिर ज़रा झिझक कर बड़े साहस से एकदम बोली —"हिम्मत नहीं पड़ रही!"

मैं उसकी बेवकूफ़ी पर खिलखिलाकर हँस पड़ता हूँ —हालांकि उसकी और अपनी कठिनाई को खूब समझता हूँ, फिर भी मुंह बनाकर हाथ मटकाकर कहता हूँ —"वहाँ तो लड़कियों को बड़ी हिम्मत के पाठ पढ़ाती होगी, लेकिन अपनी बार को हिम्मत नहीं पड़ रही.....।"

"बस रहने दीजिये, ऐसी हिम्मत के पाठ पढ़ाते हैं?" जया जैसे बुरा मान गई।

"अच्छा बाबा, कुँए में कूद पड़ने का पाठ पढ़ाती हो, लेकिन परसों आप बिल्कुल तैयार, ज़रूरत हो तो साज-सामान सहित, नहीं तो सब हो जाएगा—दस बजे की गाड़ी के लिये स्टेशन पर मिलेंगी—सुना?"

"नहीं दादा।"

"दादा मैं?" खिलखिलाकर दुहराता हूँ—"होश में तो हो! दादा तो उस दिन रेल में खत्म हो गया, अब तो कहो, हे पतिदेव, हे स्वामी....."

"हे पत्थर!" उस चिन्ता में भी जया हंस पड़ी। लेकिन हंसी क्षणिक थी। सुस्त होकर फिर बोली—"नहीं भाई, हमसे नहीं होगा।"

"नहीं होगा तो जाओ चूल्हे में! बेवकूफ़ नहीं तो।" मेज़ से उठते हुए जैसे मैं अपना अन्तिम निर्णय देता हूँ—"साफ़ सुनलो, परसों नहीं मिलीं तो अच्छा नहीं होगा।"

"और जो कहीं वारण्ट निकले तो!" कुटिलता से मुस्कुराकर जया कहती है।

"तो!" मैं ऐक्टर की तरह एक हाथ छाती पर रखकर एक को ज़रा आगे करके कहता हूँ—"तो किसी विधि द्वारा हम लोग शारीरिक बंधनों से छुटकारा पाकर हमेशा-हमेशा के लिये आत्मा-आत्मा के महामिलन में डूब जायेंगे। फिर संसार की कोई शक्ति हमारे इस चिरन्तन मिलन को नहीं तोड़ सकेगी।"

"अच्छा, अच्छा, अब ज्यादा ऐक्टिंग मत कीजिये, कोई देखेगा तो क्या कहेगा!" थोड़ा गर्व-सा अनुभव करते हुए पुलककर वह उत्तर देती है।

"तो तय रहा!" कुर्सी और मेज़ के बीच से तिरछा होकर निकलते हुए मैं पूछता हूँ।

"अभी कुछ नहीं। सोचने का समय दीजिये। मैंने तो पहले ही कह दिया, जुए में हमें विश्वास नहीं है। भाई, अभी तो हम सोचेंगे—एकदम ऐसा थोड़े ही सम्भव है कि उठे और चल दिये!"

"तो पालकी मँगाएँ, बाजेवाले बुलाएँ!

"मिसेज़ दास कहीं बाद में यह पख न लगायें कि बिना नोटिस दिये..."

"देखो जया, ज़्यादा बेवकूफ़ी की बातें तो करो मत। फिर मैं एकाध हाथ मार

दूंगा.....मिसेज़ दास को बतलाने की क्या ज़रूरत है ! स्तीफ़ा दो और घर आओ, पैसे-वैसे की चिन्ता करो मत, सब हो जायेंगे। और फिर देशबन्धु जी बड़े आदमी हैं, बास काम निकल जायेंगे। मैं समझता हूँ। और मिसेज़ दास नोटिस देंगी तो हमने भी थोड़ी बहुत वकालत पढ़ी है।"

"इन चक्करों में मत आइये। बड़े आदमियों की बातें बड़े आदमियों की हैं।"

"नहीं भाई, वे वैसे बड़े आदमी नहीं हैं। वह बहुत विशाल-हृदय हैं। मैं तो उन के साथ एक मेज़ पर खाना खा कर आया हूँ। मुझे वहां का सारा वातावरण याद आजाता है। फिर मै ध्यान करके कहता हूँ—"और वहाँ पद्मा भी है।"

"पद्मा कौन !' जरा चौक कर वह पलकें उठाकर मेरी ओर देखती है —"उनकी लड़की !"

"नहीं मेरी एक क्लास-फैलो।" मुझे वहाँ की एक-एक चीज़ दिखाई देती है।

"वहां कहीं काम करती है !" जया पूछती है।

"कुछ करती है। तुम खुद ही जो चलकर देख लेना।" मै उस की दारोगा जैसी जांच-पड़ताल से परेशान हो उठा हूँ।"

"यह आफ़त आपने खुद लगा दी दा...मै सच कहे देती हूँ, मै नहीं जाऊँगी। आप तो कुछ सोचते हैं नहीं। पीछे यहाँ आफ़त हो जायेगी। आसमान टूट पड़ेगा। अच्छा लगेगा जब अखबारों मे मोटे-मोटे नामों के साथ तस्वीरें छपेंगी, खबरें फैलेंगी ? शहर के सारे बुढिया-बुड्ढों को साल भर के लिये मसाला मिल जायेगा.....हमारे घर वाले..."

'हाँ हाँ, यहां से हमारे जाते ही प्रलय हो जायेगी, मौत आजायेगी, फिर उन्हीं सबका खयाल था तो क्यों दो-दो घण्टे खोपड़ी चाटी थी मेरी ?" मैं कड़आहट से कहता हूँ

तो दीदी, देखा आपने यह है उस लड़की की हिम्मत जो अपने को दूसरों से ज़रा अलग-ऊपर समझती है और जो बहुत ही आजाद खयालों की है। सचमुच, बातें हम आने वाले सौ सालों की करते हैं, लेकिन अमल आज के हिसाब से भी नहीं कर पाते। उसमें भी हम पचास साल पिछड़े ही रहते हैं। ये सब चिन्ताएँ, जो जया को थी क्या मुझे नहीं थीं ? लेकिन सब चलता है। हमेशा से यही तो होता आया है। बकौल सूरज जी, ज़िन्दगी में कभी-कभी रिस्क लेना भी अच्छा लगता है—ज़रूरी हो जाता है। रिस्क का मतलब है कि बिना परिणाम की चिन्ता किये हम उछल रहे हैं—और उछलने का अर्थ है बँधी-बँधाई लीक से एक झटके के साथ अलग हो रहे हैं, क्योंकि नई राहें खोजने को व्याकुल हैं—सो अब देखते हैं क्या हो—?

मैं बहुत द्वंद्व और परेशानियों में रहा। पता नहीं जया आयेगी या नहीं। एक व्यथा थी जिसे किसी से कह भी तो नहीं सकता था। किसी को बिना ज़रा भी बताये चुपचाप तैयारियाँ कर रहा था। अभी तक तो सिर्फ़ यह बताया था कि एक

मित्र के ज़रूरी काम से जाना पड़ गया था। अब बुरी हालत थी। अगर आई नहीं जया तो क्या होगा ? वैसे उससे ऐसी उम्मीद तो नहीं है। वह काफ़ी साहसी लड़की है, फिर भी क्या ठीक है...है तो आख़िर लड़की ही। और जिस तरह की बातें वह कर रही थी उससे तो...। अपने आप ही कभी तो मन में विश्वास हो जाता कि वह नहीं आ सकेगी, और कभी ऐसा लगने लगता कि वह रुक नहीं सकेगी और आने में जिस मानसिक-संघर्ष का सामना करना पड़ा उसे बताने के लिये यही एक रास्ता है कि मैं उसी वर्णन को दुहरा दूँ जो उसने मुझे दिया था—आप देखेंगी कि संस्कारों को तोड़ना सचमुच कितना मुश्किल हो जाता है :

ढालू प्लेटफ़ार्म जहां ख़त्म होता है वहीं एक केबिन है और उसकी कांच की खिड़कियों से उस समय रोशनी फूट रही थी। गुलाबी जाड़ा पड रहा था और हल्का-हल्का कुहरा अभ्रक के चूर्ण की तरह चाँदनी के साथ धरती पर उतर रहा था। वहीं एक लड़की खडी थी और उसकी परछाईं बौनी-सी तिरछी होकर प्लैटफ़ॉर्म पर लेटी थी। उस केबिन के नीचे खड़ी लड़की सामने लगे इञ्जन को देख रही थी। इञ्जन में इस समय दो आदमी थे, एक झुका हुआ पीछे की तरफ़ झाँक रहा था सामने कमर मे उसके सफ़ेद कपड़ा बँधा था और सिर पर एक रूमाल। वह बिल्कुल तटस्थ और निश्चित होकर झुका खड़ा बीड़ी या सिगरेट पिये जा रहा था। उसके पीछे ठीक बीच में खड़ा दूसरा आदमी बेल्चे से एक ओर से कोयला लेकर दूसरी ओर झोंक रहा था। इञ्जन के भीतर की आग की झाँई उसके शरीर पर झलमला रही थी। सामने इञ्जन के माथे की रोशनी अँधेरे में मीलों चली गई थी। सामने ही इञ्जन के भीतर पहिये, बटन, हैंडिल, तार और न जाने क्या-क्या लगे थे। प्लैटफ़ॉर्म पर खड़ी लड़की को बचपन से ही इञ्जन के इस हिस्से को एक उत्सुकता-पूर्ण जिज्ञासा से देखने का शौक रहा था। अभी भी वह उसी तरह अपलक डूबी सामने देख रही थी। तह किया हुआ चैस्टर उसके हाथ पर सामने लटका था। दूसरे हाथ से कुहनी का सहारा दिये वह अपने नीचे के होंठ को उँगलियों से सहला रही थी—कहीं दूर खोई थी। तभी झुके हुए आदमी ने उस ओर एक उड़ती-सी निगाह फेंक कर मुड़ते हुए लटकते तार को खींच दिया और इञ्जन ज़ोर से चीख उठा। कोई ख़लासी सामने से गुज़रा।

लड़की बुरी तरह चिहुँक उठी। अभ्यास-वश उसकी दोनों उँगलियाँ कानों को बन्द करने लपकीं, लेकिन तभी किसी ने उसके कन्धे पर हाथ रखा—"इतना मत डरिये, जया जी।"

जया चीख पड़ने को हुई, उछल कर दो क़दम पीछे खड़ी हो गई और उस आने वाले को आँखें फाड़-फाड़ कर देखती बोली—"तुम ? आप कौन हैं ?" लेकिन साथ ही वह होश में आ गई और उसे पहचान कर और भी घबरा उठी—"तुम यहाँ

कहाँ आ गईं ।"

यह आने वाली भी लड़की थी । वह हल्की मुस्कुराहट से बोली—"तुम्हें तो उम्मीद नहीं होगी कि मैं यहाँ कहीं तुम्हें खोज निकालूंगी ! और सचमुच, इस वक्त रात में सात-आठ बजे यहाँ देख कर पहले मैं भी बुरी तरह चौंकी थी, कि यह इस समय यहाँ कहाँ !" फिर मुस्कुराहट में थोड़ा व्यंग घोल कर कहा—"और रानी जी, आपको होश कहाँ है, जो आप देखतीं कि मैं कबसे आपके पास खड़ी हूँ, या कबसे आपके साथ हूँ ! जब भीतर उत्सुकता से हर डिब्बे में शरद बाबू को खोजती आप पूरी गाड़ी का चक्कर लगा चुकीं तो मुझे हँसी आई, फिर भी तुम्हारा मन जब नहीं माना तो तुमने दूर-दूर ही गाड़ी का दूसरा चक्कर लगाया, ताकि आने-जाने वालों से टकराओ नहीं । एक बार तो तुम मुझे बिल्कुल छूकर निकली थी..."

जया अब तक इस अप्रत्याशित विघ्न से अपने आपको संयत कर चुकी थी । प्रार्थना के स्वर में बोली—"बहन, माफ़ करना, सच मैंने तुम्हें बिल्कुल नहीं देखा ।"

'तुम देखती कैसे ! इस धरती पर होती, तभी तो देखती न, और मेरी समझ में नहीं आया कि साढ़े सात बजे की गाड़ी देखने की आपको क्या ज़रूरत थी —जब पता है कि शरद ने जो समय आपको दिया है वह साढ़े नौ का है ।"

इञ्जन इतने ज़ोर से चिंघाड़ा कि पूरा प्लैटफॉर्म हिल गया । जैसे आसमान फट गया हो—इस कम्बख्त को कैसे पता चल गया ! जया का चेहरा सफ़ेद पड़ गया और हकला कर पूछा—"किस...किस...बात का टाइम है ?"

दूसरी लड़की खिलखिलाकर ज़ोर से हँस पड़ी, और बहुत बेतकल्लुफ़ी से उसके कन्धे पर हाथ रख कर बोली—"जया रानी, सारी दुनियाँ को इतना बेवकूफ़ समझती हो ! आप भूल गईं कि जिस नौजवान के साथ आज आप साढ़े-नौ बजे घर-बार छोड़ कर जा रही है, आज सुबह तक उसके सारे पत्र मेरे ही केयर-ऑफ़ आपको मिले हैं ! और उनमें से प्रायः प्रत्येक खत को आपने ही मुझे सुनाया है !" —फिर जैसे एकदम उसे टालती-सी अधिक आत्मीयता से बोली—"खैर, छोड़ो, लेकिन आज सुबह के पत्र और आपकी मुलाक़ात के हिसाब से भी शरद को तो साढ़े-नौ की गाड़ी पर आपको मिलना है, पहुँचना तो उस पर चाहिये न आपको...यह अभी से...बहुत बेचैनी है क्या ! तभी तो ! मैंने भी सोचा, देखें, आज का यह खत हमें सुनाया जाता है या नहीं ।...लेकिन भाई कुछ कहो, यह प्यार कम्बख्त है ही ऐसी चीज़ कि नशे में आदमी अपने प्रिय से प्रिय लोगों को भूल ही जाता है..."

लेकिन जया यह सब सुन ही नहीं रही थी । स्टेशन के पार दूर क्षितिज में जड़ीं, कुहरे से झाँकतीं शहर की बत्तियाँ उछल-उछल कर नाचने लगी थीं...अपनी सारी खाना-पूरियाँ समाप्त करके गार्ड की ओंघती-सी सीटी के साथ गाड़ी स्टेशन से सरकने लगी थी और गुज़रती ट्रेन की खिड़कियों से छनती रोशनी रह-रह कर जया के मुँह पर पड़ रही थी, दूसरी लड़की की उधर पीठ थी...पहियों की घरघराहट जग

के दिमाग़ की नसों में रेंग रही थी...और पिछले डिब्बे की लाल रोशनी अँधेरे में ऐसे खोती चली जा रही थी जैसे दिल की धड़कन डूबती चली जा रही हो...

तभी उस लड़की ने अपना हाथ बढ़ा कर उसके कन्धे पर फिर दुबारा हाथ रख दिया तो उसे ऐसा लगा जैसे जया अब गिरी, तब गिरी—"घबराओ मत जया, मुझे तुमसे कुछ ज़रूरी बातें करनी हैं, आओ, ज़रा एक तरफ़ हो जांय, व्यर्थ ही लोग सोचेंगे यह दोनों यहाँ खड़ी क्या कर रहीं है।...यह क्या कर रही हो...अरे, सँभालो अपने आपको..." और वह उसे सहारा देती-सी ले चली।

जाड़ा बड़ा अनमना-सा था और तन-मन को सुख देता था। जब दोनो प्लैटफ़ॉर्म के ढाल से उतर आईं तो उस लड़की ने कहा—"देखो तार लगे हैं, ज़रा बचकर आना। लेकिन जया को जैसे बिल्कुल भी पता नहीं था कि पटरियाँ पार करती तार बचाती वह लड़की उसे कहाँ लिये जा रही है.....

"बैठो !"

तब जया ने चौंक कर चारों ओर देखा। स्टेशन से जरा हट कर पटरियों के जञ्जाल के बीच में ही इञ्जन घुमाने के गड्ढे के पास यह लोग खड़ी थीं। जया को चाँदनी में चमकती रेल की पटरियां लापरवाही से खोल कर फेंकी गई तलवारों की तरह लगीं—वह सिहर कर कांप उठी। पास ही मालगाडियों के डिब्बे इधर-उधर बिखरे थे और उसके पीछे से ऊपर की ओर मालगोदाम की लहरदार टीन दिखाई दे रही थी। इस गोल गड्ढे को बीच से काटता हुआ पटरियों का पुल चुपचाप लेटा था, घुमाने के हैण्डिल दूर से ही चमक रहे थे—और उस पुल को देखकर कोई भी नहीं कह सकता था कि यही वह जगह है जहां आकर हज़ारों घोड़ों की शक्ति वाला भीम अपनी दिशा बदल देता है ! इस गड्ढे के बग़ल में ही चौकोर जमाया हुआ कोयले का लम्बा चला जाता ढेर था और उसके इधर वाले ढलवान पर कोयलों में बेलूचों की मूठ दिखाई देरहीं थी।

"बैठो न, तुमसे कुछ बातें करनी हैं।" इस बार जया ने फिर जैसे कहीं दूर सुना—साथ ही कन्धे पर उसे बैठाने के लिये हल्का दबाव भी उसे महसूस हुआ।

गड्ढे में पांव लटका कर वह धम्म् से बैठ गई। तभी सहसा एक क्षण को उसके दिमाग़ में उठा, कहीं यह बीच का पुल घड़ी की टूटी स्प्रिंग की तरह भन्ना कर घूम जाय तो ? पिस जायगी वह ! तब बेचारा शरद ? झटके से पास बैठी लड़की के कन्धे पर झूल गयी—"कहाँ ले आई हो तुम ! मुझे तो सच, न जाने कैसा-कैसा लगता है—डर-सा।" उसने अपने लटके दोनों पांव ऊपर खींच लिये—कहीं सचमुच ही बीच का वह पुल घूम जाय तो !

लड़की ने एकबार जया के सिर को देखा जो उसके कन्धे पर टिका था—शायद उसे थोड़ी दया भी आई। लेकिन फिर कुछ तीखे स्वर से बोली—"मैं समझती हूँ जया, अगर तुम इतना न बनो तो क्या बिगड़ जाय ? जब से होश सँभाला,

साथ खेले, साथ पढ़े, साथ ही रहे—सो तो आपको हमारे साथ आने में डर लगता है और उस अनजान आदमी के साथ एक अनिश्चित भविष्यकी राह पर चल पड़ने में डर नहीं लगता ?"

जया ने कुछ जवाब नहीं दिया। उसके ढीले बाल कनपटियों पर बिखर आये। गर्दन मोड़कर वह अपनी बात के उत्तर की राह देखती रही, फिर कन्धे को हल्का उचका कर बोली—"बोलो ?"

तब पता नहीं जया के पेट में क्या बगूला-सा उठा कि वह एकदम फूट-फूट कर रो पड़ी—"मुझे बताओ, मैं क्या करूं !"

लड़की का दिल पिघलने-पिघलने को हो आया, फिर भी वह बोली—"अब करना क्या है, साढ़े नौ की गाड़ी से शरद जी जा ही रहे हैं, आपकी भी तैयारी हो ही चुकी है, माँ से तुमने कह ही दिया है कि तुम मेरे साथ स्कूल की पिकनिक पार्टी में जारही हो—बस जाओ और कहीं घर बसाओ।"—फिर कुछ रुक कर थोड़ी तलखी से बोली—"और न हो तो दो चार गहने माँ के साथ ले लो, मेज में गुलछर्रे उड़ाना।"

"मेरी हिम्मत नहीं पड़ती·····मुझे डर लगता है।" वह हिलकियों में ही कहती रही।

"अरे, शरद जी से डर ? राम-राम, कैसी बातें करती हो ? वे तो तुम्हारे बिलकुल ही अपने हैं। बेगाने तो हम हैं। डर तो हमसे लगना चाहिये।"

जया ने सुना, थोड़ी देर साँस साधे यों ही रही, और फिर झटके से सीधी बैठ गई। उसके गालों पर आंसू चाँदनी में चमक रहे थे। हाथ से बालों को कान के पीछे करती हुई बोली—"हाँ, तुम लोग बेगाने हो, तभी तो जबसे ताने मार रही हो ! वह...वह मेरे लिये अपने घरवालों से लड़ कर आ रहे हैं, हम तुम लोगों से कहीं दूर चले जायेंगे।" जया के होठ और ठोढ़ी कांपते रहे—"बता मैंने तेरा क्या बिगाड़ा है ? तुझसे मैंने कोई बात छिपाई है, तेरे खिलाफ़ कहीं कुछ कहा है ? मेरे ऊपर दया कर बहन।" जया फिर रो पड़ी। उसने फिर उस लड़की के कन्धे पर सिर टिका दिया।

"सीधी बैठो।" लड़की ने कन्धा झटक दिया—"जाओ, तुम लोग दूर हमसे —हम भी तो देखें कहां जाती हो ?" लड़की ने तलखी से कहा—"जयारानी, यही मैं कहने आपको यहाँ लाई हूँ कि यह बन्दूक मेरे कन्धे पर रख कर आप नहीं चला सकतीं।"

'क्या...?" जया का मुँह खुला रह गया।

"यही कि आज मैंने बहुत सोचा, और निश्चय किया कि आज आपको नहीं जाने दूं। कल आपकी मां के सामने सब बातें कह दूंगी—तब मेरी सारी ज़िम्मेदारी हट जायेगी, और फिर तुम जानो, तुम्हारा काम जाने।"

इस बार फिर कहीं पास ही कोई शंटिंग करता इञ्जन दहाड़ा और आवाज़ आसमान के पर्दे चीरती हुई इस सिरे से उस सिरे तक घमकती चली गई—जैसे कहीं बिजली गिरी हो। स्तब्ध जया देखती रही। उसके सूखे खुले मुँह से आवाज़ निकली —"क्यों!"

"क्यों कुछ नहीं। मैं इतना बड़ा रिस्क लेने को तैयार नहीं हूँ। मैं नहीं चाहती कि कल जब लोग तुम्हारे ऊपर थूकें, तुम्हें गालियाँ दी जाँय, वारण्ट निकले या अखबारों में लम्बी-लम्बी खबरें बन कर तुम छपो तो उनमें सबका एक केन्द्र मैं भी होऊं। मैं इसे त्रिकोण बना कर उसकी एक भुजा बनने से इन्कार करती हूँ।" निहायत बेबाकी से वह बोली।

"लेकिन तुम्हारा तो कोई नाम भी नहीं जानेगा।" जया ने भौंचक स्वर में कहा।

"जी नहीं, इन बचपने की बातों से मुझे मत बहकाओ, तुम्हें कोई कुछ नहीं कहेगा, कहेंगे सब मुझे ही। बड़ी सहेली बनती थी। तुम तो इस वक्त अन्धी हो रही हो। तुम्हें होश क्या कि कौन जानेगा कौन नहीं जानेगा!" वह बोली—"लोग सब अन्धे हैं न..."

"लेकिन..."

"लेकिन-वेकिन कुछ नहीं। आज आप नहीं जायेंगी।"

"क्या कह रही हो!—आज तो सब तैयारी करके आ रहे होंगे..."

"अब जो भी हो, आज तो मैं नहीं ही जाने दूंगी...।" उस लड़की के स्वर की निश्चयात्मकता ने जया को सिहरा दिया।

"अगर ऐसा ही था तो तुमने यह सब क्यों चलने दिया! शरद जी से मेरा परिचय तुमने कराया या मैंने—मुझे जवाब दो! सारी खत-किताबत और आज-तक की इस स्थिति तक की घनिष्ठता का माध्यम कौन रहा—मैं या तुम? मैं यह सब बातें जानती थी? बड़ी सीधी और धार्मिक बनती हो—मीरा के गीतों के ये अजब-अजब अर्थ बता कर किसने मुझे प्रेरित किया कि मैं भी एक गिरधर गोपाल खोज लूँ? प्रेम-सागर में कृष्ण और गोपी-लीला मैंने ही तो बैठा कर सुनाई होगी तुम्हें? सुख-सागर के शुक-रम्भा संवाद, सती-शिव-प्रेम, यह सब पेट से सीख कर ही तो निकली थी न?" जया बिफर उठी।

"और कहो...और कहो, रुक क्यों गई?" उस लड़की ने जवाब दिया—

"हाँ, तो क्या मैं रुक जाऊँगी?" जया को जैसे 'फ़िट' आ गया था, बात काट कर बोली—"ठीक है, तुम मकान मालिक की लड़की हो, मकान-मालिक हो, और हम लोग सिर्फ़ किराएदार हैं—तुम उम्र में मुझसे बड़ी हो, रुतबे में बड़ी हो, शिक्षा में बड़ी हो, अपने आप को तुमने मेरा गार्जियन बना लिया है—सब कुछ है लेकिन अब आप बिल्कुल ही निश्चिंत रहें, अपना भला-बुरा मैं खुद सोच सकती हूँ।

मरूँगी तो मैं ही न मरूँगी।"

"तुम चाहो सो कहो लेकिन इतनी बड़ी बदनामी लेने के लिये मैं तैयार नहीं हूँ।" फिर मुंह टेढ़ा करके विद्रूप से बोली—"बिटिया रानी, यह प्रेम का नशा बुलवा रहा है, वर्ना तुम मेरे सामने मुंह खोल जाओ, इतनी हिम्मत तुम में नहीं थी। और जब बाहर जाकर तुम्हारे मजनूं शरद जी नौकरी की तलाश में दर-दर भटकेंगे, जब पास-पड़ोस की औरतें उँगली उठा-उठाकर कहेंगी, यह लड़की 'भाग आई है', जब बाजार में चलते हुए पीछे से आवाज़ें पड़ेंगी, जब पाई-पाई खत्म हो जायेगी, जब तुम और तुम्हारा यह प्रेम शरद के गले का जञ्जाल बन कर उसे नोचेगा, जब वह चिड़चिड़ाकर तुम्हे अपने पास से दूर धकेल दिया करेगा, तुम्हारी फटेहाल सूरत उसकी रूह खुश्क कर देगी—भगवान न करे किसी ऐसे-वैसे ज़िम्मेदारी के समय वह तुम्हें छोड़ कर वह भाग खड़ा हो तो तुम्हारे पास क्या रास्ता होगा ?—तब तुम्हारे पास सिवा इसके कोई रास्ता न होगा कि तुम लोगों की भूखी वासनाओं को दुलराओ और अपना घृणित अस्तित्व क़ायम रखो।"

जया जैसे जलते बिजली के तार पर खड़ी हो इस तरह सिर से पाँव तक काँप उठी। उसे लगा वह बेहोश हो जायेगी—फिर भी उसने कहा—"और कुछ ? और कुछ ?" थोड़ी देर बाद अपने को सँभाल कर उसने उत्तर दिया—"आज की लड़की को भयंकर चित्र दिखाकर नही डरा सकती। पुरुष के साथ बोझ बनकर वह नया जीवन बनाने नहीं निकलती कि पुरुष को नौकरी मिल जाय तब तो उसका जीवन सफल है नही तो बोझ है ही। दिन भर लांछना और ताड़ना सहती बैठी-बैठी सन्ध्या की राह वह नही देखती कि शायद आज पतिदेव की नौकरी लग जाय। वह खुद भी तो कुछ कर सकती है, कुछ करने का साहस और हिम्मत लेकर निकलती है।"

"ये सपने और रटी-रटाई बातें खाना नहीं देंगी, महारानी जी। दो दिन में आंख खुल जायेंगी !" वह लड़की हाथ मटका कर बोली—"अभी ठोकर नहीं लगी है। और उस वक्त की भी कल्पना कीजिये कि जब आप पीछे लौटना चाहेंगी और यहाँ का दरवाज़ा आपके लिये बन्द हो चुका होगा। इस घटना के बाद तुम्हारे माँ-बाप का क्या होगा ? कौन जाने वे दुख में क्या कर बैठें। उन्होंने तुम्हें इसलिये पाला था कि तुम उनके मुंह पर कालिख लगा दो ?—तुम्हारी छोटी बहनों का क्या होगा ? स्कूल मे जहां तुम पढ़ाती हो, तुम्हारे नाम को क्या क्या बावेला मचेगा ? ज़रा ठण्डे दिमाग़ से सोचो—किन्तु हर चीज़ को टालो मत। और शरद को ज्यादा अच्छी तरह मैं जानती हूँ या तुम ?"

जया के दिल में जैसे किसी ने कील ठोक दी हो, वह तिलमिला उठी। शायद यही वह बात थी जिसके बारे में सोचना नहीं चाहती थी। एक अस्वाभा-

विक उत्तेजना से उसने कहा—"तुम जाओ, बैठकर गीता पढ़ो और तख़त सोओ। सुबह-शाम गायत्री का पाठ करो, शील और ब्रह्मचर्य के उपदेश सुनो। वही तुम्हारी शिक्षा है और वही तुम्हारी सीमा!"...अचानक बात कहते-कहते जया रुक गई। लाइन क्लीयर की आवाज़ सुनकर उसकी निगाह घड़ी पर जा पड़ी—नौ बज गये थे। और वह हड़बड़ा कर उठ खड़ी हुई—"मैं कोई नया काम तो कर नहीं रही हूँ। तुम्हारी सती रुक्मिणी, अम्बा-अम्बालिका से लेकर संयोगिता तक हजारों 'देवियों' और 'माताओं' की लाइनें मेरे पीछे हैं।" वह बड़े अस्वाभाविक रूप से हँसी—"शरद को अच्छी तरह जानती हो! बहन जी, आप इस भ्रम को जितना जल्दी हो सके दिल से निकाल दें। आप अपने दिल मे शायद भीतर कहीं यह समझ रही हैं कि शरदजी का प्यार आपके इन रूखे सूखे बालों, झुर्रीदार चेहरे, इस मोटी सादी धोती और ये धर्म-कर्म की नीरस बातों के लिये है? लेकिन मै बताती हूँ कि यह आप का भ्रम है। उसका प्यार, उसके सपने आपके लिये नहीं, बल्कि आपके माध्यम से, आपके मकान में रहनेवाली इस नाचीज जया के लिये था। बिना आप से मिले, मुझसे मिलना आसान न था, इसलिये वे आपके पास आते थे। लिफ़ाफ़ो पर पते की जगह नाम ज़रूर आपका लिखा रहता था, लेकिन उनके ख़त मेरे लिये थे, तुम इस बात को खुद जानती थीं। मजाक करती थीं और हँसती थीं। जिस हिम्मत को तुम खुद नही कर सकतीं उसे मैं कर रही हूँ। और इसी बात की जलन आप को है। जाओ, अपने घर किसी बन्द खिड़की के कमरे में बैठो, कोई देख लेगा तो व्यर्थ ही तुम्हारे निष्कलंक शीलवान चरित्र पर धब्बा लगेगा। लोग कहेंगे कि सिर झुकाकर और आँख उठाकर भी न देखनेवाली लड़की यों खुलेआम घूम रही है। जाओ, और मां-बाप की इच्छा के पुतले के साथ, जिसे वे अपना घर-बार बेचकर दहेज-नाम की कीमत देकर खरीद दें, आग की घुटती लपटों के चारों ओर घूमो और बाद में पतिव्रता की विडम्बना छाती पर लादकर उस के वंश को आगे बढ़ाओ, कुटो-पिटो और रात को बिस्तरा गर्म रखो। मुझसे यह नहीं होगा। मुझे जाने दो, देर हो रही है, अभी उनकी गाड़ी आ रही है। शायद घर से अटैची भी न ला पाऊंगी। उनके सपने, उनका विश्वास और अपना साहस, मेरे लिये बहुत है—मुझे तुम्हारी नैतिकता, शील और चरित्र की ज़रूरत नहीं है। मेरे लिये नई-दुनियाँ की राहें खुली हैं। मेरे रास्ते से हटो! मुझे इस कीचड़ से निकल जाने दो—रामायण के पन्नों की दुनियाँ तुम्हारे लिये बहुत है। राम ने सीता पर जो-जो अत्याचार किये, उन्हें पढ़ो और बैठकर आँसू बहाओ।"

गाड़ी की घरघराहट उसे सुनायी दे रही थी—ज़रूर यह वही गाड़ी है। सवा-नौ पर यह आती है और साढ़े-नौ पर चली जाती है। और बिलकुल निर्द्वन्द और निरुद्विग्न, जया उठ खड़ी हुई। उसे आश्चर्य हो रहा था कि उसके भीतर

की रुलाई, घबराहट और बेचैनी क्या हुई ? इतनी आसानी और आत्म-विश्वास से वह यह सब कैसे कह सकी ! हुँ:ह, इसी सबकी चिन्ता की तो हो गया—दुनियाँ भँवर की तरह वहीं घूमती रहेगी और गति रुक जायेगी।

उसने पहला क़दम उठाया ही था कि चाँदनी में काला बेल्चा उठा और ज़ोर से जया के सिर पर पड़ा, आसमान में चाँद अग्नि-बाण की तरह टुकड़ों-टुकड़ों में बिखर गया और फिर न जाने कहाँ सन्नाता हुआ क्षितिज मे खो गया...अँधेरे के रोएँदार गोले उसकी दृष्टि में नाच उठे, वह लड़खड़ाई और 'धम्' से गिर पड़ी। उस लड़की ने बेल्चा दूर फेंक दिया और दौड़ कर जया की छाती पर आ चढ़ी। छाती पर अपने दोनों घुटने टेके, दाँत भींच कर दोनो अँगूठों से उसका टेटुआ दबाती बड़-बड़ाई—"ले...ले...और ले...भाग !—नई दुनियाँ बसाने जा रहीं थीं आप...!"

और फिर उसने जल्दी-जल्दी जया की लाश पर बेल्चे से कोयला डालना शुरू कर दिया और तब दूसरी दिशा से जाकर प्लेटफॉर्म की तरफ़ भाग खड़ी हुई।

फिर सहसा उसे ध्यान आया, वहाँ तो अभी नये सपनों को बाहों में भर कर लाने वाली गाड़ी से बुरी तरह चहल-पहल मच रही होगी।—नहीं, वहाँ उसे नहीं जाना.....

वह एकदम लौट पडी और पटरी के सहारे दौड़ने लगी। सामने से एक दूसरी गाड़ी भी आ रही थी। वह भूल गई कि किससे शरद ने जाने का निश्चय किया है। इञ्जन की रोशनी फिर उसके चेहरे पर पड़ी। वह एकदम ठिठक कर खड़ी हो गई। उसे लगा जैसे भागते आते इञ्जन की यह रोशनी भाले की तरह उसकी छाती में घुसी जा रही है। इञ्जन उसके ऊपर चढ़ा आ रहा है ! अचानक उसकी निगाह अपने हाथों पर पड़ी और वह बेतहाशा चीख उठी—उसके हाथ और कपड़े खून से लथपथ थे—गाढ़ा-गाढ़ा चिपचिपा खून...

० ० ०

"जया, जया ओ जया, होश में आ, रानी बेटी !"

जया ने कहीं दूर बड़ी घुटी-सी जगह में सुना। साथ ही चार-पांच आवाज़ों और बोल-चाल की भनभनाहट से उसे ऐसा लगा जैसे कई लोग उसे घेरे खड़े हों...

"बेचारी बहुत डर गई है।" उसने सुना।

उसने आँखें खोली तो बड़ा दुखी और रुँआसा-सा अम्मा का मुँह ऊपर झुका था—वह सूनी-सूनी आँखों से देखती रही और उसे याद ही नही आ रहा था कि वह कहाँ पड़ी है। उसने कुलबुला कर उठने की कोशिस की.....

"लेटी रह, बिटिया, लेटी रह !"

उसने आँखें बन्द कर लीं और परिस्थिति समझने की कोशिस करने लगी। उसे लगा जैसे कोई उसके चेहरे पर पंखा झल रहा है, कोई पैरों के तलुओं में तेल जैसी चीज़ मल रहा है, उसे अपना मुँह भी गीला-गीला लगा जैसे किसी ने पानी के

छींटे दिये हों—छाती बुरी तरह धड़क रही थी...उसने फिर आँखें खोली, जल्दी-जल्दी पलकें झपकते और उठने की कोशिश करते हुए-से पूछना चाहा—"अम्मा मैं कहाँ हूँ..." पर उसके ओंठ सिर्फ़ फड़क कर रह गये। बड़ी मुश्किल से उसने कहा —"अम्मा पानी !"

जैसे कोई तैयार ही बैठा था। पानी उसके हलक को तर करता कण्ठ से नीचे उतर गया—शायद गर्दन पर भी फैल गया था—उसे गीला-गीला लगा।

"मैं कहाँ हूँ अम्मा ?" उसने फडफड़ा कर कहा।

"कहीं नहीं है बिटिया, तू लेटी रह—मेरी रानी।" अम्मा ने उसके माथे पर हाथ फिराते हुए कहा।

जया को लगा जैसे घड़ी ने घण्टा बजाया। अपने को सुस्थिर करते हुए आँखें बन्द किये ही उसने पूछा—"अम्मा क्या बजा है ?"

"साढ़े नौ।" उसे किसी का उत्तर सुन कर समझ में आया।

और बिजली की तरह झटक कर जया उठ बठी, और आँखें फाड़-फाड़ कर अपनी हथेलियों और हाथों की उँगलियों को देखती ज़ोर से रो पड़ी—"अम्मा, मेरे हाथों में खून लगा है। देखो मेरे कपड़े भी खून से गीले हो गये हैं। मैंने उसे मार दिया—अम्मा मैंने उसका गला घोंट कर गाड़ दिया—अम्मा मुझे बचाओ, वह भूत बन कर मेरे पीछे लगी है...मुझे वह खा जायेगी अ...म्मा मेरे हाथ पोंछ दो..." वह फिर लिटा दी गई, उसकी आँखें बन्द हो गईं।

"जया—जया, मेरी बेटी, रानी..." अम्मा की आँखों में आँसू आ गये। सब जैसे स्तब्ध-से उस पर झुके थे। अम्मा होंठ चबा रहीं थी।

"अम्मा मेरे हाथों का खून धो दो।..." जया आँखें बन्द किये ही रोती जा रही थी।

"किसको मार दिया बेटी, तूने किसका गला घोंट दिया।" किसी ने बड़े प्यार से पूछा।

"वही जो हमारे मकान में किरायेदार रहती थी।" जया बिलख-बिलखकर रोती रही।

एक ने दूसरे से पूछा—"कौन किरायेदार ? हमारे यहाँ तो कोई किरायेदार है ही नहीं। कोई अपना मकान ही नहीं है। खुद बरसों से किराया दे रहे हैं और इन कमरों में पड़े हैं।"

"कौन किरायेदार बिटिया, क्या नाम है उसका ?"

"किरायेदार, किरायेदार, अम्मा, वही जया नामकी...मैंने उसे कोयलों में मारकर गाड़ दिया अम्मा।"

लोगों ने दुख से एक दूसरे की ओर देखा। किसी ने कहा—"बिचारी ने कोई बहुत ही भयंकर सुपना देखा है। देखो न, होश ही नहीं आरहा...मुँहपर

छींटे दो...अभी चेत हुआ जाता है।"

"क्या कुछ बात होगई थी आज ?" किसी ने जिज्ञासा से पूछा।

"कुछ नहीं जी।" अम्मा ने पीड़ा से कराह कर कहा—"इस्कूल की आज कहीं कोई पिकनिक पार्टी बाहर जारही थी, सो सब अटैची-फटैची तैयार करके खा-पीकर बोली, अम्मा रात को सोने की जगह मिले न मिले, मैं ज़रा लेट लूँ—रेवा आये तो मुझे जगा देना। न भी आये तो ठीक नौ बजे जगा ज़रूर देना। मै खुद ही चली आऊंगी। सो न जाने क्या सुपना देख डाला...।"

तभी कोई परिचित अपनी ऐसी ही किसी स्वप्न की घटना को बताने लगा।

जया को ऐसा लगा जैसे उसके दिल को चीरती एक रेलगाड़ी गुज़र गई हो·····"अम्मा मैं जाऊँगी·····मै जाऊँगी·····।"

"अभी से पिकनिक की क्या पड़ी है—अभी चुपचाप लेटी रहो।" किसी भारी पुरुष-कण्ठ ने कहा, और उसे फिर दबाकर सुला दिया—"अभी साढ़े सात-ही तो बजे हैं।"

पता नही जया ने सुना या नही लेकिन निढाल होकर पड़ी रोती रही —'अम्मा मेरे हाथ पोंछ दो, उनमे खून लगा है.....।'

सचमुच दीदी, जया द्वारा दिये गये इस वर्णन से तो मैं सिहर उठा। और तब मेरे सामने उसकी वह सूरत साकार हो आई जब वह स्टेशन पर आयी थी। बड़ी बदहवास और घबड़ाई-सी, जैसे एक-एक क़दम रखने से पहले सोच रही हो। अब गिरी तब गिरी की चाल थी, और हर तरफ़ उखड़ी-उखड़ी-सी देखती। मुझसे आँखें मिला ही नही पारही थी। बार-बार निगाहें चुराती थी। हांफती-हुई सी सास, सूखे होठ और क्षण-क्षण पर चौक उठने वाला मन। आँख में जैसे हर बार कुछ पड़ जाता था। हाथो में उसके चैस्टर तह किया हुआ लटका था, उसके नीचे लकड़ी की पट्टियोवाला थैला था—बगल में वैनिटी बेग। अभी तक तो नही, लेकिन एक क्षण को तो मुझे भी लगा कही वास्तव में हम ऐसी ग़लती करने तो नहीं जा रहे है कि जीवन भर पछताना पड़े ? अभी कुछ नहीं है, अब भी लौट सकते हैं। मेरा तो कुछ नही है; लेकिन यह बेचारी तो अपना घर-बार, मां-बाप, सगे-सम्बन्धियों सभी को इस तरह छोड़कर जारही है कि खुद मिलने का साहस तो इस जीवन में शायद कभी कर नहीं सकेगी।

मुझे देखकर उसने मुस्करानेकी असफल कोशिश की। मुस्कुराया मुझसे भी नहीं गया। दिल धाड़-धाड़ करके बज रहा था। हर क्षण लगता था कि अभी किसीने देखा। अभी हममें से किसी को खोजता-खोजता कोई भागता चला आरहा है—जो ऐन मौक़े पर हमें रोक कर हमारी सारी योजना को चौपट कर देगा। कहीं-न-कहीं से घूमता, अभी कोई परिचित मिलता है। सबसे अधिक डर

मुझे अपने मित्रों से था। वे कम्बख्त कहाँ किस परिस्थिति में मिल जायें, इसका कोई ठीक दुनियां में नहीं है। गला साफ़ करके मैंने बड़ी मुश्किल से कहा—"आ गईं ?"

वह मुस्कुराई—जैसे रो पड़ेगी।

मैंने उसके चैस्टर इत्यादि की ओर संकेत करके पूछा—"बस ?"

सिर हिलाया, बड़े फटे-से गले ने कहा—"और क्या होता ?"

"ठीक है, सब हो जायेगा।" मैंने जैसे अपने आपको सन्तोष बँधाया।

इसबार उसकी आँखों में चमक आई—हाथ से इशारा किया। एक तरफ पड़ी बैञ्च पर एक छोटी-सी अटैची और बाँस की डलिया रखी थी—उसमें ऊपर ही तौलिया चमक रहा था। उसीसे भीतर रखी चीज़ों को ढँक दिया गया था। कुली से सामान मैंने उसके पास ही—लेकिन बेंच के नीचे रखवा दिया।

"आप तो ऐसे घूम रही हैं, जैसे हमें क्या मतलब, किसका सामान रखा है।"

"तो उसे पीठ पर ही लादकर क्यों घूमा जाय ?" इस बार सूखे होठों में भी उसके दाँत चमक उठे।

"बड़ी हिम्मत की !" मैंने उसके साहस की दाद दी।

"आपका साथ है, जो न कराये सो थोड़ा है।" उसकी आँखो मे स्नेह झलमला आया। लेकिन पता नहीं कैसे, वही स्नेह पिघलते-पिघलते आँखों मे भर गया और उसने टहलते हुये प्लैटफ़ॉर्म के दूसरी ओर जाकर पोंछ लिया। साफ़ मुझे लग रहा था कि उसके मन में बड़ा द्वन्द्व है। बीस-इक्कीस साल का मोह उसे खींच रहा था।

"तुम्हारे इसी पागलपन से मैं घबराता हूँ।" जब वह लौटकर आई तो मैंने उसे प्यार से झिड़का।

वह चुपचाप टहलती रही, मेरी ओर से अधिक से अधिक उपेक्षा दिखाती हुई। जैसे हम दो अपरिचित घूम रहे हों। उस समय भी उस नयेपन और घबराहट के बावजूद मनमें कहीं लगता था कि कुछ भी असाधारण नहीं होगा। हमलोग यों ही बाई द वे चले आये हैं। मज़ाक-मज़ाक में ही यह हो रहा है। कुछ ही देर बाद घर लौट जायेंगे और फिर ? फिर जैसे पहले चलता था, चलने लगेगा। कोई जान भी नहीं पायेगा कि हमने ऐसी बेवकूफ़ी की कोशिश की थी। मन मे विश्वास नहीं आता था कि हम जो कुछ भी करने जा रहे हैं, वह सचमुच ही घटित हो रहा है।

फिर जब गाड़ी आई तो वह मज़ाक की भ्रांति झटके से टूट गई। तब कुछ-कुछ लगने लगा कि सचमुच हम जो कुछ भी करने जा रहे हैं, वह निरा मज़ाक ही नहीं है। लेकिन तब भी ऐसा लगा जैसे हमलोग थोड़ी देर में लौट आयेंगे। यों रेल में तो रोज़ ही बैठते थे। और अब जब आठ घण्टे बीत गये हैं तब भी ऐसा

लगता है कि दो-तीन दिन में लौट आयेंगे।

भीतर सामान रखा गया। मैंने अपना बैडिङ्ग ऊपर की एक खाली बर्थ पर लगा दिया और उसमें से कम्बल लेकर दो जनों के बैठने लायक जगह घेर ली। जया ने चढ़ते समय एक बार सचेत निगाहों से चारों ओर देखा था। हाथ में एक रूमाल लेकर डिब्बे में चढ़ने के लिये दरवाज़े पर लगा लोहे का डण्डा पकड़ते समय उसके हाथ की उँगलियाँ काँप रहीं थीं। मेरे पास बैठकर तो उसके माथे पर इस बुरी तरह पसीना आ गया था, उसका दिल इस बुरी तरह तेज़ी से नीचे-ऊपर जा रहा था कि मुझे लगा यह चीख-चीख कर रो न पड़े। बैठते ही उसने लोगों के सिरों के पार दोनों ओर की खिड़कियों से प्लैटफ़ॉर्म की भीड़ के एक-एक आदमी को गौर से देखा। उनके अलावा भी जैसे किसी को खोजने की कोशिश की। प्लैटफ़ॉर्म पर लगे "खटाऊ मिल्स" "विज़िट काश्मीर" और "लिपटन की चाय" के विज्ञापनों को देखा। गाड़ी खिसकती रही और वह बौखलाई-सी आँखें फाड़े इधर-उधर के मकानों को देखती रही। फिर उसने एक गहरी साँस लेकर सिर झुका लिया। तभी शायद उसे आस-पास के लोगों का ध्यान आ गया। मेरी कल्पना में मेरे अनुपस्थित मित्रों की हाथ और रूमाल हिला-हिलाकर मुझे बिदा देती तस्वीरें दिखाई दे रही थीं—उस नगर से हम विदा हो रहे थे।—पता नहीं कब तक के लिये!

"मेरे सिर में दर्द हो रहा है, आप यहाँ बैठिये, मै ऊपर लेट रही हूँ।" बिना मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किये, वह उठ खड़ी हुई। मैंने उसे सहारा दिया। खिड़की पर पाँव रखकर वह ऊपर चली गयी। पाँवों में नये सैण्डिल थे—मेरी कल्पना में एक क्षण को कौंधा—कोई और समय होता तो इन पाँवों में शायद महावर की सुर्ख रेखा होती। इतने दिनों में आज मैंने उसका इतने निर्मुक्त भाव से शरीर छुआ था। मेरा शरीर सिहर उठा। उसने ऊनी चादर निकालकर ओढ़ ली और दीवार की ओर मुँह करके लेट गई। मैं समझ रहा था—यह उसके कठिनतम परीक्षा-कालों में से एक है।

"कुछ पढ़ने को दूँ?" मैंने उसके सिरहाने की ओर खड़े होकर पूछा।

"नहीं" गला रुँधा था।

"बाम वग़ैरा देखूँ?" मैंने सहानुभूति से पूछा।

"मुझे चुपचाप सो जाने दो।" उसका गला काँप रहा था।

"देखो, ये बेवक़ूफ़ी करोगी तो ठीक नहीं होगा। समझदार होकर ऐसा करती हो।" मैंने फुसफुसाकर बिल्कुल उसके कान के पास मुँह रखकर प्यार से डाँटा।

उसने कुछ जवाब नहीं दिया। मैंने बैठकर एक पत्रिका देखने के लिये निकालकर जाँघ पर रखी ही थी कि पास के एक लालाजी-नुमा व्यक्ति ने उसे निस्संकोच उठाकर पढ़ना शुरू कर दिया। झुँझलाकर मैंने दूसरी किताब निकाल ली

आप विश्वास नहीं करेंगी दीदी, पुरुष कितना स्वार्थी और हर चीज़ को कितना अपने ही दृष्टिकोण से देखनेवाला प्राणी है, यह मैंने तभी जाना। जो नारी के लिये कठिनतम परीक्षा-काल होता है, जब वह जीवन और मृत्यु के द्वन्द्व में झूल रही होती है, तब पुरुष क्या सोच रहा होता है, इसका वास्तविक विश्लेषण किया जाय तो मनोवैज्ञानिक दंग रह जायेंगे। गाड़ी के हिलने के साथ जया का शरीर हिल रहा था और मैं जानता था कि वह सिसक रही है या भरसक अपने हृदय के उबाल पर वश पाने का प्रयत्न कर रही है, फिर भी मैं सोच-सोच कर पुलक रहा था कि कैसा यह एक वाक्य का विनिमय था—एक अण्डरस्टैंडिंग थी—कि एक बिल्कुल अपरिचित—जिसका और मेरा शायद इस हद तक विश्वास का कभी कोई परिचय नहीं रहा, अपने जीवन को यों मेरे हाथों में निश्छल रूप से सौंप कर साथ चली आई है! जया अब मेरी है! बिल्कुल मेरी! मेरे भीतर की युग-युग की पतित्व—सीधे शब्दों में स्वामित्व—की भूख सन्तुष्ट हुई। कितने अधिकार-पूर्वक जया ने कहा था—"मैं ऊपर लेट रही हूँ।" जैसे इसमें मेरी इच्छा जानने की ज़रा भी ज़रूरत नहीं है। यदि बिना इस तरह के समझौते के वह मेरे साथ आती तो क्या यों ऊपर जाकर सो सकती थी? कभी नहीं! जहाँ तक वश चलता, ऊपर खाली जगह होने पर भी वह नीचे ही बैठी रहती, और जब असह्य हो उठता तो झेंप-झिझक कर और शर्मा कर पूछती—"अगर आप सो नहीं रहे हों।" या "अगर आप माइण्ड न करें। अगर आप कहें तो मैं कुछ देर ऊपर जाकर लेट जाऊँ। सिर में ज़रा दर्द बहुत हो रहा है" इत्यादि।

तो दीदी, यह मेरे इस जीवन का प्रारम्भ है। अब देखिये, आगे-आगे होता है क्या। वहाँ ठीक होते ही मैं आपको बुलाऊँगा, आयेंगी न? नहीं आयेंगी तो समझूँगा कि आप भी मुझे ठीक नहीं समझीं। दीदी, ऐसे कामों में अम्मा इत्यादि का नहीं तो आपका आशीर्वाद और प्रोत्साहन साथ रहना ही चाहिये।

अपने हाल-चाल लिखिये। मुझे तीसरे दिन पत्र हर हालत में मिल जाना चाहिये। आशा है आपके 'वे' भी स्वस्थ-प्रसन्न हैं। हमारे दोनों के प्रणाम कहिये। आपके आशीर्वाद की हम राह देखेंगे.....

आपका ही,

शरद"

इब्तदाये इश्क है

"किसी चीज़ की जरूरत हो तो आप निःसंकोच रूप से माँग लीजिये" सूरज जी ने दरवाजे के पास आकर कन्धे उचकाते हुए कहा—"और माँगने का सवाल ही क्या है, कोई सब कुछ तो आप बाँध कर लाये नहीं होंगे। मैंने तो देखा आप सामान तो लाये ही नहीं हैं। खैर, जो भी चाहें बेझिझक सूरज जी से माँगिये।"

शरद ने आंख से जया को इशारा किया। रास्ते में और लोगों का परिचय कराते हुए उसने इनका परिचय इन शब्दों में दिया था—"और एक हैं वहाँ सूरज जी जब दुनियाँ में किसी के पास कुछ काम न हो तो मज़े में उनके साथ दो-चार घण्टे काट दे, या कहो, उनका साथ हो जाने पर दुनियाँ में किसी काम लायक आप रह ही नहीं जाते। आदमी वैल-इनफ़ॉर्म्ड, पढ़ा-लिखा ज़रूर है लेकिन आप तैयार हो या नहीं आपके ऊपर वह अपनी राय ज़रूर सुना देगा। पहली बार मिलने पर ही उन्होंने मुझे भी एक लैक्चर पिला डाला, और मेरे बारे में ऐसे-ऐसे आविष्कार कर डाले जिनका स्वयं मुझे पता नहीं था।"

सूरज जी को सामने देख कर शरद ने कहा—"आइये सूरजजी, कुछ कर तो नहीं रहे न, आइये, मैं इनसे परिचय कराऊँ।"

"नहीं-नहीं, मैं आप लोगों को डिस्टर्ब्ड नहीं करना चाहता।" उन्होंने वही दोनों हाथों के पंजे फैला दिये। वे ज़रा झेंपे। जया सँभल गई—वह थकी हुई अस्त-व्यस्त सुस्त बैठी थी। इधर-उधर से साड़ी ठीक की, पल्ला सिर पर सँवारा।

"अरे, आइये भी, क्या डिस्टर्ब होना।" शरद ने अनुरोध किया, और जया के मनोरंजन के लिहाज़ से ही कन्धे पर हाथ रख कर उन्हें भीतर ले आया। वे जैसे तैयार थे ही।

"देखिये, ये मेरी साथिन जया और आप देशबन्धुजी के 'बिगुल' के असली सम्पादक।" शरद उनकी ओर देख कर मुस्कुराया।

"अरे भाई, असली-नक़ली क्या, जो हैं सो वे ही हैं, हम लोग तो क्लर्क हैं।" फिर जीभ से लगातार दाँतों में फँसा पान का एक तिनका निकालते हुए नम्र स्वर में पूछा—"आप क्या अभी तक पढ़ रही थीं?"

"जी नहीं, एक स्कूल में पढ़ाती थी बच्चों को।" सिर झुका कर लजाते हुए उसने इस तरह झेंपे स्वर में उत्तर दिया जैसे चोरी करते पकड़ी गई हो।

"ओः गुड्!" सूरजजी प्रसन्न हो गये—"मैं तो बिल्कुल इस बात के पक्ष में हूँ कि स्त्रियों को हर लाइन में आकर अपने व्यक्तित्व को चौमुखा विकास देना चाहिये। बहुत काफ़ी वक्त हो गया उन्हें पुरुषों के सिर घर बैठ कर खाते-खाते। अच्छा शरद बाबू, आप एक काम क्यों नहीं करते?"

शरद ने प्रश्न-दृष्टि से उधर देखा।

"अपने देशबन्धुजी हैं न, ये लड़कियों के हायर-सैकेण्डरी स्कूल के मैनेजर हैं—मैनेजर क्या सर्वे-सर्वा हैं, और बहुत जल्दी ही वह एक विशाल कॉलेज बनने जा रहा है। बड़ी आसानी से वे इन्हें जगह दिला देंगे। मजे में ये वहाँ पढ़ाएँगी। वैसे भी इस समय ख़ाली बैठे-बैठे ये इस-उसकी बुराई ही तो करेंगी।—स्त्रियों के पास और काम ही क्या है?" कह कर सूरजजी हँस पड़े—शरद ने भी साथ दिया। सूरजजी फिर बोले—"आपने एक मज़ाक सुना है?"

दोनों की उत्सुक आंखें उधर उठीं—नहीं!

"एक बार गप्पियों की अन्तर्राष्ट्रीय बैठक हुई—प्रतियोगिता थी कि जो सबसे बड़ी गप्प सुनाएगा वही पुरस्कार पायेगा। लोगों ने असम्भव से असम्भव गप्पें सुनाईं, लेकिन जब एक सज्जन ने माइक पर आकर कहा—'भाइयो, एक बार दो स्त्रियां एक पार्क में एक ही बेंच पर बैठी थी, लेकिन पन्द्रह मिनट जब उनमें से कोई एक दूसरे से नहीं बोला तो—' उनके इतनी बात पर ही सभापति ने उठकर बात बीच में रोक दी और कहा—"बस, आगे कुछ भी कहने की ज़रूरत नहीं है। क्योंकि इससे बड़ी गप्प अब कुछ नहीं हो सकती कि दो स्त्रियाँ एक ही बेंच पर इतने समय बिना एक दूसरी से बोले बैठी रही, इसलिये आज का इनाम इन्हीं सज्जन को दिया जाता है।"

सूरजजी की इस बात पर दोनों ही ज़ोर से हँस पड़े। जया ने मुस्कुराते हुए कहा—"वाह, जैसे हमें कुछ और काम ही नहीं है।" उसे इस व्यक्ति का खुलापन, विनोदी स्वभाव वैसा नहीं लगा जैसा शरद ने चित्रित करने की कोशिश की थी। शरद और सूरजजी खड़े थे। बिस्तरबन्द खाट पर खुला था और जया उस पर बैठी थी। उसने ध्यान आने पर ज़रा-सा उठने की कोशिश करते हुए कहा—"आप बैठिये न!"

"नहीं-नहीं, ठीक है हम।" सूरज जी ने कहा, फिर शरद की तरफ़ घूम कर कहा—"अच्छा, शरद बाबू, आपकी समझ में आ जाय तो एक बात बताऊँ, और वैसे आप जानते ही हैं सूरज कोई बेकार बात बताता नहीं है। ज़रा चलिये न, अपने उस कमरे में—आपको चाय-वाय पिला कर तरोताज़ा कर दिया जाय। वहीं बात करेंगे। क्यों जया जी, आपको कोई आपत्ति तो नहीं होगी...?"

इस अप्रत्याशित निमंत्रण पर दोनों ही सकपका उठे। दोनों में दृष्टि का विनिमय हुआ। फिर जया ने नम्रता से कहा—"हमलोग वैसे स्टेशन पर ही काफ़ी नाश्ता कर आये हैं।"

"जी हां, वह तो मुझे मालूम है। हर नया आदमी नहाने-धोने से लेकर खाने-सोने और सिनेमा देखने तक का काम स्टेशन पर ही करके आता है।" फिर शरद के कन्धे पर बडी मित्रता से हाथ रख कर वे उसे बाहर ले चले—"आज तो

आप हमारे मेहमान हैं।"

शरद थोड़ी दूर तो चला गया, लेकिन अचानक ध्यान आ जाने पर रुक कर मुड़ा—"आ जाओ न जया, अरे, तुम तो बैठी ही हो। अब सूरजजी का कहना ही सही। पड़ोस में रहना है आख़िर।"

"हां, आइये न, आप क्यों बैठी रह गईं ?" सूरजजी ने भी घूम कर कहा।

जया बड़े कष्ट से उठी। असल में वह सफ़र से थक गई थी। ये लोग आगे निकल गये थे। उसने बाहर पड़े पर्स को तकिये के नीचे घुसा दिया और साड़ी को नये सिरे से ठीक करके बाहर निकली। किवाड़ों में ताला बन्द कर दिया।

बीच में चार-पांच फ़ुट की गली-सी छोड़कर एक बिल्कुल इसी बनावके क्वार्टर का दरवाज़ा सूरज जी खोल रहे थे। बादल अभी ज़रा-से हटे थे और बरसात की धूप बड़ी तेज़ थी। देशबन्धुजी के स्वदेशमहल का झण्डा, एरियल के बीचमें लहरा रहा था। एरियल पर ढेर-ढेर तोते लाइन लगाये झूल रहे थे। उधर धूप नहीं थी। इस ओर पड़नेवाले हिस्से के ऊपर की बाल्कनी में कोई महिला-मूर्ति झांक रही थी। इधर से सूर्य उधर ही पड़ता था, इस लिये जया अधिक नहीं देख सकी। इधर-उधर बिछे हुए लॉन, क्यारियां और मेंहदी की लाइने आंखों को बड़ा सुख देतीं थी। अभी यहां की किसी भी चीज़ के प्रति जया कोई धारणा नहीं बना पाई थीं। वे लोग दरवाजा खोलकर भीतर घुस गये थे। आहूजा वकील की ओर सफ़ेद चमकते मकानों की लाइन में प्रेस और बिगुल का आफ़िस है, यह शरद ने जया को बता दिया था। जया सूरजजी के दरवाज़े पर आगई।

"आइये, बाहर ही कैसे रह गईं ?" सूरजजो ने कहा।

कमरे में तीन बाँस की कुर्सियां और एक ईज़ी-चेयर पड़ी थी—बीचमें गोल छोटी मेज़। फ़र्श सीमेण्ट का ही था और उस पर कुछ भी नहीं बिछा था। ईज़ी चेयर के ऊपर ही एक आल्मारी थी ओर उसके पल्ले खुले थे। सबसे ऊपर के दो खानो में किताबें, तीसरे में किताब-कॉपियां डायरियोंके अतिरिक्त एक ओर टॉयलेट का सामान भी था—शेविंग ब्रश, शीशा, तेल की शीशी इत्यादि। नीचे के खाने में जूते, रंदा-बसूला और अन्य आड़े-तिरछे क़िस्म के औज़ार रखे थे। दीवार में बाईं ओर को लगभग पूरी दीवार को घेरता हुआ एक दुनियां का नक़्शा टँगा था। एक ओर कोडक फ़िल्म के विज्ञापन का कैलैण्डर था जिसमें एक अर्धनग्न युवती विशाल फैले सागर से निकल कर किनारे की ओर आरही थी। सामने बरामदेवाला दरवाज़ा खुला था, और उस ओर अलगनी पर तौलिया इत्यादि टँगे दिखाई दे रहे थे।

"देशबन्धुजी ने सारे मकान क्या एक ही डिज़ाइन के बनवा रखे हे ?" जया ने कमरे में घुसते ही कहा।

शरद इस समय सूरजजी की आल्मारी के पास आ गया था। उसने ग़ौर से पुस्तकों पर आंखें गड़ाए हुए उस खुले पल्ले को और भी खोल लिया।

"शरद बाबू, आप बुरा ज़रूर मानेंगे, लेकिन देखिये हर आदमी के व्यक्तित्व का एक न एक हिस्सा ऐसा होता है जिसे दूसरों के सन्मुख रखने में वह हिचकिचाता है—अपने घनिष्ठ से घनिष्ठ और अभिन्न से अभिन्न के सन्मुख भी। मैं यह आल्मारी किसी को नहीं देखने देता।" सूरजजी के मुँह पर बड़ी विवशता और कातरता थी।

शरद को कुछ ऐसा अभ्यास होगया था कि वह सूरजजी के द्वारा कही गई गम्भीर से गम्भीर बात को भी ज़रा विनोदपूर्ण ढंग से सुने। उनकी इस बात से उसे बहुत आश्चर्य हुआ। पल्ला उसने छोड़ दिया और खेद के स्वर में कहा—"सॉरी, सूरज जी मुझे मालूम नहीं था।" वह कुर्सी पर आ बैठा। मन कुछ खिन्न और उचड़ा-उखड़ा-सा हो उठा। उसे लगा अब वातावरण गम्भीर होता जायेगा।

"हां, यह तो बिल्कुल ठीक है, हर नये आदमी को सभी बातें कैसे मालूम हो सकती हैं?" सूरजजी ने बिल्कुल ऐसे कहा जैसे कोई बात नहीं हुई और वे पीक थूकने भीतर चौक में चले गये। शरद और जया ने आश्चर्य से एक दूसरे की ओर और आल्मारी की ओर देखा। सूरजजी ने लौटते हुए कहा—"अब मैं यहाँ एक तख्ती लिखकर लटकाने वाला हूँ। मेरे एक दोस्त बहुत बड़े और अच्छे साहित्यकार हैं। दिनभर मिलने वाले लोग उन्हें तंग करते रहते थे और हरवक्त कोई न कोई बैठा ही रहता था। न खाने जा पाते न नहाने। बेचारे इसी डर के कारण रात को दो-तीन बजे लिखते-पढ़ते। लेकिन इसके लिये ज़रूरी था कि आदमी दो-तीन घटे दिनमें सोये। लेकिन यार लोग सोने की फ़ुर्सत ही क्यो देने लगे। शिष्टता के नाते मना भी कर नहीं सकते—ज़रा भी बात करने में या मिलने में अनिच्छा दिखाएँ तो घोर घमडी घोषित किये जाये। भीतर बैठे है, अगर मना करवा दे तो लोग बड़ा आदमी या 'महान' कहने लगे। बहुत ही परेशान थे बेचारे। आखिर उन्हें एक तरकीब सूझ ही गई। वे कुछ पट्टियाँ बनवाकर लाये. उनमें किसी पर लिखा था—"आपकी बड़ी कृपा होगी, यदि आप मुझे केवल घटे भर लिख लेने दें।" या "मैं इस समय सो रहा हूँ, कृपया मुझे जगाएँ नहीं।" अब जो काम करना होता वही पट्टी लटका देते। तब कहीं जाकर उन बेचारे को साँस लेने को वक्त मिलता।"

जयाने इधर-उधर देखकर मुस्कराते हुए पूछा—"तो इस वक्त आपने कौन-सी पट्टी लटका रखी है?"

सूरज जी हँसे, बोले—"आज बनवा कर लाऊंगा। "मेहमानों की खातिर कर रहा हूँ, कृपया विघ्न न डालें।" वे फिर हँस पड़े। जयाने हँसकर और शरद ने ओठों मे ही मुस्कुराकर उनकी बातों मे विनोद लिया। असल में शरद इतनी जल्दी प्रकृतिस्थ नहीं हो पाया था। उसे उत्सुकता थी कि आल्मारी में ऐसी क्या व्यक्तिगत चीज़ थी जो देखने से ही खराब हो जाती? उसे देश-बन्धुजी के शब्द याद आगये कि आदमी कुछ सनकी है। उसके मन में हल्की-सी

विरक्ति जागी।

जया खड़ी ही चारों देख रही थी। भीतर जाते हुए मुड़कर सूरजजो ने कहा—"आप बैठिये न, खड़ी क्यों हैं!"

उसके जाते ही शरद ने कहा—"आदमी कुछ सनकी है, थोड़ा झक्की।"

"इण्टरैस्टिंग है।" जया कुर्सी पर बैठकर जरा झुकी और बरामदे में देखने का प्रयत्न करते हुए बोली। उसने अपना पल्ला जिसका सिरा सिर के ऊपर से लगाकर दाँतों में दबा रखा था, कमर के पास खींचकर कन्धे पर ठीक किया।

"पहले पहल मुझे भी लगा था। लेकिन देख लेना, जब तुम चलोगी तो ज़रूर तुम्हारे बारे मे अपनी राय देगा!" शरद बोला।

"तो इस में बुरा माननेकी क्या बात है? हर आदमी किसी न किसी के बारे मे अपनी राय बताता ही है; यह शायद उसे कह देते हैं। हम लोगोंने इनके बारे में अपनी राय नही बतलायी है? और सभी को अपनी-अपनी राय देने की आज़ादी है। दादा, आप तो हरबात में तिनक जाते हैं।" अपनी चीज है, कोई नही देखने देता।" जया ने विद्वानों की तरह कहा।

"तुम मुझे यहाँ मरवाओगी! दादा-वादा कहोगी तो एकाध झापड मार दूंगा।" शरद मुस्कुराया। उसने बनावटी क्रोध से उधर देखा। निगाह मिलते ही दोनों बड़े अर्थपूर्ण ढंग से मुस्कुराये, फिर हँस पडे। जया लज्जा से कट गयी और दरवाज़े मे बाहर देखने लगी। उसके गालो पर मुस्कुराहट से गड्ढे उभर आये थे। खुले दरवाज़े मे दूर पर प्रेस का ऑफ़िस इत्यादि दिखाई देते थे। ज़रा झाँक कर देखनेपर देशबन्धुजी की इस कोठी की बाउण्ड्री का गेट और सड़क भी। बाहर धूप-छाँह का खेल हो रहा था। कभी छाँह सिमटती पास आजाती और कभी धूप उसका पीछा करती उसे दूर खदेड़ ले जाती। सड़क पर रह-रहकर कोठी में आती-जाती या गुज़रती कारें, भूसा लादे बैल-गाड़ियाँ, या छाता लगाये आदमी छोटे-छोटे से दिखाई देते। एक कुर्सी पर एक सचित्र अख-बार पड़ा था, शरद उसे उठाकर देखने लगा। जया कहीं गहरी डूब गई। उधर देखते हुए ही उसने पूछा—"शाम के खानेका क्या होगा?" उसकी चिन्ता गहरी होकर भवों के रूपमें ही सिकुड़ आई थी।

"यही मैं सोच रहा हूँ।" शरद ने भी उसी चिन्तित स्वर में कहा। वह पत्रिका देखता रहा।

"आपने शेक्सपियर की वे लाइनें पढ़ी हैं जब हैमलेट कहता है कि सोचने में ही दिमाग़ का सारा रस निकल जाता है, और आदमी काम कुछ नहीं कर पाता। शाम तो अभी बहुत दूर है। और कुछ न हो तो कोठी के दूसरे वाले सिरे पर एक कैण्टीन है, लेकिन वह खुलता ऑफ़िस टाइम में ही है।"—सूरज जी कह रहे थे। शायद उन्होंने शरद की बात सुनली थी।

जयाने सिर घुमाकर देखा—कमरे के सामने बरामदे में आस-पास कुछ डिब्बे-डिब्बियाँ इधर-उधर रखे हुए सूरज जी स्टोव में स्पिरिट डालकर दियासलाई घिस रहे थे। एक ओर एक डलिया रखी थी जिनमें प्याज के कुछ गड्डे-सूखा-सा हरा धनियाँ, और काफ़ी आलू भरे थे। ऊपर एक आधा-बन्द चाकू पड़ा था। जया ज़रा अस्त-व्यस्त हो उठी। उसने खड़े होकर अधर चलते हुए कहा—"ये आप क्या कर रहे हैं ? लाइये मैं जानती हूँ, ये काम तो हमलोगों के हैं।"

"नहीं-नहीं जयाजी, आप वहीं बैठी-बैठी देखती रहिये। कोई ऐसी-वैसी चीज खिलानी होती तो कैण्टीन से बासी-तिबासी बिस्किट-केक कुछ भी मँगवाए जा सकते थे। आज आप सूरज के हाथ का भी तो खाना देखिये।" स्टोव से लपटें निकल रहीं थीं। एक हाथ से स्टोव, दूसरे से पम्प पकड़े वे लपटों से अपना सिर बचाते हुये बोले—"आप लोगों ने तो सारे काम हमारे ही ऊपर छोड़ दिये है, कुछ और रह गये हैं सो उन्हें और छोड़ देंगी।"

जया का चेहरा लाल पड़ गया। शरद ने आंखे उठाकर उधर देखा, और फिर पत्रिका को देखने लगा। जया दरवाज़े पर खडी थी, बोली—"अच्छा आप हटिये।"

शरद की इच्छा हुई ज़ोर से कह दे, 'क्यों ज़िद कर रही हो', लेकिन एकबार और पलक उठा कर देखने के सिवा उसने कुछ नहीं किया।

'देखिये श्रीमती जयाजी, सूरज इसलिये तो आपको बुला कर लाया नही है। आप चुपचाप देखती जाइये, सूरज क्या-क्या बनाता है, कैसे-कैसे बनाता है। फिर आपको मालूम क्या कि मैं आपकी खातिर किस चीज से करने वाला हूँ ?" स्टोव में हवा भर चुकने के बाद उन्होंने कहा।

"देखिये, यह तो अच्छा नहीं लगता—आप बताते जाइये न।" जया ने अनुरोध किया और एक निगाह भीतर सारे मकान में घुमाई।

"अच्छा, नहीं मानतीं तो लीजिये यह आलू छीलिये। वैसे यह अच्छा नही लगता कि दस मिनट के परिचय में ही आपसे मैं आलू छिलवाने लगूं।" सूरज जी बोले और वे बरामदे के सिरे वाले कमरे में कुछ लेने चले गये।

"बेकार ज़िद कर रही हो, वह किसी की नहीं मानेगा। जो इच्छा हो सो करने दो।" उनके जाते ही शरद ने अपनी भृकुटि झलाहट निकाली।

"यह भी तो फिर अच्छा नहीं कि ठाठ से बैठे देखते रहें। थोड़ी बहुत हैल्प तो करनी ही चाहिये।" जया बैठ कर आलू छीलने लगी—दिमाग में आने लगा यही सब प्रबन्ध अपने लिये भी करने हैं। बोली—"आप तो रोब से बैठे अखबार पढ़ रहे हैं।"

शरद ने ज़ोर से अखबार बन्द कर दिया—मुस्कुराने का प्रयत्न करते हुए पूछा—"कहिये, क्या करूँ ?"

"बैठिये और मुझे देखिये ! हाँऽऽ नहीं तो—।" आलू छीलते हुए ही उसने झिड़का।

"—कि कितनी खूबसूरत हैं।" शरद ने वाक्य पूरा किया।

"जी नहीं, देखिये कि आलू कैसे छिलते हैं। सारा खाना साथ बनवाना पड़ेगा, समानता के उपदेश तो बड़े ज़ोर से दिये है, अब प्रैक्टीकल का वक्त आया है।" जया की आंख चमकने लगीं थी। हाथ आलू छील रहे थे। उसने सामने वाले कमरे की ओर देखा। स्टोव सांय-सांय कर रहा था।

एक हाथ में छोटी-सी कनस्टरी और दूसरे हाथ में एक जालीदार पलटा, फ़ाइ गपैन इत्यादि लिये हुए सूरजजी चले आ रहे थे।

"आप सच मे, बेकार तकलीफ़ कर रहे हैं। खातिर ही करनी थी तो कहीं और चल कर कर लेते, किसी और दिन कर लेते। इतना सब करने की क्या ज़रूरत थी ?" जया ने सहानुभूति और खेद मे कहा।

पास आकर वे बोले—"शरद बाबू, सूरज हर काम को अपने हाथ से ही करने मे विश्वास करता है। आप प्रोफेसर है, कलक्टर हैं या जो भी कुछ तीसमार खा है अब यह सब आपकी छाती पर इतना अधिक क्यों सवार रहता है कि आप एक मिनट को भी स्वच्छन्द और उन्मुक्त सास नही ले सकते ? रास्ते में चले जा रहे है तो ऐसे जैसे किसी ने चाबी भर कर सरका दिया हो। यहां तो सिद्धान्त ही यह है कि आदमी जहाँ भी जब भी रहे, ज़रा चहचहाता न रहे तो उसका होना न होना बेकार है।" फ़ाइ ग पैन को उन्होंने स्टोव पर रख कर उसमें कनस्टरी से घी डाला, फिर पलटे के पिछले हिस्से से दो एक डिब्बे खोले, बन्द किये और आखिर बरामदे के एक ओर रखी बाल्टी मे तैरते पानों के पास जा पहुँचे।

जया उनकी हर हरकत को ग़ौर से देख रही थी। इधर-उधर देख कर ही अपनी न जाने किस अद्‌भुत शक्ति से उसने समझ लिया कि यह आदमी बहुत काफ़ी समय मे स्त्री के साथ मे वंचित है और यही शायद इसकी नियति हो गई है। आल्मारी न छूने देने की बात से उसकी जिज्ञासा उधर ज़रूर बढ़ी, लेकिन उसे शरद का यह व्यवहार अत्यधिक स्वच्छन्दता बरतना लगा। अधिकतर अभी तक उसने ऐसे लोगों को ही देखा था जिनसे परिचय धीरे-धीरे गहरा होता जाता है—खुलता है, लेकिन न जाने क्यों इस व्यक्ति से तीसरे ही मिनट ऐसा लगने लगा जैसे काफ़ी दिनों मे जाने-पहचाने एक व्यक्ति से मिले हों। वैसे कहना तो लोगों का यह है कि जो आदमी एकदम खुलने की कोशिश करे वह विश्वसनीय नहीं होता। लेकिन यह बनी-बनाई कहावत उसे यहाँ फ़िट करना इस नये आदमी के प्रति अत्याचार लगा। खैर, अब तो यहाँ हैं—अब क्या होगा ? और सब सामान कहाँ से आयेगा ? पीछे क्या हो रहा होगा ? इत्यादि प्रश्नों और समस्याओं को जैसे वह एकदम भूल गई थी। और बात-चीत के सिलसिले में शरद उस ओर संकेत न कर देता तो शायद उसे इन

सबका ध्यान भी न आता।

वे लोग एक बड़ी-सी प्लेट में ऊपर तक पकौड़े-मंगौड़े और भजिया रख कर उस गोल मेज़ के चारों तरफ़ बैठ गये थे और सामने रखे प्यालों मे जब चाय का दूसरा दौरा समाप्त हुआ तो शरद ने कहा—"आज तो शायद शाम को भी ज़रूरत नहीं पड़ेगी।"

"और कल के लिये इसमें से बच ही जायेंगी, है न ?" जया ने पकौड़ा मुँह में रख कर कहा—"ऐसे काम नही चलेगा, अब गृहस्थी की चीज़ें इकट्ठी कीजिये।"

"देखिये, शरद बाबू, सूरज में एक और विशेषता है, वह है चीज़ को भाँप जाने की। वह किसी से कुछ कहे या न कहे लेकिन भाँप हर चीज़ को जाता है। सच बात तो यह है कि मुझे आप दोनों में से कोई ऐसा नहीं लगता जिसने ज़िन्दगी में गृहस्थी का कभी मुँह देखा हो।" एक हाथ में प्याला और एक बड़ी-सी भजिया लेकर दुनियाँ के नक़्शे को देखते हुए वे बोले।

शरद और जया दोनों चौक गये। उन्होंने एक साथ झटके से सूरजजी की ओर देखा। वे एकटक गम्भीर होकर सामने देख रहे थे। होठों पर जरा भी व्यंग नहीं था। शरद भी गम्भीर हो गया। उसने बताया—"जी हां, सो तो ठीक है, हम लोगों की शादी अभी हुई है। और हाँ, सूरज जी एक कष्ट आपको देना है, आज सन्ध्या को आप हमारे साथ ज़रा बाजार तक चल सकेंगे ? आपके क्रेडिट पर कुछ चीज़ें लानी हैं ताकि आपकी खातिर के बोझ को लौटा सकें। वर्ना अब तो हालत यह है कि उसमें बाबा आदम के ज़माने की एक खाट वहाँ पड़ी है—और शायद हफ़्ता भर पहले ही केशव जी ने मेरे लिये कमरा झड़वा दिया था। बिजली न होना भी बड़ी दिक्क़त पैदा करेगा।" शरद चिन्तित स्वर मे शिकायत करता-सा बोला।

"तो एक काम आप क्यो नहीं करते ?" सूरज जी ने समझाया—"आपको सीधे देशबन्धुजी से मिल लेना चाहिये, और तब आप अपनी सारी बाते उन्हें बताइये। सुबह से मिले तो नहीं होंगे न ?"

"कहां मिलना हो सका ? आते ही चिट भिजवाई थी कि जब भी फ़ुर्सत हो मुझे बुलवा लें। अभी तक तो बुलवाया नहीं है। शायद बहुत ज्यादा बिज़ी हैं। ऐसे ही रहते हैं क्या ?"

"खैर, उनके बिज़ी होने का तो कहना ही क्या है। शायद मिनिस्टर का भी चक्कर दो-एक दिन में किसी दिन इधर लगने वाला है। वैसे तो और सारी बातें तो आप उस दिन तय कर ही गये होंगे ?"

"कहाँ ?" उत्तर दिया जया ने—"सारा रोना तो यही है, कोई बात भी तो नहीं तय की। न तनुखा, न रहना, न सहना—कुछ भी नहीं। कोई क्लास-फ़ैलो मिल गई थी, बस उससे ही गप्पें लड़ाते रहे। और मुझे ले आये हैं। इन्हें तो

कोई मिल जाना चाहिये, ऐसा बातूनी साथी, फिर सुध-बुध नहीं रहती दीन-दुनियाँ की।" जया के स्वर में शिकायत थी, और वह अपनी बात ऐसी कुटिल मुस्कुराहट में लपेट-लपेट कर कह रही थी जैसे पति की स्वच्छन्दताओं से लम्बे अर्से से परेशान एक पत्नी हो। बात खत्म कर के उसने होंठ एक ओर सिकोड कर सिर झटका।

"भाई, जया जी, क्लास-फ़ैलो की तो बात ही और है।" सूरज जी शरद को देखकर, रहस्य-पूर्ण ढङ्ग से मुस्कुराये. जैसे कह रहे हों याद कर लो उस दिन की बात। फिर अचानक बुजुर्गों की-सी गम्भीरता से बोले—"शरद बाबू, की तो आपने यह बहुत बड़ी ग़लती ही। इन बातों में तो बहुत ही बिज़नैस-लाइक रहने की ज़रूरत है, समझे। तनुखा तक भी तो तय नहीं की आपने और आप चले आये ?"

मन ही मन तो शरद को भी शुरू से ही महसूस हो रहा था कि उसने बहुत बडी गलती कर डाली है, लेकिन यह बात उस समय से उसे ज्यादा तीव्रता से व्याकुल करने लगी थी, जब यह सब बताने पर जया ने कुछ प्रश्नों को उसके सामने रख दिया था। जया की यह बात सुनकर उसे कुछ बुरा भी लगा था कि—"वकालत आप कैसे करेंगे ?" सचमुच आश्चर्य उसे इसी बात का था कि कैसे उससे इतनी बडी बेवकूफी हो सकी ? उसने अपराधी की तरह कहा—"अब तो जो भी हो गया, सो हो गया, सूरज जी अब बताइये क्या करें ? देखिये, यहाँ हम तो किसी को जानते नही हैं, न हमें मालूम कि कैसे क्या होगा ? आप ही हमें गाइड कीजिये।"

"तो खैर, कोई बात नही, आप मिलकर पहला काम यह कीजिये कि इन सब प्रबन्धों का जिक्र कीजिये, कुछ रुपया माँगिये, बिजली के लिये कहिए, और साफ़ या बातों-बातों में यह पता लगाइये, देंगे क्या ?"

सूरज जी की सलाह को शरद ने आज्ञाकारी बच्चे की तरह सिर हिला-हिला कर स्वीकार किया। सब कुछ बता देने के बाद वे बोले—"हाँ, अब पहली बात पर आइये, आप को सामान दिलाने की। अच्छा, एक बात है शरद जी, आप क्या सचमुच जानते हैं कि आपको किस-किस चीज़ की ज़रूरत पड़ेगी ? मुझे तो लगता है कि जयाजी की ज़िन्दगी लड़कियों को बहकाने में गई है और आपकी सिर्फ वकीलों से बहकने में। अच्छा, आपके विवाह को कितना वक्त हो गया होगा ?"

फिर दोनों ने सकपकाई निगाहों से एक दूसरे की ओर देखा। जया ने सिर झुका लिया। शरद मुँह में एक पकौड़ा रख रहा था—उसने जल्दी से उसे मुँह में भरकर इस तरह चबाना शुरू कर दिया, जैसे मुँह की चीज़ खत्म हो जाय तो वह जवाब दे। वह सोचने का समय चाहता था। चाय का एक घूँट भरकर कुछ गला साफ़ कर वह बोला—"हमलोगों की ?—शादी तो हमलोगों की पहले हुई, लेकिन... लेकिन समझिए विवाहित जीवन की शुरूआत अब हो रही है..."

"हाँ, सूरज का भी अन्दाज़ यही था कि आप ज़िन्दगी यहीं से शुरू कर रहे हैं।" सूरज जी ने अपनी ओर से कहा—और ज़रा उत्साह से बोले—"शॉ ने शादी के बारे में क्या कहा है, जानते हैं ? उसने कहा है—पुरुष को चाहिये कि जब तक हो सके, इस बला को टाले, इससे दूर रहे। और स्त्री को चाहिये, जितनी जल्दी हो सके शादी कर डाले...।"

"तो शायद आप इसीलिये इस बला से दूर हैं ?" जया बात काटकर बोली और उसने मुस्कुराकर शरद की ओर देखा। अपने विवाह के विषय में साफ़ बात कहने की शरद को जो झिझक थी, उससे वह ज़रा खिन्न हो रही थी, फिर भी मज़ाक करने के अवसर को नहीं छोड़ सकी।

सूरजजी ने इतने ज़ोर से क़हक़हा लगाया कि दीवारें और छत सब फटते-से लगे। शरद को लगा, यह हँसी हृदय की हँसी नहीं है। जब वे चुप हुये तो पाया कि दोनों की उत्सुक आँखें उन्हीं की ओर लगी हैं। उन्होंने सोचकर कहा—"हाँ तो, मैं क्या कह रहा था.....शरद बाबू, मुझमें एक बुराई है। बात बहुत जल्दी भूल जाता हूँ।" माथे पर दो-तीन बार उन्होंने उँगली ठोंकी, लेकिन बात याद नहीं आई। प्रयत्न करना उन्होंने एक झटके से छोड़ दिया—"ख़ैर छोड़िये, तो शरदजी, आल्मारी की बात पर आपने बुरा तो नहीं माना ?"

"नहीं नहीं, उसमें बुरा मानने की क्या बात है ? यह तो बहुत रीज़नेबुल चीज़ है।" शरद ने मुँह से यह कहा, लेकिन तभी उसके दिमाग़ में एक चीज़ टकराई। अजब है यह जगह 'स्वदेश-महल' भी, जहाँ हर व्यक्ति कुछ न कुछ छिपाये हुए है। उसके दिमाग़ में उस दिन की बातें ताज़ी हो आईं। उस दिन का पद्मा का व्यवहार उसे अभी तक कचोट रहा था। मायादेवी, देशबन्धुजी सभी की सूरतें साफ़ हो आईं। उसकी इच्छा हुई कि सूरज जी से उनके सम्बन्ध में कुछ पूछे। उसे तभी सूरजजी का नाम सुनकर मायादेवी के शब्द याद आये तो वह उत्सुकता रोक ही नहीं सका।

वह इस सम्बन्ध में शब्द खोज ही रहा था कि कार का दरवाज़ा खुलने के शब्द ने तीनों को चौंका दिया।

वही लम्बी चमचमाती बढ़िया किश्तीनुमा कार, छोटे-छोटे गड्ढों में इधर-उधर सूखते पानी को उछालती, बड़े बेमालूम तरीक़े से, दरवाज़े के सामने आकर खड़ी हो गयी थी। रुक जाने से हिचकोले खाती गाड़ी का अगला दरवाज़ा खोलते-खोलते, झुके हुये देशबन्धु जी की बाहर निकलती हुई चमकदार चादर दिखाई दे रही थी।

"ओहो, आज तो सूरजजी के यहाँ दावत हो रही है, भाई सूरजजी, हमसे ऐसी क्या नाराज़गी ?—हमें भी बुला लेते ! बरसात के मौसम में कुछ चाय पकौड़े हम भी खा ही लेते।" खद्दर की धोती के अगले पटलीदार लटकने वाले

हिस्से को एक हाथ से ज़रा-सा उठाये हुये देशबन्धुजी की भव्य-मूर्ति आगे बढ़ी, होठों पर वही मुस्कान और चश्मे के पीछे से हँसती आँखें—"भाई शरद बाबू, माफ़ करना 'चिट' आप की पहले भी मिल गई थी, लेकिन क्या करूँ कुछ ऐसा बिज़ी था कि दम मारने की फ़ुर्सत नहीं मिली। अब भी एक जगह जा ही रहा हूँ। सोचा मिलता चलूँ, वर्ना न जाने तुम क्या सोचने लगो।"

कप और हाथ की चीज़ें रखकर तीनों ही उठ खड़े हुये थे। शरद ने नमस्कार किया। सिर पर फिर साड़ी को ठीक करके सिर झुकाये ही जया ने दोनों हाथ जोड़े।

"आइये—अब आइये न, बस, ज़रा तामसी खाना था। आपको कष्ट होता।" सूरजजी ने ज़रा पुर-मज़ाक लहजे में कहा और लखनवी अन्दाज़ से एक तरफ़ हट कर ज़रा झुके हुए दोनों हाथ खाने की तरफ इस तरह कर दिये इण्डियन एयरवेज़ के दफ़्तरों के सामने चपरासी का मॉडल हो।

अत्यंत विनम्रता से शरद हाथ जोड़े रहा, लेकिन जब ध्यान आया कि यह भद्दा लगता है और विशेष रूप से सूरजजी का समानता का व्यवहार देखा तो धीरे-से हाथ लटका लिये 'आप भी आइये न।"

"खाइये-खाइये आप लोग!" शरद से बात करते हुए दो बार उन्होंने जया को देखा। वह वैसे ही खड़ी थी। वे बोले—"और शरद बाबू, यह कहां का क़ायदा है भाई, आप तो हमारे मेहमान हैं, जब तक कुछ और इन्तज़ाम हो आप उधर खायेंगे, माया बहन के साथ..."

"जी, आज सूरजजी ही हठ कर बैठे।" शरद गद्गद् हो आया। उसने जया का परिचय कराया—"यह जया, मेरी साथिन। आप बैठिये न।" जया ने एक बार फिर निगाहें उठा कर देशबन्धुजी को देखा, हाथ जोड़े।

"बहुत ठीक! अरे भाई, इतने शरमाने की क्या ज़रूरत है? हमारी पद्मा बेटी से मिलाया इन्हें? चलो एक साथिन हो गई उसे भी, मन तो लगा रहेगा। मायादेवी और पद्मा से मिलाओ भाई इन्हें। वहाँ क्या पढ़ रहीं थीं?" अत्यन्त ही स्नेह से देशबन्धुजी ने बेझिझक होकर बड़े हल्के-से उसके कन्धे पर हाथ रख दिया। जया नीचे देखकर यों ही चप्पल में पाँव के अंगूठे को मोड़ और सीधा कर रही थी—उसका शरीर ऊपर से नीचे तक सिहर उठा। उसकी इच्छा हुई ज़ोर से हाथ हटादे, लेकिन वह यों ही रही।

"नहीं, पढ़ा रही थीं.....बी० ए०, बी० टी० हैं।" उत्तर शरद दे रहा था।

"बस, बहुत अच्छा!" देशबन्धुजी शायद जया की झिझक समझ गये। उन्होंने कन्धे से हाथ हटा लिया और उत्साह से हाथ हिलाकर बोले—"बस, बहुत ही अच्छा। ट्रेण्ड हो ही, जया बेटी तुम हमारे स्कूल में पढ़ाओगी। लो भाई शरद

बाबू, हमें तो तुम्हारी क़िस्मत से रश्क होता है। अब तो तुम्हारे रोब हो गये। बस इतना ध्यान रखना कि सूरजजी के प्रभाव से बचाये रखना—यह आदमी निहायत ही ख़तरनाक हैं।" परिहास-पूर्वक ज़ोर-ज़ोर से हँसते हुए वे कह रहे थे।

लेकिन सूरजजी इस समय वहाँ नहीं थे। शरद ने देखा वे किधर हैं। वे कार के पास खड़े भीतर बैठे लोगों से बातें कर रहे थे। देशबन्धुजी की बातें करते हुए भी वह उन लोगों की बातों के अंश सुन सकता था।

"अरे वाह, सूरजजी है, भई हमारा भी जयहिन्द लेना।" जब यहाँ जया और देशबन्धुजी का परिहास चल रहा था तब कार के पिछले हिस्से से किसी ने सिर निकाल कर तपाक् से कहा। साँवला चेहरा, मुँह पर हल्के-हल्के चेचक के दाग, उड़ते पक्षी के सिलुएट चित्र तरह तराशी हुई मूँछें घनी भौंहें. छिदे कान, बाईं ओर को झुकी थ्री-नॉट-थ्री की टोपी, दाहिनी ओर के सिर के बड़े क़रीने से कढे बाल, खद्दर का कुर्ता, हाथ में बड़े अभिजात्य ढंग से पकड़ी हुई सिगरेट और कलाई में सुनहरी चेन में काले डायल की चमकती घडी। उँगलियों में सफ़ेद और हरे नगवाली दो अंगूठियाँ। मुट्ठी-बन्द करके उगलियों के बीच फँसी हुई सिगरेट की राख झाड़ने लिये वे बार-बार चुटकियाँ बजाते थे।

"अरे वाह कथूरियाजी, आप वहाँ कहाँ घोंसले में बैठे रह गये ? आइये न।"

नहीं भाई, यही ठीक है। डर लगता है सम्पादकों से, कल ही कुछ उल्टा-सीधा लिख दें, वैसे ही आजकल मिल में कुछ गड़बड़ियाँ चल रही हैं।"

"क्यों कोई ख़ास बात होगई ?" सूरजजी ज़रा झपटझर उधर झुके।

"देखा कोतवाल साहब—"कथूरियाजी ने अपने पास ज़रा अँधेरे में बैठे व्यक्ति की ओर मुड़ कर कहा। इन सज्जन की आँख-नाक और लगभग पूरी कन-पटयों को ढँकनेवाला चौडे मर्करी कांचों का हरा पाइलट-चश्मा भर अच्छी तरह चमक रहा था, ध्यान से देखने पर ढीली-ढाली क्रीम-कलर शार्कस्किन की मनीला बुश्शर्ट में रौबिले चेहरेवाला भारी-सा आदमी दिखाई देता था, जिसके चौड़े माथे के बाल पीछे कढ़े थे। वह निरन्तर देशबन्धुजी की ओर मुँह किये हुये जया को घूर रहा था। उसने कथूरियाजी की बात पर विशेष ध्यान नहीं दिया, लेकिन कथूरियाजी ने अपनी बात जारी रखी "अरे भाई, ये पत्रकार और कम्यूनिस्ट, गड़बड़ शब्द को डिक्शनरी में भी देख लेंगे तो उधर भागेंगे !" फिर मुट्ठो बनाकर ज़ोर का कश हुक्के की तरह खींचा और हल्के-हल्के खांसते हुए नाक और मुँह से ढेर-सा धुँआ छोड़ दिया, बोले—"क्या तामसिक खाना खिला रहे थे ? अरे, वो गांधीवादी आदमी हैं, उनकी आत्मा का हनन होगा, इधर लाओ....."

"अरे हाँ, जैनी लोग तो यह सब मानते नहीं हैं न, उनकी आत्मा होती

ही कहां है ?" सूरजजी ने हँसकर उनकी बात की ताईद की, और प्लेट उठाकर उनके पास जा पहुँचे। बड़ी बेतक़ल्लुफ़ी से उन्होंने प्याज़ का एक पकौड़ा उठाकर मुँह में रख लिया। सूरजजी बोले—"लेकिन आपको यह शायद नहीं मालूम कि सच्चे जैनी धरती के भीतर पैदा होने वाली कोई चीज नहीं खाते। प्याज़ और आलू दोनों चीज़ें ऐसी ही हैं।"

सूरजजी की पहली बात जैसे एकदम कथूरियाजी को बेध गई थी, लेकिन वे फिर एकदम सँभल कर बोले—"हाँ, यार, है तो ऐसा ही, लो तुमने तो भाई, हमारा धरम ही भ्रष्ट कर दिया। पर खैर, गांधीवादी चाहे न मानते हों, लेकिन गांधीजी अगर मर न जाते तो प्याज़ पर एक थीसिस लिखने वाले थे—"

"हाँ, उनको भी तो कष्ट होगा कि जवाहरलाल ने डिस्कवरी ऑफ़ इण्डिया लिख दी है" सूरजजी बोले—"और वे कुछ खोज कर ही नहीं पाये।"

देशबन्धुजी से बातें करते हुए अवचेतन मन में शरद यह सब सुन-देख रहा था। कभी-कभी क्रम टूट भी जाता था। लेकिन एक वाक्य सुनकर अचानक उसका ध्यान उधर खिंच गया। उसने उधर कनखियों से देखने की कोशिश की। सिर हिलाकर बहुत ही भोलेपन से कथूरियाजी कुछ कह रहे थे। फिर सिर झटककर इशारे से सूरजजी को पास बुलाकर जरा आँख मारकर वे कुछ बोले—और कोतवाल साहब भी उधर ही झुक आये। बहुत प्रयत्न करने पर भी शरद केवल 'नया-माल' जैसा कोई शब्द सुन पाया, जिसके जवाब में सूरजजी उन्मुक्त होकर आसमान की ओर मुँह करके हँस पड़े—"कथूरियाजी, होश की दवा करो।"

कथूरिया बेशर्मी से मुस्कुराया—"समझेंगे।"

"सोच लेना!" बात यद्यपि सूरजजी ने हँस कर कही थी; लेकिन उसमें हल्की चुनौती थी।

तभी देशबन्धुजी लौट कर कार की ओर बढ़े। वे कहते आ रहे थे—"आज तो शायद लौटते हुए देर हो जाय। कल ऑफ़िस में आ जाना। जया बेटी के लिये भी स्कूलमें कुछ कर ही दूँगा। हाँ, माया बहन और पद्मा बेटीसे ज़रूर मिलाना इन्हें। जिस चीज़ की भी ज़रूरत हो दोनों में से किसी से कह देना—पद्मा से या माया बहन से। वे सब प्रबन्ध कर देंगी, समझे! ज़रा भी तकलीफ़ उठाने की ज़रूरत नहीं है। वैसे सूरजजी हैं ही। यहाँ तो सब एक परिवार की तरह ही रहते हैं।"

शरद और जया के जुड़े हुए हाथों के जवाब में हाथ जोड़ते हुए वे कार में जा बैठे। दरवाज़ा बन्द किया, चाबी घुमाई, खुद ही ड्राइव कर रहे थे, स्टीयरिंग घुमाते हुए पीछे मुड़ कर, कथूरिया से बात करते सूरजजी से बोले—'भाई सूरजजी क्या समझा रहे हो इन्हें?" उनके होठों पर वही मुस्कुराहट थी।

"कुछ नहीं जी, आपस की बातें हैं।" सूरजजी ज़रा अलग हट गये। कार सरक गई। कथूरिया ने झाँक कर देखा और मुँह से सिगरेट की मुट्ठी हटा कर

मुस्कुराते गोल होठों से सधी हुई धुँए की धारी, अर्थपूर्ण ढङ्ग से सूरज की ओर फेंकी।

कार मेंहदी की लाइनों में घूमती हुई चली गई।

"रोग्ज़!" सूरजजी ने कहा और मुड़े।

"कौन?" शरद ने पूछा। यद्यपि उन्हें सनकी समझकर उनकी बात को गम्भीरता-पूर्वक लेना वह छोड़ चुका था, फिर भी उनका यह कहना उसे पिछले सुने वाक्य के सिलसिले में ज़रा रहस्यमय लगा।

"अरेऽ, सभी!" लापरवाही से सूरजजी ने हाथ मे थमी हुई प्लेट फिर मेज़ पर रख दी और कुछ नाराज़ से कुर्सी पर बैठ कर एक भजिया को मुँह के पास ले जाकर उँगलियों में घुमाते हुए घूर-घूर कर देखते रहे।

लेकिन शरद बहुत प्रसन्न था। उस पर इस बात का कोई असर न पड़ा। इधर सुबह जया की जानकारी में चिट भेजने पर देशबन्धु की के न मिलने से शरद मन ही मन कुछ खिन्न हो रहा था। जया क्या सोचती होगी, वहाँ से तो बड़ी-बड़ी तारीफ़ें करते लाए हैं, मेरे ऐसे सम्बन्ध हैं। और यहां किसी ने बात भी नही पूछी! कहते थे, मुझे यों खाना-खिलाया, यों दो घण्टे अपनत्व में भरे बातें करते रहे, और अब यह हाल हैं! उसे देशबन्धुजी पर भी बड़ी झुँझलाहट आ रही थी, कमसे कम एक शब्द में जवाब तो दिलवा ही सकते थे, बुलवा ही लेते। जया की इसी भावना को सँभालने के लिये जैसे वह यह दिखाने की कोशिश कर रहा था कि उसे जया का बहुत ध्यान है। इसीलिये भीतर से चिन्तित झुँझलाहट से—एक अज्ञात आशंका से भी—भरा होते हुए भी वह बाहर से एक निश्चितता और लापरवाही का भाव धारण किये था। अब जैसे उसके विश्वास को एक सुदृढ़ आधार मिल गया। देशबन्धुजी के प्रति कृतज्ञता और प्रशंसा से वह नत हो आया। यह ठीक है कि कांग्रेसी नेताओं और अधिकारियों के विषय में जो कुछ भी वह पढ़ता और देखता आया था, उस सबने इन सबके प्रति एक विद्रोह की भावना भर दी थी—लेकिन यह विद्रोह व्यक्ति के प्रति नहीं, पूरी संस्था के प्रति था। आदमी कांग्रेस में या बुरी से बुरी संस्था में नहीं होते—हो सकते, इस बात को वह कभी भी नहीं मान पाया था। देशबन्धुजी की ओर आकृष्ट होने का मुख्य कारण भी यही था। व्यक्ति के रूप में देशबन्धुजी हँसमुख हैं, मिलनसार हैं, विनम्र हैं, शालीन और निरभिमानी हैं—इस बात को वह अपनी दूसरी और तीसरी भेंट के आधार पर मानता जा रहा था। उसे लगा जैसे इन्होंने जया की आँखों में उसका सम्मान बढ़ा दिया। लेकिन जाने क्यों, उसे ऐसा लगता था कि नौकर और मालिक होते हुए भी सूरज और देशबन्धुजी में एक भीतरी काँटेबाजी है, जो हल्के व्यंग्यों के रूप में उभरती है। अभी एक बात उसकी समझ में नहीं आ रही थी, वह यह कि उस व्यंग्य के स्तर पर दोनों ही एक से हैं—एक बराबर हैं। वह इस समय देशबन्धु जी के

इतने सम्पन्न और समृद्ध होते हुए भी निरभिमानी होने और उनकी शिष्टता की तारीफ़ मन ही मन कर रहा था कि उसने सूरजजी का यह रिमार्क सुना।

"क्यों, एकदम सभी से कैसे नाराज़ हो उठे ?" जया और शरद दोनों पुनः बैठ गये थे। शरद ने पूछा—"पूरा तो नहीं सुना, कुछ मिल और माल-वाल शब्द कह रहे थे।"

"अरे यों ही, सभी बदमाश हैं, साले !" कह कर सूरजजी ने एक बार सिर झटक कर सारा गुस्सा दूर फेंक दिया। उनकी मुखाकृति एकदम बदल गई। मुख पर वही मुस्कान आ गई। जेब से रूमाल निकाला और चश्मे को पोंछते चुंधी-चुंधी आँखों से मुस्कुराते हुए बोले—"आपकी तो बड़ी घुट-घुट कर बातें हुईं—क्या-क्या सुन लिया ?"

"कुछ नहीं, यही कहत रहे कि जया को स्कूल मे नौकरी लगा देंगे। पद्मा के लिये एक सहेली हो गई। दोनों का मन लगा रहेगा। मकान यही ठीक है, टैम्परैरीली आपसे बिजली ले ली जायगी बाद में फ़िटिंग करा देंगे। कारीगर है ही अपना, कभी भी आकर कर जायेगा।" शरद बोला, उसने देखा जया थोड़ी सुस्त हो गई है तो बोला—"और क्या कहते, मेरी किस्मत से रश्क कर रहे थे, जया को लेकर।" वह जया की ओर देख कर मुस्कुराया।

"खैर यह तो रश्क करने की बात है ही...—" सूरजजी ने भी उधर देखा।

"अच्छा आप भी !" शरद ज़ोर से हँस पड़ा—"यी टू ब्रूटस...!"

जया को मज़ाक अच्छा नहीं लगा। लजा कर क्रुद्ध स्वर मे बोली—"क्या बेकार की बातें कर रहे हैं आप लोग भी !" फिर यह सोच कर कि मज़ाक के वातावरण में उसकी यह बात ज़रा ज़्यादा तीखी है, विषय बदल कर बोली—"ऊपर की मञ्जिल में ही शायद वे लोग रहती है ?' उसे उस महिला ध्यान आ गया, जिनकी छाया आते हुए उसने देखी थी।

"हाँ, रहती तो ऊपर ही हैं, लेकिन यह जगह यहाँ से ज़रा तिरछी पड़ती है।" सूरजजी ने बताया फिर एकदम पूछ बैठे—"अच्छा हाँ, एक और बात आपको शायद नहीं मालूम !" कुछ क्षण रुक कर स्वयं ही बोले—"माताजी तो थीं ही, अब बेटी पद्मा भी सूरजजी से नाराज़ हो गई हैं। पद्मा का ज़िक्र आने से मुझे याद आ गया।"

"अरे कैसे ? मुझे नहीं मालूम। क्या खास बात हो गई ?" शरद ने उत्सुकता से पूछा, फिर उस दिन की बात याद कर के बोला—"अच्छा हाँ, एक बात बताइये सूरजजी, ये मायादेवी आपसे इतनी नाराज़ क्यों रहती हैं ?"

धूप धीरे-धीरे स्थायी रूप से कम होती जा रही थी, और क्षितिज के एक कोने से बादल घिरते चले आ रहे थे। हवा में नमी बढ़ गयी थी। उधर देखते हुये सूरजजी बड़ी कुटिलता और व्यंग्य से मुस्कुराये—"अभी आप नहीं सम-

झेंगे, शरद बाबू, ये बहुत गहरी बातें हैं। सब आ जायेंगी धीरे-धीरे समझ में। अभी तो स्वदेश-महल में आप आये ही हैं—आगे-आगे देखिये होता है क्या ?" उन्होंने जया की ओर देखा। जया सुस्त बैठी कुछ सोच रही थी। शायद उसने उनकी बात सुनी नहीं थी। उन्होंने कहा—"जयाजी, कहे तो चाय का एक और दौर चले ?"

जया चौंकी। शिष्टता से मुस्कुराकर बोली—"नहीं।"

"सुनते है, कुछ पामिस्ट्री का चक्कर था। आपने कुछ उल्टा-सीधा बता दिया था।" शरद ने पहली बात का सिरा पकड़ा।

"बता क्या सूरजजी ने अपने मन से दिया था ? जो लाइनें थीं, सो समझा दीं। वे ऐसे भड़क गईं जैसे मैंने ही बना दी हों।" बिना शरद को कुछ पूछने का अवसर दिये वे बोले—"अपनी तो कुछ क़िस्मत ही ऐसी खराब है, शरद बाबू, कि बुराई ही बुराई मिलती है। लोग खुद आ-आकर टकराते है और फिर सही-सही बता दो तो बुरा मानते है। एक विशफ़ुल-थिङ्किङ्ग होनी है न, पूछता हर आदमी अपने दुर्भाग्य और कमज़ोरियों के विषय में है—और वह भी ऐसी तटस्थता से जैसे इससे उसपर कोई असर नही पड़ेगा; लेकिन चाहता यही है कि हाथ देखने वाला उसके दुर्भाग्य को भी अच्छा ही कहकर पेश करे, या यह बतादे कि किस प्रकार वह उस दुर्भाग्य पर विजय प्राप्त कर लेगा। मान लीजिये, आप हाथ देखना जानते हैं, आपने मेरा हाथ देखा और बताया कि इस उम्र मे मुझे मर जाना चाहिये, या पागल हो जाना चाहिये, या जो भी कुछ हो, उसको सुनकर मेरी लामुहाला इच्छा होगी कि दूँ दो तमाचे खींच कर। और साला कीरो क्यों मारा मारा फिरा जनम भर ? सो व्यावहारिकता का तक़ाज़ा हो यह है कि सुदूर-भूत की बात बताये या सुदूर भविष्य की, निकट की या वर्तमान की बात तो बताये ही नही। ऑफ़िस में पद्मा जी हाथ दिखाने पहुँच गईं—मैंने बहुत टाला, नही मानीं, आखिर इधर-उधर की दो-एक बातें बताकर जान छुड़ाई। लेकिन ओफ़्फ़ोह !" आँखें बन्द करके सिहरने का भाव दिखाकर वे बोले—"टेरिबुल !"

"क्या ?" धैर्य-पूर्वक शरद ने उनके भाषण को सुना, लेकिन उत्सुकता इतनी बढ़ गई थी कि यह समय बड़ा उकताने वाला लग रहा था। वह खीझ रहा था कि जल्दी बता-बतूकर बात को समाप्त नहीं कर रहा, स्प्रिंग की तरह खींचे जा रहा है। दूसरी बेचैनी उसे जया की सुस्ती के कारण हो रही थी। पता नहीं उसे क्या हो गया, जबसे चुप बैठी है। काफ़ी देर हो चुकी थी और अब वह एकान्त चाहता था—आज की इन सब बातों पर जया की प्रतिक्रिया जानने के लिये।

"माँ और बेटी दोनों की ही हाथ की लाइनें बड़ी विचित्र हैं। एक की सारी लाइनें वीनस माउण्ट की तरफ़ जाती हैं, दूसरी की ल्यूना की तरफ़।

ऐसा ही एक साबिक़ा मुझे पाण्डिचेरी में पड़ा था।"

उन्हें विषयान्तर करते देखकर वह अधीरता से बोला—"वीनस और ल्यूना की भाषा छोड़कर आप मुझे सीधे और साफ़ तौर से समझाइये।"

"शरद बाबू, सूरज में एक बुराई है।" शरद की बेचैनी का आनन्द लेते हुए एक तरफ़ कुर्सी पर झुककर उन्होंने जेब से बड़े इत्मीनान से पान की डिबिया निकाली और खोलकर कत्थे में भीगा कपड़ा हटाते हुए जया की ओर बढ़ा दी—"लीजिये, आप तो शायद खाती हैं।"

"जी नहीं, मैं नहीं खाती।" नम्रता से वह बोली। कुर्सी के किनारे पर बाँह और कुहनी रखकर उसने कनपटी को एक उँगली और अँगूठे के सहारे टिका रखा था। बिल्कुल भाव-विहीन होकर वह बाहर देख रही थी।।

"लीजिये, खाने के बाद तो आप खायेंगे ही।" उन्होंने स्वयं पान निकालकर शरद की ओर बढ़ाया।

जया की सुस्ती और अन्यमनस्कता बँटाने के लिये शरद ने कई बार मुड़-मुड़कर उधर देखा। उसका एक पाँव मेज के एक ओर से जया के पाँव के पास रखा था, धीरे से उसने उसे दबा दिया। जया ने यों ही दृष्टि घुमाकर देखा।

"हाँ, टो मैं कह रहा ठा, शूरज मे एक बुराई है।" ऊपर मुँह करके वे कह रहे थे—"वक्त से पहले वह कुछ नहीं बटाटा, और वक्ट आने पर अपने बाप शे भी नहीं चूकटा।"

जया सूरज जी की ओर देखकर मुस्कुराई और झटके से उठकर बोली—"सूरज जी, हाथ तो हमें भी आपको अपना दिखाना है, पर अभी नहीं। अच्छा लाइये, आपका यह सब सामान रखवा दें, वर्ना आप कहेंगे, खाया-पिया और चल दिये।"

"न न न, ये ग़ज़ब मत कीजिये।" सूरज जी ने अपने पूरे पञ्जे इस तरह फैला दिये जैसे चील कुछ झपटकर ले जा रही हो, या पीठ में पिस्तौल अड़ाकर कोई उनसे 'हैण्ड्स-अप' करने को कह रहा हो।—"अभी थोड़ी देर में नौकर आयेगा। सब ठीक हो जायेगा।"

"लाइये, इन्हें एक तरफ़ तो रख दूँ, यहाँ बुरा लगता है।" मना करते हुए भी जया ने प्लेटें और खाली प्याले इत्यादि उठा-उठाकर बरामदे में धोने की जगह रख दिये। फिर खड़ी रहकर ही शरद को सम्बोधन कर के बोली—"दा... चल रहे हैं आप...मेरे तो सिर में दर्द हो रहा है। आप बैठिये यहाँ, मैं लेटूँगी।" फिर अपनी ग़लती पर ज़बान दाँतों से काटती वह बाहर घिरते बादलों को देखती बोली—"शायद पानी भी पड़े।"

"हाँ, इस वक्त रोज दो-एक दिन से पड़ रहा है।" पान खाने से सूरजजी के मुँह पर ज़िन्दगी और आँखों में चमक आगयी थी। उन्होंने एक बार जया

और एक बार शरद को देखा—"पानी ज़ोर का आयेगा—चीलें उड़ रही हैं।"

"अच्छा, तो सूरजजी, इस भोजन के लिये धन्यवाद, बहुत-बहुत। फिर शामको मिलेंगे ही, ज़रूरी चीजें भी तो लानी हैं।"

"आधा धन्यवाद तो जयाजी को ही दीजिये। बनाया तो इन्होंने ही था।" फिर गले से हँस कर बोले—"चीज़ें लाने की ज़रूरत ही क्या है ? एक लम्बी-सी लिस्ट बना लीजिये, और जाकर मायादेवी को दे दीजिये, वे कह ही गये हैं।" और भी अर्थ-पूर्ण ढँग से हँसकर अपनी बातपर उन्होंने मिलाने को हाथ बढ़ाया।

"और यह साथ में कहदूँ कि यह सब पामिस्ट सूरजजी की करामात है। बस, सारा सामान नौकर से मँगा देंगी।" खड़े होकर शरद ने हँसकर हाथ पर हाथ मारा। जया दरवाज़े पर खड़ी थी।

"चिता का सामान और भेज देंगी।" सूरजजी ने क़हक़हा लगाया। उनका टेंटुआ पान खाने से कुछ अधिक बाहर निकल आता था।

"आप तो उसे भी बेच खायेंगे !" इसबार जयाने जाते हुए व्यंग किया।

पीछे सूरजजी उन्मुक्त होकर हँसते रहे। दोनों अपने 'मकान' के सामने आगये। जया ताला खोल रही थी।

"पट्ठा मस्त रहता है !"

"हैं कुछ रहस्य-मय ही, बार-बार विषय बदलते थे। आल्मारी की बात से तो आपने काफ़ी बुरा माना ?" जया ने दरवाजा खोलकर भीतर प्रवेश करते हुए कहा।

"हुँह:"—उस वक्त ज़रूर उसने बुरा माना था, लेकिन इस समय वह ज़रा जॉली मूड में था। बादल गहरे होते जारहे थे। निश्चिन्तता मे वह बोला —"रहस्यमय तो यहाँ का हर आदमी है। मैंने तो निश्चय कर लिया है कि किसी बात पर ताज्जुब ही नहीं करूंगा। मुझे तो सूरजजी की हँसी पर हँसी आती है। हँसते कैसे हैं !"

"कैसे—?" जया झपटकर लेट गई। वह थकी-थकी, भरी आँखों से हँस रही थी—"बहुत खा लिया !"

"खाया क्या हमने नहीं ? आप तो ठाठ से सोती चली आई हैं। यहाँ सारा रात आंखों में गई है।" शरद भी फ़ुर्ती से झपटकर उसके पास लेट गया। सिर से जानबूझ कर उसने जया की बाँह दबाली।

"अरे, अरे, हटिये न, देखिये किवाड़ खुले हैं।" जया झिड़कती हुई बाँह झटक-झटककर उठने की कोशिश करने लगी।

"क्या है ! कौन आया जारहा है ?" शरद ने बाँह और भी दबाली।

"मानते नहीं हैं आप, हमें नही अच्छा लगता।" जया ने दूसरे हाथ से उसे भरसक एक ओर धकेलने की कोशिश की।

"अच्छा, लो भाई, मैं कहाँ लेटूँ ?" शरद ने उठकर किवाड़ बन्द कर लिये।

"वहाँ लेटिये, अपनी हैसियत से।" जया ने हाथ से इशारा कर के कहा—"ज़मीन पर।" वह दूसरे हाथ से बांह सहलाती मुस्कुराई।

"वाह री हैसियत ? जरा फिर तो कहना ?" शरद ने रीझ-भरे स्वर में कहा—और फिर वहीं आ लेटा। जया ने फ़ुर्ती से अपनी बाँह हटाली। वह कुहनी के बल उठी हुई थी। दोनों हाथों से उसे धकेलती बोली—"अब पूरी खाट-पर पसर गये, हम कहाँ लेटें ?"

काफ़ी ज़िद के बाद जब शरद जया की बांह पर सिर रखकर लेटा तो जंगले की टीन पर बूंदें बजने लगी थीं; और दरवाज़े के किवाड़ों के नीचे से पानी की धारिया सांप-सी लहराती सरक रही थी। शरद ने बताया—"सूरज जी ऐसे हँसते हैं जैसे मिट्टी के तेल निकालने के खेंचू से कोई तेल निकाल रहा हो।"

"दूसरों की नकल कर रहे हैं।" जया चिढ़कर बोली—"अपनी नहीं मालूम ? आप हँसते है जैसे पानी भरा कलसा उलटा कर दिया हो।"

"और तुम ?" शरद उसके लिये कोई उपमा ढूँढ़ने लगा। पानी भरे कलसे की बात उसे कई लोगों ने और भी कही थी। इसलिये ज़रा हत-प्रभ हो गया। उसने निश्चय कर लिया कि आगे से हँसते समय वह ध्यान रखेगा। ध्यान रखने की बात पर उसे एक और चीज़ याद आगई—"अच्छा क्यों, दादा-दादा करती हो.....?"

"फिर मैं क्या कहूँ ?" बात काटकर वह बोली। सचमुच जया के सामने यह परेशानी थी।

"कुछ कहो। नाम लो।"

"नाम लो ! हम से नहीं होगा, शुरू से दादा कहते आए, अब नाम लो।" जया ने उसकी कान की लव मरोड़ते हुए कहा।

"हां जया, यह समस्या बड़ी विकट है। लोग शादी की बात करते हैं। उन्हें क्या समझाया जाय ?" शरद बोलता-बोलता जैसे दूर खो गया।

"समझाया क्या जाय ? सीधी बात कही जाय कि 'भाग' आये हैं।" जया शैतानी से बोली लेकिन उसके मुख पर फिर वैसी ही उदासी आगई जैसी सूरजजी के कमरे में आई थी, और उसे दूर करने के लिये ही शरद जान-बूझकर इतना जॉली बन गया था।

"हिश्ट।" चिन्तित स्वर मे वह बोला—"कहीं वो लोग अखबार मे न निकलवादें।"

"कुछ होगया तो मैं तो कह दूँगी, मुझे बहका लाये हैं।" उदासी में भी जया कुटिलता से मुस्कुराई।

"बच्ची थी न; नाबालिग़ ? यह नहीं कहोगी कि 'ज़रूरी बात है' 'ज़रूरी बात है' कह कर रोज़ मेरे ऊपर जाल डालती थीं । और आखिर में अपना ब्रह्मास्त्र चला ही दिया, बैठकर रोने लगी ।"

"ये थोडे ही मालूम था कि यहाँ ला पटकोगे ।" गाल फुलाकर जया ने कहा —"उस वक्त तो बड़े-बड़े सामान्तवाद और पूंजीवाद के सिद्धांत बघारे थे, अब इतनी भी 'मॉरल-करेज' नही है कि कहदो' 'नहीं हमलोगों ने रूढ़िवादी अर्थों में शादी नहीं की' ।"

"मुझसे तो नहीं कहा जाता, तुम कह देना ।" शरद सीधा लेट गया । बात उसके दिल में चुभ गई ।

जया ने भी अनुभव किया कि बात ज़रा ज़्यादा तीखी होगई है—"वो कौन था कार में, उल्लू की तरह घूर रहा था ?"

"होगा कोई, मैंने सबकी खीर खाई है ।" शरद ने एकटक छत की ओर देखते हुए कहा । रोशनदान से पानी की एक पतली-सी लकीर नीचे सरक रही थी । उसने निश्चय किया, सुबह इस सबका इंतज़ाम करना है । फिर उसने पूरे कमरे में निगाह दौड़ाई—पर्दे चाहियें, कुर्सी भी; और उसे लगा कि एक दूसरी चारपाई की भी बड़ी ज़रूरत है ।

"एक बात कह दी तो तिनक गये ।" जया ने अपना कोमल हाथ उसकी कनपटी पर रखकर उसका मुंह अपनी ओर घुमाया ।

"नहीं, थक गया हूँ ।" उसने आँखें बन्द करली लेकिन दो मिनट बाद ही जब 'सूं-सूं' की आवाज़ सुनी और कनखियों से देखा तो पाया कि जया रो रही है ।

"अरे,.....ये क्या.....?"

"यहाँ लाकर ऐसे तंग करोगे ?" जया उसकी छाती से लगकर फूट-फूटकर रो पड़ी । जितना ही शरद चुप करने की कोशिश करता, वह अधिक विह्वल होती आ रही थी ।

पानी ज़ोर से बरसने लगा था ।

कुर्सी घूमती है

खाकी कमीज़-नेकर पहने और खद्दर की टोपी में एक तिरंगा बैज लगाये स्वयं-सेवक-से दिखाई देते चपरासी का शुद्ध फौजी ढंग से किया हुआ सैल्यूट लेकर जब देशबन्धुजी ने शरद के साथ नीचे की गैलरी में प्रवेश किया तो इधर-उधर पड़ने वाले कमरों पर विभिन्न नामों और उनके नीचे लिखी उनकी नौकरियों की इतनी अधिक तख्तियाँ पड़ी कि शरद सचमुच ही चकित रह गया—इतना लम्बा कारोबार ! ये तख्तियां सब हिन्दी में ही थीं। अधिकांश कमरे बन्द थे और हर दरवाजे के सिर पर घण्टी लगी थी जो चपरासी के स्टूल के ठीक ऊपर बजती थी। चपरासी तन-तन कर खड़े हो रहे थे। कमरों के स्प्रिंग के आधे या पूरे दरवाज़ों में ग्राउण्डग्लास लगे हुए थे; और जो कमरे खुले या केवल भिड़े ही थे उनसे झाँकने पर पर्दों के स्टैण्ड दिखाई देते थे। हर तीसरे कदम पर शरद को खटाखट बजते टाइपराटरों की आवाज़ सुनाई देती थी या टैलीफोन की घण्टियां ! चपरासी या क्लर्क-जैसे लोग 'ट्रे' मे कागज लिये इस दरवाजे से निकल कर उसमें घुस जाते थे। एक कमरे पर लिखा था—"ज० प्र० कथूरिया, जनरल मैनेजर।" शरद को कल की उनकी पूरी रूपरेखा ध्यान हो आई।

देशबन्धुजी खूब मुस्कुराकर हँसते हुए चल रहे थे, लेकिन उनकी मुस्कुराहट में भी एक ऐसी स्निग्ध-गम्भीरता थी कि आदमी के मन में अपने आपही श्रद्धा और आदर उत्पन्न हो जाते थे। सैल्यूट करते चपरासी के कन्धे पर वे बड़े प्रेम से हाथ रख कर थपथपा देते—"अच्छे तो हो ?" वह गद्‌गद् होकर सिर हिला देता। यह गैलरी जिस दरवाज़े पर खत्म होती थी वहाँ के स्वयं-सेवक-नुमा चपरासी ने अत्यन्त आदर से दरवाजा खोल दिया तो भीतर से टाइपराटरों की खटाखट और भी मुखर हो गई। भीतर नये जूट की चटाई का मोटा और खूबसूरत फ़र्श था और बड़ी-बड़ी टाइप की मशीनों के आगे चार क्लर्क बैठे थे। कमरे में इधर-उधर एक बहुत प्रसिद्ध कम्पनीकी ऊँची-ऊँची सुन्दर-सुघड़ स्टील की आलमारियाँ और रैक लगे हुए थे उनमें जमी फ़ाइलों की मोटी-मोटी पुश्तें दिखाई दे रही थी। खटाखट पड़ती उँगलियों और कभी बटनों पर या कभी कागज़ों की लाइनों पर दौड़ती बँधी दृष्टियाँ। निगाहें अपनी-अपनी छूटी कागज़ की लाइनों पर ही गड़ाये, व्यस्त दिखाते-से ये लोग सब खड़े हो गये थे। कमरा कुण्डलाकार दूधिया फ्लुओरेसेण्ट ट्यूबों से चाँदनी की तरह जगमगा रहा था।

"कथूरियाजी हैं ?"

"नहीं सा'ब मिल गए हैं।" खँखारकर एक आवाज़ बोली।

"और सत्य ?"

"जी वे अभी आये नहीं हैं।"

सामने एक पल्ले वाले दरवाज़े में ऊपर की ओर काँच का एक गोला कटा था। दरवाज़ों पर केवल सादे-से अक्षरों में एक प्लेट लगी थी, छोटी-सी—'देशबन्धु'। शरद की निगाह बाईं ओर वाले दरवाजे पर भी पड़ी—बिल्कुल उसी तरह के गोल कटे दरवाज़े पर लिखा था 'सत्यकुमार'। शरद चौंका—यह देशबन्धुजी के समान-स्तर वाले सत्यकुमार कौन हैं ?

दरवाजे के पास वाला स्टूल खाली पड़ा था। बढ़ कर दरवाजा खोलने के लिये एक क्लर्क और देशबन्धुजी के हाथ साथ ही साथ किवाड़ पर पड़े।

"अरे भाई, मैं खुद भी खोल सकता हूँ। बैठो, तुम क्यों तकलीफ़ करते हो ?" क्लर्क दाँत निपोरकर 'हिं हिं' करके रह गया।

दोनों ने भीतर प्रवेश किया। किवाड़ का पल्ला बड़े आहिस्ते से छोड़ते हुए देशबन्धुजी ने कहा "लो भाई शरद बाबू, अपना बैठना तो यहाँ होता नहीं है। तुम यहाँ बैठकर आनन्दपूर्वक जो इच्छा हो सो करो—और न करना चाहो तो पड़े-पड़े सोओ। मैं तो काँग्रेस इत्यादि के दूसरे-दूसरे कामों में इतना व्यस्त रहता हूँ कि महीनों इस कमरे में बैठना नहीं होता। वो तो कहो, हमारे साहबज़ादे सब देख लेते हैं, वर्ना यह सब पचड़ा अपने बस का नहीं है।"

"ओऽऽ।" शरद ने कहा और फिर अनुमान से स्वयं ही बोला—"सत्य कुमार ?"

"हांऽऽ, उन्हीं दिनों उसका जन्म हुआ था, जब मैं जेल था, सत्याग्रह का ज़ोर था, सभी लोग 'सत्य' 'सत्य' कहने लगे। हमने भी कहा चलो 'सत्य' ही सही।"

कमरा हल्के गुलाबी रङ्ग की पॉलिश में जगमगा रहा था। नीचे क़ालीन, ठीक बीच में एक अत्यन्त आधुनिक ढङ्ग की ऑफ़िस टेबिल—टीक की लकड़ी, चम-चमाती वार्निश, बीच में बैठकर लिखने की सुविधा के लिये कुछ कटा हुआ हिस्सा, एक ओर दराज़ें और फ़ाइल या काग़ज़ों की 'ट्रे' इत्यादि रखने के लिये कङ्घी के दाँतों की तरह खुले हुये खाने, साथ ही घूमनेवाली कुर्सी। सामने तीनों तरफ़ टीक की ही गद्देदार कुर्सियां। दीवार के सहारे एक ओर रखा हुआ सोफ़ा-सैट। सामने रेडियो-फ़्रेम में नोआखाली में लकड़ी लेकर चलते बापू का फ़ोटोग्राफ। मेज़ पर एक काँच का टुकड़ा पड़ा था। एक ओर क़लमदान, पिनकुशन, पेपरवेट और 'सत्या-मिल्स' छपा हुआ 'एपॉइण्टमैंट' का तारीख़ोंदार पड। एक ओर एक टेबिल-लैम्प और एक साथ दो टेलीफ़ोन—एक सफ़ेद, दूसरा काला। सामने ही दीवार पर बड़ी ख़ूबसूरत घड़ी। एक ओर रेडियोग्राम।

"यह हमारा अपना टेलीफ़ोन है, मैं आज या कल कह दूंगा, एक तुम्हारे क्वार्टर में भी लग जायेगा दो-एक दिन में।" देशबन्धुजी ने जेब से रूमाल निकाल

कर मेज पर पड़े ज़रा-से धूल के धब्बे को पोंछ कर कहा।

शरद ने कुछ नहीं कहा। इस कमरे में बैठना होगा! शरद मन ही मन एक गुद्‌गुदी से भर उठा। वह सोचने लगा, जया को बुलाकर कब दिखाया जाय कि उसे कैसा कमरा मिला है। तबतक पर्दा हटाकर देशबन्धुजी ने बांई ओर का कमरा खोल लिया था। इस कमरे में तीन दरवाज़े थे और जिस ओर दरवाज़ा नहीं था उधर कमर की ऊँचाई से एक बड़ा-सा जँगला था, जो घूमने वाली कुर्सी के पीछे पड़ता था। उसके ऊपर भी गुलाबी पर्दे लहरा रहे थे। पर्दों के पीछे ग्राउंड-ग्लास जडे किवाड़ थे।

"ये आपकी लाइब्रेरी है!" ज़रा गर्व से देशबन्धुजी ने पर्दा एक ओर कर दिया—"आओ, आओ!"

शरद भीतर आ गया। चारों ओर किताबों से भरी आल्मारियाँ और रैक लगे थे और कमरे की आधी ऊँचाई तक इनसे घिरी थी। उनके ऊपर लाइन बाँध-कर लगातार इस तरह के कुछ कलापूर्ण प्रसिद्ध कलाकारों के चित्र लगे थे, जैसे किसी गैलरी में लगे हों।

"इसे लाइब्रेरी कहो, या स्टडी, बस कभी-कभी यही आराम कर लेता हूँ।" देशबन्धुजी ने बताया। चारों कोनों में चार लकड़ी के महीन नक्काशीवाले स्टेण्डों पर विभिन्न पत्थरों की मूर्तियाँ रखी थी। शरद मुग्ध होकर वीनस और बालक क्यूपिड की बड़ी सुन्दर मुद्रा में बनी मूर्ति को ठगा-सा देखता रहा। मूर्ति सचमुच मन को बाँधने वाली थी। एक तरफ एक पलङ्ग पड़ा था, सिरहाने मेज़ पर टेबिल-लैम्प। मेज़ पर क़रीने से चुनी हुई कुछ किताबें, एक पेपरवेट से दबे हुये कुछ अखबार। शरद ने चारों ओर दृष्टि घुमाई। उसके मुँह से निकला—"कलैक्शन तो बड़ा अच्छा है।" वह एक खूबसूरत-सी किताब निकालकर देखने लगा। पन्ने पलटकर किताब उसने वहीं लगा दी। उस किताब के पन्ने जगह-जगह से कटे भी नहीं थे।

'कलैक्शन अब रह कहां गया है?" साँस लेकर देशबन्धुजी बोले—"तुम विश्वास नहीं करोगे शरद बाबू, मेरे पास इतनी किताबें थीं कि पूरा यह मकान भर जाय। सब 'सत्या पब्लिक लाइब्रेरी' को दान दे दी। यह तो कुछ खास-ख़ास अपने मतलब के लिये, कभी कुछ पढ़ने की इच्छा हो आये, उसके लिये रख छोडी हैं।" शरद ने एक दूसरी किताब एक खुली आल्मारी से खींचकर निकाल ली। पहला पन्ना खोलते ही जो एक अलग से रखा हुआ काग़ज़ दिखाई दिया वह शायद देशबन्धुजी के नाम किताब का कैशमीमो था। देशबन्धुजी ने पेपरवेट हटाकर कुछ ख़त निकालकर देखते हुये कहा—"मेरी अपनी रुचि दर्शन और भारतीय इतिहास में है। उसीके सम्बन्ध में हैं यह सब किताबें। गीता को मैं संसार की एकमात्र ऐसी पुस्तक मानता हूँ, जो सच्चे अर्थों में संजीवनी है। आप किसी भी मनः

स्थिति में उसे पढ़ें, आप को हमेशा उसमें कुछ न कुछ ऐसा मिलेगा जो आगे बढ़ाये—जीने की प्रेरणा दे। देखिये यह आल्मारी है इसमें अकेली गीता के ऊपर मेरे पास तीन-सौ से अधिक भाष्य हैं। फिर भी मैं समझता हूँ—कुछ ऐस फ़ील करता हूँ जैसे गीता इन सबमें कवर नहीं होती पूरी तरह। कुछ है जो छूट गया है। तुम विश्वास करो शरद बाबू, कभी किसी एकाध मवन्तर में ऐसा ग्रंथ मानव-जाति के पास आता है।" वे हाथ में पत्र लिये ही ज़रा विभोर-से खड़े रहे।

"जब आप हमारे यहाँ आये थे, गीता तो तब भी मैंने आपके पास देखी थी लेकिन आप इतने बड़े भक्त हैं—यह मुझे मालूम नहीं था।" शरद ने प्रशंसा से उनकी ओर देखा। उसे मन ही मन लगा कि साधारण बातचीत में भी देशबन्धुजी बहुत अधिक प्रभावशाली वार्तालाप-कर्त्ता हैं।

"भक्त नहीं! भक्ति में जो एक अन्ध-विश्वास की ध्वनि होती है वह मुझे मान्य नहीं है। मैं उसका प्रशसक हूँ। आप सोचिये तीस साल! ठीक-तीस साल हो गये। कोई ऐसा दिन नहीं गया, जब मैंने एक-दो घण्टे बैठ कर गीता के किसी श्लोक पर मनन नहीं किया हो। और तुम विश्वास मानो, हर बार मुझे एक प्रकाश मिला है, नई राह मिली है। अभी उसी दिन की तो बात है; जिस दिन आप आये थे उससे दो तीन दिन पहले की; एक सार्वजनिक मीटिंग थी, मैं प्रेसीडेण्ट था। तभी मैंने बताया था कि विश्व-शान्ति का एकमात्र उपाय गीता है। यही तो वह सन्देश है जो 'भारत' विश्व को दे सकता है, मानव-जाति को दे सकता है। कुत्ता, हाथी, ब्राह्मण, चाण्डाल सभी में एक ही आत्मा को समझो। आप सोचिये तो सही, है ऐसा कम्यूनिज़म आपके रशा में कहीं? इससे ज़्यादा उदार व्याख्या कम्यूनिज्म की और क्या हो सकती है? कहां है आपके रूस और चीन में साम्यवाद जिसमें श्वपच और द्विज सबके भीतर एक ही आत्मा की प्रतिष्ठा करके आन्तरिक और सार्वभौमिक सत्य की व्याख्या की गई हो? आप साम्यवाद, साम्यवाद चिल्लाते हैं, लेकिन मुझे बताइये, दो आदमियों की बाहरी सम्पत्ति आपने बराबर-बराबर बाँट दी—कल उनके से जो शक्तिशाली होगा वही छीन लेगा; इसके लिये क्या इलाज है? जब तक आप उसके मन और आत्मा को नहीं बदलते; इस ऊपरी उलट-फेर से फ़ायदा क्या है? और जहां आपने मन बदल दिया वहां ऊपरी परिवर्तन तो सब हो ही जायेंगे। तो दुनियाँ में मन बदलनेवाली सिर्फ एक किताब है—वह है गीता। बिना मन बदले दुनियाँ में शान्ति हो ही नहीं सकती। मैं तो ज़ोर देकर कहता हूँ कि शान्ति का कोई और तरीक़ा गीता के मुकाबिले है ही नहीं।" मुँह से बातें करते हुए देशबन्धुजी ने एक दैनिक-पत्र उठाकर खोल डाला और पढ़ने के लिये शरद की ओर बढ़ाते हुए कहा—"देखिये, यह है उस दिन का भाषण। पट्ठे यह अखबारवाले भी विचित्र जीव होते हैं। पूरा का पूरा भाषण मुख पृष्ठ पर दे दिया है।"

शरद अखबार पर झुक आया, मुँह से निकला—"यह फ़ोटो काहे की है?"

"अँह, उसी दिन जब मैंने गांधीजी की मूर्ति का उद्घाटन किया था न, उसी समय किसी प्रेस फ़ोटोग्राफ़र ने ले लिया होगा। तभी का यह फ़ोटो है, शायद मैं माला ले रहा था।" देशबन्धुजी ने अखबार शरद की ओर बढ़ा दिया। बढ़ाने के ढंग में लापरवाही थी; लेकिन आँखों में सचेत उत्सुकता।

शरद प्रशंसा का भाव लाकर बड़ी देर तक फ़ोटो देखता रहा, फ़िर एकाध हैडिंग पढ़ कर बोला—"नेता भैया, इन भाषणों को आप पुस्तक रूप में क्यों नहीं एकत्रित कर डालते? यह तो स्थायी साहित्य की चीजें बन जायेंगी।" शरद उत्साह से बोला—आंखों को उसने अखबार के पन्नों में ही गड़ाए रखा।

"अरे यार, तुम तो मुझे हर तरफ से लेखक बना कर छोड़ोगे।" अत्यन्त गद्‌गद् अपनत्व से उफन कर वे बोले—"अच्छा हाँ, ऐसा करो शरद बाबू, तीन-चार दिन लगाकर इस आलमारी मे रखी फ़ाइलों में से मेरे भाषण इस दृष्टि से ही इकट्ठे कर डालो कि उनकी एक किताब छपवा दी जाय। हटाओ, तुम भी क्या कहोगे, इस बुढ़ापे में लेखक भी बन लिया जाय!" देशबन्धुजी ने इस तरह कहा जैसे वे शरद पर असहान कर रहे हों। बुढ़ापे की बात उन्होंने जरूर कही लेकिन स्वर से साफ़ ध्वनित था कि इस बुढ़ापे के आगमन मे न तो उन्हें विश्वास था न वे इसे स्वीकार ही कर सकते थे।

"जी हाँ, मै यह कर दूंगा।" शरद तपाक् से बोला। हाथों में उस अख़बार को फैलाए हुए ही वह आलमारी में लगी किताबें देखता रहा। फिर इतने दिनों यह काम क्यों नही हुआ इस बात को सान्त्वना देने के लिये कहा—"आप तो बहुत ही व्यस्त रहते है न, आपको इतना समय कहाँ है?"

देशबन्धुजी के फोड़े को जैसे किसी ने छू दिया—"क्या कहूँ, शरद बाबू! कैसे मर जाऊँ? मेरी समझ में नहीं आता। अब तुम इसी हफ़्ते के प्रोग्राम देख लो, दंग रह जाओगे। मैं ही जानता हूँ, कैसे खाता-सोता हूँ। परसों यहाँ से सात मील दूर एक सार्वजनिक सभा है एक गाँव मे, एक पुस्तकालय का उद्‌घाटन हो रहा है। कम्बख्तों ने पुस्तकालय का नाम भी तो मेरे ही नाम पर रख दिया है। अगले हफ्ते में यहां एक 'साहित्यिक-क्लब' की मीटिंग है। इसी महीने कांग्रेस की कार्यकारिणी की मीटिंग अटेण्ड करने भी जाना है। न जाओ तो आफ़त, शहर कांग्रेस के प्रेसिडेण्ट जो ठहरे। एक आफ़त है? एक जान है वह किधर-किधर खिचे? मुख्य-मन्त्री और गर्वनर भी आजकल इधर ही ठहरे हैं। उधर बेचारी मायादेवी और पद्मा आई हैं, खाने के अलावा जरा भी टाइम नहीं दे पाता —तुम विश्वास करो, कहने को कह दिया "पद्मा बिटिया, तुम्हारी कला देखेंगे।" वक्त ही नहीं मिलता। वर्ना यह अच्छा लगता है कि मेहमान घर बैठे हों और हम अपने मे मस्त हैं? दूसरी तरफ़ मिल अलग नाक में दम किये है..."

"मिल क्या?" शरद चौंका। उसे कल के कथूरिया के शब्द याद हो आए।

उसे वास्तव में देशबन्धुजी के व्यस्त जीवन से सहानुभूति हुई।

"अरे कुछ नहीं, यों ही गड़बड़ है! मज़दूर लोग तो बेपढ़े-लिखे होते हैं न, आप उन्हें कुछ भी भड़का दीजिये! देखो शरद बाबू, नेता बनकर जोशीले भाषण झाड़ कर पचास आदमी मैं अपने पीछे लगा लूँ, और पचास आदमी आप लगा लें—यह आसान है। लेकिन पथ-प्रदर्शन की जो सही जिम्मेदारी है उसे समझना और निभाना, हरेक का काम नहीं है—बस का ही नहीं है। ऐसे ही कुछ ग़ैर जिम्मेदार लोग हैं। काम तो कुछ है नहीं उन्हें। बस, लिया और गड़बड़ करा दी। खैर!" देशबन्धुजी जैसे अपने आप से कहते रहे। उनकी भवें ज़रा नाक के पास सिकुड़ आईं। फिर एकदम सचेत होकर बोले—"...तो यह बात है, शरद बाबू आप ज़रा जया जी से कह दें, काम-धाम से फ़ुर्सत मिले तो पद्मा और मायादेवी के पास आ जाया करें। वैसे होने को तो यहां सकड़ों लोग हैं, लेकिन एक इन्टलैक्चुअली ज़रा अपने स्तर की बात होती है न...।"

"जो हां, मैं कह दूँगा। और वह बैठी-बैठी करेगी भी क्या?" शरद ने जल्दी से कह दिया। उसे जया का ध्यान हो आया। सामान तो काफ़ी आ गया था, लेकिन अभी क़रीने से लगा नहीं था। एकदम बेचारी पर क्यों बोझ डाला जाय यह सोचकर एक बड़ी-सी डबल रोटी के तले हुए टोस्ट काफ़ी संख्या में बनाकर खा आया था। दोनों ने साथ खाया...उसकी हठ कि यह वाला हिस्सा मैं खाऊंगी...यह आप..." शरद के होठों पर हल्की मुस्कुराहट खिल आई। अब श्रीमतीजी लगी होंगी सामान इधर से उधर लगाने में।

'सच शरद बाबू, तुमने मुझे उबार लिया इस समय! और तो तुम्हारा सब ठीक-ठाक हो गया न?" किसी भी चीज़ की जरूरत हो निःसंकोच मायादेवी से माँग लो।... वैसे तो कोठी में सभी नौकरों को मैंने इन्स्ट्रक्शन्स दे दी हैं। आप जो कुछ भी कहेंगे, फ़ौरन किया जायेगा। देखिये शरद बाबू, मै तो इस बात में विश्वास करता हूँ कि रुपया-पैसा, चीज़-वस्तु, नौकर-चाकर जो भी कुछ है, —आपको ज़रूरत है आप स्तैमाल कीजिये, मुझे होगी मैं करूंगा। मेरी इसमें कोई बपौती नहीं है, आप—आप से मेरा मतलब किसी से भी जो निकट आता है, कोई पराये आदमी नहीं है। और जब चीज़ नहीं हैं तो कोई बात ही नहीं है। अरे, हम जो—आपने आपको आदर्शवादी या सिद्धान्तवादी जो भी कुछ कहते हों, जाहिल और मूर्खों से कहीं न कहीं तो अलग हैं ही?" बातें करते हुए देशबन्धुजी हाथ के खतों को पढ़ने का समय भी देख रहे थे। उन्हें याद आया कि इस कमरे या स्टडी में उन्हें काफ़ी देर हो चुकी है। ज़रा-सा चौंक कर बोले—"अच्छा तो आइये, मैं आपको और हिस्से भी दिखा दूँ।"

वे आगे बढ़े। शरद सोच रहा था कि—पूंजी-पतियों के लिये जो एक विशेष प्रकार का प्रचार लोगों द्वारा उनके स्वभाव इत्यादि का किया जाता रहा है, वह

संस्था या वर्ग के रूप में भले ही सच हो, उस व्यक्ति पर ज्यों का त्यों लागू करना ग़लत है। अब इसे ही कौन कह सकता है कि यह व्यक्ति पूंजीपति नहीं है ? लेकिन इसकी बोल-चाल, रहन-सहन, व्यवहार में कहीं भी तो कोई चीज़ ऐसी नहीं हैं जहाँ उन रटी-रटाई बातों को लगा दिया जाय।

पर्दा हटा। किवाड़ खुले और दूर तक चले गये 'कॉरिडोर' नुमा बरामदे में कमरों की लम्बी लाइन दिखाकर वे बोले—"यह सब शहर और ज़िला कांग्रेस-कमेटी के दफ़्तर हैं। इधर के किवाड़ बन्द कर देने से यह हिस्सा पूरा अलग ही हो जाता है।"

शरद ने देखा, कमरों में से कुछ के दरवाज़े खुले थे और कुछ के बन्द। मनुष्यों के बोलने की आवाज़ें आ रही थीं। इस बीच में दो-एक आदमी खद्दर का धोती-कुर्ता पहने बरामदे से कमरे में गए और आये भी। उन्होंने अत्यन्त श्रद्धा से देशबन्धुजी की ओर नमस्कार किया। देशबन्धुजी ने नम्रता की रसीली मुस्कान से उनका प्रत्युत्तर दिया। शरद ने देखा बरामदे के पास घास के लॉन के बाद कोठी की बाउण्ड्री थी, और फिर बाँस के पेड़ों की ऊँची-सी बाढ़ के बाद सड़क। उसने अनुमान लगाया यह मुख्य सड़क में आगे जाकर मिल गई होगी। यह दक्षिण की बाउण्ड्री थी। उनके क्वार्टर्स पूर्व की ओर उत्तरवाली बाउण्ड्री से लगकर पड़ते थे, इसलिये यह जगह आड़ मे आगई थी। देशबन्धुजी ने वह जगह दिखाकर वहीं से बन्द कर दी। लाइब्रेरी के उत्तर की तरफ़ वाला दरवाज़ा बन्द करके बोले—"यहाँ तीसरे कमरे में मैं बैठता हूँ, कभी कोई ज़रूरत हो बीच में, आप मुझे बुला सकते हैं। वैसे उठकर तकलीफ़ करने की भी ज़रूरत नही है, वहीं बैठे-बैठे सफ़ेद फ़ोन खटखटा दिया—या फिर चले आये।"

दूसरे कमरे में केवल आलमारियाँ और दो-एक कुर्सियां पड़ी थी, शायद बही-खाते इत्यादि करने के लिये ही यह कमरा था। यह कमरा केवल आने-जाने वाली गैलरी का काम देता था, और जिस कमरे में खुलता था उस में तीन मेज़े लगी थीं, एक मेज़ की लम्बाई-चौड़ाई, दो फ़ोन, गुलदस्ते, लैम्प और रौब देखकर शरद समझ गया कि यह देशबन्धुजी की मेज़ हैं। दूसरी पर एक ट्रे में फाइलें तथा काग़ज भरे थे, बीच मे शार्ट-हैण्ड की कॉपी पड़ी थी। उसके पास की मेज़ पर एक बड़ा-सा टाइप-राइटर ढँका रखा था। कमरे में एक तरफ़ बेंत से बुना एक दीवान रखा था और उस पर तिनकों की चटाई बिछी थी। सिरहाने दो छोटे-छोटे मसनद रखे थे। नीचे मोटा बढ़िया कालीन। एक तरफ मारवाड़ी साफ़े-अँगरखे में टिपीकल व्यापारीकी बड़ी-सी 'आइल-पेण्टिग'—और पास ही हाथ जोड़कर झाँकती महात्मा गाँधी की तस्वीर ! दोनों पर खद्दर के कपड़े की तिरंगी मालाओं के अलावा ताज़े फ़ूलों की मालाएं भी पड़ी थी—शरद समझ गया यह देशबन्धुजी के पिताजी है या ऐसे ही कोई पूज्य हैं। कमरे में हल्के नीले-रंग की बड़ी शीतल-सी लगनेवाली पॉलिश थी

जो वहाँ के वातावरण को बड़ा स्वप्निल-सा बनाये हुये थी। शरद ने पूछा—"यह शायद पिताजी की तस्वीर है।"

"हाँ, यह मेरे पूज्य पिताजी हैं—रायसाहब अमोलक रामजी। शरद बाबू, मैं सिर्फ़ दो आदमियों को ही दुनियाँ में अपने हृदय का सबसे ऊँचा आदर दे पाया हूँ, एक ने मुझे शरीर दिया और दूसरे ने जीवन।" फिर दीवान की ओर देखकर बोले—"जब मैं इस चटाई बिछे दीवान पर लेटकर कभी-कभी चिन्तन करने लगता हूँ तो जैसे इन दो दिव्य पुरुषो के आशीर्वाद की ज्योति मुझे राह दिखलाती है। मैं जिन्दगी की बड़ी-बडी विकट परिस्थितियों में पड़ गया हूँ और कभी-कभी तो ऐसा लगा है जैसे कोई राह ही नहीं दिखाई दे रही है, तब जब-जब मैने सच्चे मन से यहां बैठर ध्यान किया है तब-तब कुछ ऐसी-ऐसी बातें आकर जुड़ गई है जिनका मैंने स्वप्न में भी ख्याल नहीं किया था और तब मैने पाया कि मेरी मुसीबतें एकदम हल हो गई है।"

शरद चुपचाप सुनता रहा। हाथ के पत्रों और कागजों को उन्होंने मेज़ पर रख दिया। दीवान के पास रखी छोटी-सी मेज़ से एक किताब उठाकर उन्होंने कहा—"देखिये यह मेरे पाठ की गीता है।"

"इधर क्या है ?" एक दरवाज़े की ओर इशारा करके उसने पूछा।

"कुछ नहीं, दो एक कमरों के बाद गेस्ट हाउस है छोटा, बड़ा तो ऊपर है।"

"ओ:" अचानक अब जैसे शरद को एकदम पूरी कोठी का नक़्शा समझ मे आ गया। अभी तक एक कमरे से दूसरे में जाते हुए उसे ऐसा लग रहा था जैसे वह न जाने किन तिलस्मी कमरों में घूम रहा हो। वह कोठी के हर हिस्से से अपने क्वार्टर की दिशा जानने का प्रयत्न करता था। अब उसकी समझ में आगया कि जो कमरा उसे बताया गया है वह करीब-करीब बीच में पड़ता है। उसके एक तरफ़ के कमरों की लाइन में मिल इत्यादि के दफ्तर हैं, दूसरी ओर कांग्रेस-कमेटी इत्यादि के, तीसरी ओर यह हिस्सा है। उसने ध्यान दिया कमरे की हर चीज़ स्वदेशी है, और उसमें एक अभिजात-सादगी है। कमरे में इधर-उधर और भी फ़ोटो थे। वह पास जाकर देखने लगा।

"देखिये—यह पूज्य बापू ने जब स्वदेश-महल की नींव रखी थी तब का चित्र है।" उंगली से एक तस्वीर को दिखाकर देशबन्धुजी ने कहा—शरद ने देखा उस चित्र में, भीड़ में प्रसन्न-मुख बापू हाथ में एक कन्नी लेकर सीमेण्ट लगा रहे थे, पास ही तसला लिये देशबन्धुजी खड़े थे। उसने पुलककर कहा—"अच्छा !"

"यह नेहरूजी ने जब इसका उद्घाटन किया था।"

चित्र किसी पार्टी का था। श्रीजवाहरलाल नेहरू काँच का गिलास हाथ में लिये बैठे थे। एक और फ़ोटो में बापू किसी प्रदर्शिनी के द्वार से निकल रहे थे। उनके एक ओर सरदार पटेल थे, दूसरी ओर देशबन्धुजी। घूमकर उसकी निगाह फिर

राय-बहादुर अमोलक रामजी पर पड़ गई।

देशबन्धुजी मेज़ से ज़रा-सा सहारा लेकर खड़े हुए कह रहे थे—"आदमी के आचार उसके व्यक्तित्व से टपकते हैं। पूज्य पिताजी ने जीवन में कभी किसी को कष्ट नहीं दिया। आप खुद देखिये कितना भोला व्यक्तित्व है...।"

शरद आँख गड़ाकर उस चित्र में बने मारवाड़ी-अधेड़ के चेहरे पर भोलापन खोजने की कोशिश करने लगा, लेकिन वहाँ ऐसी कोई बात नहीं थी। शायद उनके पिता होने की भावनाओं में रङ्गे होने के कारण ही ऐसा लग रहा था। फिर भी उसे एक बात का आश्चर्य हुआ, अभी उस दिन देशबन्धुजी ने उसे बताया था कि वे कटुतम सङ्घर्षों में पले हैं, और जो भी कुछ है वह सब उन्हीं का प्राप्त किया हुआ है। फिर उनके पिता का यह रूप कैसे है? इनके पिताजी को देखकर तो ऐसा नहीं लगता कि वे अभावों में पले व्यक्ति हैं.....लेकिन देशबन्धुजी की बातों और शरद की विचार-शृङ्खला को तोड़ा अचानक टेलीफ़ोन की घण्टी ने ...

"हाँ...वही तो मैंने कहा, आज चुप कैसे है टेलोफ़ोन।"—हँसकर उन्होंने चोगा उठा लिया—लेकिन कान से लगाकर ज़रा ध्यान से सुनते ही उनके चेहरे की सारी उत्फुल्लता उड़ गई। चिन्ता की गम्भीरता से चेहरा सिकुड़ गया। बड़े सञ्जीदा स्वर में वे कहते रहे—"हाँ—हाँ—कोतवाल साहब वहीं हैं क्या, फिर—? कथूरियाजी से बातें हुईं.....बालानी नहीं है? उसे समझाया नहीं जा सकता? लेबर-कमिश्नर क्या कहता है?...हाँ...यह तो ठीक है, पर...हाँ...हाँ...भाई, वह हमने तो मारा नहीं है.....मशीन ही तो है, आ गया झपाटे में, क्यों नहीं रहा सावधान?.....हां...हां सो तो है ही, आखिर में यही होगा। हमारा तो कुछ नहीं है...लेकिन उसे समझा दो मिल में ताला लग गया तो पाँच हजार मज़दूरों को खिलाएगा बैठाकर? अच्छा बेटा सत्य.....फ़ोन ज़रा कथूरियाजी को दो....."

चोंगे के बोलने वाले हिस्सेको ठोड़ी से अड़ाकर दूसरा हाथ माथे पर फेरते हुये देशबन्धुजी ने कहा—"अच्छा, शरद बाबू, आप अपने कमरे में चलिये...और हाँ, जो भी सज्जन वहाँ बैठे हों, उनसे कह दीजिये, इस समय वे ज़रा क्षमा कर दें। मैं एक बहुत ही ज़रूरी काम में फँस गया हूँ।"

शरद समझ गया: देशबन्धुजी नहीं चाहते कि सारी बातें उसके सामने की जायें। उसने फ़ौरन कहा—"जी हाँ, मैं खुद ही कहने वाला था।" वैसे भी इस बीच में उसने उनकी बातें सुनने की न तो विशेष चेष्टा की और न ऐसा दिखाया कि वह ध्यान दे रहा है। वह तस्वीरें देखता रहा।

वह मुड़कर यह दिखाता हुआ चला आया कि उसे उनकी व्यक्तिगत बातों में ज़रा भी दिलचस्पी नहीं है। आते हुये उसने सुना कि वे कह रहे थे—"कौन? कथूरियाजी हैं...?...आपने कोतवाल साहब से बातें की?.....आखिर चाहते क्या हैं?...हाँ, मैं अभी फिर मिनिस्टर-साहब को 'क' कर रहा हूँ...तबतक तो वे

आये नहीं थे..."...और उसने किवाड़ का पल्ला छोड़ दिया। आवाज एकदम कट-कर बन्द हो गई।

गैलरी पार करते हुए उसने विचित्र तरह अपने दोनों हाथ झटके। अजब गोरखधन्धा है! देशबन्धुजी से यहां पहली-दूसरी मुलाकात में वह इतना चमत्कृत और चकाचौंध रहा कि जैसे उनके सम्बन्ध में उसकी चेतना और उत्सुकता दब-सी गई थी। जितना कुछ भी सामने आ गया, उतना भर देख लिया आगे कुछ भी नहीं, क्योंकि उसके आगे जानने का कोई अर्थ नहीं था। उलटे जल्दबाजी प्रगट होती थी। अतः उसने उस उत्सुकता को दबा लिया था, और उसकी चेतना एक ऐसी निश्चेतन दर्पण बनकर रह गई थी कि जो भी सामने आये उस पर प्रतिबिम्बित होकर समाप्त हो जाय। जो कुछ भी उसके सामने आया, उस पर जान-बूझकर उसने कुछ सोचा नहीं, प्रतिक्रिया नहीं होने दी। कोई प्रतिक्रिया हुई भी तो उसकी ओर से उसने उपेक्षा का भाव धारण कर लिया। देशबन्धुजी के प्रति उसे श्रद्धा थी और इस श्रद्धा को वह किसी भी पूर्वाग्रह से ग्रसित नहीं होने देना चाहता था। वह स्वयं जानता था और अपने परिचितों और मित्रों से अतिशयोक्तिपूर्ण क़िस्से सुनता रहता था कि बड़े आदमियों की पोलें क्या हैं? उनके व्यवहार और विचारों में किस प्रकार अन्तर ही नहीं, प्रबल विरोध है। तब भी उसने आगरा रहने के तीन-चार दिनों के अनुभव के आधार पर देशबन्धुजी को अपवाद ही समझा था। और इस अपवाद समझने के विश्वास को बल-पूर्वक हृदय में इतना गहरा बैठाए रखना चाहता था कि जो ऐसी-वैसी बातें आई भी, उन्हें उसने "चांस" या साधारण कमज़ोरी कहकर उनकी ओर ध्यान नहीं दिया था—लेकिन कुछ बातें एक के बाद एक ऐसी आ रही थीं कि वे उसकी सुषुप्त चेतना को झकझोर देती थीं। हर बात जैसे सोये पड़े पानी में एक कंकड़ी की तरह पड़कर वर्तुल बना देती। उसे ऐसा लगता एक खोल है, एक अस्तर है, जिसे देशबन्धुजी ओढ़े हुए हैं, लेकिन कहीं न कहीं से जैसे उससे कोई न कोई छिद्र दीख ही जाता है। तो क्या सचमुच ही एक झिल्ली इस व्यक्ति के ऊपर है? हो सकता है वह झिल्ली या खोल वास्तविक ही हों, और अब फटने लगे हों—मनुष्य की परिस्थितियां ही तो हैं! ऊपर से लादे हुए खोल को निभाने में जो एक कृत्रिमता आ जाती है, वह तो देशबन्धुजी में दिखाई नहीं देती। लगता ज़रूर ऐसा है कि आदमी, ईमानदार और सिंसियर है। जो कुछ बोलता है, उसे अनुभव करता है। हो सकता है जो शरद को छिद्र दिखाई देते हों—वह सब उनकी विवशता ही हों। लेकिन फिर भी यह क्या रहस्य का जाल-सा इस व्यक्ति के चारों तरफ़ घूमता है, जैसे शान्त और निस्तब्ध बहे चले जाते पानी में कोई कछुआ कभी सिर निकाल कर झांक उठे और सहसा ही फिर छिप जाय। अच्छा, मिल की गड़बड़ उनकी विवशता हो सकती है, लेकिन और भी तो

बातें हैं। आखिर इनका पूरा परिवार रहता कहां है ? सूरजजी और उनके बीच में जो एक काँटेबाज़ी चलती है वह आखिर क्या है ? पद्मा और मायादेवी के व्यवहार में जो एक दबा-दबा-सा रहस्य है, वह क्या है...?

देशबन्धुजी ने आल्मारी से जिन फ़ाइलों को निकालने को कहा था, उनका पूरा गट्ठर अपने कमरे में लाते हुए शरद ने और भी बीसियों बातें अपने मन में सोच डालीं। उसे लगा कि इतने दिनों से इस नये वातावरण के अनुरूप ढलने वाले उसके सूक्ष्म ज्ञान-तन्तु और व्यक्तित्व फिर अपने वास्तविक रूप में जाग रहे हैं। अभी तक तो उसने अपने मन और मस्तिष्क को केवल देखने दिया—अब वह सब देखा हुआ प्रश्नों के रूप में उग रहा है।

उसके कमरे में घुसते ही, तीन-चार आदमी जो इधर-उधर सोफ़े और कोचों पर बैठे थे, एकदम उठ खड़े हुये। शरद को बड़ा नया-नया-सा लगा। लोग उसे ऊँचा समझ कर, उसके सम्मान में खड़े हों, ऐसे अवसर उसके जीवन में मित्र-मण्डलियों को छोड़कर आये ही नहीं। उसे लगा जैसे उसने किसी स्टेज पर क़दम रखा हो। इच्छा हुई कि उनलोगों के इस भ्रम पर वह खिलखिलाकर हँस पड़े कि वह उसे यह सम्मान देने लायक़ कितना ग़लत आदमी समझ रहे हैं, और बच्चों की तरह अपनी असलियत प्रगट करके कहे, 'कहो, कैसा बहकाया !' लेकिन नहीं, उसमें अवसर के उपयुक्त गम्भीरता आनी ही चाहिये। उसे ऐसा भाव धारण किये रखना चाहिये कि कहीं कोई यह न समझ ले कि बिल्कुल ही नया वांगड है।

उसने गट्ठर मेज़ पर रख दिया और अत्यन्त ही शिष्टता से वाणी को अधिक से अधिक स्वाभाविक बना कर बोला—"आप लोग बैठिये। नेता भैया तो एक अत्यन्त ही आवश्यक कार्य में फँस गये हैं, किसी और समय आप लोग कष्ट करें तो बड़ी ही कृपा हो।" ऐसी गम्भीरता से सूचना देते समय प्रयत्न करके, चढ़ती हुई झेंप को रोकने के लिये उसने खास ध्यान रखा कि किसी विशेष व्यक्ति से आँखें न मिलाई जांय। वह घूमकर अपनी कुर्सी पर आ बैठा और इसी बीचमें उसकी मेज़ पर रख दिये गये डाक के नये बण्डल को सिर झुकाकर टटोलने लगा। इतनी सारी डाक ! अखबार...अखबार...लिफ़ाफ़े, पैकेट, पोस्टकार्ड। पन्द्रह-बीस लिफ़ाफ़े, पोस्टकार्ड और इतने ही अखबार के पैकेट भी होंगे। उसे तो मालूम भी नहीं है कि इन सब का क्या करे ? उसे यह सब पढ़ डालने चाहियें, कि भीतर पहुँचवा दे या क्या करे...?

"देखिये, मैं 'विहान' डेली का स्पेशल कॅरेस्पौण्डेंट और रिप्रेज़ेण्टेटिव हूँ। आज उन्होंने मुझे टाइम दिया था, एक बड़े जरूरी काम से मिलना था..."

शरद ने निगाह उठाई। खद्दर का कुर्ता-पाजामा, फटी-सी चप्पल और मशीन फिरे बाल, बगल में चमड़े का बैग; उसके कहने से एक बार बैठकर फिर उठते हुये एक सज्जन कह रहे थे।

"मुझसे उन्होंने जो कहा है, वह मैं आपको बताये दे रहा हूँ।" शरद बोला।

"शायद आप नये आये हैं, देखिये कोई ख़बर ग़लत डिस्पैच हो जाएगी तो बाद में झंझट उठेगा। बालानी साहब नहीं हैं क्या ?" उन्होंने बड़े दृढ़ स्वर में लापरवाही से कहा।

"बताइये मैं क्या करूँ ?" शरद थोड़ा झुंझला उठा।

"आप 'रिस्पौन्सिबिल' हैं ?" उन्होंने चुनौती के स्वर में कहा।

"अजब झंझट है।" उसने सोचा। शायद संवाददाता साहब ख़बरें पास कराके भेजते हैं—कहा जाय या न कहा जाय। पता नहीं यहाँ के क्या क़ायदे क़ानून हैं ? वह एकदम जैसे घबरा उठा। गट्ठर भरकर फ़ाइलें रखी हैं सामने। पता नहीं ख़तों और पत्र-पत्रिकाओं का क्या होगा ! इधर खोपड़ी खाने को यह इतने आदमी हैं। कुछ भी तो उसे पता नहीं है। कहीं कुछ ग़लत-सलत या उलटा-सीधा हो गया तो वैसे आफ़त। उसके मन में ज़ोर से हुआ कि सब चीजें इधर-उधर बखेर कर बाहर भाग जाय—किस चक्कर में आ फँसा ! डूबते आदमी के सहारे की तरह उसने घण्टी को देखा।

तभी प्रूफ़ की बहुत-सी लम्बी-लम्बी पट्टियाँ लिये केशव ने प्रवेश किया—"शरद बाबूजी, ये बिगुल का मैटर पास होने के लिये सूरजजी ने भिजवाया है।

क्या सारे काम इसी लिये राह देख थे कि कब शरद आए और कब टूट पड़ें ? यों तो शरद के लिये सभी यहां एक-से-एक अपरिचित थे, लेकिन केशव उसे बुलाकर ले गया था, उसे उसने कई बार देखा भी था, इसलिये वह उसे परिचित लगा था। उसने जैसे बड़ी आजिज़ी से कहा—"केशवजी, मैं नया आदमी हूँ ज़रा इन लोगों को बताइये।"

ख़ाकी पैण्ट और ऊपर से नीली धारियों की कमीज़ डाले हुए केशव ने एक बार सबका निरीक्षण किया और फिर भीतर चला गया। वह साँवले रंग का अधेड़-सा आदमी था। कमीज़ हमेशा पतलून से बाहर रहती—पतलून काफ़ी पुराना और गन्दा भी था, हाथों पर कुहनियों तक बड़े-बड़े बाल, बांए हाथ में पड़ा लोहे का एक छल्ला, दो-दिन की दाढ़ी, घनी भौंहें, छोटी-छोटी मूंछें, छितरे-छितरे पीछे को काढ़े बाल, आंखों में सुरमा और अगले एक दांत में कील ! अत्यन्त परिचितों की तरह से संवाददाता महोदय ने कहा—"हां भैया केशव, ज़रा जल्दी लौटना है।"

शायद संवाददाताजी के कारण और भी लोग मिल सकें, इस आशा से शेष भी बैठे थे। केशव ने लौटकर संवाददाताजी से कहा—"आपको उन्होंने बुलाया है, जल्दी में है। मिल की तरफ़ जाना है। आप गाड़ी में चलकर बैठिये, रास्ते में ही बातें कर लेंगे। और आप लोग शाम को पांच बजे ही आ सकें तो अच्छा है।"

जाते हुए संवाददाता ने अत्यन्त तुच्छता से शरद की ओर देखा—क्या समझा है मुझे ? इतना महत्वपूर्ण आदमी हूँ ! और वे अपना बैग हिलाते हुए चले गये।

जाते हुए एक विद्यार्थी-से लगनेवाले लड़के ने बड़े भरे गले से कहा—"हमारी तो आज आख़िरी तारीख़ है, नौकरी का फ़ॉर्म फ़ॉरवर्ड करना है।"

शरद की इच्छा हुई उसे रोक ले और ख़ुद उसके फ़ार्म को लेकर फ़ॉरवर्ड करा लाये। उसे एक ऐसा ही अपना अवसर याद हो आया। शायद इन्टर की परीक्षा के लिये उसे एक फ़ॉर्म अटैस्ट कराना था, किसी 'गज़टेड ऑफ़ीसर' से। आख़िरी तारीख़ थी, चपरासी ने कहा साहब लंच पर गये हैं—अब नहीं आएँगे। ऐसी इच्छा हुई कि एक ज़ोर का थप्पड़ इस मूर्ख की खोपड़ी में मारे। उस वक्त उसकी आँखों में भी आँसू भर आये थे। लड़का चला गया और उसे ऐसा लगता रहा, जैसे उससे ही कोई बहुत बड़ा अपराध हो गया हो—जैसे कोई चीज़ उसके दिल में कचोट रही हो।

"अच्छा जी, अब तो मैं जा रहा हूँ; लेकिन आप कह दीजिये देशबन्धुजी से हिन्दू महासभा के स्थानीय मन्त्री कुँवर नाहर सिंह आये थे—उन्होंने ही बुलाया था।" अत्यंत रौबीली आवाज़ सुनकर उसका ध्यान टूटा। जोधपुरी कोट, दुलंगी धोती, पठानी सैण्डल, गोरे-से, ऐंठी हुई मूँछोंवाले एक सज्जन ने कहा।

"भाई केशव जी !" जब सब चले गये तो उसने प्रार्थना के स्वर में कहा—"यह सब कैसे क्या होता है, मुझे तो पता नहीं है। इस मैटर में क्या चैक करना है ? इस डाक का मैं क्या करूँ ?"

"अरे शरद बाबू जी, आप तो बैठिये, कहिये तो मैं चाय-कॉफ़ी को कुछ कह आऊँ ? बालानी बाबू आयेंगे तो सब हो जायेगा। अभी तो आप नये हैं न !" एक पांव पर सारा बोझ डालकर केशव खड़ा हो गया था। दियासलाई की सींक से कान कुरेदते हुए एक आंख बन्द करके, तकलीफ़ के कारण टेढ़े होठों से वह बोला।

"हां नए होने की ही बात है ! अब मुझे यह भी तो नहीं मालूम इसमें क्या चैक करना है ?" उसने प्रूफ़ों की ओर इशारा करके अपनी इतनी देर की झुँझलाहट उतारी; किन्तु तभी अचानक उसे ध्यान आया कि उसकी यहां एक पोज़ीशन है—एक स्थान है। उसे इस प्रकार अपनी कमज़ोरी और असमर्थता प्रकट करनी नहीं चाहिये। यही नौकर, और ख़ास तौर से इस प्रकार के नौकर जो घर और ऑफ़िस के बीच की कड़ी होते हैं, यही लोग तो अपने मालिकों का आइडिया बनाते-बिगाड़ते हैं। ऐसे स्थानों पर इन लोगों को हमेशा ही यह दिखाना चाहिये जैसे यह कोई ऐसा मुश्किल या नया काम नहीं है कि सीखने या कर डालने में दिक्कत हो। यह तो बहुत ही आसान काम है। शरद ने केशव के चेहरे की ओर देखा—वह जैसे बिल्कुल निर्लिप्त और इस बात को अत्यन्त ही स्वाभाविकता से ग्रहण करके व्यस्तनापूर्वक कान कुरेद रहा था। उसने रुटेटिंग-चेयर पर बड़े आराम से पीठ टेक

कर पाँव हिलाते हुए ज़रा मुस्कुराकर कहा—"हर आदमी सब कामों को पहले से तो नहीं जानता। यह पता लग जाय कि भई, हमें यह करना है, फिर तो कोई बात नहीं है।"

"हाँ जी, सो तो है ही।" साफ़ करना समाप्त करके ज़ोर से कान झाड़कर जेब से दियासलाई की डिबिया निकाल कर उसमें सींक वापस रखते हुये वह बोला —"हम जब आये तो क्या जानते थे—? सब जानते-जानते ही जानते हैं।" और बात खत्म करते ही उसने नौकर बुलानेवाली घण्टी को न छूकर मेज में कहीं नीचे की ओर लगा बटन दबाया।

शरद ने प्रश्न-दृष्टि से उससे पूछा..."क्यों!" तब तक चपरासी पल्ला खोल कर आ गया था। केशव ने कहा—"साहब के लिये चाय और बिस्कुट भिजवा दो।"

"नहीं भाई मैं तो..."

"जाओ तुम।" शरद की बात काट कर केशव ने थोड़ा मालिकाना अन्दाज में कहा—"बाबूजो, एक कप चाय से क्या बनता-बिगडता है। बालानी बाबू आयें तो देखिये उनकी मेज पर तो चाय रक्खी ही रहती है और इन दिनों पानी मे तो चाय से बड़ा ठीक रहता है। अपने हाते में ही कैण्टीन है। प्रेसवालों को चाय जाती है—यहां बाबू लोगों को आती है।"

"मैं तो बहुत काफ़ी खा-पी आया था।"—शरद ने ज़रा मुलायम स्वर में कहा। यों मन ही मन पता नहीं क्यों शरद को उसका चेहरा, आँखें, बात करने का ढंग और हाव-भाव ज़रा भी पसन्द नहीं आये थे—उसे देखकर एक तीव्र विरक्ति जागती थी, और हर बार मन में उठता कि बहुत ही घुटा हुआ और चालाक व्यक्ति है; लेकिन उसने सोचा जब एक आदमी इतनी आत्मीयता से बातें कर रहा है तो नौकर और मालिक-सा व्यवहार भी ज्यादा उचित नहीं है। कभी-कभी आदमी जो कुछ दीखता है, वह होता नहीं है। फिर वह यह भी समझ गया था कि केशव साधारण नौकर से कुछ ऊपर है। एक शब्द उसे खटक रहा था। उसे 'बाबूजी' शब्द शुरू से ही घृणा थी। इससे अच्छा शब्द तो 'शरद बाबू' है—बाबूजी तो कानो में नोचता है।

"खा-पी कहाँ से आये, चूल्हा तो आपके यहाँ जला ही नहीं है।" मेज पर फैले हुए कागजों को क़रीने से लगाते हुए जरा-सा मुस्कुराकर केशव बोला।

"तुम्हें क्या मालूम?" शरद ने चौंक कर पूछा। 'पानी के दिनो मे' शब्द सुनकर वह कुर्सी को थोड़ा-सा घुमाकर गुलाबी परदे पड़े जंगले के पार देखने लगा था। धूप में सफ़ेद पड़ा हुआ बादलों का दल आसमान पर रुई के गालों की तरह इधर-उधर तैर रहा था। पर्दे के पीछे वाले काँच से कोठो के सामने फाटक के दाहिनी ओर की बाउण्ड्री दिखाई देती थी—इधर सिर्फ मेंहदी और करौंदे की बाढ थी। उसने कुर्सी सीधी घुमा ली।

"मुझे नेता भैया ने कहा दिया था कि कुछ ज़रूरत हो—बाज़ार-वाज़ार से कोई चीज़ मँगानी हो, इसलिये पूछ आऊँ। और बाबूजो, यह तो हमारा फ़रज है न। हमारे लिये तो जैसे नेता भैया वैसे आप ! हम तो नौकर आदमी हैं, सो हमें तो नौकरी बजानी।" मेज़ बिल्कुल ठीक कर देने के बाद उसने कहा।

"मुझे बाबूजो मत कहा करो।" शरद ने ऐसी गम्भीर मुद्रा में कहा जैसे बहुत महत्वपूर्ण बात कह रहा हो। उसी तरह एकटक एक ओर देखते हुए कहा—"शरद बाबू भी तो अच्छा है।"

केशव हँस पड़ा, जैसे इन पढ़े-लिखे बाबुओं के दिमाग़ कैसे चलते हैं, इसे वह खूब जानता है और इस सबको एक बचपने से ज्यादा महत्व नहीं देता। खिड़की की तरफ़ बढ़ कर बोला—"बड़ी घुटन हो रही है। बाहर बड़ो अच्छी हवा चल रही है। इस पंखे से वह हवा थोडे ही आती है जो कुदरती चलती है।" उसने परदे एक तरफ़ सरका दिये, पूरी खिड़की खोल दी। खिड़की बीच से घूम जानेवाली थी। ताजी और ठण्डी हवा से कमरा भर उठा। परदे फिर ठीक करके वह बोला—"फिर हमलोगों के मुँह से नाम लेना अच्छा भी तो नहीं लगता।"

देशबन्धुजी को उस पर इतना ध्यान है, सोच कर वह कृतज्ञता से भर उठा। केशव के जया के पास जाने की बात सोचकर शरद उसके विषय में सोचने लगा था—पता नहीं उसका मन भी लग रहा होगा या नहीं—न जाने क्या कर रही होगी ? किसी दिन ऑफ़िस लाकर दिखाऊँगा। देशबन्धुजी कोई काम दिला दें तो अच्छा है। मन तब भी बहला रहेगा। केशव से बात करने के लिये कुर्सी उसने फिर खिड़की की तरफ़ घुमा ली, पूछा—"जब तुम गये थे तो जया क्या कर रही थी ?"

"कौन बीबीजी ? अभी बताता हूँ।" उसने क़ालीन पर पड़े हुये काग़ज के टुकड़े को उठाकर खिड़की के बाहर फेंकते हुए कहा—"जबसे नेता भैया ने इसमें बैठना बन्द कर दिया है, कमरे की रेड़ लगा दी सालों ने, बोलो, ये तो साफ़ रहना ही चाहिये, बीस आते हैं, बीस जाते हैं।"

तभी सिप्रगदार किवाड़ खोलकर, लड़के ने एक ख़ूबसूरत-सी ट्रे में पेस्ट्री, बिस्कुट और चाय की छोटी-सी केटली ओर एक औंधी खाली प्याली लाकर रख दी। साफ़ चमचमाते खबसूरत क़ीमती बर्तन। सफ़ेद जीन की पैण्ट और बुश्शर्ट पहने लड़का तौलिया लेकर चला गया। शरद ने फिर कुर्सी मेज़ की तरफ घुमा ली—"भई केशव बाबू, तुम भी तो पियो न।"

"अरे नहीं बाबूजी।" कहकर उसने जिस तरह जीभ काटी, उसे देखकर शरद मुस्कुराये बिना न रह सका—ऐसी असम्भव बात कमसे कम उससे तो सम्भव नहीं है ! प्याला सीधा करते हुए उसने कहा—"फिर बाबूजी ?"

केशव मुस्कुरा दिया, बोला—"लाइये मैं बना दूँ।"

"खाने की चीज़ें तो तुमने ऐसी मँगवा दी हैं, जैसे....." अगली बात कहने की उसने जरूरत नहीं समझी। अचानक सके दिमाग़ में एक बात आई। केशव के व्यवहार और अधिकार से लगता है कि उसे काफ़ी समय यहां हो गया है। निश्चित रूप से वह काफ़ी बातें यहां की जानता होगा। कुछ बातें पूछने के लिये तो उत्सुकता के मारे सचमुच उसके दिमाग की नसें फटी जा रही थी। और कुछ नहीं तो वह देशबन्धुजी के स्वभाव इत्यादि के विषय में उसे काफ़ी बता सकता है। खैर, धीरे-धीरे सही! जो भी हो, उसने निश्चय कर लिया कि केशव को ज़रा लिफ़्ट देनी है। अभी तक तो वह केशव से यों ही इधर-उधर की बातें कर रहा था—अब वह एकदम मन ही मन सचेत हो गया। फिर भी अधिक से अधिक स्वाभाविक बने रहने की कोशिश करते हुए उसने मुँह की ओर एक पेस्ट्री बढ़ाकर उसका कागज़ हटाते हुये पूछा—"क्यों, अब क्यों बन्द कर दिया, नेता भैया ने यहां बैठना ?"

"ऐं.....ऐं....." केशव ध्यान से प्याले में चाय उँडेल रहा था, बात सुनकर एकदम सकपका गया। उसने बड़ी तीखी नज़र से एक बार शरद को देखा—और शायद उस नज़र का तीखापन कम करने को ही दो-तीन बार अपनी सुरमा लगी पलकें झपकाईं। हकलाते हुये उसने कहा—"यों ही...यों ही आजकल काम ज़्यादा हो गया है न। फिर इधर आने वाले बहुत थे...।"

शरद को लगा, दाल में कुछ काला है। और इस बार सचमुच क्रोध का एक करैण्ट-सा उसके शरीर को छू गया। आफ़त क्या है आखिर ? यहाँ हर आदमी साला, एक बात कहता है और आधी को अनकही रहने देता है। इन लोगों को आखिर क्या मज़ा आता है, सीधी-सादी बातों को जान-बूझकर रहस्य बना लेने में ? यह नहीं कि एक-दो के साथ ही यह बात हो, सभी एक सिरे से यही रवैया अख्तियार किये हुए हैं। हाथ के पेस्ट्री के कागज़ को उसने बुरी तरह मरोड़ डाला और झटके से ज़ोर से प्लेट में पटक दिया।

'और हमें तो मालूम नहीं, दिन भर भाग-दौड़ रहती है, इसी मारे नहीं बैठते हैं।" केशव कह रहा था। प्याला उसने शरद की ओर खिसका दिया।

शरद समझ गया और चाहे जो भी कारण हो, कम से कम उनके यहाँ बैठने का यह कारण नहीं है, फिर भी प्याला लेकर भरसक स्निग्ध-स्वर में कहा—"हां—भाग-दौड़ तो रहती है। नेता भैया को काम भी तो बहुत करना पड़ता है।"

"अजी कुछ पूछिए मत! सुबह से उठते हैं—अब यह मिनिस्टर मिलने आ रहा है—अब वह गवर्नर आ रहा है। किसी को परमिट लेना है, किसी को नौकरी की सिफ़ारिश करानी है, या किसी बड़े अफ़सर को कुछ कहलवाना है, दिन भर बस

लोग घेरे ही रहते हैं। एक हो तो याद रखें। वो तो यों कहो, मिल-विल का काम छोटे बाबूजी देख लेते हैं, तब भी बिचारों को रात में बारह-एक बजे सोना नसीब होता है।" अपने मालिक की यश-गाथा से केशव का चेहरा दमक उठा।

"भाई, भले आदमी को यही दिक्कत है—पचास आदमी घेरे रहते हैं। मेरी जान-पहचान तो वहीं अपने शहर में हुई थी। तभी मैंने देखा हम जवान आदमी मे इतने काम नहीं होंगे—उतना यह वहाँ करते थे—खुद सब काम अपने आप !" शरद ने चाय का घूँट भरा।

"सो तो यहाँ भी है। वो तो हमीं लोग भाग-दौड आगे-पीछे हाथ से काम छीन-छान लेते हैं—नहीं तो वो कभी नहीं कहने। धूल लगी होगी तो खुद झाड़ लेंगे। और सा'ब, जब मालिक ऐसा होगा तो नौकर खुद ही शरम के मारे आगे-पीछे घूमेगा। 'भैया' और 'जी' लगाये बिना तो बात नहीं करना ! सुबह ही उठते हैं पांच बजे, नहाये धोये और चरखा लेकर बैठ गये; अपने सूत का कपड़ा पहनते हैं हमेशा।"

"अच्छा !" शरद ने आश्चर्य से कहा।

"हां जी—एक दफ़े बीमार पड़ गये थे। महीने भर उठने-बैठने लायक नहीं रहे सूत नहीं कता, सो जब तक सूत कत कर कपड़े नहीं बन गये, बस चदरा ही ओढ़े रहते, छोटे बाबूजी कह-कहकर हार गये। और चाहे जितना काम हो, रात को चाहे जब भी सोना मिले, सुबह पाँच बजे उठे, नहाए-धोए और पूजा पर बैठ गये...।"

"पूजा भी करते हैं ?"

"हाँ, गीताजी का रोज़ाना घण्टा-भर पाठ होता है। फिर तो दिन भर इससे मिल, उससे मिल, यहाँ जा, वहाँ जा ! मनों तो पेट्रोल फुंक जाय रोज़ाना. कोई दिन ऐसा नहीं जाता जब सौ-दो-सौ आदमियों से मिलना-जुलना नहीं हो जाय। घर पर तो खाना कभी-कभी भले खाते हों, आज इसके यहां पारटी कल उसके यहाँ मीटिंग। रोज़ यहां जलसे होते हैं। अभी दो तीन दिनों में भी तो कुछ होनेवाला है. टेलीफ़ून पर कह रहे थे..."

"अच्छा..." शरद ने विषय बदला—"ऊपर और कौन लोग रहते हैं ?"

"छोटे बाबूजी और घरवाले तो दूसरी कोठी में रहते हैं—शहर में। ऊपर तो आधे हिस्से में बहनजी और पद्मा बीबी रहती हैं—आधेमें हिसाब-किताब के पोथी-पत्रे भरे हैं। सचमुच शरद बाबूजी, बड़ा झंझट है उनकी जान को...।"

"'जी' नहीं, बस खाली बाबू !" शरद मुस्कुरा उठा।

केशव भी मुस्कुराकर चुप हो गया। उसे लगा शायद वह अपने मालिक की ज़रूरत से ज्यादा प्रशंसा कर रहा है। शरद ने सोचा, बस आज इतना ही। वैसे पूछना तो वह यह भी चाहता था कि घरवाले वहाँ और यह यहाँ क्यों रहते हैं ? लेकिन पुलिस-इन्सपैक्टर की तरह कुरेद-कुरेद कर पूछने से शायद ग़लत असर पड़े।

कुछ नहीं तो जाकर कह ही दे। सब कुछ स्वाभाविक रूप से जानते और पूछते रहना चाहिये। थोड़ी देर चुप रह कर केशव बोला—"दिन भर में चालीस-पचास आदमी तो यह कहते चले आते हैं कि हमने इन्हें वहाँ देखा था, वहाँ मिले थे जेल में, हमारा फलाना काम करा दो—आदमी किस-किस को याद रखे..."

"हां भाई, बड़े आदमियों के बड़े ठाठ हैं।"

"लेकिन शरद बाबू, बड़े आदमियों जैसी कोई बात नहीं है। गर्व तो छू नहीं गया, देवता आदमी हैं। हमने तो यह देखा है—जो भी इनके पास आया सोना बनकर गया..."

"अच्छा केशवजी, आपको यहाँ कितने दिन हो गये हैं?" ज़रा आत्मीयता बढ़ाने के लिहाज़ से शरद ने पूछ डाला।

"मुझे?—मुझे हो गये, बारह-तेरह साल।"

"पूरा परिवार होगा?"

"कहाँ जी, एक लड़की थी, सो अपने घर की हुई। उसकी बचपन में ही अम्मा गुज़र गई—अपने अकेले मस्तराम हैं। दिन भर यहाँ रहे—रात को अपनी कोठरी में जा पड़े।"

शरद के मन में एकदम उठा—क्या यहां भी सभी आदमी ऐसे हैं! उधर सूरजजी हैं—वे अकेले, देशबन्धुजी खुद अकेले. यह केशव...फिर सोचकर कि विशेष बातें फिर कभी पूछेंगे सचेत होकर बोला...

"हां बताया नहीं आपने, जया क्या कर रही थी...?"

"बीबीजी..., बीबीजी को तो बहनजी ने बुलवा लिया है। कहा—वहा अकेली क्या रही होंगी। मन भी नहीं लग रहा होगा..."

"हां, सो तो है ही, एकदम नयी जगह है न...।" शरद जैसे कुछ अन्यमनस्क हो उठा। कल की घटना झटके-से उसकी आंखों के आगे साकार हो उठी...

लड़का ट्रे उठा ले गया। शरद धीरे-धीरे डूबने लगा।

"अच्छा, शरद बाबू, बाजार-वाजार का जो भी काम हो, कहिये। आपके सहारे गुज़र होती चली जायगी..." चलते हुए केशव कह रहा था—"और काम की कोई खास चिन्ता मत कीजिये, सब धीरे-धीरे समझ में आ जायेगा..."

"अरे, कैसी बात कर रहे हो...तुम्हारी मदद के बिना थोड़े ही रह सकते हैं हम।" पहली बात के उत्तर में शरद ने कहा।

केशव चला गया।

जया को बुलाया जाना उसे बड़ा अजीब-अजीब लगा। कहना चाहिये अधिक अच्छा नहीं लगा। कुर्सी घुमाकर सामने मेंहदी और करोंदे की लाइनों के बीच में जाती सड़कों, खिड़की के नीचे ही पड़नेवाली क्यारियों में लगे गुलाब के फूलों और दूर सड़क के किनारे खड़े पेड़ों की हरियाली से झांकते बादलों को देखते हुए कल की

मुलाकात का एक-एक चित्र उसकी आंखों में घूम गया—जया का उसने जब पद्मा और माया से परिचय कराया था...उस परिचय की याद करके उसका मन एक तल्खी से भर उठा...कल की ही तो बात है...

सन्ध्या को मौसम विशेष सुहावना हो गया था। आसमान साफ था और बादलों के एक दो टुकड़े ही क्षितिज में आवारा लड़कों की तरह तैर रहे थे। यों ही सावधानी के लिहाज से 'सूरज' जी ने छाता ले लिया था। इसे वह बेंत की तरह टिका-टिका कर चल रहे थे। शरद और जया खाली हाथ थे। जया ने कन्धे पर पर्स लटका लिया था जो उसकी बग़ल में झूल रहा था। भींगी सड़क सूख रही थी... जया चुप-चुप थी। शायद उसे घर का ध्यान रह-रह कर आ रहा था। कभी-कभी वह स्वयं ही यह सोचकर कि कैसी स्वतन्त्रता से शरद के साथ घूम रही है, विचित्र संकोच से भर उठती! राह चलते व्यक्तियों की दृष्टियों के स्पर्श को जब वह अपनी पीठ, बांह, मुँह इत्यादि पर अनुभव करती तो दो विरोधी भावनाएँ एक साथ उसके मन में उठतीं। शरद के साथ अब वह इतनी समर्थ—बोल्ड—है कि इन दृष्टियों के स्पर्श को दरगुज़र कर सकती है, लेकिन इन्हीं में से कोई दृष्टि उसे पहचान ले तो? इस पहचानने की कल्पना से ही सिहर उठती। घर में इस समय हल्ला हो रहा होगा—जया कहां गई—जया कहाँ गई? मुहल्ले पड़ोस की स्त्रियाँ बड़ी गम्भीरतापूर्वक ठोड़ी में उंगली लगाकर कह रही होंगी—"ए, हम तो पहलैई जानें भैया। उसके लच्छन क्या किसी से छिपे थे? रण्डियों की तरह दिन-दिन भर घूमना।" या—"कर भी तो कैसी हथिनी-सी ली थी। हमने तो भैया, पहलैई कही थी, लड़की का ब्याह कर-कराके अलग करो। कुछ नहीं रक्खा है इन बातन में। पर नहीं सा'ब,—हम तौ मास्टरी करवायेंगे। लो करवाओ मास्टरी।" या "लल्ला के चाचा कह रहे थे, उन्होंने रेल में देखा....." ऐसे-ऐसे हज़ारों वार्तालाप के टुकड़े उसके दिमाग़ में आ रहे थे। स्कूल में जो बातें हो रही होंगी, वह तो वास्तव में असहनीय ही हैं...इस्तीफ़ा दे आई है तो क्या है—ऐसी बातें कहीं छिपी रहती हैं, किसी से?—"मिस सिनहा तो देखने में बड़ी सीधी-सी लगती थीं.....अरे हम निगाहों से पहचानने वाले हैं—इधर वह रहने कैसी लगी थी, बड़ी खोई-खोई-सी, एक तरफ़ देख रही हैं तो बस देखे ही जा रही हैं।" आँखें नचाकर मिसेज कक्कड़ ने कहा होगा। बाक़ायदा स्टाफ़-रूम में कांफ्रेंस लगी होगी, मिसेज दास से बिना इसमें हिस्सा लिये थोड़े ही रहा गया होगा...लड़कियों पर तो सचमुच बड़ा बुरा असर पड़ा होगा। जो भी हो, अब तो लौटकर जाने का हर दरवाज़ा क़रीब-करीब बन्द हो चुका है। जया जान-बूझकर घर की बात नहीं सोचती थी—मुहल्ले-पड़ोस की छोटी-से-छोटी प्रतिक्रिया को वह सोच सकती थी, स्कूल की पूरी बात की वह कल्पना कर सकती थी; लेकिन...लेकिन पता नहीं क्यों घर की बात सोचते ही

मन धसकने लगता था। और सब जगह की बातें सोचकर भय होता था। कभी-कभी जी कड़ा करके वह उपेक्षा से सिर भी हिला देती थी, लेकिन जब भी उसे घर का ध्यान आता, विचित्र तरह की रुलाई उसके मन में ज्वार की तरह फूटने लगती। उसका गला रुँध आता। सुबह से सूरजजी के आतिथ्य और गप्पों में जान-बूझकर उसने अपने आप को भुलाए रखा—और कहीं की कोई बात ही नहीं सोची—लेकिन सोने के बाद से तबीयत बड़ी गिरी-गिरी थी। और सोते वक्त उसे क्या हो गया था कि इतनी बुरी तरह रोने लगी थी.....? कोई बात भी तो ऐसी ख़ास नहीं थी। शरद दादा ने भी क्या सोचा होगा ?—"दादा"...सुन लें तो काटने दौड़ें। फिर आख़िर कहूँ भी क्या ?—मुझसे तो नहीं कहा जाता कुछ। हुँह, शुरू से कहा है, अब एकदम कैसे छोड़ दें। उसे रोना इस तरह नहीं चाहिये था. बात ग़लत है, इसका प्रभाव शरद पर बुरा पड़ रहा होगा, फिर भी वह बेबस थी। रुलाई उससे थमी ही नहीं। बाद में चुप करते-करते शरद की भी तो आँखों में आंसू आ गए थे—"जया, तुम मुझे कमज़ोर बना रही हो। मैंने अपना घर-बार नहीं छोड़ा है ?" वह रोती रही थी, बाल शरद की छाती पर बिखर गये थे। रोशनदान की टीन पर टपर-टपर बूंदें बरस रही थीं—सिर पर हाथ रखकर शरद कह रहा था—"समझदार होकर पागलों जैसी बात क्यों करती हो ? बिल्कुल ही नासमझ हो—ऐं ? बड़ी हुई, पढ़ी-लिखी, पढ़ाने लगीं और फिर भी वही बच्चों की-सी बात ! मैं कहता हूँ, तुम बिल्कुल निर्द्वंद्व होकर रहो—मैं तो हूं साढ़े छः हाथ का। तब तो बड़ी-बड़ी समझाने की बातें कर रही थीं—अब सब एकदम ख़त्म ?" ख़ैर उस समय तो जैसे-तैसे बड़ी मुश्किल से शान्त हुई थी—लेकिन अब उस सब को याद करके हृदय पुलक उठता है—और तब इधर-उधर भटकता हुआ मन जैसे सहारा पाकर दृढ़ हो जाता है। उंह, होगा। जो होगा सो होता रहेगा आख़िर कब तक यों ही जिन्दगी गलाई जाती...कब तब यों उम्र बीतते चुपचाप देखती रहतो ? सब दो-दिन यों ही बक-बकाकर चुप हो जाते हैं, जिन्दगी फिर स्वाभाविक गति से चलने लगती है, लोग भूल-भाल जाते हैं। कोई ऐसा अनोखा काम तो उसने किया नहीं...

और जया की यह चुप्पी शरद के दिल पर बोझ की तहें बन-बनकर जम रही थी। सिवा घर के या उसने अच्छा किया या बुरा, अपने इन संस्कारों से लड़ने के, वह कर ही क्या रही होगी ? जया के सम्बन्ध में उसका मनोवैज्ञानिक-ज्ञान कह रहा था कि सोचने से बचाने के लिये उससे बातें किये जाना चाहिये—इधर-उधर की, दुनियाँ भर की, वर्ना वह सारी ख़ुराफ़ातें सोचेगी। शरद को सबसे अधिक आश्चर्य हो रहा था 'सूरजजी' पर। सूरजजी कुछ अजब सुस्त-से और अलग-अलग चला रहे थे। सूरजजी के बातूनीपने से वह घबराता था—और उसकी बातें सुन-सुनकर उसे एक विचित्र तरह की विरक्ति होती थी। ख़ास तौर पर उन्होंने शरद का जो अध्ययन

किया था उसे वह विशेष रूप से झुँझला उठा था, लेकिन तब भी कुछ ऐसी बातें भी थीं जिनकी ओर वह आकर्षित होता था और इस आकर्षण के प्रवाह में विरक्ति पीछे पड़ गयी थी। विशेष रूप से सूरजजी और देशबन्धुजी के सम्बन्धों के बारे में जानने का आकर्षण। दूसरे आसपास इतना इस स्थान से परिचित दूसरा कोई आदमी था भी नहीं। कभी-कभी शरद सोचता, शायद यह मेरे अपने मनका भ्रम ही हो—सूरजजी सचमुच इतने बुरे न हों जितना उसने समझ रखा है। फिर भी अब इस समय चुप रहना उनके स्वभाव के विपरीत भी है—और कुछ बड़ा घुटा-घुटा-सा लग रहा है।

"यहा कोई आस-पास अच्छी घूमने लायक जगह क्या है?" शरद ने ही आखिर बात शुरू की।"

"यहाँ?" सूरजजी ने मुँह के पान की नस को, जो उनसे चबाई नहीं जा रही थी थूकते हुए कहा—"क्यों, यह सड़क ही क्या बुरी है जिस पर हम लोग चल रहे हैं। शरद बाबू, आप इसे चाहे जैसी उजाड़ और उदास जगह कहें, यहाँ की सारी जेण्ट्री यही आती है घूमने।"

"नहीं, जहां ज़रा मन लगे, थोड़ी शान्ति-पूर्वक बाते की जा सके, घण्टे-आध-घण्टे बैठा जा सके।" शरद ने ऐसा कहा। एक बार जया की ओर देखा।

"देखिए सा'ब, जो यहाँ वालों की बात थी, वह सूरज ने आपको बता दी। अब अगर आप ख़ास तौर से मेरी ही पूछे तो मुझे यहाँ सिर्फ़ एक जगह पसन्द है। कभी-कभी मन हुआ तो साँझ को वहीं जाकर पड़े रहें। कसम से कहता हूँ—बड़ा मन लगता है, उठकर आने की तबियत नही करती, नीचे बहती नदी, ऊपर तारों का जाल, लहरों का शोर। आजकल नदो तो जरा जोश पर है न, सो लहरों को ऐसी टकराहट होती है कि तबियत वहीं उलझ कर रह जाती है..."

"कहां... ?" जया ने पूछा।

"यहाँ पास ही एक-सवा मील पर रेल का पुल है। सो उसीके बीच में आठवें नम्बर का अपना खम्भा है, बस वहीं पर उतर गये—वहीं आठ-दस फ़ुट लम्बी चौड़ी जगह है—बड़ा एकान्त है, बड़ी शान्ति रहती है। कभी-कभी तो वहीं नीद आ जाती है, तब दस बजे की गाड़ी से नीद खुलती है।"

"वहाँ काफ़ी जगह होगी?" ज़रा चकित-स्वर से जया ने पूछा।

"हाँ—बताया न अभी, आठ दस फुट चौड़ी और दस फ़ीट लम्बी जगह समझिये।"

"कहीं करवट लेते-लेते लुढ़क गये?" जया ने कुछ भीत-स्वर में पूछा।

"अरे—ऐसे नहीं गिरते हैं।" सूरजजी ज़ोर से हँस पड़े—"और सूरज के ही बिना कौन-सी दुनियाँ सूनी पड़ जायेगी? जयाजी, सूरज को इन बातों का बहुत अभ्यास है। मैं बरसों बम्बई में नरीमैन-पॉइन्ट पर सोया हूँ—वहां तो कभी-कभी

रात में लहरें जिस तरह आ-आकर टकराती हैं—रेती तो शायद यहाँ टकराती भी नहीं है।"

"आज तो नहीं—कल वहां चलेंगे शाम को—क्यों जया ?" सूरजजी अपनी कोई गाथा न ले बैठें, इसलिये जल्दी से शरद जया की ओर देखकर बोला।

"हां, कल चालये, आज चलिये, जब इच्छा हो तब चलिये..."

"नहीं, आज तो कैसे जा सकते हैं—आज तो कुछ सामान लाना है न, श्रीमती जी नाराज होंगी।" मुस्कुराकर शरद ने अपने मित्रों से सुने हुए वाक्य को ज्यों का त्यों दुहरा दिया। सूरजजी ज़रा आगे झुके को धरती पर ठोक-ठोककर चल रहे थे, जया शरद के पास ! वह मुस्कुराकर लाल पड़ गया। उसने इधर-उधर देख कर ज़ोर से उसकी बग़ल में पसली पर नोच लिया। मिसमिसाकर धीरे से बोली—"शरम नहीं आती !" शरद ने फ़ौरन बाँह नीची करके जया का हाथ ज़ोर से वहीं दबा लिया।

"छोड़ो, नहीं तो मैं कहती हूँ फिर..."

"क्या ?" शरद शान्त चलता रहा, जैसे उसे कोई मतलब ही न हो।

"दा..." उसने बड़ा-सा मुँह फाड़कर कहा। उसका मतलब था दादा।

शरद ने हाथ छोड़ दिया। सावधान करते हुए कहा—'फिर आगे ऐसी हरकत मत करना।"

"डर गये ?" जया खिलखिलाकर हँस पड़ी। मुग्ध-सा शरद देखता रहा।

"अरे भाई, सड़क पर क्यों लड़ते हो ?—आखिर जेठ की हैसियत तो है ही मेरी।" दो-एक बार बनावटी ढंग से खांसकर सूरजजी कुटिलता से मुस्कराए और सामने देखते हुये बोले।

शरद ने ठोड़ी झटककर उनकी ओर इशारा किया—इनका ध्यान करो ! जया ने हँसते हुये मुँह पर हाथ रख लिया—हाय, सारी बातें उन्होंने सुन न ली हों। जान-बूझकर क्या बेवकूफ़ी की है। ज़ोर से हँसकर शरद बोला—सूरजजी, जेठ लायक़ इज्जत तो आपने रखी ही कहाँ—आप तो शुरू से ही इतने घुल-मिल गये कि देवर....."

"आपको बात क्यों लगती है ? आपका तो जेठ-देवर कुछ लगता नहीं हूँ।" सूरजजी और शरद हँस पड़े। जया कट कर रह गयी। फिर उन दोनों को आश्वस्त करने के लिये कि कहीं वे लोग इन्हें अपने बीच में बाधक या दाल-भात में मूसल-चन्द न समझें, वे ज़रा प्रसन्न स्वर में बोले—"सच मानिये शरद बाबू, सूरज को सिर्फ दो ही व्यवहार पसन्द है, या तो बिल्कुल उन्मुक्त, हार्ट-टू-हार्ट, और या बिल्कुल कट-ऑफ़ ! यह बीच का दबा-भिंचा-सिकुड़ा-सा व्यवहार मुझे पसन्द नहीं। इसे मैं जितनी जल्दी हो सकता है खत्म कर देता हूँ।" फिर एकदम विषय बदल-कर बोले—"अच्छा हाँ, आपने जयाजी की मुलाक़ात पद्माजी और मायादेवी से नहीं

कराई।"

"हुई ही नहीं, शायद वे लोग अधिक व्यस्त रही और हमें तो फ़ुर्सत ही नहीं मिल पाई सुबह से । शायद उन्हें हमारे आने का पता ही न हो।" शरद ने गम्भीर स्वर में कहा अब जहां चलते-चलते यह लोग आगये थे—सड़क सँकरी हो गयी थी और इधर-उधर दूर-दूर पड़ने वाली कोठियों के स्थान पर मकान और दूकानें दिखाई दे रही थीं। एक मकान पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा 'बालामृत' का विज्ञापन दूर से ही दिखायी दे रहा था। दो खम्भों पर खड़े हुए बड़े से बोर्ड पर ओवल्टीन का डिब्बा बना था। जया ने कपड़े ज़रा ठीक कर लिये। एकाध बिखरी लट पीछे की, और सिर पर पल्ला ले लिया। सांझ गहरा आ रही थी।

"नहीं, यही तो आपका खयाल ग़लत है, शरद बाबू।" सूरजजी कह रहे थे —"उन्हें मालूम सभी रहता है। कोठी मे कहां क्या होता है इसका मायादेवी को रत्ती-रत्ती पता रहता है।"

"अच्छा!" शरद ने आश्चर्य प्रगट किया, फिर बोला—"खैर माया-देवी को तो मैंने पहली ही बार देखा है—देखा भी होगा तो याद नहीं है, लेकिन पद्मा के व्यवहार को देखकर बड़ा आश्चर्य होता है। शायद मैंने आपको नहीं बताया, हम लोग दो-साल साथ पढ़े हैं, लेकिन उसने मुझे पहचाना तक नहीं। चुप तो खैर वह पहले भी रहती थी—फिर भी इसका मतलब यह तो नहीं कि पहचाना तक न जाय। और फिर बातचीत करने लगी तो ऐसी कि बिल्कुल ही भूल गयी..."

"बड़ी मूडी-सी लड़की है। अपने में ही गुम-सुम। मैंने बताया था न, उसकी हाथ की रेखाएं तो बड़ा भंकर रीडिंग देती हैं। आपने तो जयाजी, देखा नहीं होगा आज तो दोनों माँ-बेटी अपनी नीली साड़ी में गयी हैं। जाते हुए देखा था।"

"नहीं, मैंने नहीं देखा।" जया वास्तव में पद्मा को देखने को बड़ी उत्सुक थी। उनका ज़िक्र एकाधिक बार आ चुका था।

"और अगर मैं भूल नहीं करता, तो सामने रिक्शा में वही आ रही है।" सूरजजी ने ज़रा चौंककर कहा।

"लगती तो वही हैं।" शरद भी बोला—"लेकिन आप तो कहते थे, वह गाड़ी में गई हैं।"

"हां, जाते तो गाड़ी में ही देखा था—पता नहीं क्या बात है। वैसे एक बात शायद आपको पता नहीं है? मां-बेटी में ख़ास बनती नहीं है।" पास आते रिक्शे को देखकर सूरजजी बोले।

"हां—मार्क तो मैंने भी किया है, लेकिन कारण समझ में नहीं आया।" शरद अन्यमनस्क स्वर में बोला। उसने ग़ौर से जया को देखा। जया का इस तरह साथ होना और एकदम पद्मा का यों आ टपकना उसे एक क्षण को अच्छा नहीं लगा। उसकी इच्छा हुई जया इस समय साथ न होती तो अच्छा था।

लेकिन जया पास आते रिक्शे में बैठी पद्मा को ग़ौर से देख रही थी—साफ़ खुलता हुआ रँग, ज़रा तीखे नक्श, पतली-सी नाक, कुछ कसे हुए होंठ, अण्डाकार चेहरा, पतली-पतली भवें जो नाक पर हल्की-सी बालों की रेखा से आपस में इस तरह मिली थीं जैसे पौराणिक चित्रों में बीच से पकड़ने वाला धनुष पड़ा हो और उस जगह सावधानी से रखी गयी काली-सी बिन्दी। खुले रंग पर खूब खिल रही थी।

नमस्कार करने के लिये पद्मा के माथे तक उठे हुए हाथों के जवाब में शरद और सूरजजी के हाथ साथ ही जुड़े। रिक्शा खड़ा हो गया। ध्यान आने पर जया ने भी खूब शिष्टता से हाथ जोड़े, उसके उत्तर में पद्मा ने दुबारा नमस्कार किया। उसने मुस्कुराने की की कोशिश की, लेकिन जैसे उससे मुस्कुराया नहीं गया। वह सुस्त थी। तीनों रिक्शे के पास आ गये।

"कहिये; किधर से घूम आईं ?" शरद बोला।

"यों ही।" पद्मा ने मुस्कुराकर टाल दिया।

"आप, शायद गाड़ी में गयी थीं···।" सूरजजी ने रिक्शे के टायर पर छाते की नोक से खट-खट करते हुए पूछा।

"हाँ..हाँ..हाँ" पद्मा की मुस्कुराहट ग़ायब हो गई। ऐसा लगा जैसे यह प्रसग उसे विशेष रुचा नहीं, लापरवाही से बोली—"अम्मा जिद पकड़ गईं—मार्केटिंग करने चलो—मार्केटिंग करने चलो। मन नहीं था—तब भी चली गयी। वहां तबियत ज़रा ज़्यादा खराब हो गई—सिर मे ऐसा दर्द उठा कि रहा नहीं गया। उन्हें कुछ जरूरी चीजें लेनी थीं—मैंने कहा आप लेती रहिये—अपने बस की तो है, नहीं मैं चली आई।" पद्मा निरुद्देश्य-सी एक ओर देखती हुई शरद और सूरजजी से बोली —'आप किधर चल दिये ?"

"यों ही सोचा इन्हें शहर दिखा दें। कुछ जरूरी चीजे इन्हे भी खरीदनी थीं।" सूरजजी ने कहा—"रिस्पौन्सिविलिटी अपने ऊपर ही आ गई है सब, सूरजजी इनके सैल्फ़डिक्लेयर्ड जेठ हो गये है न..."

पद्मा ने फिर एक बार जया को देखा। शरद को ध्यान हो आया कि परिचय तो कराया ही नहो, बोला—"आपका परिचय तो मैं इन्हें दे चुका हूँ—यह है मेरी साथिन जया सिनहा...अभी तक पढ़ती थी, अब पढ़ानेवाली है।" शरद मुस्कुरा उठा।

पद्मा विशेषरूप से सुस्त थी, वह ज़बर्दस्ती मुस्कुराई—"सिनहा ? आप तो वशिष्ठ हैं शायद ?" जया ने एक बार उस ओर देखकर सिर झुका लिया था।

"हां, हमलोगों ने इन्टरकास्ट..." शरद ज़रा गर्व से बोला।

"ओऽऽ !" कहकर पद्मा ने जैसे उठती हुई गहरी साँस को दबा लिया, पर फिर सहसा ध्यान करके बोली—"तो फिर जया शरद कहिये न ?"

"शरद जया क्यों नहीं ?" शरद ज़ोर से हँस पड़ा—"हमलोग एक-दूसरे के

भौतिक व्यक्तित्व के विलीनीकरण के पक्ष में नहीं है...।"

"हूँ, तो यह बात है—हमारी भाभीजी भी आपकी तरह रैडीकल हैं।" पद्मा ने अत्यन्त ही फीकी मुस्कान से कहा। वह फिर अन्यमनस्क-सी एक ओर देखने लगी।

जया का चेहरा लाल पड़ गया। इस 'भाभीजी' शब्द से उसे बड़ी झेंप लगती थी। उसने एक बार फिर पद्मा की ओर देखा। स्लिम-शरीर, भरी बाँहें, सफेद साड़ी, सफ़ेद ब्लाउज़। एक हाथ में घड़ी, उँगलियों में लटकता खरगोश की खाल का छोटा-सा 'पाउच' (पर्स), सिरपर ज़रा ऊपर की ओर बँधा हुआ अत्यन्त आधुनिक फ़ैशनका चौड़ा जूड़ा, कानोंमें छोटे-छोटे कुण्डल। कनपटी तक बढ़ी हुई बालों की लटें—जरा कंजी-सी आँखें। बात बदलने के लिये जया ने कहा—"चलिये न, आप भी थोड़ा बाज़ार की तरफ़ घूमने।"

पद्मा ने चौंक कर बहुत ही आजिज़ी से एकदम उसका हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—"मेरी तबियत ठीक नहीं है भाभी, वर्ना मैं ज़रूर चलती। सच, मैं जरूर चलती! कल आइए न उधर। एक क़दम की ही तो दूरी है।"

"जी हां, मैं कल ज़रूर आऊँगी।" जया ने शरद को देखा।

"अच्छा आप कष्ट क्यों करें! आप मत आइए, मैं खुद ही आऊँगी। वैसे तो शरदजी बुलाएँगे नहीं। अच्छा भाभी, चलूँ।" उसी नम्रता से पद्मा बोली।

"देखिये, मैं तो आप से बहुत छोटी हूँ।" इस बार जया से नहीं रहा गया—"आप तो मेरी बड़ी बहन हुईं न!"

"आगे तो आप निकल गईं न!" सूरजजी ने ज़ोर से हँस कर कहा। शरद मुस्कुराया और जया लजा गई। उसने शरद की ओर देखा।

पद्मा ने कुछ नहीं कहा और फिर पर्स हाथों में दबाकर माथे तक हाथ उठा दिये—रिक्शा सरका। शरद ने फिर देखा पद्मा के गम्भीर चेहरे पर उसकी ठुड्डी काँप रही थी—उसे पहले दिन की बात याद हो आई।

"कल ज़रूर आइये।" जया ने याद दिलाया।

पद्मा ने सिर हिला दिया।

तीनों थोड़ी देर चुपचाप चलते रहे।

"शरद बाबू, एक बात बताऊँ?" सूरजजी ने पूछा। अँधेरा काफ़ी झुक आया था, और दूकानों में बत्तियां जलने लगीं थी।

"क्या?" शरद ने पूछा।

"इसकी तबियत-वबियत कुछ खराब नहीं थी—यह मायादेवी से लड़कर आई थी।" अत्यन्त ज्ञानी की तरह खाली मुँह को पुनः पान से भरने के लिये वे जेब में डिबिया टटोलने लगे।

"सूरजजी, ठीक यही बात तो मैंने महसूस की। वर्ना यह रिक्शे में क्यों

आती ? रिक्शे में मायादेवी आ सकती थीं।" शरद ने भी सोचकर कहा।

"यह बात !" सूरजजी ने उसकी समझ की दाद दी। फिर अपनी बात जारी रखी—"और तुमने उसकी टोन नहीं देखी ? बातचीत करने का ढङ्ग, चेहरे के एक्सप्रेशन सभी से ऐसा लग रहा था, जैसे अब रोई—अब रोई।" सूरजजी ने कहा—

"यह लड़की तो बेचारी सीधी-सी लगती है मगर इसकी अम्मा ?" उन्होंने दोनों कान छुए—"भगवान बचाये।"

"कॉलेज में भी यह बहुत सीधी और चुप लड़कियों में से थी।" शरद ने बाज़ार देखते हुए कहा। शोकेसों में बल्ब चमकने लगे थे।

"लड़की भावुक है।"

"भावुक का मतलब अगर रो पड़ना ही है, ज़रा-ज़रा-सी बात पर, तो मैं कहूँगा कि सभी लड़कियां एक स्थान पर बराबर भावुक हैं।" शरद ने कुटिलता से जया की ओर देखा।

"अच्छा, लौटकर इस बात का जवाब दिया जायेगा। अब बाज़ार आ गया है, अब अपनी मनोवैज्ञानिक-स्टडी बन्द कर दीजिये।" जया ने कुछ अधिकार के स्वर में कहा।

"रो जाओगी।" शरद ललकार कर बोला।

"इतना कमज़ोर मत समझिये।"

"अच्छा जी, ज़रा देखना इधर !"

"नहीं, हम नहीं देखते। बाज़ार में भी चुप नहीं रहा जाता—हाँऽऽ तो नहीं।"

"अच्छा, सूरजजी, अब साइकॉलॉजीकल-स्टडी बन्द, आइये, अब हमलोग यहाँ की फ़िज़ीकल-स्टडी शुरू करें और नम्बर दें।" शरद प्रसन्न स्वर में बोला।

"गुड्डु, यह काम भी आप करते हैं टो ?" हाथ आगे कर के वे शरद को मुँह के छींटों से बचाते हुए बोले।

"अपनी ज़िन्दगी और बीती कैसे है ?" हँसकर वह बोला—"और आप नहीं जानते, हमारा और जयाजी का परिचय भी इसी तरह हो गया था। अब आप को भी अपनी ज़िन्दगी सफल बनानी है तो जितनी जल्दी हो सके यह स्टडी शुरू कर डालिये।"

"मैं कहती हूँ, आपको झूठ बोलते ज़रा भी शरम नहीं आती ? हाँ, सा'ब कहां हुआ था, हमारा परिचय ?" आखें तरेर कर जया ने पूछा। इस बार सच-मुच उसे झुँझलाहट आ गयी—भरे बाज़ार में नये आदमी से इतना अधिक खुलना क्या अच्छा बात है। यह शरद दादा परिस्थिति को बहुत जल्दी भूल जाते हैं। पद्मा के चले जाने के बाद से जया की चुप्पी शरद को अच्छी नहीं लग रही थी—इसलिए वह उससे कुछ न कुछ बुलवाये रहना चाहता था, लेकिन फ़ौरन ही उसने अनुभव किया कि ढङ्ग ग़लत अपनाया गया है। बोला—"अच्छा, सूरजजी हम अपने

शब्द वापिस लेते हैं—और एकदम विषय बदलते हुये पूछते हैं कि हमारी चीजें कहाँ-कहाँ मिलेंगी ?"

जया को सब से अधिक शर्म इस बात से लग रही थी गृहस्थी की जिन चीजों से उसका कभी मतलब नहीं रहा—उन्हीं सबको एक दक्ष-गृहिणी की सावधानी से खरीदना होगा। उसे तो ठीक से मालूम भी नहीं कि क्या-क्या चीजें लेनी हैं, कितने तक लेनी हैं। सूरजजी ने शरद को फिर याद दिलाया कि कल सबसे पहला काम यह करे कि जैसे भी हो देशबन्धुजी से पैसों के मामले में तय कर ले।

और जिस समय एक बर्तनवाले की दूकान पर सूरजजी खरीदे हुए सामान को पैक कराने के सम्बन्ध में उपदेश दे रहे थे—कहीं खरीदी हुई चीजों पर दाग न पड़ जाय, इसलिये जया बड़ी तीखी दृष्टि से नौकर को एक के ऊपर एक बर्तन रखते. देख रही थी, और शरद तटस्थ की तरह एक ओर खड़ा था, तभी हाथ की सिगरेट को मुंह में लगाकर ढीली बुश्शर्ट और चौड़ी मुहरी का ढीला-ढाला पैण्ट पहने हुए किसी ने चुपके से पीछे आकर सूरजजी के दोनों कन्धे ज़ोर से पकड़ लिये—"कहिये सम्पादकजी, आज कैसे मौके पर पकड़ा है। बड़ी गृहस्थी खरीद डाली, दावत वग़ैरह देनी है क्या ?"

इस अप्रत्याशित आफ़त पर सहमकर सूरजजी ने सिर घुमाकर देखा, कौन आ टपका ! "भई वाह, कपिल साहेब है—वही तो मैं भी कहूँ—यह कन्धे पर बन्दर जैसा कौन टूटा ?"

"अरे अब क्यों पहचानेंगे ? अब तो 'सैया भए कोतवाल.....।" इन कपिल साहेब ने सूरजजी को और भी भींच लिया।

"अरे छोड़ भाई, दो भले आदमी खड़े है। अब क्या मेरा कन्धा ही तोड़ ले जायेगा ? कौन सैया कोतवाल हो गये ?"

"अरे अबके नई मिनिस्ट्री बनी और तुम्हारे देशबन्धुजी मिनिस्टर हुए...।"

"हुँह..." सूरजजी ने नाक पर मक्खी झाड़ी—"क्या 'बोर' बात शुरू की है, लाओ, तुम्हारा परिचय कराऊँ।" इस प्रेमालिंगन को शरद और जया तो कौतूहल-पूर्ण-विनोद से देख ही रहे थे, दूकानदार और दो-एक राह चलते भी रुचिपूर्वक देखने लग थे, इसलिये सूरजजी गम्भीर हो गये।

कपिल साहेब ने चुहल एकदम खत्म कर दी, और तनकर परिचय प्राप्त करने की मुद्रा में खड़े हो गये। शरद और जया भी पास खिसक आये। जया कनखियों से सामान पैक करते हुए नौकर को देख लेती थी।

"देखिये शरद बाबू, आप हैं मेरे घनिष्ठ मित्र श्री रूपकिशोर कपिल, यहाँ के 'हरदयाल कॉलेज' में अर्थशास्त्र के प्रोफ़ेसर और लेखक—विद्यार्थी देखेंगे या साथी इस चिन्ता से आप बिल्कुल ही परे हैं, और ये हैं हमारे नये मित्र शरद कुमार, देशबन्धुजी के साथ नये आये हैं, और आप श्रीमती जया शरद..."

शरद की इच्छा हुई एकदम विरोध करे, जैसे अभी पद्मा से परिचय के समय उसने किया था लेकिन पता नहीं क्यों; नहीं कर सका। तबतक कपिल का हाथ इन शब्दों के साथ उनकी ओर बढ़ आया था—"वैरी ग्लैड टू सी यू।" जया ने मुस्कुरा कर हाथ जोड़े। शरद ने कहा—"प्रसन्न तो हमलोग कितने हैं—यह पूछिये, आप लोगों से मिलते हैं तो लगता है अकेले नहीं हैं।"

"यहाँ क्या अकेलापन लगता है?" ज़रा कुटिलता से मुस्कुरा कर कपिल ने पूछा और सिर झुकाकर सिगरेट के धुंए की धारी छोड़ी—"देख लीजिये सम्पादकजी, शहर की सबसे चहल-पहल की जगह को आपके मेहमान साहब ने अकेली जगह कहना शुरू कर दिया है..."

"हाँ शरद बाबू, सूरज इस रिमार्क का विरोध करना है, जहाँ एक-से-एक भला आदमी मौजूद हो उसके बारे में आप ऐसा कैसे कह सकते हैं? भविष्य में आप शब्दों के प्रति अधिक सावधान रहें—समझे—?"

"और भाई साहब, गुस्ताख़ी माफ़ हो, जो भी यहाँ नया आदमी आता है, हम तो उसे यही समझाते हैं कि यहाँ एक ही देखने लायक चीज है—वह है 'देश-बन्धु-ज़ू'—तरह-तरह के जीवित पशु-पक्षियों का संग्रह। अब आपसे क्या देखने को कहें, आप तो लाये ही गये हैं...!" कपिल की इस बात पर एक बड़े जोर का ठहाका पड़ा।

"बस फ़र्क यही है कि और जगह के जानवर बन्द रहते हैं।" शरद ने चोट की।

"हां, शायद आज तो खुले घूमने-देने का ही दिन दिखाई देता है—छोटे-बड़े सभी बाज़ार में ठेल दिये गये हैं; बाज़ार की खैर नहीं है।" लेकिन फिर कपिल को सहसा ऐसी गम्भीर चीज़ याद आ गई कि इस मज़ाक़ को खत्म करके वह सूरज जी की ओर घूम पड़ा—"अरे हां सम्पादकजी, सुना आपने—आज आपकी माया देवी ने तो साक्षात् चण्डीका रूप प्रदर्शित किया। सारा बाज़ार देखने लगा..."

शरद के कान खड़े हुए। सूरजजी ने अपनी उत्सुकता को दबाकर कहा—"सो तो अब भी देख रहा है। देखो कपिल साहेब, सामान का रिक्शा वो खड़ा है, उसमें यह सब रख दें. फिर धीरे-धीरे घूमते हुए चलें। ये सारी बातें रास्ते में हों तो क्या बुरा है?"

"अच्छा चलिये, मैं शरदजी की वजह से थोड़ी दूर चला चल रहा हूँ, मगर ज़रा भी उस मनहूस जगह चलने का मेरा मन नहीं है।" शरद की ओर बड़े अन्दाज़ से नयी सिगरेट बढ़ाकर कपिल बोला, शरद ने हाथ जोड़ दिये तो स्वयं मुह में लगा ली।

"एऽऽ, ध्यान कीजिये—वहां सूरजजी रहते हैं।"

"इसी से तो मनहूसियत में चार चांद लग गये हैं, अगर चन्दाजी होते तो शायद चार सूरज लगते।" अपने परिहास पर कपिल स्वयं ही बड़े ज़ोर से हसा,

फेर पण्ट की जेब से दियासलाई निकालकर सिगरेट जलाने लगा।

सामान रिक्शे में रक्खा गया और जया ने पर्स में से पैसे दिये। फिर ये लोग लौट चले।

"हां तो क्या कर दिया मायादेवी ने ?" सूरजजी ने पूछा।

"हां, 'नवीन-ज्वैलर्स' हैं न, उनके यहां कहीं उन्हें एक हार पसन्द आ गया—उसने दाम बता दिये साढ़े सात-हज़ार। बोली, बिल भेज देना। उस बेचारे ने साफ़ कह दिया, पिछले साल का अँगूठियोंका तीन हज़ार का बिल तो अभी तक पड़ा है, आखिर इस सब की भी हद है। कोई ख़ैरातखाना तो उसने खोला नहीं है। बस, ताव खा गई—बोली, तुम जानते नहीं हो, मैं कौन हूँ। मैं देशबन्धुजीके 'घर से' हूँ।"

'अच्छा ?" सूरजजी खिल उठे, तब भी बनावटी आश्चर्य से उन्होंने पूछा !

"हां ! फिर तो साहब, देशबन्धुजी का बखान शुरू किया, दो मिलें हैं, सिनेमा है, बीसियों जगह शेयर हैं, चाहूँ तो पूरी दूकान खड़ी-खड़ी खरीद सकती हूँ। कहीं दूकानदार ने भी कह दिया कि मिलें और सिनेमा तो उनके लड़के के हैं, देशबन्धुजी का क्या है उसमें ? बस, इस पर आंखों मे आसू ले आई—सिसकने लगी, 'मेरा अपमान किया, मैं समझ लूँगी। न आग लगवा दी इस दूकान में तो नाम नही !' उन्होने तो पूरा बाज़ार इकट्ठा कर लिया।..."

"फिर हुआ क्या ?"

"होता क्या, दूकानदार भी जिद्दी था, उसने भी सा'ब, साफ़ कह दिया 'आप फाँसी पर चढ़वा दीजिये, मैं एक चीज़ नहीं दूंगा।' बड़ी ज़लील औरत है भाई। और मजा यह कि उसकी लड़की साथ; वह समझा रही थी कि माताजी क्या बेवकूफ़ी कर रही हैं—लेकिन, सा'ब औरत है कि आफ़त...।"

"हां, है तो कपिल साहेब हिम्मत का ही काम—बीच बाज़ार में यह कहना कि मैं देशबन्धुजी के घर-से हूँ—ऐसे वैसे का काम नहीं है..." सूरजजी बोले।

"वैसे सम्पादकजी, तुम चाहे जितना पर्दा डालो—कोई छिपी हुई बात तो यह है नही...। कपिल ने सिगरेट का कश लगाया।

"अरे सूरज क्यों पर्दा डालेगा ? यही बात तो शरदजी, मैंने हाथ देखकर बता दी कि आपका एक से अधिक लोगों से सम्बन्ध रहेगा—उसी पर तो अबतक खार खाये बैठी है। उसकी हैल्थ-लाइन, लाइन ऑफ़ लाइफ़ के भीतर, ठीक माउण्ट ऑफ़ वीनस से, एक आइलैण्ड के साथ शुरू होती है—वैसे भी हार्ट-लाइन सपोर्ट करती है.....।"

"अरे होगा भी—वैसे लड़की काफ़ी समझदार है।" कपिल बोला।

शरद के सामने से एक पर्दा हट गया। पहले दिन का व्यवहार, देशबन्धुजी और मायादेवी के वार्तालाप, पद्मा की खीझ, अभी रास्ते में पद्मा की तबीयत खराब होना, अन्यमनस्कता, हर चीज़ उसके सामने स्पष्ट हो उठी। उसे उत्सुकता होने

लगी, कब अवसर मिले और कब यह सब बातें जया को सविस्तार बताये...

"और नतीजा यह हुआ कि लड़की नाराज़ होकर अलग रिक्शे में चली गई।" कपिल बता रहा था.....

शरद ने मन ही मन कहा, अच्छा यह बात थी ! तभी पद्मा जया से कह रही थी कि तुम आकर क्या करोगी, मैं ही आ जाऊँगी।

"लो देखो, ये रहीं मायादेवा, अभी मार्केटिङ्ग खत्म थोड़े ही हुआ है।" कपिल ने एक बहुत बड़े कपड़े वाले की दूकान की ओर सङ्केत करके कहा—"देखलो, ड्राइवर कितना बड़ा गट्ठर लादकर निकल रहा है—आज तो पूरी दूकान खरीद ली मालूम होता है। कम्बख्त ने बाज़ार का बीसियों हज़ार रुपया उधार कर रखा है।" घृणा से कपिल ने एक कश में ही शेष सिगरेट पूरी करके ज़मीन पर फेंक दी और ज़ोर से उसे जूते से कुचल दिया—जैसे उसका भी मायादेवी से कोई सम्बन्ध हो।

"लेकिन यह तो शायद खद्दर पहनती हैं।" शरद को भी आश्चर्य हुए बिना नहीं रहा।

"जी नहीं, उनका तर्क दूसरा है।" कपिल ने तीखे स्वर में कहा—"उनका कहना यह है कि देश के स्वतन्त्र हो जाने के बाद मिलें तो यहाँ के राष्ट्रीय-उद्योग-धन्धों में आ गयी हैं। इससे पहले खद्दर का व्रत देश-सेवा थी, आज अच्छा से अच्छा कपड़ा पहनना। हमें साले अर्थशास्त्र को पढाते हुये सात साल हो गए, यह तर्क ही समझ में नहीं आया। जो मिलें पहले थीं, वही अब भी हैं—जहाँ से माल आता था, जहाँ जाता था, सभी वही है; मालिक भी वही है। फिर कैसे यह उद्योग-धन्धे एकदम राष्ट्रीय-सेवा में आ गए, समझ में नहीं आता।"

"अरे छोड़ो यार, यह सारी स्वतन्त्रता का गोरख-धन्धा ही उन्ही मालिको के लिये है..."सूरजजी कह रहे थे।"

दूकान के सामने नीली 'शेवरले' कार खड़ी थी। सूरजजी और कपिल साहब चुपचाप जैसे किसी को देखा ही नही, आगे चले गये। जब शरद और जया कार के पास से गुज़र रहे थे, तभी ड्राइवर ने आकर दरवाजा खोला—हाथों और बांहों पर रखे हुए पुलन्दों को भीतर रखा—तबतक मायादेवी भी आ गई थीं.....वे राह देख रही थीं कि ड्राइवर हटे तो वे कार में बैठें।

"कहिये शरद कुमार जी, किधर घूम आये ?" जैसे ही शरद पास से गुज़रा वे पूछ बैठीं। काला चश्मा और बालों से आधे-ढके ईयरिङ्ग। शरद का मन विरक्ति से भर उठा। उसने सहायता के लिये आगे देखा—सख्त कुटिलता से मुस्कुराते हुए सूरजजी और कपिल आगे जाकर खड़े हो गये थे। शरद ने उन्हें अत्यन्त शिष्टता के साथ नमस्कार किया। बोला—"आज तो आप मार्केटिङ्ग करने निकल आईं....."

"कहां निकलना होता है ?" मायादेवी ने इतनी सुस्त पड़कर कहा जैसे अभी

रो पड़ेंगी, फिर एकदम खिलकर बोलीं—"तो ये हैं आप की पत्नी....." फिर वे अपने पूरे खुले गले से इस तरह हँसीं जैसे कोई परिहास की बात हो।

शरद ने शरमाने का भाव दिखाकर नीचे सड़क पर देखा, फिर कहा—"नाम है जया। और जया—तुम्हें तो मैं माताजी का परिचय दे चुका हूँ।"

जया ने बड़े आदर से नमस्कार किया।

"क्या बतायें—बड़ी मुसीबत है। पद्मा के लिये सब इकट्ठा करना पड़ता है। बड़ी चिन्ता है भैया, तुम जानों".....वे बोलीं।

शरद ने एक बार फिर सामने देखा—वे लोग इन्हें ही लक्ष्य कर हँस रहे थे। पास ही सामान का रिक्शा खड़ा था।

मायादेवी ने कार के दरवाजे से ज़रा हटते हुए कहा—"वहीं चल रहे हो? आओ न; साथ ही चले चलेंगे, और अब तो नेता भैया ने तुम्हारा पूरा चार्ज ही दे दिया है हमें।"

"साथ चलने में तो हमें कोई आपत्ति नहीं है, लेकिन हमारे साथ अलग रिक्शा में सामान है। सूरजजी और उनके एक मित्र हैं....."

सूरजजी का नाम सुनकर मायादेवी ने मुँह बिचका दिया—फिर भीतर कार में घुसती हुई बोलीं—"तब आप हमारे साथ क्यों चलने लगे? आप तो भैया, बड़े लोगों के साथ हैं।"

शरद ने देखा पिछली सीट पर और पीछे छोटे-बड़े काफ़ी बण्डल रखे थे। मायादेवी की बात के जवाब में उससे कहे बिना नहीं रहा गया—"यही तो मैं भी सोचता हूँ कि दो दिन के बड़े लोगों के साथ में अपनी हैसियत के लोगों को क्यों भुला दिया जाय?"

मायादेवी हँसकर स्प्रिंगदार गद्दे पर ज़ोर से बैठ गयी—बोलीं—"आइये न, कभी इन्हें लेकर उधर।"

"ज़रूर।" शरद ने कहा, फिर जरा खुशामद के लिहाज़ से बोला—"यह दिन भर करेगी भी क्या? क्वार्टर में तो कोई है नहीं, सूरजजी के भी कोई नहीं है। आप ही की देखभाल रहेगी।"

"नहीं जी, आजकल की लड़कियां अपनी देखभाल खुद करती हैं।" पता नहीं यह वाक्य पद्मा को लक्ष्य करके कहा गया था या अपने अर्थ में केवल वर्त्तमान को ही पकड़ता था—लेकिन इसमें जो व्यथा झनझना रही थी, वह वाक्य की समाप्ति पर एक गहरी साँस बन गयी। तभी ड्राइवर ने दरवाजा बन्द कर दिया और घूमकर अपनी सीट पर पहुँच गया।

जया और शरद आगे बढ़ आये थे। फिर सूरजजी और कपिल ने जो मज़ाक किये और जिस प्रकार का विनोद-पूर्ण वार्तालाप करते वे लोग काफ़ी दूर तक कपिल को खींच लाये या जिस नाटकीय ढंग से विदाई हुई और उसमें दोनों पक्षों ने

एक को दूसरे के यहाँ बुलाने के वचन लिये, पद्मा और मायादेवी से जया का परिचय कराने की परिस्थिति और उसकी विचित्रता की बात सोच-सोचकर शरद डूब गया। उसके मन में इस रहस्य के उद्घाटन से एक बड़े अजब ढंग का सन्तोष भर उठा था, जैसे हर बार भीतर कोई दुहराता—ओः, यह बात थी ! यह रहस्य था, जो यहां की फिज़ाओं में तैरा करता था। यह सन्तोष, एक ऐसी विजय की अनुभूति-सा उसकी मानसिक अशान्ति के दूधिया उफ़ान को पानी के छींटों से बैठा रहा था जैसे अब उसे स्वदेश-महल में होनवाले हर रहस्य की एक ताली मिल गयी हो। एकदम चाहे वह उस ताली से हर ताले को न खोल सके, लेकिन विश्वास अवश्य हो गया है कि हां, अब इस ताली से हर ताला खुल सकेगा।

कुर्सी घुमाकर बड़ी देर तक शरद कल की बात को मन ही मन दुहराता रहा। जानते हुए भी जया चली क्यों गयी ? यह भी तो ठीक पता नहीं है कि पद्मा ने बुलाया है या मायादेवी ने। केशव तो 'माया बहन जी' बता रहा था, शायद पद्मा ने ही बुलाया हो। यह मां-बेटियों में इतना विरोध क्यों है ? अजीब हैं यह मायादेवी भी—यहां लेकर पड़ी हैं लड़की को। सुनते हैं साल में दो-तीन चक्कर लगते रहते हैं। पद्मा को तो शायद इसीबार लाई है। जिन्दगी ख़राब हुई जा रही है बेचारी की। क्या सोचती होगी अपनी मां की हरकतें देख-देखकर... ? वह शुरू से ही बड़ी सैन्सिटिव नेचर की है...एकबार शायद क्लास में किसी लड़के ने दूसरी लड़की की ओर कुछ रिमार्क कस दिया था—प्रोफेसर लड़कियों के साथ अधिक पक्षपात करता है, या कुछ इसी तरह का। लड़कों की भाषा तो सर्वविदित है ही।—उजत्तेना से पद्मा का चेहरा लाल हो गया था। कॉमन-रूम में सब लड़कियों से उसने कहा था कि इसका ज़ोर से विरोध करें। आज यह बात एक लड़की को लेकर कही गयी है—कल सभी के लिये कही जा सकती है या किसी और के लिये कही जा सकती है...।

तभी पीछे मेज़ पर टेलीफ़ोन घन-घना उठा—सारी विचार-धारा टूट गयी ...शरद ने झटके से घूमकर सफेद टेलीफ़ोन उठा लिया था—इसी की घण्टी बज रही थी—"हलो...ऽऽ..."

"ज़रा शरद कुमारजी को बुला दीजिये...।" किसी ने दूसरी ओर से ज़रा खाँस कर गला साफ़ करते हुए कहा। स्वर लड़की का था—और काँप रहा था।

"मैं शरद कुमार ही हूँ—कहिये ?" विस्मय से शरद ने पूछा।

"कब आ रहे हैं.....? साढ़े बारह बज गये.....।"

"कौन ? तुम जया, तुम कहाँ से बोल रही हो ?...ऐं, पद्मा के पास से ?"

"जी हां, दोनों ही हैं। आप पहुँच कब रहे हैं ? आध घण्टे में आ जाइये...।"

"अभी से कैसे ?" शरद ने मुस्कुराकर घड़ी देखी—साढ़े ग्यारह बज गये थे,

घण्टे कब बज गये उसने ध्यान ही नहीं दिया था—"अभी तो कुछ भी नहीं किया ?"

"तो जल्दी कीजिये न....."

"जी हां—यह घर की खेती है न ! जब काम कर लूंगा तब आना होगा।"

"नहीं भाई...दा...

"चुप...।" ज़ोर से शरद ने झिड़क दिया फिर कुछ क्षण बाद बोला—"अच्छा, अभी आता हूँ आध-पौन घण्टे मे। समझ लो इस समय बड़े रौब में बैठा हूँ—तुम्हें लाकर किसी दिन दिखाऊँगा तो बेहोश हो जाओगी...अच्छा, काम करने दो, नहीं तो पद्मा समझेगी टेलीफ़ोन पहली बार मिला है।"

"कोई है ही नहीं, पद्मा जीजी नहाने गयी हैं और मायादेवी खानेको देखने—देशबन्धुजी का फ़ोन आया है। वे खाना खाने आ रहे हैं..."

"तभी टेलीफ़ोन मिल गया ! लेकिन मिल में सुनते हैं कुछ गड़बड़ चल रही है, वे यहां के सब ज़रूरी काम छोड़कर गये हैं—वहां कैसे आ जायेंगे ?"

"पता नहीं, जो मैंने सुना सो बता दिया—अब बस।"

"बस ?" शरद ने सरस होकर पूछा।

"हिश्ट..." उधर से टेलीफ़ोन रख दिया गया।

शरद ने मेज़ के कागज़ों को फिर इधर-उधर किया। देशबन्धुजी के भाषणों के लिये वह जो फाइलें लाया था—उन्हें खोल-खोलकर देखना शुरू किया, लगभग प्रान्त के सभी प्रमुख अख़बार थे...सब के मुख-पृष्ठों पर देशबन्धुजी के विभिन्न मुद्राओं में फोटो थे...भाषण की मुख्य बात ऊपर हैड-लाइन बनाकर लिखी गयी थी। ये अधिकांश भाषण विभिन्न योजनाओं के समय में दिये गये थे। उन्हीं के समर्थन की दलील में कहीं-कहीं तो उन्होंने वे-वे बातें कहीं थीं कि शरद चकित रह गया। और जब उसने पूरी फ़ाइलों पर एक बार निगाह डालकर उन्हें मेज़ पर, हर भाषण का विशेष अध्ययन अब क्रमशः किया जायेगा, यह सोचकर रखा तो उसके दिमाग़ में देशबन्धुजी के सम्बन्ध में जो छाप थी वह कुछ इस प्रकार थी...देशबन्धुजी बहुत अच्छे नेता हैं—भाषण-कर्त्ता अच्छे हैं, व्यक्तिगत रूप में वे बहुत सज्जन और सरस हैं...यो कमज़ोरियां किसमें नहीं होती ? यही क्या कम है कि वे इतना समय और धन इस कार्य में देते हैं—वर्ना देश में हज़ारों पूंजीपति पड़े हैं। देशबन्धुजी को कमी क्या है ? फिर भी जल्दी से जल्दी वह अपने सम्बन्ध में सभी बातें स्पष्ट कर लेगा, यह उसने निश्चय कर लिया।

सोचते-सोचते उसकी उँगलियों ने आज का नया अखबार खोल डाला—बॉक्स में 'प्रेमी और प्रेमिका' भाग गये पढ़कर वह एकदम बुरी तरह चौंक गया। लेकिन वह ख़बर उसके नगर की नहीं थी। फिर तो वह अपने नगर की सारी ख़बरें ढूंढ़-ढूंढ़कर पढ़ने लगा...।

अंधेरे की तस्वीरें

इधर-उधर के बीसियों तरीक़े सोचने के बाद जो सबसे अधिक उचित शरद को लगा वह यह कि जया को एक ख़त लिखा जाय। ख़त की बात उसके दिमाग़ में पहले भी आई थी; किन्तु जो हर समय साथ है उसे ख़त लिखने की बात पर हँसी आना ज़्यादा स्वाभाविक है। बातचीत, हो सकता है, कोई ऐसा रुख़ ले-ले कि कटुता आ जाय—या कुछ अवांछित बातें आ जाँय। उन सबसे बचने का एक ही तरीक़ा है कि लिखित बातें की जाँय।—डायरी कैसी रहेगी? डायरी वह लिखता नहीं है—यह अस्वाभाविक लगेगा। उमा दीदी को पत्र लिखकर मेज़ पर छोड़ दिया जाय, वह पढ़ ले। इसमें हो सकता है जया बुरा माने—दो आदमियों की व्यक्तिगत बातों में तीसरे को भागीदार बनाना कहां तक उपयुक्त है? शायद वह इसे पसन्द न करे। और जब बात मुझे कहनी तो क्यों न सीधे पत्र लिख कर ही कह दी जाय। हाँ, पत्र ही सबसे सीधा रास्ता है।

आंखें उसकी पर्दे पर लगी थी और दिमाग़ में शब्द गूँज रहे थे। एक-एक शब्द उगा चला आ रहा था—उसे क्या लिखना है। भाव उमड़ रहे थे, शब्द उग रहे थे, लेकिन जैसे साकार नहीं हो पाते थे। एक कसमसाहट थी कि हल्की बेचैनी दिमाग़ में पैदा कर रही थी। जया और पद्मा पास-पास बैठीं थी, फिर शरद और तब मायादेवी। आज ज़रा हल्की ठंड हो गयी थी। पर्दे पर फ़िल्म दौड़ रही थी...और शरद के दिमाग में शब्द। कभी-कभी कोई दृश्य उसे बाँध लेता। और कभी जब वह सामने के दृश्य मे खोया रहता तो एक मीठी-सी खुशबू से उसके नथुने भर उठते—किसी पुराने अंग्रेज़ी सेण्ट की भीनी खुशबू, जो भली तो थी मगर जब कभी इसकी लपट उसे अपने बिल्कुल निकट लगती तो वह चौंक उठता। पहले दो बार तो वह नहीं जान पाया लेकिन तीसरी बार उसने मुड़कर देख लिया—शायद सामने वाले आदमी का सिर मायादेवी के देखने की सीध में पड़ता था, वे कभी उसके सिर के इधर से देखतीं, कभी उधर से। जब कभी उनका सिर इधर आ जाता तो शरद के बिल्कुल पास आ पड़ता। मायादेवी सिनेमा भी काला चश्मा लगा कर ही देखतीं हैं, इस चीज़ ने जया और शरद का ही नहीं आस-पास के काफ़ी लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। पहले तो सबका ख़याल था कि जैसे ही अँधेरा होगा वे चश्मा उतार लेंगी लेकिन उन्होंने उतारा नहीं तो आश्चर्य हुआ।

पता नहीं क्यों, उनके बालों की एक लहरदार पट्टी से आधे-ढँके कान और उसमें हिलते ईयरिंग शरद के मन में बड़ी झुँझलाहट पैदा कर देते थे। कारण वह नहीं जान पाता था, किन्तु विवश था। अब जब सुगन्ध की लपट उसे अपने पास ही

लगती, साथ ही यह विचार भी आता कि आधे बालिश्त पर वह कान भी है जो आधा ढँका है तो मन बड़ा बेचैन-सा होने लगता।

गृहस्थी का कोई बड़ा रूखा-सा दृश्य चल रहा था—शायद खाना खाते-खाते नायिका के मां-बाप और मामा उसकी कहीं और शादी करने के लिये आपस में बैठकर परामर्श कर रहे थे। शरद ने गर्दन सीधी करने के विचार से इधर-उधर देखा, लेकिन जया की ओर जानबूझकर नहीं देख पाया। बड़ा मानसिक बोझ और खिंचाव उसे अपने भीतर लग रहा था—जैसे घुटे हुए कमरे में किसी ने बन्द कर दिया हो। वह जानता था पद्मा खुद इतनी चुप-चुप है और फिर सिनेमा जैसी जगह में तो वह शायद ही बोलना पसन्द करेगी। जया बिल्कुल सीधी तनी, आँखों को पर्दे पर गड़ाए देख रही थी। तो आप नाराज हैं! पता नहीं सोच इस समय क्या रही होगी! उसे आज सुबह से ही जुकाम हो रहा था—बस वही नाक के द्वारा सांस खींचने की आवाज और रूमाल नाक पर रखने का क्रम। शरद ने कई बार कनखियों से या इधर-उधर सिर घुमाकर देखा लेकिन जया ने एक बार भी सिर इधर-उधर नहीं किया।

आज दोपहर से उन दोनों में अबोला चल रहा है।

काफी सोच-विचार के बाद शरद मानता है कि दोष उसका ही है। अच्छा, मान भी लिया जाय कि दोष उसका ही है, लेकिन क्या इतनी-सी बात को दरगुज़र नहीं किया जा सकता? ऐसी कोई बुरी बात तो उसने कही नहीं थी। इस बात को वह भी तो जान चुकी है, बस उसी की ओर तो ज़रा-सा संकेत था, हँसी-हँसी में। हँसी की बात को जया कभी-कभी बहुत सीरियसली लेने लगती है, और कभी इतनी बड़ी बात को हँसते-हँसते कर डालती है कि घर से उसके साथ 'भाग' तक आये? न जाने क्यों इस कार्य को 'भाग' आना शब्द देने से वह चौंकता था। वह जानता था कि यह 'भाग' आने के सिवा कुछ भी नहीं है; फिर भी उसका बौद्धिक सम्मान इसे स्वीकार ही नहीं करता था कि उससे 'भाग आना' या 'भगा लाना' जैसी हरकतें भी सम्भव हैं! जो हो, है यह जया की ज्यादती ही! अगर ऐसी-ही भावना से जिन्दगी चली तो बहुत जल्द ही एक दिन वे लोग अलग भी उसी तरह हो जायेंगे, जैसे साथ आये हैं। और आखिर कोई बात भी तो हो ऐसी!

मायादेवी की हरकतों का इतना स्पष्ट संकेत वह पा चुकी है—फिर भी वह उसके पास गयी। माना, उन संकेतों में सचाई नहीं है; वे एक व्यक्ति की भावना में रँगे संकेत हैं, और अगर संकेत सच भी हैं तो क्या किसी के पास बैठना भी इतना बुरा है?

आध-घण्टे में जैसे-तैसे जो भी उलटा-सीधा उसकी समझ में आया, काम ख़त्म करके जब शरद लौटकर क्वार्टर पर आया तब तक जया आई नहीं थी। दूसरी ताली से ताला खोलकर भीतर क़दम रखते ही उसका मन प्रसन्नता से खिल उठा—

जया ने कमरे को बिल्कुल सजा लिया था। कुर्सियाँ, पलंग जो सुबह ही आ गये थे, ढंग से रख दिये गये थे। थोड़ी देर वह घूम-घूमकर मन ही मन जया की प्रशंसा करता रहा, फिर एकाध चीज़ अपनी रुचि के अनुसार भी बदली। तबतक भी जया नहीं आई। इधर-उधर के कामों द्वारा वह जया की प्रतीक्षा के समय को बहलाने का यत्न कर रहा था, लेकिन प्रतीक्षा की उत्कटता धीरे-धीरे झुँझलाहट का रूप लेने लगी—बड़ी बेवकूफ़ है, मुझे तो जल्दी आने को कह दिया और खुद वही जमी है।

जब हाँफती-सी जया भागी-भागी आई तो शरद की झुँझलाहट क्रोध के रूप में बदल गई थी और वह आंखें बन्द करके पलंग पर पड़ा भुन रहा था। जया ने इधर-उधर देखा, और पट्टी पर बैठकर उसकी बांह पकड़ कर झकझोरती हुई बोली—"अरे वाह, आप तो सो गये! उठिये।" दो एक बार झकझोरने पर उसने करवट बदल कर उनींदी-सी आंखें खोली—"मिल गई फ़ुर्सत आपको?"

"सच दादा, उन्होंने आने ही नहीं दिया।"

"हाँ जी, तुम्हें हम से क्या? अब तो तुम्हारे साथी मिल गये।" फूले गालों से शरद बोला—"हमें यहाँ बुलाकर बैठा लिया और आपको अपनी गप्पों से ही फ़ुर्सत नहीं है।"

"मैंने पद्मा जीजी की बहुत खुशामद की—अब देखिये हाँफती चली आ रही हूँ।" पद्मा ने बांह खींचकर उठाते हुए कहा—"उठिये अब?"

"जाओ, तुम अपनी पद्मा जीजी की पास! तुम्हें किसी से क्या मतलब?"

"अब उठिये भी, बहुत नखरे हो गये। मना रहे हैं तो दिमाग़ ही नहीं मिल रहे। उठिये।" उसने बच्चों की तरह पुचकार कर उसको बैठा दिया।

ग़स्सा शरद का उड़ गया, और मुस्कुराहट रुक नहीं सकी।

कुछ देर बाद :

"तो मायादेवी से बड़ी घुट-घुटकर बातें हुईं!" उसने खाना खाते समय व्यंग्य से मुस्कुराते कहा—"उन्हें एक नयी चेली मिल गयी है।"

"सो वह खातिर जमा रखें, चेली ऐसी कच्ची गोटी नहीं खेली।"

"चेली पहले से ही काफ़ी खेली-खाई पड़ी है!" शरद कुटिलता से हँसा—"मायादेवी के लिये भले ही नयी बात हो, चेली को तो कोई नयी बात नहीं है।"

"अच्छा, हाँ, नहीं है नयी बात!—बस। हम तो जनम-ज़िन्दगी के ही ऐसे हैं, ऐसों से ही हमारी दोस्ती है। कहिये क्या कहना है?" जया के गाल फूल गये। मुँह के कौर को चबा कर वह चुपचाप एक ओर देखती रही—"खेले-खाये पड़े हैं तभी तो आप के साथ चले आये।"

"जया, यह तुम्हारी क्या बेवकूफ़ी है! बाईस-साल की बूढ़ी हो गयी—मजाक़ समझने की तुममें कभी भी तमीज़ नहीं आयेगी। ज़रा बात पर तिनक जाती हो। इससे और साथ चले आने से क्या मतलब?" शरद ने जया के रुके

हुए हाथ को फिर खाने की तरफ़ बढ़ा दिया, लेकिन जया ने हाथ फिर वहीं खींच लिया।

"तमीज़ कहां से आयेगी—? इक्कीस साल तो हम खाये-खेले हैं!" फूले हुए गालों से शिकायत भरी वाणी निकली।

"अये—हये! तुमसे तो बात करना पाप है। मज़ाक़ की साले की, दम निकाल दी खींच-खींचकर। अच्छा लो हमारे हाथ से खाओ।" शरद ने एक कौर जया के होठों से लगा दिया।

"हमे नही खाना!"

"पकड़ता हूँ फिर गर्दन।"

"जब हमने कह दिया हमें नहीं खाना तो क्यों ज़बर्दस्ती कर रहे हैं? भूख ही नहीं है।" जया ने मुस्कुराहट को बड़ी मुश्किल से रोका, क्योंकि वह जानती थी—शरद को यदि ज़रा भी जिद आ गई तो वह गर्दन पकड़ कर उसके मुँह में कौर ठूँस देगा, और उसका इतनी देर से जमाया हुआ ग़स्सा खिलखिलाहट के रूप में ग़ायब हो जायेगा।

"खालो बिटिया रानी, देखो ऐसे कैसे शरीर चलेगा?" शरद ने बड़ी खुशामद का अभिनय करते हुए कौर उसकी नाक के आस-पास घुमाया—"अच्छा, छोड़ो, वहाँ और क्या-क्या बातें हुईं?"

"बातें तो हुईं ही नहीं—वहां तो मै सबक लेती रही—।"

—"कि सबसे पहले जाते ही लडना। कोई बहाना निकाल लेना! यहां कोई दिन-भर यही सोच-सोचकर आये कि यह पूछेंगे, वह पूछेंगे, और वहाँ लाट साहब की नानीके मिज़ाज ही दुरुस्त नही है।" शरद ने ज़ोर से दोनों हाथ जोड़कर माथे से लगाये। "भैया, पहली दूसरी मुलाक़ात का तो यह असर है—भगवान न करे कहीं उनसे तुम्हारी दोस्ती हो गई तो यहां कोई दूसरा ठिकाना भी नहीं है!"

"ठिकाने तो बहुत हैं।" इस बार जया ने बड़े व्यंगपूर्ण ढंग से आखें घुमाकर कहा।

"एकाध बताना!" जया संकेत से क्या बात व्यक्त करना चाहती है शरद समझ गया—लेकिन समझने का भाव दिखाकर बात को अधिक गम्भीरता देना नहीं चाहता था। मन ही मन उसे बड़ी झुँझलाहट हो आई—इस लड़की का दिमा है या चर्खा! अभी अच्छी-खासी फ़ोन पर बात कर रही थी, और इसी बीच में न जाने क्या मक्खी छींक गयी। उन दोनों के बीच में यह स्थिति इतनी जल्दी आ जायेगी इस बात को उसने सोचा भी नहीं था। इसकी बहुत बड़ी वजह यह है कि हर बार जया उसे रोकर डरा लेती है, और उस बेचारी का यहां कौन है, सोचकर वह झुक जाता है। शायद जया इसे उसकी कमज़ोरी मानकर ट्रम्पचाल की तरह उसका प्रयोग करती है। उसे उत्सुकता ज़रूर हुई कि इतनी जल्दी वहां आखिर हो क्या गया

—लेकिन यह ढंग तो ग़लत है ! आदमी जब दरगुज़र करने या दया को अधिकार या कमज़ोरी समझने लगता है—तनाव तभी शुरू हो जाते हैं। यह बात ज़रा कठोर बनकर ही सही, जया के दिमाग़ से निकालनी होगी। वर्ना आगे जाकर पता नहीं यह क्या रंग लाये—क्यों अपने रास्ते में काँटे बोये जाँय ? अब ठिकाने की ही बात लो, वह जानता है, जया क्या कहना चाहती है—लेकिन इस तरह के भ्रम, सिर्फ़ शौक़िया ही सरस बात कहने के लिये ये आक्षेप—अधिक सुन्दर मनोवृत्ति के सूचक नहीं हैं।

खाना उससे चला नहीं। कुछ देर मुँह चलाकर वह उठ गया। जया पता नहीं क्या सोचती थोड़ी देर वहीं यों ही बैठी रही, फिर क्रोधपूर्वक ज़रा ज़ोर से सामने की हाफ़प्लेट को सरका कर झटके से उठ खड़ी हुई—प्लेट सामने के प्याले से लगकर खनखना उठी। ये लोग बरामदे में बैठे खा रहे थे। आंगन में झांकते-जामुन के पेड़ से, फेंके हुए ढेले की तरह एक कौवा सीधा खाने के पास आ पहुचा और मज़े में चोंच डुबाकर सिर ऊपर कर मुह चला-चलाकर स्वाद लेने लगा।

जिस समय शरद लगी-लगाई कुर्सियों को कमरे में अपने नये ढंग से अत्यन्त दत्तचित्त होकर लगा रहा था तब जया गोल बिस्तरे पर जा पड़ी। बाहर कौवों की दावत हो रही थी।

लेकिन दो घंटे बाद ही नीली 'शेवरले' गाड़ी दरवाज़े पर खड़ी हुई—तो शरद चकित हुआ। गाड़ी की आवाज़ सुनकर जया मुस्कुरातो मुँह पोंछती इस तरह बाहर निकल आई जैसे कोई बात ही नहीं हुई हो। गाड़ी केशव डाइव कर रहा था—उसने सीधे जया से कहा—"माया बहन जी ने भेजा है ! आप तो अभी तैयार ही नहीं हुईं—अरे और शायद बाबूजी भी अभी यों ही खड़े हैं ? वे लोग तो कब की तैयार हो गयी.....।" शरद के मुँह से 'क्यों' निकलने से पहले ही जया ने मुस्कुरा कर कहा—"चलिये न, सचमुच आप तो अभी तैयार ही नहीं हुए। माताजी ने आज सिनेमा जाने का प्रोग्राम रख दिया है।"

उसके इस प्रकार बोल पड़ने पर मुस्कुराहट शरद की भी फूटने को हुई परन्तु 'माताजी' का नाम सुन कर जैसे बुझ गयी—उसने अत्यन्त ही उदारता से कहा—"तुम आओ जया, मुझे तो आज सूरजजी के साथ ज़रा कपिल के पास जाना है।"

जया पास आ गई—अत्यन्त ही स्वाभविक गम्भीरता से बोली—"क्यों इस तरह का तो कल कोई 'ऐपॉइण्टमेण्ट' हुआ नहीं था।"

"नहीं, आज सूरजजी ने बताया कि कपिल के पास जाना है।" शरद ने उस ओर से मुँह फेर कर कहा—स्वर की उदासी अब उदासीनता का रुख ले रही थी।

"तुम जाओ न।" उसने कहा।

"शरद बाबू, सूरजजी तो जल्दी आने के नहीं हैं. आज तो वे सुबह ही छाता लेकर कहीं निकल गये हैं।" केशव ने ज़रा आगे बढ़ कर कहा।

केशव का इस प्रकार बीच में बोलना शरद को अनधिकार चेष्टा लगी—मन में हुआ ज़ोर से झिड़क दे—'तुझे क्या मतलब!' लेकिन उसने उधर ग़ौर से बस देखा भर ही। फिर आलमारी खोल कर कहा—"सात बजे बे यहाँ हर हालत में आ जायेंगे।"

"अजी, उनका कुछ ठीक नहीं है—नदी पर निकल गये होंगे तो कछारों में घूम रहे होंगे—कभी-कभी उन्हें सनक चढ़ती है।" केशव ने अनुपस्थित सूरजजी के प्रति ज़रा-से होठ टेढ़े करके कहा।

जया शायद यह खड़ी सोच रही थी कि इस बहस को बढ़ने दे, चली जाय, या केशव को लौटने को कह दे। कुछ क्षण बाद उसने शरद की बाँह पकड़ कर उसके कान के पास फुस-फुसाकर कहा—"अब नखरे छोड़िये, चुपचाप कपड़े पहन लीजिये।" और वह उसे बाँह में धकेलती हुई बरामदे में ले आई—"क्या कपड़े निकालू ?"

"मैंने कह दिया न, आप जाइये।"

"अब खुशामद ही करानी हो तो फिर कभी करा लीजियेगा—दूसरों के सामने तो यह सब मत कीजिये, क्या कहेगा जाकर ? वैसे ही माताजी पूछ-पूछकर नाक में दम किये दे रही थी।"

"भाई मैंने कह दिया—आपको जाना हो जाइये—मेरी जान तो खाइये मत।' शरद का गला भर्रा आया। उसने ज़ोर से अपना निचला होंठ दबा लिया।

जया ने उसे तीखी नज़र से घूरा, जैसे उसके क्रोध को तौल रही हो, फिर भुन-भुनाकर बोली—"मैंने माताजी से कह दिया था वर्ना..."

"क्यों मेरी तरफ से कह दिया था आपने !..." शरद का मान फूल उठा। वह जया को बता देना चाहता था कि वह इतना कमज़ोर नहीं है जितना वह समझे हुए है। वह दृढ़ इच्छा-शक्तिवाला व्यक्ति है—अब उसने निश्चय कर लिया है कि नहीं जायेगा, तो नहीं ही जायगा। यह हर बार का झुकना ग़लत असर डालता है! बार-बार के इस 'माताजी' शब्द से उसे सचमुच क्रोध आ गया। उसे ध्यान था कि कहीं बाहर खड़ा केशव शब्दों को सुन न ले—स्थिति तो शायद वह भाँप गया है—इसलिये उसने भिंचे गले और तीखी नज़रों से उसे देखकर कहा—"माताजी !—माताजी !— माताजी !...।"

तभी मायादेवी ने कमरे में प्रवेश करके पूछा—"क्यों अभी ये लोग तैयार नहीं हुए ? इन्होंने तो हमारी पद्मा को भी मात कर दिया...।"

जया सिर झुकाए शरद की बात सुन रही थी, उसने जो मायादेवी की आवाज़ सुनी तो झट आगे बढ़कर शरद के मुँह पर हाथ रख दिया—बात अधूरी रह गयी।

कमरा पार करके मायादेवी बरामदे के दरवाज़े में आ गईं, वे कहती आ रही थीं—"जया बेटी, बखत निकल जायगा, फिर क्या होगा ?"

"ये तैयार कहाँ हो रहे हैं—लड़ रहे हैं।" जया ने उनकी ओर देखकर नाक के स्वर में शरद की ओर इशारा किया—कहते हैं, तुमसे कहा है, तुम जाओ ! अब मैं समझा रही हूँ कि आपके लिये भी कहा है।" अपनी इस कुटिलता पर जया छिपकर मुस्कुराई।

बिल्कुल सफ़ेद चिकन का ब्लाउज़—सीधे पल्ले की नीली साड़ी, गुजरातियों के ढङ्ग से जिसका पल्ला कमर में ठूंस लिया गया था गले में एक लड़ वाली जञ्जीर हाथों में तीन सोने की चूड़ियाँ—वही लहरदार काढ़े हुए बाल, जिनकी एक-एक लहर 'शड' की तरह उठकर कानों को ढके थीं, ज़रा-सा सिर हिलाने से झटककर हिल उठने वाले लम्बे इयरिङ्ग।—मुँह पर लगाये हुए पाउडर की लाइन, कानों की जड़ों के पास पुछने से रह गयी थी—किसी पुराने क़िस्म के लवैण्डर की भीनी लपट मारती ख़ुशबू!—आँखों पर वही काला चश्मा। एक बार उधर दृष्टि फेककर शरद ने कहा—"नहीं यह तो झूठ बोलती है—मेरा मन नहीं है। आज तबियत ज़रा ढीली है। एकदम ठण्ड तेज हो गयी है न, बादल रहे तबतक तो बिल्कुल बरसात का-सा मौसम रहा ! मौसम अनुकूल आते-आते ही आयेगा।"

दोनों को इस तरह खड़े देखकर ही मायादेवी जैसे सारी परिस्थिति समझ गईं। सीधे शरद के अत्यन्त पास जाकर, उन्होंने उसके कन्धे पर हाथ रख दिया—"कहीं ऐसे नाराज़ हुआ जाता है। चलो, पहनो कपड़े।" उनके स्वर में वात्सल्य और स्नेह छलछला रहे थे। एक क्षण को शरद को ऐसा लगा जैसे वह अपनी बड़ी बहन उमा के पास खड़ा है। वह रूठे हुए बच्चे को मिलने वाली सहानुभूति की तरह गद्‌गद् हो आया। उसकी आँखें सजल हो आईं—क्षण के एक अविभाज्य खण्ड को उसे ऐसा लगा जैसे वह अपने से सटकर खड़ी मायादेवी के कन्धे पर सिर रखकर रो पड़ेगा। लेकिन शीघ्र ही सँभल गया।

और कुछ क्षण बाद ही पद्मा को लेती हुई कार, सिनेमा की ओर दौड़ चली केशव के बगल में बैठा हुआ शरद, जब मायादेवी के किसी बात के उत्तर में पीछे मुड़कर देखता और पद्मा के ऊपर से फिसलती उसकी दृष्टि जब उनके हिलते इयरिङ्गों पर जा पड़ती तो उसे ऐसा लगता जैसे मुँह में रेत भर उठी है। एक क्षण को जागी हुई भावना का अब कहीं भी कोई पता नहीं था और मायादेवी के प्रति वही पुरानी विरक्ति उसके मन पर छाई थी। उसे स्वयं आश्चर्य हुआ कि इस महिला को वह शुरू से घृणा करता है, फिर कैसे वह भावना उसके मन में इसके प्रति आ सकी ? कहाँ उमा दीदी और कहाँ.....छिः। और जया को बेवकूफ़ी देखो, आप उनसे शिकायत कर रही थी हमारी ! जया को समझाना होगा कि अपनी व्यक्तिगत बातों का कोई सङ्केत किसी को भी देने की ज़रूरत नहीं है ! तभी उसे अपने एक मित्र का

ध्यान हो आया। जब उन दोनों में लड़ाई हो जाती—और लड़ाई किस पति-पत्नी में नहीं होती—तो उनका आपस में समझौता रहता कि जब भी कोई तीसरा आदमी आयेगा, सारी बाते उसी स्वाभाविकता से होंगी, और जब वह चला जायेगा तो लड़ाई पुनः अपनी स्थिति पर—जैसी भी हो—आ जायेगी। उन मित्र की याद करके वह मन ही मन हँस पड़ा। होठों पर मुस्कुराहट आ गई।

सच बात तो यह है कि सिनेमा देखने में उसका मन नहीं लग रहा था। निरन्तर जाने-अनजाने उदासी से भर देनेवाला और कचोटने वाला एक प्रश्न रह-रहकर उसके मन में गूँजता रहता था कि इस पद्मा को क्या हो गया है ?—चुप-चुप घुटी-घुटी-सी। बहुत कम बोलना, हमेशा चुप रहना ! सुन्दर चेहरे पर उदासी कैसी अस्वाभाविक लगती है ! उसके उदास और बुझे रहने का सबसे बड़ा कारण तो जैसा कल कपिल ने बताया था, शायद यही है कि वह इस वातावरण में—विशेष रूप से मायादेवी के साथ फ़िट नहीं है। लेकिन क्या केवल यही कारण है ? पद्मा बड़ी 'मूडी' लड़की है। बिना किसी कारण नाराज़ और बिना किसी कारण बहुत प्रसन्न ! अब उसी दिन : नहीं बोली तो ऐसा भाव दिखाया जैसे पहचानती भी न हो, और बातचीत करने लगी तो मेरी स्थिति भी भूल गई।

शरद ने अँधेरे में मुड़कर जया और पद्मा की ओर देखा—दोनों इस तरह चुपचाप सिनेमा देख रही थीं जैसे दो लड़कियों को पास-पास खड़ा करके 'प्रोफ़ाइल' का 'शिलुएट' चित्र ले लिया हो। कुछ क्षण वह चुपचाप उस चित्र को देखता रहा। पता नहीं क्यों उसने जब-जब पद्मा और जया को साथ देखा है—एक विचित्र-भाव या हल्की कसक-सी उसके मन में हुई और इसे उसने फ़ौरन ही बड़े वेग से दबा लिया; यहाँ तक कि कभी उसने उसका रूप स्पष्ट कर के विश्लेषण करने का भी मौक़ा नहीं दिया; क्योंकि जिस बात को वह सोचना चाहता है, उसकी असम्भावना को भी बहुत अच्छी तरह जानता है ! और पता नहीं इस भावना को दबाने का ही परिणाम होता है या क्या, कि फ़ौरन उसके बाद ही उसके मन में जया के प्रति दया-सी उठती हुई लगती है ! जया का हाथ कुर्सी की बाँह पर रखा है, इसे वह जानता था—उसने बड़ी कोमलता से अपना हाथ उसके हाथ पर इस तरह रख दिया जैसे निहायत अनजान में रख दिया हो। जया ने हाथ हटाया नहीं, वह उसकी उँगलियों से खेलने लगा—उँगली में उसकी अँगूठी को फिराने लगा। और धीरे-धीरे जया की बांह रोमाञ्चित हो आई। उसे एक विचित्र बात महसूस हुई।

अभी तक वह इस खेल के ऊपर झुँझलाता मन ही मन मायादेवी को गालियाँ दे रहा था कि कहाँ बेकार की जगह ला बिठाया है, तबीयत ऊब गयी। इससे ज्यादा 'बोर' खेल भी हो सकता है या, कभी उसने देखा है, यह याद नहीं आया। खेल में मन नहीं लग रहा था तो दुनियाँ भर की खुराफ़ातें उसके दिमाग़ में आ रही थीं। सचमुच वह तो इक्के-तांगे वालों की फ़िल्म थी। उसे आश्चर्य हुआ कि हर साल

दुनियाँ में दूसरे दर्जे के फ़िल्म बनाने वाले इस देश मे 'सत्यूलाइड' की कैसी निर्मम होली होती है ! कितनी गन्दगी, कैसा नक़लीपन; सब कुछ कितना ऊपरी-ऊपरी; अक्सर इन सिनेमाओं के वार्तालापों या घटनाओं पर हँस पड़नेवाले, रोनेवाले या गम्भीर हो जानेवाले लोगों को वह अथाह आश्चर्य से देखता—कैसे इस झूठी और बेहूदा बात पर ये लोग हँस जाते हैं—रो पडते हैं ? आखिर इनका दिल है या रबड़ की चिड़िया—ज़रा दबाया और सीटी बज उठी ! अब भी वह मन ही मन कुढ़ रहा था।—अभी-अभी ठेठ बम्बइया-फैशन की एक 'गँवार' नायिकाको फसल काटते-काटते अचानक गाते हुये नाचने का 'दौरा' पड़ गया था—और हालाँकि उस खेत मे वह थी अकेली ही; लेकिन उसके नाचते ही न केवल घुघरू ही बजने लगे थे—सारा साज़ बज उठा था। यही नही, सहसा उसकी आवाज़ भी कोई दूसरी हो गई थी। जब वह गाँव की 'भोली गोरी' पारदर्शी लहँगे को घुटनो तक उठाकर चक्की की तरह कूल्हे घुमाती, तो सारा हाल विभिन्न आनन्दपूर्ण आवाज़ो से गूँज उठता। नीचे के दर्जों में कही सीटी बजेती, और कोई पैसे फेंकता, तब शरद के मन में अदम्य इच्छा होती कि उसके पास एक पिस्तौल होती तो वह इसकी खोपड़ी मे गोली मार देता। फिर मन ही मन हँसी आती, सिवा पर्दे में छेद हो जाने के और होता ही क्या ? और जैसी आशा थी नाच-गाना समाप्त होते-होते कहीं से नायक साहब ताल मिलाते हुए आ प्रगट हुए थे। ये एक शहरी रईस थे जो शिकार खेलने आये हुए थे। गीत खत्म हो गया।

फ़सल के एक ढेर के सहारे खड़े होकर ब्रिचिस पहने शिकारी-साहब बयान कर रहे थे कि किस प्रकार उन्हें रात-भर अनिद्रा रोग सताता रहा, क्योंकि उनका दिल वह 'छबीली' चुरा लाई थी !

नायिका एक तिनके में बल देती हुई सिर झुकाकर, मुस्कुरा-मुस्कुराकर शहरी बाबुओं की बेवफ़ाई की बातें बता रही थी। नायक समझाने की कोशिश कर रहा था कि वह उन सब जैसा नही है। फिर पता नहीं, दूसरी कैसे हो साँस में वे इस विषय पर आ गये थे कि उनके प्रेम-सम्बन्ध को लेकर गांव में कौन क्या उड़ा रहा है ! शिकारी बाबू अनादि-काल के प्रेमियों का इतिहास और आवश्यकतानुसार वाक्य 'कोट' करते हुए समझा रहे थे कि सच्चे प्रेमियों की ओर से दुनियाँ का रवैया हमेशा से कैसा क्रूर रहा है ! फिर अचानक फ़सल के उस ढेर और पास ही खड़े हुए काग़ज के एक पेड़ के चारों ओर वे दोनों हनुमानजी की चाल में एक दूसरे का पीछा करने का बहाना करते हुए चक्कर लगाने लगे। उनके भागने से 'खेत' ढोल की तरह बजने लगा था और पीछे खड़े पेड़ों-खेतों-पहाड़ों के दृश्य हिलते हुए साफ़ दिखाई दे रहे थे। भागते-भागते नायिका पकड़ लिये जाने के लिये रुक गई और दौड़कर नायक ने उसे बड़ी फ़ुर्ती से पकड़ लिया। एक दूसरे से छाती सटाये दोनों फ़सल पर लेट गये। इस दृश्य को दिखाते समय टैक्नीक के सारे कमाल दिखाये जा चुके थे—कभी यह दृश्य 'लोंगशॉट' में दिखाई देता—जैसे कुतुबमीनार से हम इस भाग-दौड़ को

देख रहे हों और फ़ौरन ही 'क्लोज़-अप' आ जाता, फिर 'क्लोज़-अप' भी कई तरह के: कभी नायक के भागते पाँव का 'क्लोज़-अप', कभी नायिका के सूखे होठों और धड़कती छाती का 'क्लोज़-अप', हँसते-हाँफते चेहरों का 'क्लोज़-अप'—अन्त में भागते हुए कदमों की गति को फ़ोकस में लेकर दृश्य फ़सल के ढेर पर पड़े नायक-नायिका के दृश्य में 'डिज़ौल्व' हो गया—उस समय कैमरा अपने चरम पर था ! जिस जगह वे लोग लेटे थे—उस जगह की घास 'आउट ऑफ़ फ़ोकस' थी...

और कोई समय होता तो शरद या तो डायरैक्टर को भारी-सी एक गाली मन-ही-मन देता या थोड़ी देर के लिये बाहर उठकर चला आता; लेकिन इस समय आश्चर्य की बात यह थी कि उसे सामने का दृश्य ज़रा भी अस्वाभाविक नहीं लग रहा था। जया के हाथ को उसने कुछ और प्रगाढ़ता से पकड़ लिया था। इस समय परिचितों का होना उसे अखर रहा था।

सामने एक दूसरे को प्रेमके विश्वास दिलाये जा रहे थे। वैसे यदि कोई विदेशी फिल्म होता तो कई चुम्बन दिखाये जानेका अवसर था—जिनकी ओर स्पष्ट ही भारतीय दिग्दर्शक संकेत कर-करके रह जाता था। अभी कुछ देर पहले शरद सोच रहा था कि इस बार फिल्मों के विषय में निश्चय ही वह देशबन्धुजी द्वारा पार्लमेण्ट में कुछ प्रश्न रखवाएगा; लेकिन इस समय यह दृश्य उसे कुछ विशेष अस्वाभाविक नहीं लगा। जब नायक प्रेम-विभोर होकर कोई बात कहता तो अपनी मुट्ठी में लिए हुए जया के हाथ को जरा ज़ोर से दबाकर शरद उसका ध्यान उस ओर आकर्षित करता, और जब नायिका की ओर से ऐसी कोई बात आती तो हाथ दबाए हुए उसकी आँखों के आगे मुस्कुराती जया के चेहरे की वह पूरी रूप-रेखा आ जाती—जो यदि जया वह बात कह सकती तो, उसकी हो जाती ! उसे ऐसा लगा जैसे उनलोगों के सारे भेद दूर हो गए है, और आत्मिक-रूप से वे लोग एक दूसरे के बहुत ही निकट आते जा रहे हैं। यद्यपि शरद केवल जया के कन्धे, बाँह को बाँह और हाथ को हाथ से स्पर्श कर सकता था लेकिन वह स्पर्श—वह दबाव, वह मांसल उष्णता, बड़ी उन्मादिनी, बड़ी मुखर और बड़ी मधुर-असहनीय लग रही थी.....

इस बीच में कई बार वह लवैण्डर की खुशबू उसकी नाक के पास आ चुकी थी। एकाध-बार तो बड़ी देर तक इधर ही बनी रही, तब शरद ने मुँह दूसरी ओर घुमा लिया। मायादेवी ने कई बार बैठक बदली। शरद ने निश्चय कर लिया कि 'इन्टरवैल' में वह सामनेवाले महाशय से प्रार्थना करेगा कि कृपया अपना सिर एक ही ओर रखे। वे लोग बाल्कनी में बैठे थे, लेकिन पूरी सीटें लगभग भरी थीं। बैठक बदलने में दो-तीन बार मायादेवी और शरद के कन्धे टकराए... और फिर अचानक शरद बहुत ही उद्विग्न हो उठा। जया के हाथ पर रखा हुआ उसका हाथ शिथिल पड़ता गया, फिर धीरे-से उसकी गोद में आ रहा। जया अब भी कुर्सी के हत्थे पर उँगलियों से ताल दे रही थी।

कुछ देर बाद अचानक बिजली जल उठीं।

पद्मा पीछे सहारा लिए ज़ोर से आँखों पर रूमाल दबाये बैठी थी। जया ने उधर झुककर ज़रा हिलाकर पूछा—"जीजी, क्या बात है, तबियत ख़राब हो गयी ?"

पद्मा ने सिर हिला दिया।

"तो ?" जया ने ज़रा सहानुभूति से पूछा।

"कुछ नहीं यों ही, सिनेमा देखते-देखते आँखों में दर्द होने लगता है। आप चिन्ता न करें, अभी ठीक हुआ जाता है।" वैसे ही पद्मा ने कहा।

"हमेशा हो जाता है ?" जया ने कुछ चिन्तित-स्वर में पूछा।

"हाँ, अक्सर हो ही जाता है।" पद्मा ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

"तब तो डाक्टर को दिखाइये, चश्मे की ज़रूरत है।" फिर ज़रा मुस्कुरा कर धीरे-से पूछा—"चौंधा तो नहीं लगता ?"

रूमाल हटाकर एक क्षण को पद्मा ने ज़रा ग़ौर से देखा, फिर झट रूमाल लगा लिया। तभी शरद ने पद्मा की ओर ट्रे बढ़ा दी—"लीजिये पद्मा जी, चाय से तबियत ठीक हो जाएगी।"

रोशनी होते ही इस 'अहिंसा पिक्चर-पैलेस' के मैनेजर और केशव दो लड़कों के हाथों बढ़िया प्यालों में चाय, पेस्ट्री और बिस्कुट की दो ट्रे उठवा लाये थे। लम्बी लाइन में चाय और नाश्ता सबके निकट कैसे पड़े, इस समस्या को मायादेवी ने फ़ौरन ही सुलझा दिया। उन्होंने पद्मा और जया को एक ट्रे में रखकर दे दिया, अपने और शरद के लिये एक ट्रे में रख लिया। शरद बड़ी उलझन में पड़ गया।

"आइये, शरदजी...आप तो इधर-उधर देख रहे हैं। जयादेवी के साथ तो रोज़ ही खाते हैं, आज हमारे ही साथ सही।" मायादेवी अपने मज़ाक पर उन्मुक्त रूप से हँस पड़ी; लेकिन जैसे ही उन्हे भरे हुए हॉल का ध्यान आया, उन्होंने एकदम कुर्सी में छिप जाने का अभिनय किया और शैतान बच्चे की तरह जीभ निकाल कर काट ली।

शरद बड़ी बेचैनी अनुभव कर रहा था। मायादेवी के इस तरह हँसने पर निश्चित रूप से लोगों ने देखा होगा—क्या सोचा होगा ! वह लज्जा से कट-सा उठा। मन ही मन कहा, कहाँ आ फँसे। कोई भला आदमी देखे तो क्या कहे। उसने मुड़कर देखा—जया और पद्मा चाय पी रही थीं। पद्मा की आखें लाल थीं और दृष्टि उसने प्याले में गड़ा रखी थी—स्पष्ट था कि वह बहुत अधिक डिस्टर्ब्ड है। आश्चर्य की बात यह थी कि मायादेवी अपनी पुत्री की ओर से ऐसी उदासीन थीं जैसे वह साथ आई ही न हों। मायादेवी ने एक तरह प्याला शरद के हाथ में ही पकड़ा दिया।

अज्ञात रूप से शरद और जया दोनों के मन पर जो यह चिन्ता थी कि जाकर खाने का झंझट होगा—यह बोझ लगभग दूर ही हो गया; क्योंकि जया के

बार-बार अनुरोध करने पर भी पद्मा से तो खाया ही नहीं गया और मायादेवी ने अपना सारा हिस्सा हठ करके शरद को खिला दिया।

"शरदजी, आपको मालूम है, ये अपना ही सिनेमा है ?" मायादेवीने बताया।

"जी हां," कहकर शरद इधर-उधर देखने लगा जैसे उद्धार करने वाले किसी को देख रहा हो।

जैसे ही लड़का पान लेकर आया, रोशनी बन्द हो गयी और आनेवाले खेल का 'ट्रेलर' शुरू हो गया। मायादेवी सबसे अधिक निकट पड़ती थी—उन्होंने पानों की प्लेट ले ली, और उसे शरद के ऊपर झुक कर इस तरह जया की ओर बढ़ाया कि बीच में शरद कुर्सी में दब-सा गया—"लो, तुम दोनों ले लो।" और जितनी देर में जया ने पान उठाये, उनके बोझ, तेज़ खुशबू और मानसिक-तनाव से उसका दम घुटता रहा। उसे झुँझलाहट हुई, जया जल्दी पान क्यों नहीं ले रही, और आखिर, मायादेवी मुझे ही दे देतीं तो क्या बिगड़ जाता। मायादेवी सीधी बैठीं तो उसने सन्तोष की साँस ली। वह उम्मीद कर रहा था कि पान की प्लेट अब उसकी ओर बढ़नेवाली है, इसी प्रतीक्षा में वह चुपचाप सामने देखता रहा।

'लो शरद बाबू, पान लो।" शब्दों के साथ ही मायादेवी ने बिना ज़रा भी प्रतीक्षा किये पान उसके होठों में ठूँस-सा दिया। शरद पान तो खा गया, लेकिन उसका जी मिचला उठा।

आगे उसे नही मालूम खेल में क्या हुआ। वह थोड़ी देर तो बैठा रहा, जब बहुत ही असह्य हो उठा तो वह एकदम उठ खड़ा हुआ।

"क्या हुआ ?" मायादेवी ने पूछा। जया और पद्मा ने साथ ही प्रश्न-दृष्टि से उधर देखा।

"शायद तम्बाकू आ गई है।" उसने कहा—और एक तरह अपने क़दमों से मायादेवी के पावों को ठेलता हुआ बाहर निकल आया।

नीचे शोकेसों में चालू तथा आनेवाले सिनेमा की लगी तस्वीरें देखते हुये उसे ऐसी बेचैनी और उद्विग्नता अनुभव हो रही थी जैसे उसे किसी ने बाँध दिया हो और झटका देकर इस बन्धन को तोड़ फेंकने की अदम्य इच्छा उसकी नस-नस में निष्फल तूफ़ान की तरह कौंध-कौंध कर रह जाती हो। कभी-कभी विचित्र, पागल की-सी इच्छा उसके मन में होती थी कि दाँत भीचकर सारी ताकत से कही ज़ोर से एक घूंसा मारे—दीवार पर, शोकेस में, खम्भे पर—या किसी की गञ्जी चाँद पर ! लेकिन जबतक शो खत्म हुआ, वह वहीं बड़ी देर तक बिफरता रहा, टहलता रहा।

बाल्कनी वाले दर्शक घुमावदार सीढ़ी से नीचे उतर रहे थे। लोगों के चेहरों पर अलग-अलग भाव थे—कुछ सुस्त, उदास और कुछ उत्फुल्ल-प्रसन्न। किसी को कोई गीत पसन्द था और किसी को कोई विशेष दृश्य। किसी के पैसे नायिका के एक पोज़ में ही वसूल हो गए थे और कोई पूरी पिक्चर में दियासलाई दिखाने की

महत्वाकांक्षा प्रगट कर रहा था। शरद को ऐसा लग रहा था जैसे वह किसी बहुत सुनसान और ऊँचे टीले पर खड़ा हो और वहां से इन सबलोगों को देख रहा हो। सब कुछ उसे बड़ा धुँधला-धुँधला और छोटा दिखाई दे रहा था—सारे मिश्रित स्वर अस्पष्ट भनभनाहट-से लगते थे। उसके साथ कुछ ऐसा असाधारण हो चुका था कि उसे विश्वास नहीं आ रहा था।

"क्यों, अभी तक मुँह ठीक नहीं हुआ ?" सहसा मायादेवी ने उसका हाथ पकड़ कर पूछा।

"नहीं-नहीं, भीतर जाने का मन ही नहीं हुआ। भीतर बड़ी घुटन थी।" शरद ने अव्यवस्थित-से स्वर में कहा। सभी लोग गाड़ी की ओर चल दिये। या तो कहिये उसे पहनना आता था या उसका पतला सुगठित शरीर ही ऐसा था कि पद्मा के ऊपर साड़ी बहुत खिलती थी। जूड़े में फूल सजाना उसे पसन्द था। चाहता तो शरद यह था कि मायादेवी से बड़े रूखेपन से कहदे कि अब वह और जया घूमते हुये स्वयं चले जायेंगे; लेकिन पता नहीं क्यों, पद्मा की उपस्थिति में उसे हमेशा ही ऐसा लगता, कहीं उसकी किसी बात को पद्मा फील न कर जाय—इसे कहीं अपनी उपेक्षा न समझे। हालांकि इस बात को वह बिल्कुल शुरू से ही देख रहा था कि पद्मा उसकी ओर विशेष ध्यान नहीं देती; फिर भी मन ही मन न जाने कैसे उसे विश्वास हो गया था कि उसकी हर बात पर पद्मा की आँख है। ऊपर-से वह चाहे जितनी सुस्त, उदास और लापरवाह रहे; मन ही मन वह उसकी हर हरकत के प्रति सचेत है। और शायद इसी का परिणाम था कि पद्मा जब जया को हाथ पकड़ कर कार की ओर ले चली तो मन में विरोध होते हुए भी मायादेवी के साथ शरद अपनी पहली जगह आ बैठा। दूसरे 'शो' के लोग आ रहे थे। चारों ओर लगे हुए बड़े-बड़े 'प्लेकार्ड' अभिनेताओं की विभिन्न मुद्राओं से सजे थे। साइकिल वाले अपना-अपना नम्बर सुनकर साइकिलें ले रहे थे। बड़ी कठिनाई से कार सड़क पर आ सकी। सड़क पर भी बड़ी भीड़ थी, और अधिकांश लोग उस खेल के किसी विशेष भाग को दूसरे श्रोता को इस तरह सुना रहे थे, जैसे उसने खेल देखा ही न हो। केशव ने भीतर और बाहर की बत्तियाँ खोल दी थीं।

"शरदजी, आपका मन नहीं लगा ? खेल ऐसा बुरा तो नहीं था।" मायादेवी ने पूछा।

"हांऽऽ, ठीक था।" फिर ज़रा जया को चिढ़ाने के लिये जान-बूझकर बनते हुए बोला—"फिर मुझे हिन्दुस्तानी खेल वैसे भी ज्यादा पसन्द नहीं हैं। न स्टोरी, न ऐक्टिङ्ग, डायरेक्शन, कुछ भी तो नहीं। सारे पर्दे या स्टूडियो-सीन।"

"माताजी, आप बेकार किसी को तङ्ग कर रही हैं, कोई तो बिचारा सीधा इंगलैण्ड से चला आ रहा है, और आप हिन्दुस्तान को लिये फिर रही हैं।" जया ने कहा। पद्मा इन बातों में विशेष रुचि नहीं ले रही थी; उसने खिड़की

से बाहर मुँह निकाल रखा था।

मायादेवी बड़े-बूढ़ों की तरह मुस्कुराईं—"तुम लोगों की लड़ाई अभी खतम नहीं हुई ?"

"आप ही देख लीजिये, मेरी तो किसी से लड़ने की आदत है नहीं।" शरद फ़ौरन ही बोला—"पहले छेड़ना और फिर मुँह फुला लेना, हममें तो आता नहीं है।"

"वह तो हमारी ही आदत है, सींग मारने की।"

"अब मैं क्या बोलूँ, तुम्हारे बीच में।"

लेकिन एक बार मायादेवी के चेहरे की ओर देखकर शरद का सारा बचपन उड़ गया। उसे हॉल की बात ध्यान हो आई और फिर उसके मन में उत्कट उद्विग्नता भर उठी। उसे खुद ही बड़ा अजब-अजब लगा, क्या बचकानापन है! उसने गम्भीर स्वर में इस बार जैसे बड़ा साहस करके पद्मा से कहा—"आप बड़ी उदास और सुस्त रहती हैं, कुछ तकलीफ है क्या ?"

पद्मा क्या जवाब देती है, शायद यह देखने के लिये मायादेवी ने एक बार उधर देखा और फिर झटके से गर्दन घुमाकर अपनी तरफ़ वाली खिड़की से बाहर मुँह निकालकर गुजरती हुई दूकानों या पैदल चलनेवालों को देखने लगीं।

पद्मा ने सिर घुमाकर एकबार जया की ओर देखा कि प्रश्न उससे तो नहीं किया गया। फिर ज़रा झिझक कर पूछा—"मैं ?"

"जी हाँ, मैं आपसे ही पूछ रहा हूँ।" शरद ने प्रश्न पुनः दुहराया। जया की उपस्थिति में एक बात के प्रति उसे हमेशा मन ही मन सचेत रहना पड़ता था—वह यह कि कहीं पद्मा की ओर वह आवश्यकता से अधिक ध्यान न देने लगे—या कम से कम जया के मन में इस प्रकार का कोई भ्रम न पैदा हो जाय। उसकी ओर देखते हुये वह हमेशा इस तरह की लापरवाही दिखाता जैसे उसकी ओर ज़रा भी आकर्षित नहीं है, या जरा भी उसे 'विशेष' का दर्जा नहीं देना चाहता। लाख हिम्मत करने पर भी वह जया की उपस्थिति में सीधा पद्मा की ओर नहीं देख पाता था—हालाँकि हर-बार उसकी धनुषाकार भौंहों और कंजी आंखों—लम्बी नाक और पतले-पतले ओंठ देखने की आकांक्षा उसकी उड़ती दृष्टि में मुखर हो जाती थी।

"कोई ऐसी खास बात तो नहीं है।" पद्मा बड़े कष्ट से जैसे धीरे-से हँसी फिर दोनों हाथों की उँगलियाँ एक दूसरे में फँसाकर अपनी लाल-लाल हथेलियों को अपने घुटनों के ऊपर रखकर—बाहों को ज़रा तानते हुए, बोली—"ट्रैजेडी पिक्चर्स देखकर मेरा मन शुरू से ही खराब हो जाता है। बाद में वही घूमता है।"

"अच्छा!" शरद ने बड़े आश्चर्य से कहा—"आप तो बड़ी अजीब बात कह रही हैं; मुझे तो बहुत कम ऐसे अवसर याद हैं जब ऐसा कोई असर मेरे ऊपर पड़ा हो। यह पिक्चर तो कोई खास ऐसा था भी नहीं था।"

"उस वक्त जरूर असर थोड़ा बहुत पड़ता ही है—लेकिन ऐसा कम ही होता है कि बाद में भी असर रह गया हो।" जया ने पद्मा की ओर मुँह करके कहा।

शरद मुस्कुराया! 'मान' अभी तक चल रहा है! पद्मा ने खिसियाने-से ढंग से इस तरह मुस्कुरा कर कहा जैसे अपनी कोई बहुत बड़ी बेवकूफ़ी की बात बता रही हो—"बहुत समझाती हूँ अपने आप को, लेकिन जैसे बस ही नहीं रहता। सिनेमा में ही क्या, कोई भी कहानी-उपन्यास पढ़ूँ—घण्टों असर रहता है। यह असर 'हैमलेट' से शुरू हुआ—उसे पढ़ती थी तो कुछ जगह आंसू रुकते ही नहीं थे, ख़ास तौर से ऑफ़ेलिया वाले हिस्से में.....।" और पद्मा आंखें बन्द करके कल्पना की आंखों से जैसे हैमलेट और ऑफेलिया को बातें करते हुये देखने लगी।

"वास्तव में विचित्र बात है। दुनिया में इतना भावुक होकर कहीं काम चलता है.....?" शरद ने शुभेच्छु की चिन्ता प्रकट की।

उसके जवाब में फिर हल्के मुस्कुराकर पद्मा धीरे से बोली—"ओः टाइम इज़ आउट ऑफ़ जॉयण्ट, एण्ड आइ'म टू सैट इट राइट...कितनी उत्कट वेदना भर दी है, कहीं-कहीं तो...।"

"आपने बताया नहीं, लखनऊ में क्या-क्या सीखा?" शरद ने विषय बदलने के लिये पूछा। उसे लगा, यदि यही विषय आगे बढ़ाया गया तो, पद्मा की बन्द आंखों से बूदें उसके गालों पर ढुलक आएँगी।

पद्मा ने आँखें खोली, बोली—"भाड़ झोंका है—फ़ायदा क्या वक्त-बरबाद करने का? पूरी तरह कुछ सीख भी तो नहीं पाये...।"

"तो भी..." शरद ने ज़रा प्रोत्साहित करने के ढङ्ग से अनुरोध किया।

"कोई ऐसा मौक़ा तो आने दीजिये।" फिर जया की ओर देखकर बोली—"यह चीजें ऐसे नहीं दिखाई जातीं—कभी इन्वाइट कीजिये, खातिर-खुशामद कीजिये—तब प्रार्थना पर ध्यान दिया जायगा।"

"इन्वाइट करनेवाले हम होते कौन हैं?"—जया की ओर देखकर शरद ने उसे प्रसन्न करने के उद्देश्य से कहा—"हाँ, कोई इन्वाइट कर लेगा तो खातिर-खुशामद हम भी कर देंगे।"

जया बड़े ललककर उसके कन्धे पर हाथ रखकर बोली—"आइये न, जीजी कभी....."

शरद ने बीच में ही बात काटी—"लेकिन पद्माजी, अगर इन्वाइट करने के बाद घर पर आपसे कोई लड़ने लगे तो मैं ज़िम्मेदार नहीं हूँ।"

"वह तो मैं सब निबट लूँगी।" पद्मा ने बड़े आत्म-विश्वास से उत्तर दिया।

जया ने शरद को मुँह चिढ़ाया—"लो और लो।" शरद ने हाथ का इशारा करके बताया—'ठहर जा, चाँटा मारूँगा!' और दोनों खिल उठे। एक गहरी साँस लेकर पद्मा ने केशव के कन्धे के ऊपर गौर से सामने की सड़क पर देखा।

कार अब 'स्वदेश-महल' में मुड़ रही थी।

"नेता भैया खाने को बैठे होंगे।" मायादेवी ने अपने आप कहा। ऊपर के हिस्से में उनकी तरफ़ के कमरे की खिडकियों से, हरी रोशनी छन-छनकर आ रही थी। जगह-जगह बिजली के लट्टू अँधेरे में चमक रहे थे। जब बहुत देर तक किसी ने इस बात का जवाब नहीं दिया, तो केशव बोला—"अभी तो ऐसी देर नहीं हुई है!" पहियों के नीचे की बजरी चुरमुरा रही थी।

गाड़ी पोर्च के सामने आ खड़ी हुई। दोनों ओर के दरवाज़े खोलकर केशव और शरद बाहर आगये। शरद ने पीछे का दरवाज़ा खोला। मायादेवी बड़े आराम से बैठी थीं—उन्होंने दो-बार उठने की कोशिश की; लेकिन जैसे फँसी बैठी हों—फिर झटककर वहीं जा रही। बड़ी बेतकल्लुफ़ी से हाथ उन्होंने शरद की ओर बढ़ा दिया कि उठने में सहारा दे—और विचित्र ढङ्ग से हँस पड़ीं। जया और पद्मा दूसरी ओर से निकल कर कपड़ों की अस्त-व्यस्तता ठीक कर रही थीं। शरद ने एक-बार उधर देखा, पीछे मुड़कर देखा, उसे बड़ी झिझक लग रही थी।

"शरद बाबू, ज़रा मदद देना भाई।" बढ़े हुए हाथ को यों-ही रखकर मायादेवी बोली! वे उसी तरह हँसती रहीं।

आखिर उसने हाथ पकड़कर झुककर उन्हें खींचा—और वे इस तरह उठी चली आईं जैसे फूल-सी हल्की हों। एकबार फिर उसकी नाक तक लवेण्डर की लपट लपकी, और मायादेवी झटके से कार से बाहर निकलने के कारण बड़ी मुश्किल से सँभल पाई। शरद तेज़ी से उन्हें छोड़कर अलग हट आया। सफ़ाई-सी देकर वे बोलीं—"अब शरीर साथ नहीं देता।"

शरद ज़ोर से दाँत पीस कर रह गया। बोला—"अब चलें, साढ़े-दस बजे होंगे।"

"जल्दी है?" मायादेवी ने पूछा।

"काफी देर हो गयी। दूसरे, नेताभैया भी खाने को बैठे होंगे।" शरदने कहा।

"अच्छी बात है, कल आना।"

चार जोड़ी हाथ माथे तक उठे, गिरे। खट-खट करती हुई पद्मा तेज़ी से ऊपर चढ़ती चली गयी।

जूतों से बजरी कुचलते हुए दोनों चुप-चुप अपने क्वार्टर तक आगये। कोई कुछ नहीं बोला। लेकिन शरद के मन मे बड़ी प्रबल इच्छा जया से बात करने की हो रही थी। असल में वह उसे कुछ बातें बताना चाहता था, जिन्हें पचाये रखना उसके लिये असहनीय हो उठा था; पर पहले कौन बोले। दोनों सिर झुकाये चुप-चुप कदम नापते चले आये। उस समय मेंहदी गमक रही थी, हवा खुनक रही थी।

और जया जब क्वार्टर का ताला खोल रही थी तो शरद ने ज़रा इधर-उधर

टहलकर जैसे अपने आप कहा—"अजब बात है, सूरजजी अभी तक नहीं आये है।"

"क्या पता भीतर जाकर सो रहे हों।" जया बहुत स्वाभाविक स्वर में बोली।

"दरवाजे पर तो मनभर का ताला लटक रहा है।"

"या तो कहीं लम्बे घूमने निकल गये—या कपिल साहबके चक्करमे फंस गये।" जया ने दरवाजा खोल दिया। भीतर अंधेरा भरा था।

"मुझे इस आदमी को देखकर बड़ा ताज्जुब होता है—न खाने की चिन्ता न पहनने-ओढ़ने की। पान की डिबिया ली और निकल पड़े।" जया के पीछे-पीछे कमरे में प्रवेश करके शरद बोला।

"आज तो बस सुबह ही ज़रा-सी देर को देखा था—अपनी आल्मारीके सामने खड़े हुए कुछ कर रहे थे—बड़े उदास-उदास दिखाई दिये।" वह कमरे मे स्विच तलाश करने लगी। देशबन्धुजीने विशेषरूप से कहकर टैम्परेरी फिटिंग करा दी थी। 'खट्' से बिजली जल गई।

जया ने कोने में खड़े होकर साड़ी उतारते हुए व्यस्त स्वर में कहा..."तो आज आपकी समझ में पूरा काम आ गया ?—क्या-क्या किया ? और हां, यह आप सचमुच बहुत बड़ी ग़लती कर रहे हैं ! जब पता ही नहीं होगा कि 'इनकम' कितनी है तो ख़र्च का 'बजट' कैसे बनेगा ? सूरजजी ने ठीक कहा है—आप 'इम्प्रैशन' में कुछ और रहें और फिर मिले कुछ और, तो कैसे 'ऐडजस्ट' होगा ?" वह ठोडी से साड़ी का एक हिस्सा दबाकर उसे तह करने लगी।

चिन्ता यही शरद को भी थी; लेकिन इस समय इन व्यर्थ की बातों को लाना नहीं चाहता था। वह केवल पेटीकोट और ब्लाउज़ पहने जया को बड़ी मुग्ध दृष्टि से देखता रहा था। सिनेमा हॉल से ही जो एक आन्दोलन उसके दिमाग़ में उठ रहा था, वह तो था ही—इसके अतिरिक्त जया के पूर्ण-विकसित शरीर को देखकर वह सोच रहा था, बिना पुरुष का सम्पर्क प्राप्त किये कैसे यह इतना समय काट सकी ? —लेकिन स्त्री के शारीरिक-विकास का चरम-उद्देश्य क्या पुरुष-प्राप्त करना ही है ?—और कुछ नहीं ?—हो सकता है हो...लेकिन कभी-कभी स्त्री का शरीर इतना आकर्षक क्यों लगने लगता है ? और इस आकर्षण की अनिवार्यता को स्वीकार करने में शिक्षित-अशिक्षित—कल्चर्ड-अनकल्चर्ड एक ही स्तर पर क्यों सोचते हैं ? बस, फ़र्क इतना ही तो है न, कि ज़रा बौद्धिक-प्राणी मुग्ध होने के साथ-साथ अपने इस समर्पण को तोलता जाता है—लेकिन समर्पण के लिये विवश तो वह भी है ही।

"सब हो जायेगा। मौक़ा तो मिले पूछने का। उनकी मिल में जाने क्या गड़बड़ी हो रही है। सुबह ही चले गये थे।"

"लेकिन खाना खाने तो बड़े खुश-खुश आये थे, वहां।"

"अच्छा ? वहां तुम्हारे सामने आगये थे क्या ? अरे, वह जगह ही ऐसी है कि चाहे जितना परेशान आदमी हो प्रसन्न ही हो जाता है।" शरद हँसा, फिर एक-

दम बोला—"अच्छा हां, तुम्हें एक बात बताएँ, जया....."

लेकिन उसके यह कहने से पहले ही जया कह रही थी—"मां-बेटी में ज़रा भी नहीं बनती—पास भी बैठी होगी तो ऐसा लगेगा, न जाने कहाँ की दो औरतें इकट्ठी बैठा दी हैं। आज मैंने खूब ध्यान से देखा। मोटर में आपने ध्यान नहीं दिया ? एक बोलती थी तो दूसरी खिड़कीके बाहर मुह निकाल लेती थी...।" और अपनी बात पूरी करके जया ने पूछा—"हां, क्या बता रहे थे आप ?"

"ऐसे ही घुटती रही तो बेचारी को टी० बी० हो जायेगी।" शरद ने जान-बूझकर पहली बात को टालते हुए कहा—"दिनभर बस गुम-सुम रहती है। मैंने तो खुश यहां कभी देखा ही नहीं। पहले ही दिन मैं यह बात मैंने मार्क की थी. कितनी अच्छी लड़की है और यों घुली जा रही है—इसे देखकर कोई कह देगा इसने एम० ए० किया है, संगीत की ग्रेजुएट है ?"

"हां, अच्छी तो बहुत है !" जया ने गर्दन घुमाकर मुस्कुराते हुए रहस्य दृष्टि से शरद को देखा—"बस, अफसोस यही है, आपसे पहले परिचय नहीं हुआ...।"

"जी नहीं—आप को याद दिला दूँ, वह दो साल मेरी क्लास-फ़ैलो रही है।" शरद ने हर शब्द पर ज़ोर देकर कहा, फिर खुद ही हँसकर बोला—"तुम लड़कियों के दिमाग में एक ही बात आयेगी—जैसे कोई और काम ही न हो किसी को, अच्छे को अच्छा और बुरे को बुरा कह देने में भी तुम लोग 'मोटिव्स' ढूँढ़ती हो।"

"अच्छा हां ! ज्यादा सफ़ाई मत दीजिये, भगवान ने आंखें दी हैं, थोड़ी-सी समझ भी है गांठ की।" जया ने बनावटी तेज़ी से कहा।

"रोना तो सारा समझ का ही है। वही होती तो फिर कहना ही क्या था ? समझ बँटते वक्त तो न जाने कहां सो रही थीं ?" बात को हँसी में टालकर वह फिर बोला—"लेकिन सबसे अधिक ताज्जुब मुझे यह होता है कि यह मायादेवी पड़ी कैसी बेशर्मी से है यहां ! यह नहीं सोचती कि जवान लड़की साथ है, नासमझ होती तो कोई बात नहीं है। भाई, हद है।" शरद कुर्सी के पीछे की ओर से झुक कर हत्थे पर दोनों हाथ रखे जया की ओर देख रहा था। उसने जब देखा जया कपड़े बदल चुकी है तो बोला—"खाना-वाना नहीं खाना ?—अब श्रीमतीजी पति-व्रता पत्नी की तरह खाना बनाइये बैठकर।" भूख शरद को नहीं थी। बात उसने सिर्फ़ परिहास के लिये कही थी।

"सच ?" जया ने गम्भीरता से पूछा—'भूख हो तो बनाऊँ ? तीन मिनट में बना जाता है 'स्टोव' पर। मुझे तो भूख है नहीं।" फिर कुछ देर रुककर हँसती हुई बोली—"और भूख तो आपको भी नहीं होनी चाहिये—माताजी बड़ा लाड़-लड़ा रही थीं। अपने हिस्से की सारी पेस्ट्री और बिस्कुट तो खिला दिये और क्या किसी की जान लेंगे ?"

शरद चौंका, तो जया ने हर बात पर ध्यान रखा है ! इतनी देर से रुकी

हुई उसके दिमाग़ की आंधी जैसे फिर खूंटा तुड़ाकर मचल पड़ने को आतुर हो उठी। उसकी दुनिवार इच्छा हुई, वह जया से जो बात कहना चाहता था उसे एकदम कह डाले—लेकिन पता नहीं क्या समझे जया। एक गहरी सांस लेकर बोला—"अरे साहब, लाड़ तो तुम्हारे ऊपर है, तुम्हें बुलाया जाता है—तुम्हें सिनेमा दिखाया जाता है। अपना क्या है, साथ लग लिये पिछलग्गुओं की तरह। नयी चेली बनी हो....." फिर गम्भीर होकर—"भूख मुझे भी नहीं है।"

सामने का दरवाजा बन्द करके जया शरद के पास आ गई थी। अपनी पिछली बेवकूफ़ी पर दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े। जया की कमर में बाँह डालकर प्यार से बरामदे की ओर चलते हुए शरद ने कहा—"हां जया, हमने तुम्हें बात तो बताई ही नहीं....."

"कुछ बताएँ भी ?" जया बच्चों की तरह भुनभुनाई—"या तो हमसे कहा मत कीजिये— कहें तो पूरी बात बताया कीजिये। हमसे नहीं रहा जाता फिर।"

"तुम हँसोगी.....सुनकर.....?"

"अच्छा क़सम से, ज़रा भी नहीं हँसेंगे।"

शरद के गले में बात आ-आकर रुक जाती थी, आख़िर उसकी हिम्मत पड़ी ही नहीं। बोला—"अच्छा छोड़ो, फिर कभी सही। इस वक्त तो कोई बात करने का 'मूड' नहीं है। आज तो तुम वाक़ई बड़ी अच्छी लग रही हो.....कभी-कभी गिरगिट की तरह रंग बदल लेती हो क्या.....?

"लेकिन इस धरती पर सबसे अच्छी तो पद्मा जीजी हैं.....।" मगर उसका झेंपकर कहा गया वाक्य पूरा नहीं हुआ—अगली बात शरद के आलिंगन में घुट गयी.....

"तुम्हारे दिमाग़ से यह बात निकलेगी नहीं ? दुनिया की हर चीज़ तुम्हारे बाद है, इस बात को क्यों नहीं समझतीं तुम ?" काँपती आवाज़, उछ्वसित कण्ठ। फिर बोला—"लेकिन तुम मुझसे लड़ पड़ती हो तो बहुत गुस्सा आ जाता है.....।"

"तो फिर किससे लड़ें ?"

"लेकिन जया, तुम आज से एक बात का ध्यान रखोगी। हम लोगों में चाहे जितनी लड़ाई हो जाय,—तीसरे आदमी को हवा भी नहीं लगनी चाहिये।"

"मैंने किससे कहा—?"

'अभी तुम सिनेमा जाने से पहले उस भुतनी से शिकायत करने लगीं...।"

"किससे, माताजीसे.....?" जया ज़ोर से हँस पड़ी।

"अरे हाँऽऽ, सब माताजी ही हैं.....।" लापरवाही से शरद ने कहा—"मेरे सामने उसे माताजी-वाताजी मत कहा करो.....।" फिर याद करके बोला—"और आप वैसे तो लड़ रही थीं—पर फ़ौरन ही आकर मुंह बन्द कर दिया...।"

"हाय ! सुनकर क्या कहतीं ?"

"कहती अपना सिर...उसकी बात बता दूँ तो दांतों तले उँगली दबा जाओगी।"

"बताते भी हों—जब से पहेलियाँ बुझा रहे हैं।" जया न जाने कैसे समझ गयी कि पहली बात मायादेवी के बारे में ही है।

"बतलायें क्या ? तुम हँसोगी—विश्वास नहीं करोगी। लो सुनो", शरद ने आवेश से कहा—'सिनेमा देखना मुश्किल कर दिया क़म्बख्त ने—कभी कन्धे पर सिर टिका दे, कभी सिर के नीचे हाथ रख दे—तब तक तो मैं समझता रहा कि शायद मैं ही ग़लत समझ रहा होऊँ—अनजाने ऐसी बातें भी हो जाती हैं; लेकिन घुटनों तक धोती उठाकर ज़बर्दस्ती मेरी टांगों से अपनी पिण्डलियां रगड़ती रही, तब क्या समझता ? सारी पेण्ट की क्रीज़ ख़राब कर दी...चल दीं लगा के काला चश्मा !...माताजी...माताजी !" स्वर में विद्रूप था ! जोश में शरद कह तो गया लेकिन फिर प्रतिक्रिया देखने लगा।

"हाय, कोई सुने इनकी बाते...चालीस साल की बुढ़िया के बारे में ऐसा कहते शर्म भी तो नहीं आती ? सुने तो क्या कहे कोई !" जयाने टिपिकल औरतों के लहजे में कहा। लेकिन वास्तव में इसतरह की बात उसके दिमाग़ में भी घूम रही थी; फिर भी पता नहीं क्यों जब शरद ने यह बात कही तो उससे विरोध किये बिना नहीं रहा गया—"वह तो आपको बिल्कुल लड़के की तरह प्यार करती हैं—और आप हैं कि ऐसे गन्दे मतलब निकालते हैं। सच, सुबह आपकी बड़ी तारीफ़ कर रही थीं।"

"अरे मरा लड़का !" शरद और तेज़ होगया, "मैं यह सब समझता थोड़े ही हूँ ? दूध पीता हूँ ?" शरद की इतनी देर से रुकी हुई घुटन और विक्षोभ अब फूटा पड़ रहा था—"गले में बांह डालकर अँधेरे में लड़के को ही तो पान खिलाया जाता है—? तुम लोगों को पान देते वक्त, जिस तरह ढाई-घण्टे लदी पड़ी रही—वह सब लड़कों के साथ ही तो होता है ? भैंस की तरह पड़ गये और हाथ बढ़ा दिया—'लो उठाना, शरद !' जैसे शरद इनके नौकर हों ! रंडी कहीं की।...।" शरद ने कार की बात याद करके होंठ चबाये.....

"आप भी तो बड़े बने हुए हैं—अब दिखा रहे हैं तेज़ी। तब तो माताजी यह, माताजी वह.....उस वक्त तो खुद रस ले रहे होंगे...।"

"रस ले रहे थे तभी तो निकल आये थे...।" लेकिन जया की पहली बात सुनकर शरद के सारे उफ़ान पर जैसे किसी ने पानी डाल दिया—"कहीं कुछ समानता भी तो हो..."

"लेकिन उनके मुँह तो लगा हुआ है खून..." जया ने तलखी से कहा।

गहरी साँस लेकर शरद बड़ी संजीदगी से बोला—"बड़ी विचित्र स्थिति है। नाराज़ उसे कर नहीं सकते। लाख बिगड़ी हो, देशबन्धुजी पर उसका असर है। नौकरी करनी है तो सबको मक्खन लगाना होगा। क्या करें ? भुनते रहते हैं और ऊपर से

दाँत निपोरते रखते हैं। कभी-कभी तो जया, मन होता है, भागो छोड़-छाड़कर! कहा झंझट में आ फँसे? हर आदमी साला, यहां का कुछ विचित्र साँचे में ढला है। नॉर्मल कोई है ही नहीं। और लाख कमजोरियाँ होते हुए भी मुझे आदमी देशबन्धु पसन्द है। वह कम से कम बैलेन्स्ड (सन्तुलित) तो है, हर चीज पर नियन्त्रण रखना तो जानता है। मान लिया—उसमें बुराइयां हैं, कमियाँ हैं—सो किसमें नहीं होती? सूरजजी में नहीं है? हम-तुम में नहीं है? और हर आदमी बात को अपने ढंग से रंगकर रखता ही है। रही आदर्श और सिद्धान्त की बात, सो आज के युग में कोरा सिद्धान्तवादी बनकर आदर्श बघारने से कुछ नहीं होता। सबको झुकना पड़ता है—समझौता करना पड़ता है। खायें क्या? क्या करें? आखिर हर आदमी के सपने हैं, आकांक्षाएँ हैं—उन्हें एक अनिश्चित युग के लिये कबतक वह स्थगित करता चला जाय? मन हो या न हो, आत्मा को कुचलना पड़ता है—उल्टा-सीधा अपने आपको समझाकर सन्तोष करना पड़ता है। लेकिन जया, कभी-कभी तबियत बड़ी बेचैन हो जाती है, आखिर यह ढोंग कब तक चलता रहेगा? क्या कोई ऐसी शक्ति नहीं है, जो इस सबको खत्म कर दे...?" शरद के उद्वेगपूर्ण शब्दों में बड़ी व्याकुलता थी—असल में वह यह बात जया को नहीं बता रहा था—इतने दिन से अपने मन के भीतरी स्तरों में चलनेवाले मन्थन को यह जवाब दे रहा था। कोई चीज थी जो उसके अवचेतन मन में उसे कहीं निरन्तर कचोटती थी—एक बोझ बनकर बैठी हुई थी—और वह निरन्तर उससे लड़ता रहता था। अब उसे ही यह सब जवाब देकर शान्त कर देना चाहता था। तालाब का पानी ऊपर से शान्त रहता है; लेकिन उस में चलनेवाला मछलियों का द्वंद्व कितनी तेज़ी पर है इसे सतह देखनेवाला कभी सोच भी नहीं पाता।

भीतर के कमरेकी रोशनी, बरामदे को हल्का प्रकाशित कर रही थी—रोशनी की एक चौड़ी-सी पट्टी, दरवाज़े से लेकर पूरे बरामदे में आड़ी लेटी थी। बाहर चौक में और-भी अधिक घना अँधेरा दिखाई देता।—बाहर से झांकनेवाला जामुन का पेड़ ऐसा लगता था, जैसे अँधेरा काला-बुर्क़ा पहने खड़ा हो। बाहर ठण्डी हवा चल रही थी। बरामदे में चारपाई पर, सिर के नीचे दोनों हाथ रखे शरद एकटक बाहर अँधेरे में ताक रहा था,—एक वात्याचक्र था, जो उसके माथे में चक्कर लगा रहा था, और वह उसे समझने की कोशिश करता चुपचाप पड़ा था। उसकी छाती पर सिर रखे, धड़कन से कान लगाये जया लेटी थी।

"सच जया," शरद ने सिर के नीचे से हाथ निकालकर जया की कोमल चिकनी कनपटी को सहलाते हुए कहा—"कभी-कभी तो ऐसा पागलों का-सा नशा आता है कि इस सब कुछ को तोड़-फोड़कर कहीं दूर ऐसी जगह भाग जायँ—जहाँ ज़रा चैन की साँस तो मिले। यह हर वक़्त अपने आपसे लड़ना, अपने को तोड़ना और उस तोड़ने को परिस्थियों पर डालकर झूठा संतोष बटोरना, इससे आदमी बड़ा कम-

जोर हो जाता है।" फिर धीरे-से हँसकर बोला—"और जया, तुझसे इतना भी नहीं होता, कभी ज़रा हिम्मत बँधाये रहे। क्या जिन्दगी अपनी यों ही इन छोटे-मोटे झगड़ों में गुजर जायेगी ? सुबह लड़े और शाम को समझौता हो गया—और वही बँधी-बँधाई करोड़ों की जिन्दगी, कुछ थोड़ी-सी भी तो विशेष नहीं। मुझे हमेशा लगता रहता है, जिन्दगीका इससे गहरा कुछ और भी अर्थ है—लेकिन वह समझमें नहीं आता—उसे मैं निरन्तर महसूस करता हूँ, कह नहीं पाता। और वह स्थिति तुम जानती हो, जब आदमी किसी चीज को 'फ़ील' तो करे, लेकिन कह न सके—कैसी होती है.....?"

जया की समझ में नहीं आया, इसके जवाब में वह क्या कहे—वह एक ऐसा तन्द्रिल-आलस्य अपनी नस-नस में अनुभव कर रही थी, एक ऐसे सुख की मादकता उसके अणु-अणु में समा गयी थी कि मन होता था कुछ न सोचे, कुछ न करे और अनन्तकाल तक यों ही पूर्ण और सन्तुष्ट मनोली-अवस्था में पड़ी रहे। उसने कहा —"तुम समझते हो, शरद, मेरा मन इन सब बातों में रमता है ? लेकिन खुद ही मैं समर्थ होती तो तुम्हारा हाथ क्यों पकड़ती ? तुम मुझसे कहो, और उसका पालन करने में मैं ज़रा भी झिझक दिखाऊँ, तो जो जी में आये कर डालना। शुरूसे मुझे तुम्हारा विश्वास बहुत बड़ा बल देता रहा है। यहां सर पर छत तब भी है, मैं तो तुम्हारे साथ पेड़ के नीचे पड़ने की हिम्मत लेकर निकली हूँ...।" और पता नहीं आनन्द से या इस समर्पण की अभिव्यक्ति से उसकी आँखों से आँसू निकल पड़े।

अंधेरे में खड़खड़ाते उस जामुन के पेड़ को एकटक ताकते हुए शरद को एक क्षण को वास्तव में ऐसा लगा कि सचमुच जया के विश्वास और प्यार की तुलना में वह बिल्कुल बौना है, वह उसे छू नहीं सकता। अगर देशबन्धु जैसा कोई आधार नहीं होता तो क्या वह यों निर्लक्ष्य, निरुद्देश्य अन्धाधुन्ध एक झोंका लेकर निकल खड़ा हो सकता था ? अगर वह लड़की होता तो क्या इतनी हिम्मत कर सकता था ?—शायद कभी नहीं ! सच बात तो यह है कि उसके मन में भीतर कहीं विश्वास था कि थोड़े समय बाद वह घर लौटकर चला जायगा, और जो बवण्डर, तूफ़ान जया के साथ चले आने से बाद में उठ खड़ा हुआ होगा वह शान्त हो चुकेगा। तब जीवन उसी शान्त और स्निग्ध-गति से चल निकलेगा। उसके घरवालों की नाराजी तबतक समाप्त हो चुकेगी। क्या जया भी इस तरह लौटने की बात सोच सकती है ? शायद इससे बढ़कर अपमान की बात उसके लिये दूसरी कुछ नहीं होगी कि वह स्वयं लौटकर अपने घर जाय। कैसा यह पागलपन था जिसने उसे ज़रा भी आगा-पीछा नहीं सोचने दिया, और उसके हाथ यों अपने को सौंप दिया ? क्या वह इस एकान्त-समर्पण को उसी एक-निष्ठता से ग्रहण करने का दावा कर सकता है.....? नहीं, नहीं ! उसके मन का द्वन्द्व, दो-रूप, कभी भी एक नहीं हुए। शायद वह कभी भी जया की तुलना में अपने प्रति ईमानदार नहीं रहा। पानी

सोखते हुए स्पञ्ज की तरह उसका हृदय पुलक कर फूल उठा—पागल लड़की नहीं जानती, किस अयोग्य आदमी के हाथों उसने एकान्त-समर्पण की आरती दे दी है...। वह बोला, "जया, सोते, घूमते उठते-बैठते, मेरे दिमाग़ में सिर्फ़ एक चीज़ घूमती है, वह है तू। मैंने कभी भी नहीं सोचा, मैं तुम्हें कभी भी कोई आश्रय देने का गर्व करूँगा, शायद मुझसे यह सम्भव भी नहीं है, लेकिन एक हिम्मत है, एक छाया है, जो हमेशा बल देती है, आशा देती है...वर्ना इस अँधेरे और अकेले में मैं यहाँ पड़ा होता.....? जहाँ अपने मन का कोई नहीं है। मेरे मन और आत्मा पर तुमने इतना अधिकार कर लिया है, सच मानों, इस बात को मैं खुद नहीं जानता था। तुम्हें मैंने अप्राप्य-वस्तु समझ कर छोड़ दिया था, और यदि उन दिनों तुम वह स्थिति न ला देतीं तो शायद मेरे साहस के लिये तुमसे वह कह सकना बिल्कुल असम्भव होता...।" शरद स्वप्नाविष्ठ-सा अधमुँदी-आंखों से जया के सिर को देखता, उसकी कनपटी और बालों की सहलाता, कहता रहा.....

जिस समय कोठी के दूसरे सिरे पर बारह के घण्टे बजे तो पास ही कहीं ताले में चाभी घुमाने की आवाज़ खड़खड़ा उठी, किवाड़ खोले गए।

"शायद सूरजजी आ गए।" शरद ने कहा।

"बड़ी रात को लौटे हैं, कहीं पी-पाकर तो नहीं लौटे। बारह बजे हैं।"

"इस बेचारे की भी क्या जिन्दगी है!"

"मुझे तो ऐसा लगता है, इनके साथ कोई दुर्घटना हो गई है—दिल पर बड़ा शॉक लगा है।"

"हो सकता है!" शरद अन्यमनस्क हो आया। उसके ऊपर से जैसे किसी ने जादू की चादर उतार ली हो, जैसे धीरे-धीरे सपना समाप्त हो गया हो, या क्लोरोफ़ार्म की बेहोशी से जगा हो। यह कैसा अजब क्षण था जब वे लोग इतने भावा-विष्ठ होकर बातें कर रहे थे! क्या-क्या बातें उसने खुद कही हैं, उसे याद ही नहीं आ रहा था। अभी-अभी वह किस लोक में विचर रहे थे? आदमी के मन में लहर की तरह आजानेवाली यह क्या चीज़ है? वह उस समय किस स्तर पर पहुँच जाता है.....?

"बड़ा अँधेरा है।" जया ने जँभाई लेकर कहा।

"अब सो जाओ, काफ़ी देर हो गई है—सुबह उठना है।"

जया चुप हो गई। शरद सोचता रहा। कितना सन्नाटा इस समय चारों ओर छाया था—ठण्ड धीरे-धीरे बढ़ रही थी—आज शरद को यहाँ तीसरा दिन है। जया सो गयी थी—कैसी चिड़िया के बच्च की तरह चिपक कर सो रही है। —नल की तरह मैं छोड़कर चला जाऊँ तो?

सहसा जया ने सिर उठाकर कहा—"कल कपड़ा ले आना कुर्सियों को, कुछ गद्दियां और कवर दे देंगे सिलने। लेकिन पता तो चले। सच, रुपयों की ज़रूर

पूछ लेना ।"

शरद हँस पड़ा—स्नेह से अभिभूत वाणी में विद्वानों की तरह हँसकर बोला —"क्या महत्वपूर्ण बात कही है आपने ? क्यों री, नींद नही आ रही है तुझे ?"

जया फिर चुप होकर सो रही ।

शरद को फिर हँसी आई, खुद ही बोला—"है तो आखिर औरत ही !" कुनमुना कर जया और भी चिपक गई—जैसे कह रही हो—सोने दो, चुप रहो ।

और नींद में गहरा उतरता शरद सोचता रहा कि उनलोगों ने आग की धुँधुआती लपटों के चारों ओर बैल की तरह चक्कर काटकर साथ रहने का निश्चय नहीं किया —किसी एजेण्ट को बीच में नही लिया !—आखिर स्त्री-पुरुष के बीच एक निश्छल आत्यन्तिक-समर्पण में इस सब खाना-पूरी और ढोंग के लिये जगह कहाँ है ? वह जिन्दगी-भर घिसटते रहे या कल ही लड़-भिड़ कर अलग हो जायँ—लेकिन जीवन के इस लोकोत्तर-आनन्द का दुनियाँ के किसी भी आडम्बर से क्या मतलब है.....? सब कितने झूठे हैं—कितने दिखावटी, फ़ालतू लोगों का दिमाग़...। धीरे-धीरे पता नहीं, कब उसकी आंखें बन्द हो गयी.....

अचानक चौककर जब वह हड़बड़ा कर उठा तो देखा, जया कुछ कह रही थी—शायद सोते में ही बर्रा रही थी । अभी सोते-सोते नींद में उसे ऐसा लगा था जैसे एक बार कोई खिलखिलाकर हँसा हो, फिर रोने लगा हो । वह घबरा गया । उसने जया को झकझोरा, "जया,जया—सुनती हो.....?"

"दादा, तुम वहाँ मत जाओ...तुम्हें वे दोनों खाजायेंगी..."

शरद ने देखा, जया पसीने से बुरी तरह भींग गयी थी, उसने आश्वासन देते हुये बड़े प्यार से कहा—"जया, उठ तो सही, मैं कहाँ जारहा हूँ पगली...?"

"ऐंऽऽ।" जया चौककर उठ गयी। उसकी साँस बड़ी उखड़ी-उखड़ी और हाँफती चल रही थी—शरीर ऐसा भींग गया था जैसे नहा गयी हो । वह हक-बकाकर इधर-उधर देखने लगी—जैसे समझ रही हो । फिर धीरे-धीरे उसकी चेतना एकाग्र हुई । नींद में दोनों कनपटियों पर बह आनेवाले आँसुओं को उँगली से छिटककर वह बोली—"मैं क्या कह रही थी ? आप क्यों उठ गये...?"

"अरे, तूने तो मुझे घबरा दिया । कम्बख्त, क्या-क्या बकती है सोने में ?" शरद ने सन्तोष की सांस ली । अब उसको घबराहट खत्म हुई, बोला, "क्या देख रही थी ? कौन खाये जारहा था मुझे ?"

"कहांऽऽ ?" जया झेंप कर उसकी गोद में लिपट गई ।

"बड़ा खराब सपना दिखाई दिया...।" जया ने बच्चों की तरह भय से जैसे मुंह छिपा कर कहा ।

"अच्छा, अब सुबह बताना । सपने सबको दिखाई देते हैं, लेकिन ऐसे रोता-

हँसता कोई नहीं है। भई, मैं घबरा जाता हूँ—आगे से यह नहीं होगा।"

"मैंने क्या जानबूझ कर कुछ किया है ?"

"अच्छा, पानी पियोगी ? तबियत ठीक हो जायेगी।"

"नहीं—मुझे डर लगता है।"

शरद हँस पड़ा। दोनों लेट गये। अब शरद के दिमाग़ में एक नयी चीज़ आगई थी—जया के मन में यह बात क्या सचमुच इतनी गहराई से घर किये बैठी है ?

शायद दो बजे थे .....

बत्तीस पुतलियों का सिंहासन

आज शरद को वाक़ई बड़ा धक्का लगा। उसे ऐसा लगा जैसे उसके हृदय के सुरक्षित कोमल-स्थान में किसी ने सुरंग लगादी हो। देशबन्धुजी की ओर के दरवाज़े को उसने तीसरी बार खोलने की कोशिश की, चपरासी से चिट भिजवाई, दरवाज़े तो खैर खुला ही नहीं, हां, चपरासी ने आकर बताया—"इस वक्त नेताभैया पूजा पर हैं।" और शरद बैठा-बैठा कागज़ों को इधर-उधर उलटता-पलटता रहा। 'बिगुल' के प्रूफ अभी तक रखे थे। बालानी साहब के उसे अभी तक दर्शन हुए ही नहीं थे। वह चाहता था कि किसी तरह ज़रा काम को समझ ले, कुछ इस सम्बन्ध में संकेत ले ले, फिर तो जैसे-तैसे घसीट ही ले जायेगा—लेकिन शुरू में ही उसे सबसे अधिक कठिनाई लग रही थी। असल बात तो यह है कि उसे काम क्या करना होगा—यही ठीक से समझ में नहीं आया था। हां, यह विश्वास था कि जो सामने आता जायेगा, उसे अधिक से अधिक समझता अवश्य जायेगा। लेकिन अब इस सामनेवाले काम के लिये भी तो कोई लाइन चाहिये ही न। दूसरी बात यह वह साफ पूछ लेना चाहता था कि उसे आखिर तनुख़ा क्या मिलेगी? अपने खर्च को किस तरह समेटे या फैलाये। यों उसके सपनों की क्या है, वह केवल ड्राइंगरूम ही अपना इस तरह सजा डाल सकता है कि सात-सौ रुपये महीने का बजट भी उसके लिये ना-काफ़ी हो। तीसरी बात, वह जया के सम्बन्ध में करना चाहता था कि उसे अपने स्कूल में कहीं जगह दे-दिला दें, ताकि वे लोग निश्चिन्त होकर अपने आपको यहाँ हर-प्रकार से सैटिल्ड अनुभव कर सकें। अब जो ज़रा-ज़रा-सी बातें लेकर उन लोगों के बीच में ग़लतफ़हमी आ जाती है—वह तो दूर हो। शरद समझता है कि मायादेवी जैसी स्त्री के प्रभाव से जया को बचाना चाहिये—जहाँ तक सम्भव हो दूर रखना चाहिये और जया समझती है कि मुझ इतनी बड़ी को ये बच्चे समझते हैं कि हर कोई ऐरा-गैरा प्रभाव में ले ले, या बहका ले। आखिर उसने भी तो इक्कीस-साल भाड़ नहीं झोंका। स्कूल की नौकरी में तो तरह-तरह के लोग आते हैं—पिछली बार वह अपनी प्रिंसिपल और मैनेजर का ही क़िस्सा सुनाने लगी थी। और चौथी बात यह थी कि उसे कुछ रुपया उधार दिलाया जाय। अपने पिछले अनुभव से वह जानता था कि मानसिक रूप से वह चाहे जितनी तैयारी करे, देशबन्धुजी के सामने ज़ोर देकर अपनी बात नहीं कह सकता। यह सब बातें उसे उनके सामने बड़ी तुच्छ लगती हैं। इसबार उसने स्पष्ट ही चिट पर लिख दिया था कि कुछ व्यक्तिगत काम से वह मिलकर उनसे बातें करना चाहता है, जिस समय वे खाली हों, उसे बुला ले। कम से कम एक शब्द में वह यह तो जान ही जायेगा कि इस सम्बन्ध में वह किससे बातें करे। यहां किसी से भी तो उसका ऐसा

सम्बन्ध नहीं है—बस, सूरजजी हैं या केशव। सूरजजी और देशबन्धुजी में जो आत्मिक-सम्बन्ध हैं, उनको ध्यान में रखकर उनकी सलाह को हर-क़दम पर स्वीकार करना उसे अपने भविष्य के लिहाज से अधिक उचित नहीं लगा। केशव नौकर है—उससे बातें करते समय कुछ-न-कुछ तो ध्यान रखना ही पड़ता है।

इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर उसने चिट ही इस तरह की भेजना उचित समझा कि बात उसी हिसाब से शुरू हो। दूसरी चिट के जवाब में बताया गया कि वे कुछ ज़रूरी काग़ज़ात देख रहे हैं—और अभी एक-डेढ़ घन्टे शायद न ही मिलें। शरद झुँझला उठा मन ही मन। मिलने को कौन वह उनके दर्शन के बिना मरा जा रहा है—कमसे कम यही बता देते, या चपरासी से कहलवा भिजवाते कि इस वक्त नहीं, संध्या को मिलेंगे। ऐसा भी आख़िर बड़प्पन क्या?

और उसके झुँझलाने का उचित कारण यह भी था कि पिछले दिन देश-बन्धुजी उसे जिन कमरों में होकर ले गये थे और अपनी बैठने की जगह दिखा चुके थे—शरद का ख़याल था कि जब भी अवसर आयेगा या आवश्यकता होगी—वह इसी रास्ते उनतक पहुँच जाया करेगा। सबसे पहली बात तो उसे यही खटकी कि जब कल के रास्ते से वह ऑफ़िस आने लगा तो एक छोटा-सा जैसे, अनिच्छा-पूर्वक हो—सलाम झुकाकर चपरासी ने अत्यन्त ही विनम्र शब्दों में कहा—"बाबूजी, आप इधर से क्यों जाते हैं, इधर से तो आपको बहुत चक्कर पड़ जायेगा—आइये मैं आपको सीधा रास्ता बताऊँ," और जैसे ही वह चलने को हुआ, तभी बड़े रौब से सफ़ेद खद्दर का नीचा झकझकाता कुर्त्ता-जाकट, चूड़ीदार पाजामा और सिर पर थ्री-नॉट-थ्री की नुकीली टोपी डाटे, कथूरियाजी आ पहुँचे। वही साँवला खुटा हुआ चेहरा—उड़ते हुए पक्षी के फैले पंखों की तरह की मूछें, काले होंठ, नगों से चमकती उँगलियां और चौड़ी घड़ी—पाँव में जयपुरी सलीमशाही। हाथ में वही पुराने ढंग से पकड़ी हुई सिगरेट, जिसे हरबार मुठ्ठी बनाकर वह होंठोंसे लगा लेते और चुटकी बजा-कर झाड़ते हुए ऐसे निर्द्वन्द होकर लापरवाही से धुँआ छोड़ते जैसे इञ्जन में कोयला डाला जा रहा हो। उसके अङ्ग-प्रत्यंग और हर चाल-ढाल से पता चलता था कि वे अत्यन्त ही महत्वपूर्ण आदमी हैं। दूसरे हाथ में बड़ा-सा चमड़ का थैला।

जब वे शरदके पास तक आ पहुँचे तो शरदने अत्यन्त ही विनम्रतासे नमस्कार किया। वैसे इस उजड्डनुमा व्यक्ति को नमस्कार करना उसे स्वयं अच्छा नहीं लगा। किवाड़ बन्द थे; तब भी शरद को लगा कि न जाने कैसे दफ़्तर के भीतर पता चल गया है कि कथूरियाजी आ गये हैं, और जैसे कोई शान्त सोये पानी में बड़ा-सा ढेला उठाकर डाल दे—इस तरह की एक हल-चल पूरे दफ़्तर में हो गयी—पर सब चुप चुप ही। चपरासी जो उसे रास्ता दिखाने ले जारहा था ऊपर से नीचे तक थर्रा उठा, उसने सैल्यूट मारकर बड़े अदब से थैला ले लिया और कुत्ते की तरह दुम हिलाता-सा पीछे खड़ा हो गया। शरद को ऐसा अनुभव हो रहा था जैसे इस आदमी

के व्यक्तित्व और रौब के सामने वह स्वयं अत्यन्त ही तुच्छ है।

"कहिये शरद बाबू, कोई तकलीफ़ तो नहीं है आपको ?" उसके पास आकर एक क्षण को कथूरियाजी रुक गये। उन्होंने इतने जोर का कश लगा कर यह बात पूछी कि सिगरेट एक बारगी ही आधी रह गयी।

उनकी सिगरेट पर दृष्टि गड़ाकर शरद ने भरसक अपने आपको न घबराने देते हुए कहा—"आपकी कृपा चाहिये—बस।"

"अजी, कृपा तो नेताभैया की है आप पर—फिर आपको किसी चिंता की जरूरत ही क्या है ?" वे इस तरह दाँत निकालकर हँसे जैसे कोई बड़े गहरे मजाक की बात कह गये हों। फिर एकदम गम्भीर होकर बोले—"हाँ, वो आपकी 'वाइफ़' है न, नेताभैया ने कहा है, अपने स्कूल में उनके लिये, सो आप मुझे एक एप्लीकेशन—या यों ही एक कागज की चिट पर उनकी सारी क्वालिफ़िकेशन्स लिख कर दे दीजिये—कल तो शायद छुट्टी है, परसों किसी पार्टी का इन्तज़ाम करना है—बस, इसके अगले दिन से सब काम हो जायेगा ठीक।"

"जी, मैं जरूर दे दूँगा।" शरद कृतज्ञ हो उठा—उसे लगा वह बेकार ही इस आदमी का इतना रौब खा रहा था—यह आदमी शायद अच्छा है। तब उसके दिमाग़ में सूरजजी का शब्द गूँज उठा—'रोग्ज !' मन ही मन वह उनपर हँसा—"हुँह, सूरजजी भी आदमी मनकी है।" उसने पूछा—"पार्टी कैसी ?"

"प्रान्त के मन्त्री आ रहे हैं न, परसों।" चलते-चलते कथूरियाजी बोले और जैसे मन्त्रीजी के नाम के साथ ही उनसे सम्बन्धित सैकड़ों काम याद आ गये; इसलिये वे सचेत हो गये।

शरद ने उन्हें नमस्कार किया और जब चपरासी उनके पीछे-पीछे चला गया तो उसे अपनी स्थिति बड़ी अजीब लगी। चपरासी उसे दूसरा रास्ता बताने आया था—वह इनके साथ लगा चला गया। शायद पहुँचाकर आये। शरद मेंहदी की लाइन से टहलता हुआ स्वदेश-महल के बिल्कुल सिरे वाली बाउण्ड्री-लाइन पर आ गया, जिसके पीछे वह पतली-सी कच्ची सड़क थी, जो एक ओर घूमकर उसके क्वार्टर के पास से निकली है—दूसरी ओर मुख्य-सड़क से जा मिली है। इस बाउण्ड्री लाइन को बनाती थी करौंदे की लाइन। स्वदेश-महल में दो तरह की लाइनें थीं—चारों ओर तथा अन्य मुख्य-लाइनें करौंदे के पेड़ों से ज़रा ऊँची और भारी बनी थीं। सड़कों के आस-पास या भीतर के हिस्से में मेंहदी की ज़रा सुन्दर दिखाई देने वाली हल्की लाइनें थीं। शरद करौंदे की लाइन के पास खड़ा होकर कच्ची सड़क के दूसरी ओर एक काफ़ी खुले मैदान के बीच में कोई बिल्डिङ्ग बनती हुई देखने लगा। अभी केवल दीवारें उठी थीं। दूर होने के कारण आवाज़ें तो सुनाई नहीं देती थीं—लेकिन लोग काम करते दिखाई देते थे। आज बादल बिल्कुल नहीं थे और धूप साफ़ थी। कहीं एकाध रुई के गाले की तरह चित्ती फैली हुई थीं। काम

करते लोगों को देखना उसे बड़ा अच्छा लगा---स्त्रियाँ गिट्टियों के ढेर पर बैठीं, आमने-सामने मुँह किये गिट्टी कूट रही थीं—उनकी पीली-पीली ओढ़नी और लाल लहँगे साफ़ बता रहे थे कि वे राजस्थान की तरफ की हैं। बाहों तक हाथी-दाँत के चूड, सिर पर 'बोरला', मोती-गुँथे बाल, ढेर-सारे गहने और आधे-आधे कुच खुले दिखाई देनेवाली कसी हुई चोलियाँ—पिण्डलियों तक ऊँचे लहँगे और मर्दाना जूता—शरद ने प्रायः सभी राजस्थानी स्त्रियों को इसी वेष में देखा था—अतः उसने इनके विषय में भी यही कल्पना कर ली। उससे भी आकर्षक दृश्य उसे लगा; ईंटें पहुँचाने का काम—एक स्त्री ऊपर दीवार पर बड़े आराम से बैठी थी, नीचे एक दूसरी औरत खड़ी बड़े साधकर ईंट फेंकती और ऊपर वाली उसे लपक लेती—यह क्रम इतनी तेज़ी और सधे हुए रूप में चल रहा था कि चकित-सा शरद, करौंदे की पत्ती अनजान रूप से दाँतों से चबाता-थूकता हुआ मुग्ध-दृष्टि से उसे देखता ही रह गया।

"चलिये, बाबूजी।" चपरासी ने कहा।

जैसे ही शरद ने घूमकर देखा—उसकी निगाह लम्बी नागफनी की लाइन पर पड़ी। एकदम वह चौंक गया—करौंदे के घने पेड़ों की पत्तियों में छिपी कँटीले तारों की लाइन थी—जिन्हें पकड़े खड़े लोहे के टुकड़े लाइन में इस तरह छिप गये थे कि दिखाई नहीं देते थे, और इस लाइन के नीचे ही नागफनी की घनी लाइन चली गई थी—चौड़े-चौड़े पत्तों में चमकते सफ़ेद काँटे देखकर, शरद को एक हल्की फुरहरी हो आई। यह नागफनी की लाइन ज़रा झाँककर देखने पर ही दिखाई देती थी—नागफनी की लाइन!—नागफनी की लाइन! दो-तीन बार जैसे शरद के मन में यह बात घूम गई। ऐसी कोई विशेष बात नहीं थी, फिर भी न जाने क्यों उसे कुछ अजब-अजब लगा। चलते हुए उसने कहा—"चलो।"

चपरासी साथ चल दिया। शरद ने यों ही कहा—"बडी लम्बी लाइन है नागफनी की।"

"इसका काँटा बड़ा ज़हरीला होता है।" चपरासी ने समझाया—"एक दफ़ा लगा और चुभा—फिर तो पके बिना नहीं रहता।"

शरद ने इस विषय में काफ़ी सुन रखा था—फिर भी आश्चर्य का भाव दिखा कर कहा—"अच्छा!"

कुछ देर तक चुपचाप चलकर बोला—"तुम यहाँ कब से हो, भाई?"

"हमें बाबूजी, तीन-चार साल हो गये।"

"इससे पहले क्या करते थे—?"

"हम 'आज़ाद हिन्द फौज़' में जमादार थे बाबूजी, फिर एक जगह बर्तन माँजने लगे थे—अब यहां नौकर हो गये।"

"अच्छा!" शरद ने फिर आश्चर्य का भाव दिखाया। उसे एक क्षण

को लगा—हर आदमी के पीछे उसकी ज़िंदगी की एक लम्बी-कथा घिसटती है—वह उसी में उलझा है—जुड़ा है। उसकी कल्पना में भेंड़ों के लम्बे-चौड़े झुण्ड जैसे हज़ारों आदमियों की भीड़ कौंध गयी: सिर पर उनके भारी-भारी बोझ हैं—ऐसे ही बोझ जैसे अभी-अभी उसने मज़दूरों के सिरों पर देखे हैं...और उनके पीछे लम्बे-लम्बे फ़ीते घिसट रहे हैं—यह उनकी पिछली ज़िन्दगियाँ है जिन्हें वे घसीटे ला-रहे हैं। सिर पर रखा हुआ बोझ वर्तमान है। क्या इन फ़ीतों को कैंचुली की तरह छोड़ा नहीं जा सकता ?—लेकिन कभी-कभी तो यह फ़ीता चिपककर रह जाता है। अब यही आदमी बेचारा क्या करे?—कैसे उस फ़ीते को छुड़ा दे; जो देश के लिये बन्दूक लेकर लड़ा—वह आज बर्तन मांज रहा है, या चपरासी है; जो ज़बान से दुनियाँ-भर की बातें बघारते रहे—जिन्होंने देश-भक्ति को भी अपना व्यापार बना लिया—उनकी कोठियाँ है और वे नेता हैं ! उस एक क्षण को उसे ऐसा लगा, क्या यह अन्याय सचमुच कभी खत्म नहीं होगा ?

"देखिये, यह सीधा-सा आपके कमरे का दरवाज़ा है।" चपरासी ने बताया और आगे बढ़कर किवाड़ खोल दिये। ये लोग एक चौड़े से बरामदे में चढ़ आये थे।

शरद ने देखा, भीतर देशबन्धु जी की लाइब्रेरी या स्टडी है—अरे, यह इतना सीधा रास्ता भी है ! उसे आश्चर्य इसलिये हुआ कि जब देशबन्धुजो उसे इस लाइब्रेरी में लाये थे, तब ऐसा लगा था कि न जाने किस गुफा में जाकर यह बनी है और वहां तक जाने के लिये कितने ही कमरे पार करने पड़ते हैं।

"अच्छा बाबूजी, अब मैं चल रहा हूँ।" चपरासी ने किवाड़ बन्द करते हुए कहा—"पता नहीं, कौन आ जाय—आजकल वैसे ही लोग बहुत आ रहे हैं।"

"अच्छा" शरद कृतज्ञ होकर बोला।

वह भीतर आ गया। लाइब्रेरी ाली थी, वहां फ़िलट की गंध भरी थी। लाइब्रेरी मे कमरे के दरवाज़े को ओर जाते हुए उसने सोचा—शायद मन्त्री महोदय आ रहे हैं—यही भीड़ है। उसने अपना कमरा खोला—आज कमरा बिल्कुल साफ़ और उसी के हिसाब मे ठीक-ठाक किया हुआ था। मेज़ पर नीली-सी ट्रे में ढेर-सी चिट्ठियाँ और पैकेट रखे हुए थे। उसकी कल वाली फ़ाइलें मेज़ की खुली दराजों में रखी थी। वह अपनी उसी घूमने वाली कुर्सी पर आ बैठा। एकबार सब चिट्ठियों को टटोलते हुए उसने मन ही मन निश्चय कर लिया कि पहले देशबन्धु जी से मिल ही ले; यह दो एक-बातें निश्चय कर ले, फिर इकट्ठा बैठकर शाम तक उनके भाषणों की काट-छाँट करेगा। यह सोचकर पूरी डाक पर जब सरसरी निगाह डाल चुका तो उठकर लाइब्रेरी में आगया—लेकिन देशबन्धुजी की ओर जाने-वाले कमरे का दरवाज़ा कई बार खींचा जाने पर भी नहीं खुला। सचमुच बड़ा आश्चर्य हुआ—कलही तो सब कुछ देशबन्धुजी ने उसे खोलकर दिखाया था। फिर उसने कांग्रेस के दफ़्तरों की लाइन वाले दरवाज़े को खोलना चाहा—

वह भी बन्द था। उसे थोड़ी झुँझलाइट हुई। वह अपने कमरे मे लौट आया कुर्सी पर बैठकर उसने जब बटन टटोला तब उसकी भवें कुछ पास-पास सिकुड़ आई थीं, माथे पर एक बल उभर आया था। बाहर घन्टी बजी और चपरासी प्रगट हुआ। शरद ने पूछा—"नेता भैया कहा हैं इस वक्त ?"

"अपने कमरे में ही—पूजा पर हैं।"

"अच्छा, उनके पास यह चिट भिजवा देना—पूजाके बाद देख लेंगे।"

"चिट मैं भिजवाए देता हूँ—दरवाज़ा खुलते ही पहुँच जाएगी।" उसने सिर हिलाया।

शरद फिर व्यस्त होकर चिट्ठियों को देखने लगा। वह शायद कुछ और कहे, कई सैकेण्ड राह देखने के बाद चपरासी किवाड़ बन्द करता हुआ चला गया, तो शरद ने आनन्द से दोनों पाँव उठाकर मेज पर रख लिये और एक अखबार खोलकर इधर-उधर की खबरें टटोलने लगा। दरवाजे बन्द होने से उसे जो मन में हल्की विरक्ति लगी थी—उसे उसने यह समझाकर दूर कर दिया कि देशबन्धुजी पूजा कर रहे हैं—बहुत सम्भव, वे चारों ओर से बन्द करके पूजा करते हों। इतनी जल्दी होने वाली मानसिक-प्रतिक्रिया की आदत को उसे छोड़ना पड़ेगा। दरवाज़ा बन्द मिला और वह झुँझला गया—यह भी कोई बात हुई ! आध-पौन घन्टे में उनकी पूजा खत्म हुई जाती है—लेकिन फिर वह उनसे प्रश्न किस तरह करेगा—? किस तरह बात शुरू होगी? उसे ही करनी होगी ? अच्छा हो पॉइण्ट बना लिये जायँ। बीच-बीच में बस एक-एक बात पूछ ली, जैसे यों ही बात करने के दौरान में पूछी जाती है। जया की बात का तो उन्हें ध्यान है, वह समस्या तो लगभग हल हो गयी। इसकी वजह यह है शायद, कि जया उन लोगों में काफी घुलमिल गयी है। मायादेवी मेरे लिये ही सही उसे उलझाये रखना चाहती हैं ! मायादेवी ! और घृणा का एक विकट ज्वार उसके मस्तिष्क में छा गया। हद है ! मेरी और उसकी उम्र में आखिर कोई तुलना भी तो हो ! और देख रही है कि अकेला नहीं हूँ—जया है। तब भी ? कल तो सचमुच उसने पोज़ीशन बड़ी खराब करदी—लद बैठी। न यह ध्यान कि आस-पास के लोग क्या देखेंगे, न यह खयाल कि जवान बड़ी लड़की है ! वह क्या इन सब बातों को समझती नहीं है ? खुद पैंतीस-चालीस से कम तो किसी भी हालत में नहीं होगी। दस-बारह साल का फर्क़ कुछ हुआ ही नहीं ? छिः और उन सब बातों की कल्पना करके उसके कन्धे इस तरह सिहरकर काँप उठे जैसे मुँह में कोई लिजलिजी और गिलगिली चीज आ गई हो। बिल्कुल ऐसी ही उत्कट घृणा उसे एकबार उस समय हुई थी, जब उसने अपने एक मित्रसे उनका क़िस्सा सुना कि एक बार रात में जब वे दूध पी रहे थे तो बार-बार उनके मुँह में मलाई जैसी कोई चीज़ आ जाती थी। उन्हें कुछ शक हुआ—और यह शक तब हुआ जब मोटी मलाई का गुट्ठल समझ कर उन्होंने दाँतों से उसे दबाया तो पंजे-

से लगे। फ़ौरन रोशनी मँगाई—देखा एक छिपकली थी—पता नहीं कबसे पड़ी कढ़ाई में औट गई थी। इस क़िस्से को सुनकर उसके मन में जैसा कुछ लगा था बिल्कुल वैसा ही जब-जब वह कल की बात याद करता, तब लगता। यद्यपि जया से इस बात को बताकर अपने आपको शान्त कर चुका था तब भी कल से उसकी बड़ी प्रबल इच्छा हो रही थी कि इस बात को वह सूरजजी से बताये और उसपर उनकी आलोचना सुने। वे मायादेवी से वैसे ही खार खाये बैठे है।

लेकिन सूरजजी से मुलाकात अभी तक नहीं हुई थी। सुबह ही फिर कहीं निकल गए थे—थोड़ी देर बाद आकर केशव ने बताया कि वे प्रेस में बैठे दातौन कर रहे है। शरद को कुछ आश्चर्य हुआ। उनके लिये बाजार से कुछ सामान मँगाने केशव सुबह आया था—तभी उससे भी काफी देर बातें हुई थी। बात-चीत में ही उसने आश्वासन दिलाया कि शीघ्र ही एक छोटा-सा लड़का काम करनेके लिये तलाश कर लायेगा—तब तक माली के छोटे-छोटे बच्चों में से कोई यह काम कर देगा। वह दस-बारह मिनट में उसके नौ-दस साल के छोटे-से लड़के को भी पकड़ लाया। इसका नाम था नैना। साँवला-सा लड़का, चौड़ा-चौडा; काजल गले मे एक मैले पुराने डोरे में बांध कर लटकाया गया मूँगा—बनियान और उसके ऊपर से कुहनी तक की बाहों-वाली बण्डी. फटा-सा एक नेकर। बादमे उस नैना को शरद और जया समझाते रहे थे कि अगर तू हमारे यहां काम करेगा तो अच्छे-अच्छे कपड़े बनवा कर 'बाबूजी' बना देंगे और बढ़िया-बढ़िया खाना खाकर तू इतना मोटा हो जायगा कि अपनी बडी बहन को जब चाहे तब उठाकर पटक सकेगा। लेकिन छोटे भाई को अगर मारेगा तो सिपाही से उसकी शिकायत कर दी जायगी, जो न सिर्फ उसके नाक-कान काट ले जायेगा बल्कि ले जाकर हवालात में भी बन्द कर देगा। काम कराने के बाद जया ने उसे डबल रोटी दी, पैसे दिये और बातों से इतना खुश कर दिया कि उसने खूब सिर हिला-हिलाकर सन्ध्या को आने का वचन दिया। शरद और जया उससे उसके पूरे परिवार की बातें पूछ-पूछकर हँसते रहे। सूरत से चाहे कैसा ही चालाक और घुटा हुआ लगता हो—केशव उसे बुरा नहीं लगता; लेकिन पता नहीं क्यों, जया को वह फूटी आंखों नहीं सुहाता। इस बात को वह कई-बार कह चुकी थी।

तो मायादेवी के सम्बन्धमें रह-रहकर हल्की बेचैनी उसे होती। सूरजजीसे वह इस बात को कैसे कहे? उसे थोड़ी-थोड़ी देर बाद ऐसा लगता जैसे वह कोई इतनी महत्वपूर्ण और रहस्यमय बात जानता है कि अकेला उसे पचानही सकता, उसे किसीसे कह सुनकर उसपर आलोचना-प्रत्यालोचना करना ज़रूरी है। ठहाके बिना उसे क़ब्ज हो जायेगा। तब उसे बड़ी तीव्रता से अपने कुछ मित्रोंकी याद हो आई—जिनके साथ सन्ध्यायें इसी प्रकार हँसी-मज़ाक में निकल जाती थी। पता नहीं अब साले, उसके बारे में क्या-क्या बातें करके हँसते होंगे। क्यों न अजित को एक खत लिख डाला

जाय ? लेकिन जरा अपना पता दिया—और उन्होंने नगर में ढिंढोरा पीटा । अभी दो-चार महीने ठहर कर ही ठीक रहेगा । लेकिन अजित ऐसा नहीं है—उससे खास तौर से कह भी दूँगा तो बात को गम्भीरता और सहानुभूतिपूर्वक लेगा । तब एकदम सीधा बैठकर वह अजित को खत लिखने लगा । उसने बड़े रौब से दराज में से नीले बढ़िया काग़ज़ का लेटर-हेड निकाला जिसपर लाल डाई में छपा था—'देशबन्धु' फिर जरा नीचे 'एम० पी०'—बदमाश पर रौब तो पड़ेगा कुछ !

काफ़ी देर खत लिखकर—उसे दुबारा देख चुकने के बाद देशबन्धुजी के ही एक लिफ़ाफ़े में उसे रखकर गोंदवाले हिस्सेपर जीभ फिराते हुए वह उठा, लाइब्रेरी में आया । देखा, किवाड़ अब भी बन्द थे । फिर आश्चर्य हुआ और उसने दूसरी चिट भेजी—लिखा कुछ व्यक्तिगत काम की बात करनी है, दो-चार मिनट का कोई समय आप दे सकें तो बड़ी कृपा होगी । लेकिन चपरासी बता गया कि इस समय वे कथूरियाजी और सत्य-बाबू के साथ बैठे कुछ जरूरी बातें कर रहे हैं । थोड़ी देर में चिट भिजवाई जायेगी । यह कहकर चपरासी चला गया तो उसने जोर से लिफ़ाफ़ा मेज पर पटका ! "भाड़ में जाय जरूरी काम, दो मिनट का वक्त नहीं दिया जा रहा !" उसने अत्यन्त ही उपेक्षा से सिर झटका । उसके मन में एक संदेह जागा, कहीं ऐसा तो नहीं है कि लाइब्रेरी के जो दरवाजे उसे बन्द मिले हैं वे बन्द ही हो गये हों और उसके लिये देशबन्धुजी से बातें करने का रास्ता या तो यह सफ़ेद फ़ोन रह गया हो या फिर चपरासी द्वारा चिट । उसने सोचा, क्यों न फ़ोन खटखटाया जाय, लेकिन बात उसे उचित नहीं लगी—एक तो वह अकेले में जिस प्रकार बात करना चाहता है—वैसा वातावरण नहीं होगा; क्योंकि वहां कथूरिया इत्यादि सभी तो बैठे होंगे । दूसरे यह बड़ी जल्दबाजी-सी लगेगी । सोचेंगे, इसे जरा भी सब्र नहीं । है उसने चपरासीसे कह दिया कि, "जब उनकी जरूरी बातें खत्म हो जांय तो उसे बुलवालें ।"

फिर जब वह उनके भाषणों को पढ़ने की दृष्टि से उलट-पलट रहा था तो छपे हुए भाषणों की फाइल में तीन-चार हाथ के लिखे पन्ने देखकर, उत्सुकता से उसने उठा लिये—वे डायरी के पन्ने थे, ऊपर तारीखें छपी थीं—और नीचे लिखा था । स्वाभाविक जिज्ञासा से समझ लिया कि देशबन्धुजी की डायरी है । उसने पढ़ने से पहले जल्दी-जल्दी सारे कागज़ उलटी-पुलट डाले, शायद वहीं कुछ और पन्ने मिलें—लेकिन कुछ नहीं मिला तो, ऐसे डरते हुए उन्हें पढने लगा जैसे कोई आ न जाय । पन्ने पच्चीस साल पुराने थे और मैले पड गये थे । कागज़ पर काली स्याही उभर आई थी, और एकदम उसका ध्यान गया सारे पन्नों पर जगह-जगह कार्पिंग पेंसिल से लगे हुए गहरे निशानों पर; 'अरे' ! अचानक उसी पेंसिल से दो-एक जगह किये गये हस्ताक्षरोंको देखकर वह चौंक उठा । इन्हें वह खूब पहचानता था—यह महात्मा गाँधी के हस्ताक्षर थे, और गुजराती हिन्दीमें 'बापू' लिखा हुआ था, उसने उत्सुकता से उन पृष्ठों को पढ़ना शुरू किया :

सोमवार : दिनांक : २०-१०-२९.

४-से-५— घण्टी सुनी, उठते ही दातौन करके प्रार्थना में गया, गीता पाठ के समय नींद से बचने के लिये बहुत प्रयत्न करना पड़ा। कुछ समझमें नहीं आया और उसके बाद बालकोबाजी के पास जाकर शाम को प्रार्थना के बाद गीता के हर अध्याय का भावार्थ समझाने के लिये मना लिया।

५—६— ५॥; तक शौचादिसे निवृत्ति पाकर कपड़ा पानीमें उबालनेके लिये सरोजनी बेन को दिया। पीछे से धोबी-घर में धुलाई का काम करके रसोई-घर गया। सरदी की तकलीफ़ होने के कारण गरम पानी में नमक डालकर नाक से पिया। तब तक छः बज गया। नाश्ता किया।

६।—७।— सड़क तथा छात्रालय के फाटक की सफ़ाई की।

७।—७॥— प्रार्थना।

७॥-९.२०—भण्डार का काम, कल का हिसाब पूरा किया।

९.२०-१०॥- पाखना सफ़ाई की—वक्त पर इत्तला मिली।

१०॥-१०॥।-फिर भण्डार में काम।

१०॥।-११॥-कपड़ा धोया।

११॥-१२।—तपन नायर के साथ बात-चीत करने के समय थोड़ा-सा गरम हो गया। लोगों के दोषों को नम्रता के साथ समझने की शक्ति मुझमें बिल्कुल नहीं है। इसलिये बहुत हिंसा करनी पड़ती है। मन मे हिंसा-भाव बिल्कुल न होते हुए भी औरों के अन्दर क्रोध क्यों पैदा होता है? मुझे मन में किसीसे द्वेष नहीं है। तो भी कई लोग मुझे पसन्द नहीं करते—क्यों? 'हे ईश्वर, लोगों के साथ नम्रता-पूर्वक बोलने की शक्ति मुझे दो।'

१२।—१।—भोजन करने के पश्चात् कई दिनों के बाद आज अखबार पढ़ा—वह भी सिर्फ 'यंग-इण्डिया'।

१।—२— माल बनाया और १८२ तार काते। इसके बाद जल्दी भण्डार-घर में आकर वी० पी० पी० के तीन पत्र लिख डाले। दो बज गया।

२—५।— भण्डार का काम। ताँत का स्टाक लिया। और रसीद बनाई, बिल्स नहीं बनाये, पर पैकेट्स सब भेज दिये।

५।—५॥— शौच के बाद हाथ-पाँव धोकर भोजन-शाला में पहुँच गया।

५॥—६।—खाना खाने के बाद आनन्दजी के साथ टहलने गया। वह आश्रम से बिल्कुल भी सन्तुष्ट नहीं हैं। उनका कहना यह है कि यह आश्रम आदमी को पंगु बना देता है। मानसिक-शक्तियाँ ज़रा भी विकसित नहीं हो पातीं। उनका इस विषय में प्रमाण यह है कि आश्रम में केयरफुल आदमी नहीं मिलते—सभी लोग मुर्दा, बुझे और सुस्त हैं, पारस्परिक विचार-विनिमय के लिये तो ज़रा भी समय नहीं है, इसलिये आश्रम में

रहना अपने बहुमूल्य समय का व्यर्थ नाश करना है।

७।—८.५—प्रार्थना के बाद आज का हिसाब उतार कर बालकोबाजी के पास गया। कृष्णदास भाई से मिला, उनके चेहरे से ब्रह्मचर्य की प्रेरणा मिलती है। गीता के १६-१७ अध्याय जो कल आनेवाले थे—उनका भावार्थ समझा। आज प्रार्थना के बाद बापूजी २० मिनट तक बोले। छगन भाई जो सन् १० से रहते थे—आज उन्होंने जाने का निश्चय कर लिया। बापूजी ने अनुमति दे दी। कारण, उनका कहना था कि आश्रमके नियम विकास को रोकने और बाँधने वाले है। अपने आत्म-निरीक्षण के समय छगन भाई ने अपने को मन्त्री-पद पर अयोग्य पाया। इस वक्त वे यहां से हट जाने को अपने और आश्रम के लिये श्रेयस्कर मानते ह। रमणीक भाई नये नियमो को बापू की एकाधिकारिणी-प्रवृत्ति मानते है। बापू ने कहा —"इसमें दुःख मानने के लिये कुछ भी नही है। यह जब-जब यहा आने की इच्छा करें—आश्रम का द्वार हमेशा इनके लिये खुला है। बाहर जाकर भी वे दोनो हमारा ही काम करेंगे।" बालगगाधर को बिना कुर्सी पर बैठे काम करने का अभ्यास नही था। उनके इस दोष के कारण उन्हें जो आश्रमसे निकाला गया उसके विषय मे बापूने कहा— "उनको आश्रम में रखने का भी मुझे अधिकार नही था। उसी समय उनको कह दिया गया था कि किसी भी त्रुटि के लिये उनको जाना होगा। शहर मे अगर उसने जानबूझकर भी 'चेयर' लिया तो वह आश्रम मे रहने के लायक नही रहा और अगर ध्यान न रहा तो भी ऐसे गैर-जाग्रत आदमी को यहां रखना मुनासिब नही है। शायद मै गलती पर हो सकता हूँ। लेकिन हमको जो ठीक और सत्य मालूम होता है वह करने में कुछ भी कम नही होना चाहिये।' २६ तारीख के लिये बापू ने कहा कि, "उपवास और कातना मुख्य होना चाहिये ज्यादा बोलना नही चाहिये। हमको ऐसा कुछ काम करना चाहिये, जो कि बाहर के लोग न करते हों।"

"यह भी सुना गया है कि मुझे सरकार जल्दी पकडेगी। अगर मुझे पकड़े तो हमको सन्तोष मानना चाहिये। नहीं पकड़े तो ठीक है। लेकिन इस विषयमें बात-चीत करके समय तो नष्ट नही करना चाहिये।"

८ १०—९—माया बहन को पत्र लिखा, फिर 'यंग-इण्डिया' पढ़कर सो गया।

शनिवार: दिनांक: २-१-३०

४.१०—५. घण्टी पर उठते ही प्रार्थना-भूमि में गया। प्रार्थना के समय मुझे नींद

आती है, और समूह में बैठने के अलावा मैं प्रार्थना में कोई लाभ नहीं देखता।

५—६— शौच के बाद शीतला सहायजी से सफ़ाई के विषय मे बात-चीत की। वह सब काम खुद करना चाहते हैं, ऐसा मुझे मालूम हुआ। इसलिये मैंने यह निश्चय किया कि सफ़ाई से हट जाऊं क्योंकि इस रीति से 'फ्रिक्शन' बढ़ जाने की सम्भावना है।

६—६।— नाश्ता करके सफाई में चला गया।

६।—७।— सफाई के बाद प्रार्थना—मीरा बेन के कमरे के पीछे बैठा।

७।।—१०। भण्डार मे काम। चिट्ठियाँ लिखी, विद्यापीठ के बिल बनाये, परचून का काम किया—और इसी बीच मे 'डेली-मेल' भी पढ़ा।

१०।—११ श्रीप्रकाश भाई का व्याख्यान हुआ, एक नया विचार उन्होने दिया कि कभी दुनियांमें सब मतवालों की एक साथ उन्नति नही हुई। हमेशा आगे बढ़ जानेवाली एक पार्टी से ही उन्नति हुई है। इसलिये हमको यूनियन कॉन्फ्रेंस के काम में समय व्यर्थ न खोकर आगे बढ़ना चाहिये—तब सभी पार्टियां पीछे आयेगी। हमारे लिये सुन्दर दुनियाँ आगे आने वाली है।

११।—१२ भोजन। आज आलस्य के कारण स्नान नहीं किया।

१२।—१। १८० तार काता पूणी बहुत खराब थी, बनाने के लिये वक्त ही नही मिलता। बड़ी देर अमेरिकन अतिथियों के साथ बात-चीत की।

१।—५— गिरवरधारी ने बताया—बापूजी ने कहा है कि "देशबन्धु के कारण ही मैंने तुम्हें आश्रम से हटाया नही।" सचमुच बापू का मेरे ऊपर बड़ा प्रेम है। मैं उनके लायक कब बनूँगा!

५—६— सफ़ाई की—फिर भोजन किया।

६—७— सुरेन्द्रजी के साथ घूमने गया। और प्रार्थना-भूमि मे बैठ गया। प्रार्थना के बाद बापूजी ने कहा—"शाखें काटनेवालों की आवाज़ कम होनी चाहिये। नाश्ता रसोई में ही करना चाहिये। दो महत्वपूर्ण बातें है जिनके विषय में आपसे कहना चाहता हूँ। वामन पतकी, जो यहाँ रहते थे, कल चले गये। इसका कारण जानने लायक़ है। उन्होंने नारायण दास को एक बड़ा मीठा पत्र लिखा था, जिसे उन्होंने मुझे दिखाया। उसमें उन्होने बताया कि वे आश्रम के लायक नही है और कई बार विकार के अधीन हो जाते हैं। उनका कहना था कि आश्रम में मनुष्य-प्रकृति को कुचला जाता है—और इससे फ्रस्ट्रेशन तथा विकार पैदा होते हैं, अपने-से लड़ने में वक्त जाता है, और रचनात्मक कार्य कुछ नहीं होता।" बापू ने कहा—"लेकिन हमारे यहां ऐसा कोई नहीं है, जो

विकार के अधीन न हो। मैं खुद विकार-हीन नहीं हूँ। लेकिन विकार-हीन न होना एक बात है, और विकार में आनन्द लेना दूसरी बात है। जो विकार को बुलाते रहें और उनमें रस लेते रहें—ऐसे लोगों को आश्रम में जगह नहीं है। मैंने उनको बुलाकर पूछा तो उन्होंने कहा कि यह उनसे नहीं होगा। अब वह बारडोली आश्रम में जाकर सुधार का काम करेंगे और जब आश्रम के लायक़ बन जायेंगे तब लौट आयेंगे। वह एक पवित्र आदमी है। उसके इस आत्मनिरीक्षणने मेरे ऊपर बहुत असर डाला मुझे यह पक्का विश्वास है कि एक समय यही आदमी आश्रम का उत्तम पुरुष हो जायेगा। दूसरे किशनजी भी आश्रम छोड़कर जाते हैं। कारण यह है कि आप दो बार प्रार्थनामें नहीं आये। मैंने खुद उनसे कहा कि तुमको अब सिर्फ़ दो मास हैं—इसलिये प्रयत्नशील रहो। लेकिन वह इसलिये भी तैयार नहीं थे—और प्रार्थना को वक्त बरबाद करना समझते हैं। आश्रम के रीति-नीति की तरफ़ भी उनका उपेक्षा भाव था। इसलिये उनका जाना ही अच्छा है। इन दोनों उदाहरणों से मैं आपको सावधान करना चाहता हूँ।"

८॥—९— मैंथ्यूजी बात करता रहा। फिर माया बहन को खत लिखा। उसका ध्यान मुझे बार-बार आता है जैसे विकार की बात बापूजी ने कही—क्या वह मेरे भीतर नहीं है?

देशबन्धु

सोमवार : दिनांक: १७-२-३०

४.१०–५.—देर में सोने के कारण ठीक चार बजे उठकर शौच नहीं कर सका। घन्टी के बाद ४-१० को प्रार्थना-भूमि में पहुँच गया। पंगति में बैठाने का काम आज अच्छा हुआ। प्रार्थना मेरे लिये बिल्कुल ही शून्य वस्तु रह गई है—यह मैं हर क्षण-अनुभव करता हूँ। तोते की तरह बोलने-से क्या लाभ?

मैंने एक दफ़ा पूज्य बापू से कहा था कि सिनाय समुदाय में बैठने के आनन्द के मुझे इस प्रार्थना में ज़रा भी आनन्द नहीं है, न कोई फ़ायदा लगता है। इसका कारण है कि प्रार्थना मनुष्य का सहज-नैसर्गिक आत्म-निरीक्षण या आत्म-समर्पण है। अगर उसके लिये कोई भाषा हो ता वह आत्मा का ही भाषा होनी चाहिये। यह वैयक्तिक प्रार्थना में ही हो सकता है। सामुदायिक-प्रार्थना कम-से कम एक ऐसी भाषा में होनी

चाहिये। जो आसानी से सब समझ सकें। लेकिन इस समय जो प्रार्थना है वह तो बिल्कुल एक विदेशी-भाषा में है। अगर बापूजी के प्रति श्रद्धा न होती तो मैं इस प्रार्थनासे बहुत पहले ही सत्याग्रह करता। मै दो मास रिवाड़ी आश्रम में भी रहा था और मेरी श्रद्धा बहुत ही कम थी। लेकिन वहाँ की प्रार्थना मुझे बहुत ही अच्छी लगी क्योंकि उसका एक अच्छा अंश बोधगम्य भाषा में था। उस वक्त कई दिनों मेरी आँखों में अश्रु निकल आते थे। ये शब्द हृदय को छूते थे—यही मेरा अनुभव गिरजाओंका भी है। लेकिन यहाँकी प्रार्थनाने कभी हृदयको छुआ होगा—मैं तो नहीं सोचता। अतः यह प्रार्थना आध्यात्मिक-दृष्टि से व्यर्थ है। मुझे कभी-कभी-ऐसा लगता है कि प्रार्थना के नाम पर कितनी आत्माओं का हनन यहाँ होता है।—लेकिन क्या करें ?

५—६॥— शौच-दातौन इत्यादि से फ़ारिग होकर आनन्द हिंगोरानी के लिये रोकड़ी मँगाने के लिये गोशाला में गया। रसोई में बर्तन साफ़ किये और नाश्ता भी किया।

६॥—७— रणछोड़ भाई के साथ बात-चीत की। सत्याग्रह आश्रम से ही प्रारम्भ होगा, ऐसी चर्चा तेजी से फैल रही है।

७—१०— कपड़ा धोया। भण्डार में आज हिसाब नहीं मिला। मन में बड़ा असंतोष रहा। १॥। आने का फ़रक रहा। आज माया-बहन का पत्र आने को था, नहीं आया। फ़क है

४॥—५।— जवाहरलाल और डॉ० मुहम्मद का व्याख्यान हुआ। "हिन्दू-मुस्लिम यूनिटी ऑफ़ कल्चर एण्ड अण्डरस्टैण्डिंग" पर बोले।

५॥—६।— १७० तार काता।

६।—६॥— भोजन करके घूमने गया। शान्ता और माधुरा को देखा। माधुरी अच्छी होने लगी है।

६॥—७॥—प्रार्थना के बाद कोण्डा वैंकटापैया और राजेन्द्र बाबू ने व्याख्यान दिये कि इस महत्वपूर्ण-संग्राम के अवसर पर सारी दुनिया की निगाह आश्रम पर है। आश्रम को पहले-पहल इस यज्ञ में आहुति देनी है—यही आश्रम का आदर्श और उद्देश्य है।

७॥—८॥—बाद में बापू के पास गया। प्रेमा बेन ने एक बहुत ही मीठी बात सुनाई —"आज मेरे लिये बहुत ही खुशी का दिन है। इसलिये कि सबेरे महात्माजी ने मेरे, 'चीक' पर मारा। डाक्टर ने मेरी तबीयत को अच्छी बताया। शाम को मेरे कन्धे पर महात्माजी हाथ रखकर घूमने गये। और आखिर मेरे पौधे पर दो कलियाँ खिल आई। इन सबके अलावा मेरा वज़न भी बढ़ गया।" यह बातें कितनी बच्चों जैसी और

सहज है !

८।—९— नारायण दास भाई के साथ बात-चीत करने में मैंने उन्हें चिढ़ाया। मैं क्या करूँ--अपने इस स्वभाव के लिये ? फिर मैं सो गया।

डायरी के पन्ने ख़त्म हो गए थे—वह जैसे आश्रम के उस वातावरण में खोया रहा—तो देशबन्धुजी वहां काफ़ी रहे हैं। मन-ही-मन विक्षुब्ध होते हुए भी वह इस बात को सोचे बिना नहीं रह सका कि कहीं-कहीं बातें इसने काफ़ी साहस और सचाई से लिखी हैं, और डायरी में ऐसी हर जगह हस्ताक्षरवाली पेंसिल से ही क्रॉस के चिह्न बने थे—अर्थात् या तो उन पर बाद में बहस हुई, या ग़लत समझा गया है। उसने पन्नों को अलग रख दिया।

फिर वह बैठा-बैठा उनके भाषण पढ़ता रहा। कलका 'बिगुल' का मैटर अभी तक रखा था। सामने रखे क़लम-दान में से पेंसिल उठाकर मुख्य-मुख्य स्थानों पर निशान लगाने के लिये वह तैयार हो गया। मन में यद्यपि झुंझलाहट थी और हरबार कुछ न कुछ सोचने लगता था—फिर भी वह मनको खीच-खांच कर इधर लाता। अपनी इस बात पर वह बुरी तरह विक्षुब्ध हो उठा कि चाहने पर भी वह क्यों अपना मन लगाने में असमर्थ है, लेकिन अचानक देशबन्धुजी का किसी पब्लिक-मीटिंग में दिया हुआ भाषण उसे इतना रोचक लगा कि उसका मन अपनी सारी चंचलता भूलकर वहीं जमकर बैठ गया। भाषण के कुछ अंश इस प्रकार थे :

"यह आर्थिक-विषमता, यह अन्न की कमी, यह भुखमरी, यह बीमारियाँ सच पूछा जाय तो यह सब जैसा कुछ है, वह तो है ही, लेकिन इसका बहुत बड़ा कारण मनोवैज्ञानिक है। लोग बात को बढ़ा-चढ़ाकर कहने के आदी हैं। फ़ैशन हो गया है कांग्रेस को—गवर्नमेण्ट को गाली देना। जो जितनी ज़्यादा गालियाँ देता है, दम भरता है उतना ही बड़ा जनता का रहनुमा बननेका ! ये लोग एक मनोवैज्ञानिक माहौल पैदा कर देना चाहते हैं—करते हैं, गुल मचाते हैं और भोले-भाले लोगों को बरग़लाते हैं। असल में ये पैसा पाते है इस काम का। यही इनकी लीडरी है और यही इनका नेतापन। लेकिन जनता इस भुलावे में अधिक नही रहने वाली है—वह चाहती है रचनात्मक काम—कोई ठोस कदम, जो उसे आगे बढ़ने में मदद दे। ऐसा रचनात्मक-काम जो सत्य और अहिंसा का मार्ग खोले। जिसे बापू और बिनोवा ने अपनी हड्डियों से सींचा है—क्रान्ति में ! अहिंसा-युक्त क्रान्ति में हमें विश्वास है। भारत युग-युग से यही सन्देश देता आया है और गीता उसकी सबसे अमर पुस्तक है। हिंसा और ख़ून-खराबी हमारी प्रकृति और परम्परा के अनुकूल नही है।

"मैं नहीं कहता कि यह सब कमियां—यह सब कष्ट-भुखमरी नही हैं। लेकिन

जैसा मैंने बताया उतनी नहीं जितनी बढ़ा-चढ़ाकर दिखाई जाती है । आप खुद सोचिये, जो देश कल तक सोना उगलता था आज उसे आखिर हो क्या गया है ? —यह सब बकवास है । इसका असली कारण कि जगह उतनी ही है । कुछ जगहों को छोड़कर पैदावार भी आखिर ज़मीन के अनुपात से ही तो बढ़ेगी । जितनी ज़मीन होगी उसी हिसाब से तो बढ़ेगी । लेकिन खाने वाले मुँह रोज़ बढ़ रहे हैं । आबादी बुरी तरह रात और दिन दुगुनी और चौगुनी होती जा रही है । आखिर जमीन कितना बोझ सहेगी ? लोग सन्तति-निग्रह करना नहीं चाहते—फिर समस्या कैसे हल हो ?—उसकी प्राकृतिक प्रतिक्रिया होती है, भुखमरी फैलती है, हैज़ा, प्लेग फैलते हैं, ज़मीनें फटती हैं, आँधी, तूफान और अकाल पड़ते हैं, मूसलाधार वर्षा और बाढ़े आती है, रेलें टकराती है और इस तरह दुनियां तबाह होती है । इन सबसे बचने का एक तरीका है और वह है सन्तति-निग्रह तथा प्रकृति से प्रेम । सच पूछा जाय तो ये वनमहोत्सव और वृक्षारोपण का आन्दोलन इन्हीं महान् उद्देश्यों की पूर्ति के लिये है—यह हमारी सभ्यता और संस्कृति की रक्षा का प्रश्न है ! आपको पता है अहिंसा और शान्ति के महान पुजारी भगवान बुद्ध के अनन्य शिष्य संघमित्रा और महेन्द्र ने विश्व को भारत की महानतम देन के नाम पर क्या दिया था ?—हीरे-जवाहरात, दास-दासी, धन-धरती कुछ नहीं, उन्होंने दिया केवल 'बोधिवृक्ष' की डाल को—आप सोचिये वृक्ष की डाल ! आप विश्वास रखिये यहाँ का हर वृक्ष बोधिवृक्ष है—यह भारतीय के हृदय में भगवान बुद्ध हैं—उन्हें जगाओ । हम लोग तत्व-द्रष्टा हैं । यह पाश्चात्य भौतिकता हमारा रास्ता रोकती है । हमें इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये । यहाँ की संस्कृति तो यह है कि लोग भूखे रहे हैं—नंगे रहे हैं, जंगलों में धूप, लू और वर्षा सब सहते हुए रहे हैं और उन्हींने विश्व को कुछ दिया—कुछ दार्शनिक चिन्तन दिया । क्या उनके पास सुख नहीं था ? यदि वे चाहते तो महलों मे नहीं रह सकते थे । रेशमी पाटम्बर नही पहन सकते थे ? छत्तीस प्रकार के भोजन नहीं कर सकते थे ? मैं पूछता हूँ आखिर क्या नहीं प्राप्त कर सकते थे ? वे सर्व-सामर्थ्यवान थे—वे सब कुछ कर सकते थे । वे सब कुछ पा सकते थे, लेकिन नहीं, उनकी दृष्टियों ने परख लिया था कि यह सब झूठा है—यह सब क्षणिक है, माया है—वे अनन्त सुख और अखण्ड आनन्द की खोज में लगे रहे । इसलिये उन्होंने उसे पाया । अगर वे भी रोटी कपड़े और रोजमर्रा की किचकिच, नोन-तेल-लकड़ी में फँस रहते तो हम क्या रखते दुनियां के सामने ? आज हमारा माथा गर्व से ऊंचा है । हम जानते हैं हर भारतीय महान चिन्तक है दार्शनिक है—वह भौतिकता के पार देखता है ! जैसा कि किसी ने कहा भी है इण्डियन्स आर बौर्न फ़िलॉस्फ़र्स ।"

और शरद की इच्छा हुई कि भाषण को रखकर ज़ोर का ठहाका लगाकर हँस पड़े...क्या-क्या नतीजे निकाले हैं कि सुनने वाला भी चकित रह जाय । अब

इसमें क्या छांटे ?...यह तो पूरा ही भाषण 'महान्' फिर भी कहीं न कहीं तो पैन्सिल से निशान लगा ही दिये जायं ताकि लगे हाँ, इसे पढ़ने का कष्ट उठाया गया है। बड़े असमंजस में पेन्सिल उसने उठाई ही थी कि टेलीफ़ोन की घण्टी बजी... ..."हलो ?" उसने सफ़ेद टेलीफ़ोन उठा लिया।

"कौन, बालानी साहब हैं ?" उधर से पूछा गया।

"नहीं, मैं शरद कुमार हूँ, कहिये।"

"आहा, भई वाह, शरदजी हैं—इस समय आप सम्पादकाचार्य सूरजजी से बातें कर रहे हैं।" उधर की आवाज़ जैसे फूट पड़ी हो।

"अरे वाह। सूरजजी—आप भी साहब, आदमी हैं—कल से आप के लिये 'बांसों में कुंए डाल दिये', पता लगा, सुबह से ही गायब हैं। रात को भी बारह-एक बजे आये थे—फिर आज सुबह अख़बार पर जा डटे, कुछ नाराज़ तो नहीं हैं ?" शरद वास्तव में खिल उठा। बहुत सी बातें कहने-सुनने के लिये उसे सूरजजी की ज़रूरत थी। वह टेलीफ़ान कान से चिपकाकर बड़े आराम से सहारा लेकर बैठ गया।

"नाराज़ तो हम बहुत हैं, और क्यों न हों। आख़िर आप चुपचाप सिनेमा देखें और यहाँ नाराज़ भी होने का हक नहीं है ? भई वाह, यानी कि सूखे घूमने के लिये सूरजजी और सिनेमाओं के लिये दूसरे। हाँ भाई, मज़े हैं तुम्हारे—।"

"आपसे मना किसने किया था—आप थे कहाँ ? पर ख़ैर, आपसे बहुत ज़रूरी मिलना है। बहुत-सी बातें हैं। अब आप मिल कब रहे हैं ?"

"कौन, सूरजजी ? लो सूरजजी अभी तुम्हारी छाती पर आये जाते हैं। या ऐसा करो, तुम्हीं न आ जाओ—।"

"नहीं, मैं तो नहीं हटूँगा, यहाँ पर एक ज़रूरी काम से बैठा हूँ। आपसे सलाह लेनी है। हाँ, आपको बालानी साहब से क्या काम था—?"

"वही 'बिगुल' का मैटर लेना था—कुछ और नये के सम्बन्ध मे बात करनी थी, लेट हो जायेगा वर्ना।"

"नया क्या ?—मेरे ख़याल में पूरा मैटर है यहाँ तो।"

"नहीं जी, पूरा मैटर दूसरा तैयार करना पड़ा है। वर्ना कोई सूरज ने भाँग खाई है कि चार बजे ही ऑफ़िस में आ जमें ? रात को ही दरवाज़े की संधि से ऑर्डर हमें मिल गया था कि चूंकि मंत्री महोदय का अचानक आगमन हो रहा है, परसों उनके सम्मान में पार्टी है, इसलिये इस अंक में उनके साहित्यिक और राजनैतिक जीवन के सम्बन्ध में प्रकाश डालते हुए कुछ अधिक सामग्री दी जाय। सो आज ही सब कुछ करना था। उनके ऊपर लेख तैयार कर रहे हैं, और करा रहे हैं। एक यहाँ दुनियां के हर विषय पर तोल के हिसाब से लेख लिखने वाले महान् लेखक हैं—वे भी लेख तैयार कर रहे हैं। आज सुबह से ही छः दफ़ा आदमी

दौड़ा चुका हूँ। वे सुबह से एक दूसरे आदमी के लिये उपन्यास लिखने में लगे हैं—एक बजे तक उनका कहना है वे उसे खत्म कर देंगे। फिर एक डेढ़ घण्टे में मन्त्रीजी के जीवन पर एक अधिकारी लेख तैयार करके दे देंगे। सो यह एक अलग चिन्ता है क्योंकि ठीक टाइम पर आदमी नहीं पहुंचा तो वे फिर दूसरे आदमी के लिये उपन्यास लिखने में लग जायेंगे जो उन्हें शाम तक दे देना है..."

शरद ने बोर होकर कहा—"आप अपने क़िस्से को तो दीजिये छोड़। बालानी साहब तो हैं नहीं—अब आप बताइये मैटर आपने कर लिया कम्प्लीट? आप दस पन्द्रह मिनट को यहां आइये। ऐसा क़िस्सा सुनाऊं कि आपकी सुबह की सारी थकान मिट जाये और आप रिफ़्रैश हो जाँय।"

"अच्छा लो भाई, तुम भी क्या कहोगे! तो दस मिनट में सूरजजी तुम्हारे कमरे में प्रगट होते हैं। मन्त्रीजी के साहित्यिक जीवन और कृतित्व पर लेख लिख रहा हूँ...बस ज़रा सा रह गया है और उसमें सिर्फ़ यह बताना है कि किस प्रकार व्यास, बाल्मीकि, कालिदास और तुलसी के बाद भारतीय साहित्य का जो आकाश सूना रह गया था उसमें हमारे मन्त्रीजी महान सूर्य बनकर चमके हैं और वे सीधे उसी परम्परा में जाते हैं। उन्हें प्राप्त करके किस प्रकार भारतीय साहित्य ने कहानियों के क्षेत्र में चेखोव, मोपासां और ओ' हैनरी का जवाब प्रस्तुत किया है, ऐतिहासिक उपन्यासकारों में डयूमा, स्कॉट और ह्यूगो को उलटा कर दिया है, नाटकों में शेक्सपियर, इब्सन और शॉ को रुला दिया है, आत्मकथा लिखने में क्या... ?"

शरद खिलखिला पड़ा। उसने टेलीफ़ोन रख दिया और मन ही मन हँसा, कम्बख्त को जरा भी समय मिलता है तो भाषण देने से बाज़ नहीं आता। सूरजजी आ रहे हैं इसलिये उसने इधर-उधर बिखरे कागज़ों को ठीक-ठाक किया, चपरासी को बुलाने को घण्टी बजाई।

"चिट पहुंचवा दी?" चपरासी के आजाने पर उसने पूछा।

"वो तो साहब, गैस्ट हाउस में चले गये। उनकी तबियत खराब हो गई।" चपरासी को शायद आफ़िस की ओर से पत्र डालने को मिले थे—उन्हें गिनते हुए उसने कहा।

"क्यों, अभी तो ठीक थे?" आश्चर्य से शरद ने पूछा। झुँझलाहट तो ऐसी आ रही थी कि पूछ डाले 'मरे तो नहीं।'

"साहब, उन्हें कभी-कभी दिल का दौरा आ जाता है।" चपरासी जाने को हुआ तो उसे अपने खत की याद भी हो आई। उसने कागज़ों में सिर झुकाये ही अजीत का खत उसकी ओर बढ़ाकर कहा—"अच्छा, इसे भी ले जाओ, चिट बिल्कुल ही नहीं पहुँचवाई?"

"नहीं जी, चिट तो गयी।"

चपरासी चला गया। शरद को बड़ा आश्चर्य हुआ। अभी अच्छे-खासे पूजा की है—बैठकर ज़रूरी बातें की हैं, और अब तबियत भी खराब हो गयी। तबियत न हुई छुई-मुई हो गयी। वह जानता है कि व्यक्तिगत बातें सिवा वेतन और खर्चे के क्या होंगी—सो हमारे लिये अब तबियत खराब हो गयी। लेकिन उसने भी निश्चय कर लिया था कि आज बात साफ़ हो ही जानी चाहिये। उसने झटक कर सफ़ेद फ़ोन उठा लिया—हालाँकि उसी वक्त उसके दिमाग में आया कि बीमार ही हैं तो ज़रा गम्भीर होकर सहानुभूति-पूर्वक उन्हें देखने जाना अधिक प्रभावशाली रहेगा, यह फ़ोन करना कुछ अधिक अच्छा नहीं लगता। लेकिन फ़ोन उसने उठा ही लिया था, सोचा अभी उन्हें मालूम क्या कि मैं उनकी बीमारी की बात जानता हूँ। उसने माँगा—"गैस्ट-हाउस।" और ध्यान से 'गैस्ट-हाउस' में बजने वाली घण्टी की प्रतिक्रिया का अनुमान लगाने लगा।

दो बार के बाद किसी ने रिसीवर उठाया और कराहते हुए कहा—"कौन है भाई ?"

"मैं हूँ शरद कुमार—।" शरद ने स्वर के कराहने से ज़रा संकुचित होकर कहा। आवाज़ से वह पहचान गया कि देशबन्धुजी हैं।

"अच्छा-अच्छा—कहो भाई तबियत तो ठीक है न—?"

"जी, मैं तो ठीक हूँ···आप का सुना था..."

"हाँ भाई, कभी-कभी जब ज़्यादा प्रैशर हो जाता है खून का तो दिल का दौरा पड़ जाता है। भाई, अब नहीं बर्दाश्त होता स्ट्रेन। हद है! आखिर आदमी, आदमी है, मशीन तो है नहीं। वो तो भैया मैं हूँ कैड़े का आदमी...वर्ना दूसरा होता तो अबतक तो रामनाम सत्य हो गयी होती और अब अपनी भी क्या ठीक है···हाँ, तो क्या कह रहे थे तुम...?"

ऐसी बीमारी की हालत में अपनी बात कहना शरद को बड़ा तुच्छ-सा लगा। क्या कहें ऐसी बात और जब कि वे बीमार हैं, स्वर तक कराहता-सा है, फिर भी काफ़ी बेशर्मी और हिम्मत करके उसने हकलाते हुए कहा..."वो 'चिट' आपको..." शायद सामने होते तो वह यह शब्द भी लाने की हिम्मत नहीं कर सकता था।

"हां, मिली थी—" कहकर जिस प्रकार वे बोले उससे शरद को ऐसा लगा जैसे अत्यन्त ही कष्ट-पूर्वक उन्होंने करवट ली हो। बहुत ही अपनत्व-भरे उलाहने के शब्दों में उन्होंने झिड़का—"अरे कम्बख्त, जबसे दौरा पड़ा है, मुझे होश तो अपना है नहीं—चार आदमी उठाकर यहां डाल गये हैं। रज़ाई में लिपटा पड़ा हूँ...बोला जाता नहीं है। हर पांच-मिनट पर ग्लूकोज़ और इन्स्यूलिन के इन्जैक्शन्स लग रहे हैं, ब्लड-प्रैशर लिया जा रहा है, बाहें छलनी कर दी हैं डाक्टर और नर्स ने मिलकर! पता नहीं कब यह हार्ट-फ़ेल कर जाय...।" फिर वे कराह कर जरा रुक गये..."और तुझे व्यक्तिगत बात करने की लगी है।

फिर कभी ही कर लेना...।"

शरद लज्जा से जैसे कट गया : सचमुच उसे बड़ी ग्लानि हुई। ऐसे समय अपनी इतनी स्वार्थ की बातों पर अड़ना उसे सख्त ग़लती लगी। क्या सोचेंगे, कितना क्षुद्र ! उसने अत्यन्त ही खुशामद के लहजे में बड़ी मुश्किल से गला साफ़ कर के कहा..."जी नहीं, मुझे पता नहीं था...अगर..."

"यह तो नहीं कि मेरी जरा मदद कर देते ऐसे में...सच, दिल डूबा जा रहा है...।"

"कहिये-कहिये...।" मदद करने की बात के जवाब में शरद ने फ़ौरन कहा, क्योंकि अपनी इस ग़लती के प्रक्षालन का उसकी समझ में इससे अच्छा अवसर नहीं आया।

"अरे भाई, कहना क्या ? एक घण्टे-भर का काम है, मेरी ज़रा-सी मदद हो जायेगी। तुम्हें पता ही है, परसों मन्त्रीजी आ रहे हैं...सो हमारे यहाँ उनकी पार्टी है। इससे पहले एक पब्लिक मीटिंग भी है। सत्य बाबू की इच्छा है, तभी मजदूरों के लिये एक अस्पताल का शिलान्यास भी करा लिया जाय। उसमें मुझे भी तो कुछ न कुछ तो बोलना ही होगा न। पता नहीं तब तक यह तबियत ठीक हो या नहीं...तुम ज़रा उस वक्त कुछ बोलने के लिये तैयार करने में मदद कर दोगे, तो दिमाग़ से एक बोझ उतर जायेगा। दूसरे साथियों का कहना यह भी है कि 'बिगुल' में पूरा भाषण छप जाय तो उसकी कुछ प्रतियां बँटवाई भी जा सकेंगी—लेकिन मेरा कहना है, अपने ही अखबारमें—कुछ अच्छा नहीं लगता। तुम्हारा क्या विचार है—"

"नहीं जी, इसमें तो मुझे कोई बुराई दिखाई नहीं देती। तो मैं अभी आ रहा हूँ—आप कुछ 'हिन्ट्स' दे दीजिये मैं उन्हें डैवेलप कर दूँगा—और वैसे भी इस समम आपको ज्यादा मस्तिष्क पर ज़ोर नहीं देना चाहिये—"

"हाँ यही डाक्टरों का कहना है—।" स्वर चिन्तित था।

'तो मैं अभी आ रहा ।"

"नहीं, अभी कोई ऐसी जल्दी नहीं है। दो-डेढ़ घण्टे बाद आ जाना। तब तक मैं ज़रा आराम भी कर लूंगा। दवा असर कर रही है।" और फिर फ़ोन का रिसीवर इस तरह चुप होगया जैसे किसी बहुत दिनोंके बीमार के हाथ में काफ़ी बोझ रहने से विवश होकर उस बोझ सहित ढुलक पड़ा हो—।

"वाह सा'ब वाह...सूरजजी को बुला लिया और आप जारहे हैं। कहाँ जा रहे हो... ? मायादेवी हैं क्या फ़ोन पर ?" दरवाज़े का पल्ला छोड़कर मुस्कुराती आती सूरजजी की परिचित मूर्ति फ़ोन रखते ही शरद को दिखाई दी। वह व्यंग्य से मुस्कुरा रहे थे।

वह खिल पड़ा। एकदम उठकर खड़ा हो गया। आवेश में उसने दोनों हाथ मिलाने को बढ़ा दिये, और उल्लसित स्वर में बोला..."आइये-आइये।"

बिना उसके उत्साह की ओर ध्यान दिये अत्यधिक व्यस्तता दिखाते हुए-से सूरजजी ने कहा—"हाँ, सो तो आ ही गया और बिना आपकी बातें सुने जाने का कोई विचार नहीं है—लेकिन हुजूर कैसे इस कुर्सी से चिपक गये हैं ?" और वे शरद के बिल्कुल सामने वाली कुर्सी को खिसका कर मेज़ से सटकर बैठ गये। अपनी सारस जैसी गर्दन तानकर उसके इधर-उधर कुर्सी को देखते हुए बोले—"नई कुर्सी का इतना मोह मत करो—बड़ी ख़तरनाक बात है यह ! और है कौन-सी कुर्सी यह ? वही रटेटिंग-चेयर होगी ?" और एक टांग मेज़ के नीचे मज़े में तानकर उन्होंने अपनी पैण्ट की जेब से बटुआ और पान की डिबिया को इस तरह निकाला जैसे कुएँ में से बड़े कष्ट से डोल निकाल रहे हों। फिर अपनी अथाह सफलता को प्रशंसा भरी आँखों से देखते हुए दोनों को मेज़ पर रख दिया।

"हाँ है तो वही।" शरद ने स्वयं बड़े चिन्तित होकर इस तरह कुर्सी के नीचे देखते हुए कहा जैसे उसके नीचे कहीं एटमबम तो नहीं रखा। पूछा—"क्यों क्या बात है इसमें—?"

"अहा !" महान् संगीतज्ञ की मुद्रा में उन्होंने अपने पूरे नीचे वाले जबड़े को खोल कर एक हाथ फैलाकर इस तरह कहा जैसे ध्रुपद शुरू करने वाले हों। सामने बैठे शरद को पान के कारण बिल्कुल काले पड़े हुए मुँह, दाढ़, जीभ के अलावा उनके विस्तृत खुले हलक़में बड़ा-सा कौवा तक दिखाई दिया—तब वह समझा क्यों उनका टेंटुआ इतना बड़ा है। लेकिन सूरजजी ने निर्द्वन्द्व हो कर कहा—"यह तो महान् कुर्सी है। इसे आप विक्रमादित्य का सिंहासन समझिये, बत्तीस पुतलियों वाला—जो इस पर बैठा सो चक्रवर्ती बना।"

"क्यों भाई, क्यों ? ऐसी आखिर क्या बात है इसमें ?" शरद ने फिर उसके हत्थे इत्यादि ग़ौर से देखे, शायद लकड़ी या बनावट के लिहाज से यह कुछ नयी हो। लेकिन कोई ख़ास बात नहीं थी।

"अजी—ऐसे ही वह चीज़ दीख गयी तो फिर यह बिचारी कुर्सी ही क्या रही ?" बड़े मनोयोग से कत्थे के कपड़े को इधर-उधर करके सूरज ने लाल गीले कपड़े में सजे रखे पानों को मुग्ध-दृष्टि से देखा—कैसे सुन्दर लगते हैं। फिर बड़े सँभाल कर दो पानों को इस तरह उठाया जैसे वे जीवित हों, ज़ोर से पकड़ने से घायल हो जायेंगे। निगाहें वहीं रखकर बड़े आनन्द में उन्होंने कहा—"सो ही तो मैं कहूँ ; शरद बाबू को ऐसा क्या उस कुर्सी से मोह हो गया है कि सूरजजी बुला रहे हैं कि नहीं, ज़िन्दा हैं तब तक नहीं उठेंगे ?"

इस कुर्सी-विषयक उत्कट-उत्सुकता के बीच भी शरद सोच रहा था कि वे ज़रा अपनी बात में ब्रेक दें, तो चाय वगैरह मँगाये—आखिर उसने मुंह खोलकर

उसमें भरने ले जाते हुए पानवाले उनके हाथ को एकदम कलाई से पकड़ कर कहा—"नहीं सूरजजी ज़रा ठहरिये। चाय मैं मँगवाता हूँ उसके बाद खाइये आप पान।"

सूरजजी ने एक क्षण सोचा, मानों थोड़े असमंजस में हों, फिर बड़ी उदारता से सिर हिला कर बोले—"खैर आप मँगवाइये। दो चीज़ों को तो मैं कभी मना करता ही नहीं हूँ—पान और चाय। और दोनों जब एक दूसरे के ऊपर हों जाएँ तो फिर आप दूध-मलाई समझिये। इससे अपने पान के स्वाद में ज़रा भी फ़र्क़ नहीं आयेगा। आपको एक बात शायद नहीं मालूम है। श्री सूरजजी जब सोते हैं तो पान-दान खाट के नीचे होता है। सोते वक्त दो-पान मुँह-में भर लिये। पता नहीं सोते-सोते ही कब वह खत्म हो जाता है, अपने आप ही नींद टूट जाती है, सीधा हाथ पान-दान पर ही जाता है। चाहे जितना अँधेरा हो, ऐसा अन्दाज़ बँध गया है कि न चूना ज़्यादा होता है न कत्था—दो पान गाल मे दबाए और निद्रा देवी हाथ बाँधे सामने! अब तो यह इतने अभ्यास में आ गया है कि सुबह याद भी नहीं रहता रात में पान खाये भी थे या नहीं।" —पान सूरजजी ने मुह में रख लिये। और बटुआ खोला।

"अच्छा! नयी बात है!" घण्टी बजाकर शरद ने आश्चर्य से कहा—लेकिन उससे भी अधिक उत्सुक वह कुर्सीवाली बात जानने को था। जैसे ही चपरासी ने किवाड़ खोला उसने उसे बिना भीतर आने का अवसर दिये ही कहा—"चाय के लिये कह दो—साथ मे कुछ अच्छे बिस्कुट भी।" फिर निश्चिंतता-पूर्वक बटुए में से सुपारी इलायची, तम्बाकू, पीपरमेण्ट और दो-एक गोलियां मुँह में डालते सूरजजी की ओर आकृष्ट होकर कहा—"हां तो, कुर्सीवाली बात क्या थी?"

उन्होने हाथ से रोक दिया कि पान खा लेने दो। पान की डिबिया उसकी ओर बढा दी, उसने कहा—"मैं तो अभी दो मिनट बाद ही खाऊँगा।" और वह उन्हें पान खाते हुए देखता रहा। उसकी आँखों में लालसा तैर आई। तम्बाकू खाने वाले जिस ढंग से मुँह के गह्वर में मसाले रखकर परम-आनन्द और चरम-तृप्ति की प्राप्ति की अभिव्यक्ति करते हैं, और उनके मुँह मे जो एक अत्यन्त ही मधुर गन्ध उड़ती है—वह सब प्रक्रिया शरद को सदा से ही एक स्पृहा की वस्तु लगी है। वह उसे ऐसा मुग्ध होकर देखता है, और अनजान रूपसे मुँह के पानी को गटकता है, मानो सामने वाला कोई अमृत खा रहा हो, जिससे वह वंचित रह जायेगा। इसी जोश मे एक शुभेच्छु तम्बाकू-दाँ मित्र की सलाह पर उसने दो-एक बार तम्बाकू खाने की कोशिश की; लेकिन वह इतनी असह्य थी कि बड़ी मुश्किल से वह अपनी क़ै को रोक सका। घण्टों सिर घूमता रहा अतः उस आनन्द को भविष्य में, देखकर ही संतोष का विषय बना रहने देने मे उसने कल्याण समझा।

सूरजजी ने छत की ओर निचला होंठ करके कहा—"ठहरो भाई, शाधना में विघ्न मत डालो।" वे फिर सख्त अनिच्छापूर्वक उठे, और खिड़की तक जाकर

चटखनी खोली। पल्ला खोलते ही बिना यह देखे कि उधर कौन है, उन्होंने ढेर-सी पीक उलट दी। हथेली से होंठ पोंछते हुए, लौटकर अपनी जगह बैठकर बोले—"यार शरद, रौब हैं तेरे भी, एक सूरजजी हैं, साले घुड़साल में पड़े रहते हैं। यहाँ यह ठाठ का कमरा है, चक-चकाता फ़र्नीचर, आँखें चौंधिया जायँ, गर्मी हो तो 'रूम-हीटर' लग जाय, और जाड़ा हो तो 'कूलिंग-प्लाण्ट' तेरी यार, फ़ेट-लाइन बड़ी ज़बर्दस्त है, मानते हैं दोस्त!" अन्तिम बात कहते-कहते सूरजजी का चेहरा कुछ अप्रत्याशित रूप से सुस्त हो गया।

शरद ने मज़ाक किया—"जिसे जिस जाति का देखा, उसे वही तो रखा है। आख़िर नेताभैया की निगाह कुछ तो वेट रखती ही है। और हां, गर्मियो में 'रूम-हीटर' और जाड़ों में 'कूलिंग-प्लाण्ट' रखवाकर क्या मरवाना है?"

लेकिन सूरजजी इस बीच में फौरन ही सँभल गये—"नहीं यार, मैं तो सच-मुच चौंक गया। अरे सा'ब, मायादेवी की जिस पर कृपा हो उसका कहना ही क्या?" चश्मे में से भी उन्होंने अपनी एक आँख इस तरह झपकी कि शरद चौंक गया, तो क्या सचमुच यह भी जानते हैं!

सूरजजी कहे जा रहे थे—"फिर इस कुर्सी पर तो उनकी विशेष-कृपा है।"

"क्या, आख़िर बताइये न।" इस हद तक आदमी की उत्सुकता बढ़ाये जाना शरद को पसन्द नहीं आया। उसके स्वर में थोड़ी खिन्नता बिल्कुल स्पष्ट थी।

और उसकी खिन्नता का आनन्द लेते हुए सूरजजी पान की जुगाली किये जा रहे थे।

चाय की ट्रे लेकर लड़के ने प्रवेश किया।

"लो भाई, अब बना भी तुम्हीं लो—क्यों हमें कष्ट देते हो?" जैसे ही ट्रे मेज़ पर रखी गयी सूरजजी ने कहा। कहीं उत्सुकता का तार उन्होंने ज़्यादा तो नहीं खींच दिया, जानने के लिये शरद की ओर देखा।

लड़के की उपस्थिति-से अचानक एक ऐसी चुप्पी छा गई जिसे कोई नया आदमी देख लेता तो आश्चर्य किये बिना न रहता। शरद हाथ की लाल पेन्सिल को मेज़ पर रखे कांच के टुकड़े पर रखता और उठाता रहा और अपनी पैण्ट से कमीज़ बाहर खींचकर—जो वैसे भी काफ़ी ढीली थी, उसके सामने-वाले हिस्से-से सूरजजी चुँधी आँखों से देखते हुए चश्मे के शीशे मुँह की भाफ़ देकर साफ करते रहे। लड़का, जिसके माथे पर एक आड़ा लम्बे घाव का निशान था, और सफ़ेद जीन की टोपी के पीछे चूहे की पूँछ-सी चोटी निकली हुई थी—चाय बनाता रहा। प्यालों की आवाज़ होती और डूब जाती। जब चीनी डालने का नम्बर आया तो सूरजजी ने कहा—"अच्छा, अब तुम जाओ।"

उसके जाते ही सूरजजी ने कहा—"लीजिये, सुनिये शरदजी, अब इस कुर्सी की गाथा! इस कुर्सी को आप ऐसा-वैसा मत समझिये—यह बड़े ऐतिहासिक महत्व

की कुर्सी है। यहाँ किसी ज़माने में बैठा करती थी मिस रूपा दर, जो पहले सत्य बाबू की स्टैनो और टायपिस्ट थीं—लेकिन उन्हें दूसरी मिल का इन्तज़ाम वग़ैरा देखने जाना पड़ा मद्रास की तरफ़ और वहाँ उन्हें कोई अच्छी मिस लूथर मिल गयीं। इधर आपके श्री नेताभैया को कुछ इतना काम आ पड़ा कि उन्होंने इन्हें यहाँ बुला लिया। ख़त वग़ैरा उन्हें काफ़ी डिक्टेट कराने होते थे, सो अक्सर जब भी चपरासी या कोई मिलनेवाला आता तो देखता कि अत्यन्त व्यस्त होकर देशबन्धुजी घूमते हुए बोल रहे हैं ; पीछे हाथ बाँधे सिर झुकाये—जैसे आपने 'फ़ॉल ऑफ़ बर्लिन' फ़िल्म में हिटलर को देखा होगा ! और मिस दर शॉर्टहैण्ड में उसे नोट कर रही हैं, कभी जल्दी से लिख लेने के बाद जब मिस दर ठोड़ी से पेन्सिल टिकाये, अपने लिखे पर अपलक दृष्टि गड़ाये, कान उठाये अगली बात सुनतीं तो वे बोलना और हिलना दोनों भूल जाते। फिर सहसा जैसे सोते से जागते, और आगे बोलना शुरू कर देते। सो इस तरह नेताभैया ने उन दिनों काम कर-करके ढेर कर दिया। हर आदमी चकित ! लेकिन एक दिन विधना का विधान देखिये कि—।" अब तक सूरजजी प्याले में चीनी मिलाने के लिये चम्मच को इस तरह हिला रहे थे, जैसे चक्की चला रहे हों, अब बात रोक कर गाल में दबे पान को एक ही घूँट में सटक गये ओर ज़ोर का एक सड़ाकेदार 'सिप' लगाया। शरद अभी तक प्याला हाथ में पकड़े निर्निमेष सूरजजी के क़िस्से को सुनने के साथ उनके चेहरे की बदलती रूप-रेखाओं को भी देख रहा था. उसने भी प्याला होंठों से लगाया।

"कम्बख्त मायादेवी को भी उन्ही दिनों स्वास्थ्य सुधारने यहां आना था—"

बात काटकर शरद ने कहा—"बीच मे एक बात बता दीजिये, इन मिस दर की उम्र क्या थी, और थी कैसी ?"

"हुँः ?" सूरजजी विद्वता से मुस्कुराये—उन्होंने पूरा बिस्कुट मुँह में रख कर इस तरह सिर हिलाया, जैसे तुमने अब पकड़ा पॉइण्ट—"उनकी उम्र समझिये आप छब्बीस-सत्ताईस साल। गेहुँआ रग, बॉब्डहेयर, होंठों पर लिपिस्टिक। अजी साहब, फिर तो उसने ऐरों-गैरों की चिन्ता करना छोड़ दिया, और ऐसी धक-धकाती चली आती जैसे नया अमेरिकन-इंजन। टेढ़ी कमानियों का हरे शेड का चश्मा और साँप-सा लचकदार शरीर--जिधर से निकल जाती 'वैसलीन ब्रिलियैन्टाइन' की खुशबू भर जाती। पूरा दफ़्तर घायल हो गया था।"

"हाँ तो, फिर आ गयी मायादेवी—"काफ़ी देर की प्रतीक्षा के बाद भी जब मिस दर का रूप-वर्णन नहीं समाप्त हुआ तो शरद ने टोका।

"हाँ, तो एक दिन क्या हुआ—" अपनी कमज़ोरी पर मुस्कुराते हुए चाय का घूँट भर-कर सूरजजी बोले—"किसी कम्बख्त ने नेताभैया की व्यस्तता की कथा मायादेवी से जा भिड़ायी—मेरा तो ख़याल है, केशव की ही करतूत थी। वैसे भी भिड़ाने की बात यों नहीं है कि उन दिनों खाना तक यहीं मँगा लेते थे, और ग्यारह-

ग्यारह बजे तक काम करते थे—रात को। सो, एक दिन जब वे बड़े मनन-पूर्वक मिस दर के कन्धे पर हाथ रखकर झुके हुए, उनके सामने रखे टाइपराइटर में कागज़ पर किसी भूल को सुधरवा रहे थे—तभी मायादेवी ने कमरे में प्रवेश किया, और फिर तो मिस दर के बॉब्ड-हेयर मायादेवी के हाथ में थे, और मायादेवी के पट्टीदार बालोंवाली चुटिया मिस दर के हाथ में। सुनते हैं उस दिन जो सभ्य,शिष्ट, महान् और फ़ोर्सफ़ुल गालियों का विनिमय हुआ, उन्हें पाकर दुनियां का कोई भी साहित्य युग-युग तक अपने को धन्य समझता। मेरा तो अब भी विचार है कि यदि उन दोनों प्रतिभा-सम्पन्न महिलाओं को ऐसे किसी कोश के निर्माण का काम दे दिया जाय—तो आपके डाक्टर रघुबीर, महापण्डित राहुल या पण्डित खूबसूरत लाल दाँतों तले उँगली दबाकर देखें। दोनों लोहू-लुहान हो गयीं—।" अपना क़िस्सा खत्म करके सूरजजी खूब खुलकर ज़ोर से हँसे—"सो यही महान् वह कुर्सी है।"

"खूब।" शरद को मायादेवी की कलवाली बात याद हो आई—और इतनी ज़ोर का हँसी का गोला उसके पेट मे उठा कि मुँह में भरी चाय उसने प्याले में उलट दी ओर बुरी तरह गला फाड़कर हँस पड़ा। जितना ही वह शान्त होने की कोशिश करता उतनी ही उसे हँसी छूटती। उसके पेट में दर्द होने लगा, आँखों में आंसू आ गये। इसी बीच में उसे अपना केशव के साथ वाला वार्तालाप याद आ गया—देशबन्धुजी के यहां न बैठने की बात को वह किस तरह टाल गया था। पर फिर भी साथ ही मन में शंका जागी---मायादेवी से चूहे-बिल्ली का खेल कहीं उसे ले न बैठे।

"सो साहब, दोनों एक दूसरे की ओर बिल्लियों की तरह पंजे निकाल-निकाल कर झपटतीं थीं---और उसका नतीजा यह हुआ कि देशबन्धुजी को हार्ट-अटेक हो गया---!" सूरजजी कह रहे थे।

शरद की हँसी एकदम गायब हो गयी..."क्या मतलब ?"

"मतलब यह कि उन्हें ऐसे मौकों पर हार्ट-अटेक हो जाया करते हैं।" सूरजजी ने दूसरा 'कप' तैयार किया।

"सो तो आज भी हो गया है।" शरद बोला।

"आहा !" आनन्दातिरेक से सूरज खिल पड़े, होठों तक पहुँचा हुआ प्याला उन्होंने बड़ी मुश्किल से मेज़ पर रखा, और बोले—"यह अलग पुराण है, किसी दिन जरा फ़ुर्सत से बताऊँगा। आज तो बहुत काम पड़ा है। बालानी साला आया नहीं है अब जो मेरी समझ मे आता है सो करता हूँ। हां, तो आप क्या कह रहे थे—जल्दी बताइये।" सूरजजी चिन्तित हो आये।

"आपकी इस मिस दर की बात में मैं तो भूल भी गया कि क्या कह रहा था?" वास्तव में शरद को याद नहीं आया, फिर टाल कर बोला—"अच्छा मरने दोजिये, अब नहीं याद आता। आज मुझे सचमुच बड़ा क्रोध आ रहा था। आपने सब उड़ा दिया। हां, तो मिस दर का फिर क्या हुआ ?"

"मालूम होता है मिस दर में आप बहुत ज्यादा इण्टरैस्टेड हैं। मिला दूँ ?" सूरजजी दुष्टता से मुस्कुराये—"होता क्या, केशवजी गोद में भरकर फाटक के बाहर डाल आये, टूटा हुआ चश्मा उनकी छाती पर रख दिया गया—फिर नहीं मालूम क्या हुआ।"

शरद ने विस्मय से कहा—"यह सब भी यहाँ होता है ?"

एक गहरी साँस लेकर सूरजजी उठ खड़े हुए, और ज़ोर से शरद का हाथ पकड़ कर लम्बी आवाज़ में बोले—"अभी दोस्त तुमने देखा ही क्या है—आ गये हो, देखो दुनियाँ क्या है ! अच्छा, काम क्या था, नहीं बता रहे, ख़ैर फिर सही—चल दिये। लाओ वो 'बिगुल' का मैटर दो—अच्छा, चले अब।"

सूरजजी ने मैटर उठाया और बड़े आनन्द से चल दिये। लेकिन द्वार से निकल कर पल्ला छोड़ते-छोड़ते फिर भीतर लौट आये—"हाँ, एक बात मैं भूले ही जा रहा था—सात बजे कपिल साहेब के यहाँ आपकी दावत है। मैं भी हूँ।" फिर वे चाबी भरे खिलौने की तरह एड़ी पर घूमकर चले गये।

'कपिल साहब के यहाँ दावत ?" उनके सम्मान में उठे हुए शरद ने आश्चर्य से दुहराया—वह पूछता ही रह गया—"पूरी बात तो बताइये कैसे क्या ?"

"अब नहीं शाम को, जल्दी है अब—अच्छा बाई-बाई।" वे चले गये। शरद हँसकर बैठ गया—"अजीब आदमी है।"

तभी उसे याद आ गया कि उसने मायादेवी वाली बात ही तो बताने के लिये उन्हें बुलाया था—जिसे मिस दर की रोचक कथा में वह भूल ही गया।

दो घण्टे का समय, अर्थात् बीच का पर्दा

जैसे ही शरद और जया ने सूरजजी के साथ पतली-पतली दो-तीन गलियों में होकर श्री कपिल साहब की बैठक में प्रवेश किया कि घड़ी ने सात के घण्टे बजाये। सफ़ेद पैण्ट और सफ़ेद कमीज़ पहने कपिल द्वार तक उन्हें लेने आया था, बड़ी कृतज्ञता के भाव से मुस्कुराकर बोला—"आप लोग बिल्कुल ठीक समय पर आ गये।"

"जी हां, सूरज ने पहले बता दिया था कि आप बदक़िस्मती से एक ऐसे व्यक्ति के यहाँ जा रहे हैं, जिसे न जाने कैसे अंग्रेज यहाँ से जाते समय भूल गये थे। हिन्दुस्तानी लिबास में साक्षात् अंग्रेज ससझिये।" सूरजजी ने निहायत बेतक़ल्लुफ़ी से दरवाज़े में खड़े कपिल की बग़ल से बैठक में प्रवेश करते हुए कहा।

शरद और जया को आने के लिये रास्ता छोड़ता हुआ कपिल एक तरफ हट गया, और लखनवी अन्दाज़ से जरा झुककर दोनों हाथ फैला दिये—जैसे उनके आनेका स्वागत कर रहा हो।

"नहीं, यों नहीं," सूरजजी ने वहीं से कहा—"साथमें शेर भी पढ़िये न,वही—

"वो हमारे घर पै' आयें खुदा की कुदरत है।
कभी हम उनको औ' कभी अपने घर को देखते हैं।"

"अब हमने कहा तो, और आपने कहा तो—एक ही बात है।" कपिल ने झेंप मिटाने को कहा।

सूरजजी के इस व्यवहार पर जया का चेहरा लाल पड़ आया, लेकिन भौहें तनी रहने देकर मुस्कुराहट छिपाने की कोशिश की। सामने पटली और पल्ले पर लाल धारियोंवाली शिफ़ॉन की क्रीम-कलर साड़ी, और लेडी हैमिल्टन का हल्के काहिया रंग का ब्लाउज, जिसकी बांहें कुहनियों तक आई हुई थी, और पुट्ठों पर फ़िट कपड़ा, रीढ़ की हड्डी पर इसी कपड़े से मढ़े हुए गोल-गोल बटनों की सीधी लाइन में चुस्ती से कसा हुआ था। वही अपना पर्स और लहराती वेणी—कभी-कभी बग़ल में साथ-साथ झूल उठते थे। शरद कुर्ते पाजामे में था—बैठक में प्रवेश करके उसने कहा—"आप तो उस दिन सूरजजी के ही यहाँ दावत खा रहे थे, यह खुद कैसे चक्कर में आ गये?"

"अरे साहब, यह इन्हीं से पूछिये—" बड़े चिन्तित ढंग से कपिल बोला—। "कल बड़े हैरान-परेशान-से आये, बोले—जिस प्रकार बच्चे दोनों यहां आकर बिगड़े जा रहे हैं—अकेले-अकेले सिनेमा देखने जाते हैं। यही रहा तो खैर नहीं है। इसका प्रबन्ध ता होना ही चाहिये। मैंने कह दिया, लो, एक शाम का प्रबन्ध तो मैं किये देता हूँ।" और एक ठहाके के साथ हँस पड़ा। सूरजजी भी हँसे; पर जैसे खिसिया गये हों।

शरद ने नाराज़ी के भाव से कहा—"देखिये सूरजजी, आपकी यह आदतें ठीक नहीं हैं। आप इस प्रकार हर बात को ब्रॉडकास्ट करेंगे तो कैसे होगा—दिस इज़ नो गुड।"

"लेकिन शरदजी, आपको जानकर निहायत दुख होगा कि प्रोफ़ेसर रूपकिशोर कपिल अपने एक मित्र प्रोफ़ेसर और उनकी पत्नी के साथ उसी 'शो' में कुछ नीची क्लास में बैठे थे।" गम्भीरता से अभिनय के साथ कपिल बोला।

"अरे, कोई छिपी हुई बात है—सारा शहर जानता है, आप मायादेवी के साथ सिनेमा गये थे।" सूरजजी ने रद्दा कसा।

"और आप अगर ज़रा झांककर उस वक्त नीचे देख लेते तो आपको पता लगता किस तरह लोग शुतुर्मुर्ग़ की तरह गर्दनें घुमा-घुमाकर सामनेवाला सिनेमा नहीं, पीछेवाला सिनेमा देख रहे थे।" कपिल ने सिगरेट का पैकेट निकाल कर उसे खोलते हुए कहा।

"क्या मतलब ?" जया चौकी और शरद का दिल इस तरह धक् से रह गया, जैसे किसी ने उसे चोरी करते देख लिया हो। फिर ज़रा विद्रूप से बोली—"खैर यह तो आप लोगों की आदत है।"

"नहीं, मतलब कोई खास नहीं।" सिगरेट पेश करनेके उत्तर में शरद के हाथ जोड़ देने पर कपिल ने खुद अपने लिये सिगरेट निकाली और डिबिया पर उलटी सीधी करके ठोंकते हुए इस तरह कहा जैसे कोई अत्यन्त ही तुच्छ बात बतला रहा हो। फिर मुंह में लगाकर सिगरेट जलाई और हाथ हिलाकर दियासलाई बुझाते हुए पहले कश का ढेर-सा धुंआ छोड़ कर बोला—"बस, इतना ही मतलब था कि हमने सोचा ज़रा ऊपर जाकर आपको कुछ 'कम्प्लीमेण्ट' 'पे' कर आयें। इन्टरवल में गये भी—सो इसलिये लौट आना पड़ा कि उस वक्त आपकी खातिर-दारियां हो रही थीं।" अपनी आंखों की दुष्टता छिपाने के लिये उसने झुककर ऐश-पॉट में दियासलाई ठूंस दी, फिर जैसे उसे ध्यान हो आया कि वह मेज़बान है—"अरे, आप लोग अभी खड़े ही हैं, भई वाह, लीजिये बैठिये न।"

सचमुच अभी तीनों खड़े ही थे। कपिल के व्यंगो पर हल्के-हल्के मुस्कुराती अन्यमनस्कता दिखाती हुई जया मुड़कर ऊपर की ओर गर्दन किये तस्वीरें देख रही थी। चौड़ाई से अधिक लम्बी, यह बैठक १२×१८ के लगभग थी। एक ओर नये फ़ैशन का ज़रा पुराना-सा पलंग पड़ा था—उसपर साफ़ चौड़े चारखाने का हरा बैड-कवर, उसके पास ही एक मेज़ पर कपड़े से ढँका रेडियो, सामने मछली के आकार की पीतल की एक राखदानी और एक दवा की शीशी रखी थी। एक ओर तीन हाफ़-ईज़ी-चेयर्स पड़ी थीं—जिनके ऊपर पीठ पर सफ़ेद कवर चढ़े थे और गहरे कत्थई पुराने रेशम की गद्दियां पड़ी थीं—जया ने एक बार में ही देख लिया कि ये गद्दियां पुरानी धोतियों में से बनी हैं—क्योंकि कहीं-कहीं हरी किनारी दिखाई दे

जाती थी। बीच में एक गोल मेज़ थी, जिसपर रबर के मोमजामे का चौकोर टेबिल-क्लॉथ था---इसमें जगह-जगह काट कर फूल-पत्ती बनाई गई थीं। पूरे कमरे में तो केवल सीमेण्ट का फ़र्श था लेकिन इन कुर्सियों के नीचे एक पुरानी-सी दरी और ग़लीचा बिछा दिया गया था। पलंग के सिरहाने की ओर बाँस की एक आलमारी रखी थी---और उसमें किसी पत्रिका की बहुत सी फ़ाइलें-कॉपियां तथा अन्य कागज भरे थे। कमरे में दो दरवाज़े थे---एक बाहर गली में खुलता था---दूसरा इसके सामने ज़रा दाहिनी ओर हटकर भीतर घर में जाता था ; उसपर नीला किसी मोटे कपड़े का पर्दा झूल रहा था, जिसे इनके आते ही कपिल ने ठीक से फैला दिया था। दीवार में दो बिना किवाड़ों की, आलमारियां थीं, और दोनों ही किताबों से भरी थीं। अधिकांश किताबें बिना जिल्द की थी। 'बर्मा-शैल' का एक बड़ा-सा कलेण्डर दरवाज़े से घुसते ही सामने दिखाई देता था। इधर-उधर दो-तीन फ़ोटो लटके थे, जो प्रायः सभी 'ग्रुप' थे। पलंग के ठीक सामने एक लिखने की दराजों-वाली मेज, पास ही कुर्सी। वहीं नीचे दीवाल पर एक चार्ट-सा लटकाया हुआ था। मेज़ पर कॉपियां और कुछ किताबें सजाकर रखी गयी थी। एक खुली कॉपी पर पेपरवेट रखा था। 'स्वान' की स्याही की एक बोतल, और पास ही पेन। मेहराबदार टेबिल-लैम्प। इस मेज़ के पास ही दो-तीन बच्चों के छोटे-छोटे जूते, चप्पल सजाकर रखे थे। कुर्सियों के आस-पास ये लोग खड़े थे, और ठीक ऊपर ही एक पंखे की पंखड़ियां हटाकर शेष हिस्से को कपड़े-से बाँध दिया गया था---जो हनुमानजी की गदा की तरह लटक रहा था ! जया इन लोगों का वार्तालाप सुनते हुए एक हाथ को कुहनी पर रखकर दूसरे से निचला होंठ हल्के-हल्के, नोंचती हुई घूम-घूमकर देखती रही। एक ओर बल्ब जल रहा था।

तभी किसी छोटे-से बच्चे ने पर्दा पकड़कर चुपके से झाँका---कपिल बोला---"बेटा अम्मू, अपनी भाभी को भीतर ले जाओ।" और उसने जया की ओर देखा कि उसके साथ भीतर चली जाय। शरद ने कहा---"जाओ, भीतर चली जाओ।" बच्चा स्वयं शर्मा कर भाग ही रहा था कि जया ने स्वयं उसकी उँगली पकड़ ली, और पर्दे के भीतर चली गयी।

"आप लोग बैठिये न।" सूरजजी बोले और पलंग के ठीक बीचों-बीच पीछे हाथ टिकाकर बैठ गये---जैसे बहुत थक गए हों।

शरद बीच की एक कुर्सी पर बैठ गया, और मन-ही-मन पहचानने की कोशिश करने लगा, कपिल किस तरह और किस स्तर का व्यक्ति है। अवचेतन मन में वह भीतर स्त्रियों और बच्चों की भनभनाहट सुनने लगा। जया क्या कह सुन रही होगी इसकी कल्पना उसकी आँखों में तैर गयी।

सफेद रबर के स्लीपर पहने हुए कपिल ने आगे बढ़कर रेडियो पूरे वॉल्यूम पर खोल दिया---और उसके गर्म होने तक वहीं खड़ा देखता रहा। सहसा रेडियो में से

कोई चिंघाड़ कर पक्का गाना गा उठा। लेकिन आधे-मिनट बाद ही कपिल ने उसे यह कहकर बन्द कर दिया कि—"मैं समझता हूँ, यह लोगों को डिस्टर्ब करेगा।" इसके बाद एक बार उसने पुनः दोनों दरवाजों के पर्दे ठीक से फैला दिए, और तब शरद के सामने आकर बैठ गया। सू [redacted] दीवार का सहारा लेकर पूरे पलंग पर बैठ गए थे, और धीरे-धीरे कुछ गुनगुना रहे थे।

"इसके बाद तो कुछ करना नहीं है?" कपिल ने पूछा।

"मेरा ख़याल है, कोई ख़ास काम हमे नही है। लेकिन मेरी समझ में नहीं आया कि आप जैसा समझदार आदमी एकदम कैसे इस तरह के तकल्लुफ़ में पड़ गया?" फिर सूरजजी की ओर देखकर मुस्कुराकर कहा—"सूरजजी की तो कोई बात नहीं है, इन्होंने तो आते ही अपनी समझ का परिचय दे दिया।"

सूरजजी वहीं से घुड़के,—"ऐऽऽ, सूरजजी के बारे में अभी आपने कुछ कहा? ख़बरदार जो उन्हें घसीटा होगा। हम इस समय ज़रा गहरे 'मूड' मे हैं।"

"नही, कहना तो मैं तभी चाहता था सिनेमा मे ही, लेकिन आप सच मानिये, बल्कि नीचे दरवाजे से लौट आया।" नाक से धुँआं निकालने; होठों से जीभ तर करते हुए पहला सूत्र पकड़ा।

"तो सचमुच आप गये थे?" शरद ने गम्भीर स्वर मे पूछा।

"अरे, लाहौल-बिला-कुव्वत!—आप उस वक्त मायादेवी के साथ चाय पी रहे थे, मै कोई झूठ कह रहा हूँ?" उँगलियों में फँसी सिगरेट वाले हाथ को शरद की ओर करके कहा। फिर सूरजजी की ओर देख कर बोला—"सूरजजी इन्हें समझाइए न, भाई जान, सँभल कर रहिये ज़रा, चूस कर यों गँडेली की तरह फेंक देगी कि बाद मे बस मक्खियां भिनभिनाया करे!—उसने बड़े-बड़ों को चरका दिया है, और आप समझिये वह यहाँ पडी कैसे है खुले-आम? आप किसी भुलावे में मत रहिये। देख लीजिये, हमारे सूरजजी हैं न, घायल!"

अब शरद की भी राय मायादेवी के सम्बन्ध में कुछ इसी तरह बनती जा रही थी, लेकिन उसने जोश में हाथ झटक कर कहा—"मेरी समझ में एक बात नहीं आती है, आप लोग किसी के बारे मे जो दुराग्रह एक बार बना लेते है, उसे क्या किसी भी कीमत पर नहीं छोड़ना चाहते?"

कपिल कुर्सी पर सहारा लिये बैठा था, एकदम तनकर बोला—"प्रमाण मिलने पर भी जब आदमी इस तरह की बातें किये चला जाता है तो ग़ुस्सा आ जाता है। आपके साथ हुआ या नही हुआ, लेकिन यहां सैकड़ों ऐसे उदाहरण है। लीजिये, आज की ही बात सुनिये; एक हमारे मित्र हैं, मित्र क्या साथी ही समझिये। सूरजजी वो हैं न, डाक्टर अग्रवाल, सो उनको और उनकी मिसेज़ को छोड़ने हम गये स्टेशन पर। वे जा रहे थे भोपाल। उनकी मिसेज़ काफ़ी ज़िद करतीं रहीं कि कपिल साहब, आप कभी नहीं चलते हमारे साथ, इस बार ज़रूर चलिये—बड़ा हिस्टॉरिकल-

शहर है, कल्चर का सैन्टर है। गाड़ी छूटने में ज़रा देर थी, हम तीनोंने मिलकर चाय-शाय पी, सो देख तो कुली के सिर पर सामान लदवाये श्रीमती मायादेवी भी चली आ रही हैं—हम बड़े चकित हुए कि पद्मा कहाँ हैं, नेता भैया भी तो आने चाहियें इन्हें छोड़ने। और शायद किसी से सुना भी था कि दो-तीन महीने के लिये आई हुई हैं। वैसे इससे कम समय के लिये वे आती भी नहीं हैं। ख़ैर साहब, उन्होंने फ़र्स्ट क्लास कहाँ लगेगा यह अन्दाज़ करके सामान वहीं लगवा लिया, और जिस तरह वो मरखनी गाय की तरह बिफर रही थीं—उससे पता लगता था कि ज़रूर दाल में कुछ काला है। मिसेज़ अग्रवाल मुझसे बार-बार पूछें—इन्हें आप जानते हैं क्या ? अब मैं क्या जवाब देता— ? ख़ैर साहब, गाड़ी आई और आप मज़ा देखिये, श्रीमती मायादेवी उसमें नहीं बैठीं। बार-बार गेट की तरफ देखती रहीं। गार्ड ने सीटी दे दी और मैं ताज्जुब कर रहा था कि जा क्यों नही रही हैं ? आखिर गाड़ी भी चल दी। अच्छा, मैं लौट ही रहा था कि किसी ने मेरी बांह पकड़ ली—देखा तो मिसेज़ बैनर्जी इसी गाड़ी से अपने भाई के साथ उतरी थीं। वे हठ करने लगीं—'चलिये, हमारे यहां से चाय पी के जाना होगा। कोलिकाता की खास वे दोकान शे शन्देश रोशोगुल्ला लाया है।" मुझे नहा-धोकर कॉलेज जाने को देर हो रही थी—ख़ैर जैसे-तैसे गेट से बाहर निकले तो देखा देशबन्धुजी बदहवास, कार से उतरकर धोती का अगला हिस्सा हाथ से उठाये, भागते चले आ रहे हैं।...तभी मेरी समझ में आगया मामला क्या है। ये ज़रूर उन्हें मनाकर लौटा ले जाने आये होंगे।" सिगरेट का कश खींचकर अंगूठे और उँगली से पकड़े हुए छोटी उंगली से उसकी राख झाड़ते हुए वे बोले।

"अच्छा !" आश्चर्य से शरद बोला। वह सोचने लगा कल रात को उसके साथ घटी सिनेमा की घटना, और देशबन्धुजी के आज दिनभर के व्यवहार के पीछे इस घटना का कहां तक हाथ है।

"यह कोई नयी बात नहीं है, उसके साथ" सूरजजी ने कहा—"जब भी वह यहां रहती है; यह घटना ज़रूर दुहरा दी जाती है। इसे यह ट्रम्प-चाल की तरह चलती है, और वह फिर बौखलाया-सा घूमता है इधर-उधर !" अचानक उन्हें सुबह हुई शरद की बात-चीत याद हो आयी—"आखिर कोई मैं यों ही थोड़े ही कह रहा था सुबह। ऐसी हर घटना के बाद उसे दौरा आ जाता है। और मज़ा यह कि यह दौरा उन्हें हमेशा एक-सा ही आता है। शरदजी आप तो उन्हें देखने गये थे न, जो कुछ आपने देखा होगा वह आप सूरज से पूछ लीजिये—ग़लत बता रहा होऊँ तो टोक दीजिये। बन्धु,यहां इतने साल भाड़ नहीं भोंका है। एक-एककी नस पहचानते हैं।"

शरद ने विस्मय से पूछा—"मैंने क्या देखा ?" जब वह उनसे भाषण की रूप-रेखा और उनकी मिजाज़-पुरसी करने गया था, उस समय का पूरा दृश्य उसकी आँखों के आगे आ गया।

"आपने कोई नयी बात नहीं देखी होगी। गर्मी के मौसम में ऊपर के पंखे के अलावा मेज पर टेबिल-फ़ैन लगा होता है ; आजकल तो रज़ाई ओढ़े-गर्दन तक लिपटे बड़ी हल्की-हल्की रोशनी-वाले कमरे में कराहते पड़े होंगे, अत्यन्त पतिव्रता की तरह जाँघपर उनका सिर रखकर मायादेवी चमेली के तेल की मालिश उनके गंजे सिर पर कर रही होंगी, और पास में एक नर्स उन्हें ग्लूकोज़ बनाती या इन्जेक्शन की तैयारी करती इधर से उधर फुदकती फिर रही होगी—कहिये यही दृश्य था या कुछ और ?" आत्म-विश्वास से सूरज जी ने पंजे फैलाकर पूछा।

"हां।" मुस्कुराकर शरद बोला। उसे वास्तव में आश्चर्य हुआ कि सूरज जी ने कैसे एक-एक शब्द सही बता दिया।

"कहिये कुछ और बताऊँ ?" सूरजजी विजेता की तरह बोले—"मैं तो आपको वह सब भी बता सकता हूँ जो उन्होंने कहा होगा। जैसे अभी मरने वाले हों—इसतरह उन्होंने आपको बैठने को कहा होगा। पास में पड़े स्टूल पर ही आप बैठे होंगे, बात-चीत के सिलसिले में उन्होंने यह ज़रूर बताया होगा कि किस प्रकार माया बहन ने उन्हें दिल डूबने की बीमारी से बचा लिया—वर्ना उनकी अर्थी निकल गयी होती ; वे रात भर जागी—या पैरों में काँसे की कटोरियाँ मलती रहीं, या इसी तरह की बातें। फिर मायादेवी ने अपनी जाँघ से सिर उठाकर एक तरफ़ रख दिया होगा और धीरे से उठ गयी होगी—क्यों, है न यही बात ?"

शरद को ताज्जुब यह हुआ कि थोड़े हेर-फेर के साथ एक-एक बात ठीक थी। इन लोगों ने क्या वास्तव में नस-नस पढ़ रखी है ? कपिल कभी सूरजजी की ओर कभी शरद की ओर इस तरह देख रहा था जैसे दो कुश्ती लड़नेवालों को देख रहा हो। उनके चुप होते ही बोला—"यार, मैं तो यह सोचता हूँ, वह लड़की क्या सोचती होगी, अपनी माँ की हरकतें देखकर ? मुझे तो सौतेली लगती है ?"

"सौतेली-वौतेली तो नहीं है, है तो खास ही। लड़की बड़ी अच्छी है—सैन्सुटिव है थोड़ी—। लेकिन आप देख लीजिये, या तो उसे टी० बी० हो जायेगी या हिस्टीरिया—यों ही कुढ़-कुढ़ कर मरेगी।"

"लेकिन लड़की भी बेवक़ूफ़ है। पढ़ गयी, लिख गयी, क्यों नही शादी कर-करा लेती कहीं ?—क्यों अपनी तन्दुरुस्ती ख़राब कर रही है बेकार ?" कपिल ने सुझाव दिया।

"आज दिन भर तो वह जया के पास रही है।" शरद ने बात को इस तरह टाल कर कहा जैसे वह कोई खास बात नहीं है। फिर मुख्य-विषय पर आकर बोला—"कपिल साहब, एक बात मेरी समझमें नहीं आती—"

"साहब नहीं, 'साहेब'।" सूरज जी बीच में बोले और कपिल से आँख मिलते ही मुस्कुराये।

"हां, 'साहेब' ही सही।" शरद भी हँसा और अपनी बात पर ज़ोर देकर

बोला—"आप लोग स्त्री का मूल्य, केवल उसके शरीर के उपयोग से ही नापना चाहते हैं, कि कितने आदमियों ने या एक आदमी ने कितने समय उसका उपयोग किया है? क्या 'सेक्स' के अतिरिक्त आदमी अपने आप में कुछ नहीं है? यदि सेक्स की दृष्टि से वह शुद्ध है, तो अच्छा है—या अच्छी है, वर्ना कितनी भी अच्छी वह क्यों न हो, उसका कोई महत्व-मूल्य नहीं है। हमारा संस्कारगत और धार्मिक-दृष्टिकोण जितना ही सैक्स को नगण्य, महत्वहीन और साधारण बताने के नारे लगाता है, उतना ही अपने आपको उस पर केन्द्रित कर लेता है। मनुष्य की सारी अच्छाई-बुराई सब कुछ उसी से नापता है। मैं पूछता हूँ कि एक स्त्री और रूपों में समाज के लिये दस-बीस अच्छे आदमियों के बराबर उपयोगी है, मान लीजिये वह बहुत अच्छी समाज-सेविका है, बहुत अच्छी टीचर है, नर्स है, या वैज्ञानिक है; और कुछ नहीं तो वह बहुत अच्छी कलाकार है; लेकिन यदि इस रूप में ही 'लांछित' है तो क्यों नहीं उसे उसके गुण का उचित प्रतिदान मिलता? क्या हमेशा ही पंतजी के शब्दों में 'पूत-योनि वह, मूल्य चर्म पर उसका अंकित' वाली घटना चलती जायेगी!" फिर कुछ याद करता-सा बोला—"मुझे याद है, समरसैट मॉम ने कहीं लिखा है—जब हम सदाचारकी बात करते हैं तो हमारे दिमाग़ में सिर्फ एक चीज़ होती है, वह है सैक्स; लेकिन सैक्स सदाचार का न तो अनिवार्य हिस्सा है, न सबसे अधिक प्रधान ही।"

"भाई, महत्व तो नहीं है, लेकिन कुछ बातें समाज अपनी व्यवस्था की रक्षा के लिये भी करता है, और उन्हें कड़ाई से 'ऑब्ज़र्व' करता है।" सूरजजी ने इस तरह कहा, जैसे स्त्री के मूल्यांकन को इस रीति से वे सहमत ज़रा भी नहीं है, लेकिन समाज में इतनी कड़ाई बरती जाने की ढील देना पसन्द करते हैं।

"लेकिन यहाँ मामला बिल्कुल ही दूसरा है।" कपिल ने हर शब्द पर ज़ोर देकर कहा—"यह स्त्री की स्वच्छन्दता का प्रश्न नहीं है। यदि स्त्री इतनी जाग्रत है, और अपनी स्थिति और अधिकारों को समझती है, तब तो उसे अधिकार है कि इस तरह की 'छूट' को क्रान्तिकारी-क़दम कहकर पेश करे—लेकिन एक जाहिल औरत जो सिर्फ़ पैसा ऐंठने के लिये ही यह कार्यक्रम बना लेती है, मैं तो उसे एक वेश्या से अलग नहीं मानता।"

"फिर भी कभी-कभी ऊपर से ऐसे छिछले लगनेवाले सम्बन्ध भीतर बड़े गहरे होते हैं। ऐसी स्त्रियां अवसर आने पर प्राण तक निछावर कर सकती हैं।" सूरजजी ने कहा—"मैं इस विषय पर अधिक बोलना इस समय पसन्द नहीं करूँगा; लेकिन मैं बतादूँ कि लाख घृणा और मतभेद होते हुए भी मायादेवी के प्रति मेरे हृदय में बड़ा सहानुभूति है। उस स्त्री ने अपना नाश खुद कर लिया है।"

"खैर सूरजजी, यहाँ मैं आपका विरोध करता हूँ।" शरद ने कहा—"एक प्राकृतिक-भूख और साथ की आवश्यकता के लिये आप यदि साथ खोजते हैं, तो उसे किसी न किसी तरह सहा जा सकता है—जस्टीफ़ाई किया जा सकता है; लेकिन यदि

इन दोनों मानवीय-भावों को आप किसी घोर भौतिक-स्वार्थ-साधन के काम में लायें तो सचमुच यह वेश्यावृत्ति है, और घातक है।"

"नहीं जो, सो कैसे जस्टीफ़ाई किया जा सकता है ?" तड़पकर कपिल बोला —"प्राकृतिक-भूख और साथ खोजने की भावना पर यदि आप कोई अंकुश नहीं रखते—कोई सामाजिक-बन्धन नहीं देते, तो पशु और मनुष्य में अन्तर ही क्या है ? वही कुत्ते-बन्दरों का दृश्य आप उपस्थित कर देंगे। मैं स्त्री को स्वतंत्रता देने का हामी हूँ ; लेकिन यह स्वतंत्रता नहीं है, और चाहे जो हो।"

"यदि आपकी यही ज़िद है कि जो कुछ कुत्ते-बन्दर करेंगे वह आप नहीं करेंगे —तब तो वाकई बड़ी मुश्किल पड़ जायेगी। लेकिन मैं एक बात पूछता हूँ, फिर यह जो आप स्वतन्त्रता-स्वतन्त्रता चिल्लाते हैं, यह स्वतन्त्रता क्या है ? आप वास्तव में स्त्री को स्त्री की दृष्टि से अधिकार नहीं देना चाहते—आप केवल उसे अपनी पुरुष-की दृष्टि और बुद्धि से—कुछ 'छूट', कन्सैशन्स, देना चाहते हैं ; वह भी अपने विशेषा-धिकार क़ायम रखते हुए।" शरद को अपने उस भाषण का एक-एक शब्द याद आ रहा था, जो उसने ट्रेन में जया को दिया था, वह बोला—"कहने को आप यह बड़ी आसानी से कह देते हैं कि हर स्त्री को घूमने-फिरने, बोलने-चालने की स्वतन्त्रता है, बस, सैक्स की दृष्टि से वह एक-निष्ठ रहे ; लेकिन सच पूछो तो मानसिक-रूप से हम खड़े हैं वहीं, जहाँ आज से सौ साल पहले डी० एच० लॉरेन्स खड़ा था, और जैसे हम बैठ कर बातें कर रहे हैं, वैसे ही 'लेडी चेटर्लीज़ लवर' में बातें होती थीं। बोलने-चालने की स्वतन्त्रता है, और विचार-विनिमय की आज़ादी है—यह कहते समय कभी भी आप सोचते हैं कि विचार मनुष्य का सूक्ष्म और निराकार-व्यक्तित्व है ? उस व्यक्तित्व को तो आप इतनी छूट दे सकते हैं कि वह एक दूसरे का स्पर्श करे—समा-नता खोजे—लेकिन साकार-व्यक्तित्व के स्पर्श मात्र में ही सतीत्व और नैतिकता के बन्धन टूटें—यह बात वाक़ई समझ से परे है। एक स्त्री से आप यदि यह कह देते हैं कि आप बड़ी अच्छी हैं, तो कुछ नहीं बिगड़ता ; लेकिन यदि इसी सूक्ष्म या निराकार प्रशंसा के बदले आप उसका चुम्बन लेकर उसी प्रशंसा को साकार करदें—तो यहाँ आपके सारे धर्म और नैतिकता के टट्टू चीखने लगते हैं—।"

"हेयर ! हेयर !" कपिल ने ज़ोर से ताली बजादी, पर साथ-ही बोला—"मि० शरद, हमलोग बहस में भूल रहे हैं—इधर-उधर बहक रहे हैं। मैं एक शब्द में पूछ लूँ, कि आप कहना क्या चाहते हैं ? मायादेवी जैसी स्त्रियों को आप कैसा कहेंगे—या उनके साथ क्या व्यवहार करना पसन्द करेंगे ?" और उसने विजेता की-सी मुस्कान से शरद की ओर देखा फिर उँगलियाँ जलाती सिगरेट को पीकर धीरे-धीरे ऐश-पॉट में ठूँसने लगा।

"मैं···मैं···" शरद हकला कर रह गया।

बात काट कर सूरजजी बोले—"आपलोग भी क्या 'बोर' बहस लेकर बैठे हैं।

अरे, इनसे कुछ आना-जाना नहीं है। कभी इन बहसों से कोई नतीजे नहीं निकले। और निकले भी हों तो उनका निकलना न निकलना ही बराबर क्योंकि उनसे कुछ होता-हवाता नहीं है। सूरज का तो दृढ़-विश्वास होता जा रहा है कि ये सब ड्रॉइङ्ग-रूम की बहसें हैं—हमेशा होती हैं, हमेशा होंगी। दुनियां का हर मसला यहां बैठकर तय होगा—लेकिन दुनियाँ वहीं की वहीं रहेगी। इसलिये आप इन बेकार की बातों को तो दीजिये छोड़, और कोई अच्छा विषय बात करने का पकड़िये।" सूरजजी थोड़ी देर के लिये इनकी बातें चुपचाप सींक से दाँत कुरेदते हुए सुन रहे थे, अब बोले—"यार कपिल, देर कितनी है खाने-पीने में—देर हो तो ला, दो पान ही खा लिये जायँ।"

"मेरा खयाल है, तैयार हो गया होगा।" उसने आवाज़ दी—"सुधा!" लेकिन खुद ही यह कह कर भीतर उठकर चला गया—"लाइये, मैं ही देखकर आता हूँ।"

शरद वास्तव में बड़े पशोपेश में पड़ गया। मायादेवी जैसी स्त्री को, वह क्या दण्ड देना पसन्द करेगा—यदि यह अधिकार उसे दे दिया जाय?—गोली मार देगा?—इसलिये कि वह भूखी है, युवा-शरीर उसे आकर्षित करता है, और उस समय वह भूल जाती है कि ठीक उन सब बातों को सोचने-समझने लायक ही नहीं, बल्कि उससे भी कुछ बड़ी उसकी लड़की यह सब देखती है? क्या यह सब ठीक है? तो फिर क्या गोली मार देने का दण्ड ही उचित है? या फिर उसे अपनी इस भूख की खुली अभिव्यक्ति करने के लिये इनाम और अन्य सुविधाएँ देकर छोड़ दिया जाय? एक क्षण को उसे अपने वकील-साहब का ध्यान हो आया—जहाँ वह पहले काम सीखता था। उन लोगों के साथ की एक लड़की थी—व्यास; नमिता व्यास। वह भी इम्तहान पास करके उन्हीं वकील साहब से काम सीखती थी। विवाहिता थी, और अच्छे घर की भी। कार में आती। वकील साहब की उम्र लगभग साठ की होगी। वकील साहब जहाँ रहते थे, वह जगह रास्ते में पड़ती थी। नमिता अक्सर उन्हें आते वक्त साथ ले आती, और जाते वक्त छोड़ जाती। गाड़ी में ही कुछ मुक़दमों की बात-चीत होती, इसलिये दोनों पीछे बैठते। लेकिन वकील साहब पूरी सीट छोड़ कर धीरे-धीरे कोने में सिमटी-सिमटाई नमिता की तरफ़ ही खिसकते आते। एक दिन तो वह चलती कार में ही उठकर खड़ी हो गई—"वॉट डज़ इट मीन?" लेकिन जैसे ही वह बैठी, वकील साहब ने उसकी जाँघ पर हाथ मारा। नमिता ने झटक-कर हाथ अलग कर दिया, और गाड़ी रुकवा दी। और साठ साल का वह वकील, जिसकी सबसे छोटी लड़की रमा नमिता की उम्र की थी: अर्थात् २५ साल! स्वयं वह वकील साहब 'बार' के सबसे अच्छे वकील, प्रसिद्ध। बड़े-बड़े 'जज' उनसे काँपते और यूनिवर्सिटी की कॉपियां उनके पास आतीं। अब इस साठ साल के बुड्ढे की तुलना में तो वाक़ई सैंतीस साल की मायादेवी सभ्य हैं! क्यों मायादेवी गोली मारदेने

लायक़ हैं, और क्यों वकील साहब नज़र-अन्दाज़ कर देने योग्य ? और सचमुच शरद को इसका कोई जवाब नहीं मिल पाया—एक अदृश्य दीवार थी जो उसके सवाल और जवाब के बीच में आकर खड़ी हो जाती थी, और जितनी ही यह दीवार उसे दृढ़ लगती, उतनी ही उसके मन में यह विचित्र बेचैनी पैदा करती। उसकी इच्छा हुई वह इस विषय पर और बहस करे।

तभी मैली-सी बनियान और उतना ही मैला नेकर पहने एक पाँच-छः वर्ष का लड़का बाहर निकल आया। नेकर से निकली हुई दो तनियां उसकी छाती और पीठ पर क्रॉस बनाती हुई कन्धों पर गयीं थी और बाएं हाथ की तनी इतनी ढीली थी कि लड़के को कन्धा झटक कर और मोटरका हैण्डिल घुमाने की तरह हाथ घुमाकर बार-बार उसे ठीक स्थान पर लाना पड़ता था। बाल उसके बिखरे हुए थे और मुँह शायद सुबह से नहीं धुला था। वह शायद सूरजजी से परिचित था इसलिये शरद की ओर देखता-झिझकता सीधा सूरजजी के पास जा-पहुँचा।

"कहो बेटे अमिताभ, खाने में कितनी देर है ? हम लोग देखो, भूख के मारे मरे जा रहे हैं।" सूरजजी उसी तरह दीवार से सिर अड़ाये लेटे रहे। फिर शरद से बोले—'यह इनका बड़ा लड़का है—अमिताभ कपिल। बेटा, इन्हें नमस्कार करो—चाचा है।"

लड़के ने मुड़कर शरद को देखा और बह आती हुई नाक को ज़ोर के सड़ाके की आवाज़ के साथ खींच गया। शरद ने उस ओर देखकर दूसरी ओर मुँह फेर लिया। उसकी बेचैनी और भी बढ गयो। जैसे ध्यान बँटाने के लिये उसने पूछा—"कितने बच्चे हैं इनके ?"

"इनके ?" सूरजजो ने बताया—"इनके तीन बच्चे है, एक गोद में है, एक इससे छोटी लड़की है।"

"हूँ ऽऽ" कहकर शरद फिर चुप हो गया।

सूरजजी बोले—"यार, मैं तो एक निष्कर्ष पर पहुंचा हूँ, ज़िन्दगी मे बहस-मुबाहसों में कुछ नहीं रखा है। जो है सो, सब ठीक ही है। हम और आप उसमें कुछ बदल नहीं सकते। सब चलता है।"

"हां—अपना-अपना खयाल है।" शरद बोला। परदे के अत्यन्त पास ही कहीं धीमें स्वर में बात-चीत करने की आवाज़ उसका ध्यान खींच रही थी : और उधर ध्यान आकर्षित होते ही उसे जया का खयाल आगया था। पता नहीं भीतर कैसे बैठी होगी—अकेली चुपचाप बैठी 'बोर' न हो रही हो। फिर भी जाते ही रूर जान-पहचान हो गई होगी। स्त्रियों की इस विशेषता पर उसे अत्यधिक आश्चर्य होता था, साथ ही उनके इस गुण की वह तारीफ़ भी करता था—कैसी भी दो अपरिचित स्त्रियों को एक जगह बैठा दीजिये, पाँच-मिनट बाद ही ऐसा लगेगा जैसे वे दोनों युग-युग से परिचित हों।

कपिल पाँव से पर्दा हटाता हुआ, कटोरियों इत्यादि से भरी दोनों हाथों में दो थालियाँ उठाये हुए कमरे में आगया—शरद ने यह भी देख लिया कि ऊपर से पर्दा उठाकर ऊंचा करने वाला एक चूड़ीदार गोरा-सा हाथ था। उसने एक स्वाभाविक कौतूहल-वश और भी कुछ कनखियों से देखना चाहा ; लेकिन कुछ नहीं दिखाई दिया। हाथ में कड़े और अंगूठी उसे खूब भरे हुए दिखाई दिये। थाली लाकर कपिल ने पढ़नेवाली मेज़ पर रख दीं, और फिर परदे के पास जाकर तीसरी थाली ले आया। इस थाली को भी वहीं रखकर उसने पर्दे को पुनः ठीक कर दिया। सूरजजी सीधे बैठ गये और उन्होंने बीचकी मेज़ से राखदानी इत्यादि उठाकर रेडियो के सामने रख दिये। शायद वे यहां इससे पहले भी खाचुके थे और सभी 'नियमों' से परिचित थे। शरद चुपचाप बैठा हुआ था, उसने कहा—"लाइये, में भी कुछ मदद कर दूंगा आपकी।" लेकिन उसने मदद करने के कोई लक्षण इसलिये नहीं दिखाये कि वह जानता ही नहीं था, क्या मदद की जा सकती है।

"नहीं, आप बैठिये।" कहकर कपिल फिर भीतर चला गया। सूरजजी ने दोनों थालियाँ उस बीच की मेज़ पर सटाकर रख दीं और स्वयं सामने बैठ गये : बोले—"यहां देखिये, खायेंगे हम ठाठ से।"

तीन साग, रायता, एक छोटी सी प्लेट मे दो-तीन अचार और चटनी, परांवठे शायद आलू के थे—शरद ने बैठे ही बैठे निगाह मारी।

हाथ में एक काँचका बड़ा जग और तीन खाली गिलास लाते हुए कपिल ने कहा—"आप लोग शुरू कीजिये न।"

"आइये, आप भी आजाइये।" शरद बोला।

"नही जी, मुझे तो ऐसे ही खाना होगा—भागते-दौड़ते।" कपिल ने गिलास भर कर इनके सामने रखते हुए कहा।

"अच्छा है, हज़म हो जायेगा।" सूरजजी ने अपना अभ्यस्त हाथ थाली की ओर इस ताक में बढ़ाया कि पहले किस चीज़ पर हमला किया जाय।

खाना शुरू हो गया। अमिताभ जो अपने पिताजी के साथ-साथ दो चार बार बाहर-भीतर आ-जा चुका था, अब पढ़ने की मेज़ से बिल्कुल चिपक कर कपिल की थाली में घूरने लगा। जब देखा कि उसकी निगाह का कोई असर कुर्सी पर बैठकर खाते हुए कपिल पर नहीं हो रहा तो उसने निस्संकोच जिन उंगलियों को अभी नाक और मुह में ठूंस रहा था उनसे ही कपिल का सफ़ेद पेंट पकड़ कर कहा—"डैडी, हम भी खायेंग।"

शरद मुस्कान नहीं रोक सका—उसके मन में किसी ने दुहराया—"डैडी" इच्छा हुई ज़ोर से हँस पड़े। लेकिन उसने छिपी निगाहों से इधर-उधर देखा, किसीने उसे मुस्कुराते देख तो नहीं लिया।

'भई, क्या आफ़त है,—खाना खाते वक़्त इसे भीतर भी नहीं रखा जा

सकता।" कपिल ने लड़के का हाथ झटक दिया और एकदम उसकी कलाई पकड़कर उसे घसीटता हुआ परदे के भीतर कहीं ले गया। भीतर से आवाज आई—"सुधा कहां है ? मैं कहता हूँ, उससे इसे खिलाया भी नहीं जा सकता ?"

"सुधा चौके में है—तुम अपने साथ क्यों नहीं खिला लेते ?" स्त्री-स्वर ने उतनी ही तेजी से कहा।

"नहीं, मैं वहाँ नहीं खिलाऊँगा—कपड़े इसके तुमसे बदले जाते नहीं हैं, वहां भेज देती हो। अब के आया तो इसके हाथ-पैर तोड़ दूंगा।"

"बड़े आये हाथ-पैर तोड़नेवाले ! मैं तुम्हारी नौकरानी नहीं हूँ कि दिनभर बच्चों का, इसका, उसका करती रहूँ। मुझसे नहीं होता।"

"अच्छा बक-बक मत करो, नहीं होता तो भाड़ में जा पड़ो।" कपिल झुंझलाया हुआ बाहर निकल आया।

बाहर परांवठे खत्म हो गये थे।

कपिल ने वहीं से आवाज दी "सुधा !"

थोड़ी देर बाद ही एक बड़ी प्लेट में परांवठे लिये हुए बारह-तेरह साल की लड़की ने प्रवेश किया। यह सीधे-पल्ले की धोती पहने थी और बिल्कुल गुड़िया-सी लग रही थी। धोती उससे सँभल नहीं रही थी। उसके हाथ से प्लेट लेकर कपिल ने खाना परोस दिया। लड़की ने कहा—"भाई साहब, भाभी जी कह रही हैं कितनी देर में चलना है ?"

"अरे, अभी खाना तो खा लेने दे, अभी से क्या चलने की लगाई है ? जाओ कह दो, आज नहीं जाना।" कपिल ने हँसकर शरद की ओर से कहा।

पता नहीं क्यों शरद का दम इस वातावरण में घुटने लगा था। उसे ऐसा महसूस हो रहा था जैसे वह चारों तरफ से दबा हो, भिंचा हो। खुलकर अपने शरीर को फैला नहीं सकता। वह कपिल की स्थिति को समझने की कोशिश करता रहा। उसे कपिल की इस हँसी पर आश्चर्य हुआ। ऐसी बातों के बाद कैसे कोई हँस सकता है—कमसे कमसे कम उसका 'मूड' तो दो-ढाई घण्टे को खराब हो जाये। लेकिन इस तरह के अभिनय की शायद इसे आदत पड़ गई है। क्या उनके बीचमें स्थिति ऐसी ही आ सकती है ? आगे जानबूझ कर उसने इस विषय पर कुछ नहीं सोचा। लेकिन जया को जल्दी क्या है ? घर तो कोई काम है नहीं।

"सुना है सम्पादक जी, परसों तुम्हारे यहाँ मिनिस्टर साहब आ रहे हैं ?" कपिल ने बात शुरू की।

"कहाँ खाने जैसी रोचक चीज में मिनिस्टर का जिक्र ले आये"—इस बात से ग्रास-सहित हाथ झटक कर सूरजजी बोले—"हमारे तो प्राण ले लिये इस साले मिनिस्टर ने। क़लम घिसते-घिसते उँगलियाँ दर्द कर रहीं है। सारी कमर टूट गयी है।"

"हाँ, हमने सुना है उनके साथ डाक्टर दाण्डेकर भी हैं।" जैसे अचानक बात याद आ गयी हो, इस तरह खाते-खाते रुककर कपिल बोला।

"कौन दाण्डेकर ?" सूरजजी ने सिर उठाकर पूछा—। शरद ने भी इसी भाव से मुड़कर देखा।

"अरे वही, पटना-यूनिवर्सिटी के इकॅनौमिक्स के हैड।"

"होंगे कोई, हां, तो फिर ?" सूरजजी ने पूछा।

"उनसे कुछ काम करा सकते हो ? तुम्हारे नेताभैया के लँगोटिया हैं।"

"वैसे तुम हमारे और नेताभैया सम्बन्ध जानते ही हो—बनता हुआ काम भी बिगड़ जायेगा। लेकिन तुम काम बताओ।"

"कुछ नहीं—काम तो कुछ खास नहीं है। बस, सिर्फ़ बात इतनी है कि उस आदमी के हाथ में बड़ी पॉवर्स हैं। वह चाहे जिसको ऐक्ज़ामिनर बनवा दे—चाहे जिसको सेंटर बनवा दे। बस, तुम्हारे नेताभैया इस काम के लिये सबसे ठीक आदमी हैं।" ...सुधा फिर परांवठे ले आई थी, अतः बात रोककर कपिल ने परांवठे ले लिये, और उठाकर एक-एक परोस दिया।

"भई, इसके लिये तो ये शरद जी बैस्ट आदमी हैं। आजकल मायादेवी और नेताभैया से इनकी खूब घुट भी रही है। जिसको जो-चाहें सो बनवा दें।" अपनी वाणी के व्यंग्य को भरसक दबाकर सूरजजी ने कहा।

दोनों शरद की ओर देखने लगे। शरद बड़ी विचित्र स्थिति में पड़ गया था। घनिष्ठता है लेकिन यह बात कैसे कही जा सकती है—यह तरकीब उसकी समझ में ही नहीं आ रही थी। उसने एक घूंट पानी पीकर पूछा—"देशबन्धुजी आपको जानते हैं ?

"हाँ शायद जानते तो हैं। वैसे आज या कल में आप उन्हें मेरा परिचय दे सकते हैं—कहिये तो मैं खुद किसी समय आजाऊँ। कोई ऐसा समय बता दीजिये जब वे भी ज़रा फ़ुर्सत में हों। परिचय अच्छी तरह हो जायेगा। हमारा बड़ा काम निकल जायेगा। बाई द वे, आपके पास आ जाऊँगा। वैसे भी अधिक बुरा नहीं लगेगा।" वाणी में असाधारण नम्रता और आग्रह लाकर कपिल बोला।

यह एक दूसरी विचित्र स्थिति थी। कैसे वह देशबन्धुजी से उसका एक दिन में इतना घनिष्ठ परिचय करा दे कि वे अपने मित्र से उसे 'ऐक्ज़ामिनरशिप' दिलवाने की ज़ोरदार सिफ़ारिश करदें। वह खुद नहीं जानता, देशबन्धुजी पर उसका कितना प्रभाव है। लेकिन एकदम मना भी नहीं कर सकता था। उसने थोड़ा घबराकर कहा—"खैर, आने को तो आप जब चाहें तब आइये—घर आपका है। लेकिन यह बताना बड़ा मुश्किल है कि नेताभैया को फ़ुरसत कब मिलती है। मैंने तो उन्हें कभी भी फ़ुरसत मिलती देखी नहीं।" शरद फिर चुप हो गया जैसे कोई आसान-सी तरकीब सोच रहा हो।

"कहलाने को तो मैं मिसेज़ सिंह के ज़रिये कहला दूँ, और डा० दाण्डेकर की वे टॉट भी रह चुकी हैं, वे मना नहीं करेंगे; लेकिन अपने सम्बन्ध मिसेज़ सिंह से कुछ इस दूसरी तरह के हैं कि यह बात मैं उनसे कह नहीं सकता।"

"दूसरी तरह के कैसे ?" सूरजजी ने पूछा—"मधुर ?"

कपिल बहुत हल्के से मुस्कुराया और पुनः आशा से शरद को देखने लगा। सूरजजी के व्यंग्य की ओर उसने ध्यान नहीं दिया। शरद चुपचाप सोचता रहा। एक तरकीब सूझी। कल किसी तरह कपिल को देशबन्धुजी से ले जाकर मिला दे। बाक़ी बातें यह खुद कर लेंगे—आवश्यकता होगी तो थोड़ी बातें वह भी साध देगा।

इस बार सुधा जब खाना लाई तो अत्यधिक आग्रह-पूर्वक, उसके मना करने पर भी कपिल ने उसकी थाली में खाना रख ही दिया। जब सब लोग फिर पूर्ववत् बैठ गये तो शरद ने कहा—"एक तरकीब हो सकती है—आप कल दोपहर के समय उधर आइये—मैं आपका परिचय देशबन्धुजी से करा दूँगा। फिर जैसी स्थिति होगी देखेंगे।"

"अच्छी बात है—ग्यारह के करीब मैं आ जाऊँगा।" कपिल बोला।

शरद ने शिष्टता के नाते कहा—"फिर ऐसा क्यों नहीं करते—उधर ही साथ खाना खायेंगे, इसके बाद आपका परिचय हो जायेगा।" शरद ने सोचा जब कपिल ने उन्हें खाने को बुलाया है तो फर्ज हो जाता है उसे बुलाना।

"नहीं भाई, खाने-वाने का क्या है। फिर कभी सही।" बहुत अधिक नम्र-स्वर में कपिल बोला।

"फिर कभी क्या, कल ही आइये—" शरद ने मन-ही-मन हिसाब लगाया, जल्दी उठकर वह जया को मदद देगा—माली का लड़का बुलवा लेंगे। दस बजे तक खाना बन जायेगा। इसके बाद ऑफ़िस से ग्यारह-बारह बजे आकर साथ ही खा लेंगे। मन-ही-मन निश्चय करके कहा—"यह ठीक रहा। आप कल ठीक ग्यारह बजे आ रहे हैं, अपनी मिसेज़ को भी ले आइये।"

"ये झगड़ा तुमने बुरा अटकाया।" सूरजजी बीच में ही बोल उठे—"अपने कपिल साहेब, अपनी मिसेज़ के आने-जाने में ज़्यादा विश्वास नहीं करते। हाँ, दूसरे किसी की मिसेज़ के साथ, सिनेमा, स्टेशन, चाय, पिकनिक सभी जगह आने-जाने को तैयार हैं।"

बात काफी कड़ी थी—कपिल का चेहरा एकदम 'फ़क्' पड़ गया। एक क्षण तो उसे कोई शब्द नहीं सूझा, फिर खँखारकर बड़ी मुश्किल से आवाज़ निकाल कर बोला—"नहीं—यह बात तो नहीं है। वैसे हमारी 'वो' अक्सर बीमार रहती हैं। फिर साथ में छोटे-छोटे बच्चे हैं; कहाँ आयें, कहां जायें। घर पर किसे छोड़ें ? यह छोटी बहन सुधा है। सब घर की देख-भाल भी तो रहती है।"

शरद के दिमाग़ में 'खट्' से कुछ बजा। उसे लगा सूरजजी की बात बिल्कुल

ठीक है। कपिल के बार-बार परदा ठीक करने पर जिस बात को वह मन-ही-मन महसूस तो कर रहा था लेकिन शब्द नहीं दे पा रहा था—वह जैसे एकदम साफ़ हो गयी। अभी इतनी देर में इसने तीन-बार दूसरों की पत्नियों का नाम लिया। फिर भी इतनी तीखी बात सूरजजी को नहीं कहनी चाहिये थी। उसके प्रभाव को मज़ाक में उड़ाने के लिये उसने कहा—"बच्चे होना तो किसी और की ग़लती नहीं है।" और ज़ोर से हँस पड़ा।

"अब हो जाते हैं साले, तो मैं क्या करूँ ?" लेकिन कपिल के कान लाल पड़ गये थे—शायद बात उसके दिल को छेदती चली जा रही थी।

"कोई प्रिकॉशन लीजिये न।" शरद ने विद्वत्ता से कहा, हालांकि मन-ही-मन वह स्वयं जैसे इस अनजान भय से दबा जा रहा था—कम से कम ऐसी स्थिति जो उसने अभी कपिल की देखी—या ऐसा बच्चा वह किसी क़ीमत पर नहीं चाहता।

"सब प्रिकॉशन-विकॉशन रखे रह जाते हैं; जो होना होता है, होकर रहता है। सूरजजी बेचारे इन सब बातों को क्या जानें—लेकिन अब आप आये हैं इस लाइन में, देखेंगे आपको।" यथा-सम्भव स्वर के तीखेपन को दबाकर कपिल मुस्कुराया। कुछ रुककर उसने दहाड़ कर आवाज दी—"सुधा !"

सुधा पर्दे के पास तक आ चुकी थी; लेकिन कपिल ने उसे झिड़का—"खाना खिलाती हो या मजाक़ करती हो। किसी को कुछ ज़रूरत है या नहीं, इसकी कोई चिन्ता ही नहीं।

और जैसे खाने का मज़ा एकदम खत्म हो गया। शरद और सूरजजी दोनों ने मना कर दिया। सूरजजी सिर झुकाये खारहे थे—शायद अपनी ग़लती उन्होंने महसूस की। चुपचाप अपनी-अपनी थालियों का शेष सामान खत्म करने में दत्तचित्त हो गये। चारों तरफ़ एक मौन था जो बड़ा घना और बोझिल होता जा रहा था। आखिर शरद ने, स्वयं खाना खत्म करके यह राह देखते हुए कि दूसरे भी खालें, खुद ही इस मौन को तोड़ा—"आप निश्चित रहिये, जहाँ तक मुझसे हो सकेगा, मैं इसे अवश्य ही करा दूँगा।"

"नहीं, कोई खास ज़िद नहीं है—अगर आसानी से हो सके तो ठीक है, वर्ना छोड़िये।" कपिल ने अन्तिम ग्रास खाकर पानी का गिलास मुँह से लगाये ही उठते हुए कहा।

"खाना आज कुछ ज़्यादा खा लिया।" सूरजजी बोले। उन्होंने एक ऐसी बात कह दी है जो कपिल को काफ़ी चुभ गई है इसे खुद अनुभव करके वे उसके प्रभाव को कम करना चाहते थे—इसलिये कपिल को प्रसन्न करने के लिये प्रशंसा के स्वर में बोले—"शरद बाबू, आपने मथुरा के चौबों के बारे में एक क़िस्सा सुना है ?"

"नहीं।" शरद ने उत्सुकता से कहा। शायद सूरजजी के क़िस्से से वातावरण का बोझ और आपस का अदृश्य-तनाव कुछ कम हो।

कपिल भी रुक गया—सूरजजी की ओर मुंह करके।

"तो सुनिये।" सूरजजी ने आनन्द में आकर कहा—"एक चौबेजी कहीं दावत खाने गये, वहां उन्होंने इतना खा लिया, इतना खा लिया कि चलना मुश्किल; आंखें झपकती जाती थी, पेट बीच में आ गया था इसलिये सड़क नहीं दिखाई देती थी—अब गिरे, अब गिरे की चाल थी। खैर साहब, किसी तरह घर आकर लगे—पत्नी से बोले 'जल्दी से बिस्तर तैयार करो।' पत्नी इस बात को जानती थी, उसने लड़के की बहू से कह दिया, 'जल्दी खाट-वाट बिछा दे, तेरे ससुर आ रहे होंगे।' अब बहू बड़बड़ाती जा रही है, और बिस्तर बिछा रही है—'हमारे तो करम फूट गये। मां-बाप ने क्या देखकर हमें यहाँ दे दिया। जिन्दगी खुवार हो गयी। कुल-खानदान कुछ भी तो नहीं देखा। कैसे होगी।' सास ने सुना तो बहू से पूछा, 'क्या बात है?' बहू ने रुआंसे-से स्वर में कहा—'कुछ नहीं अम्माजी, अपने भाग्य को रो रही रही हूँ। हमारे मां-बाप ने तो कुछ भी नहीं देखा। उन्होंने तो ऊँचे चौबे समझ कर हमारी शादी यहां की और यहाँ'—'यहाँ क्या?' सास ने बात काटकर पूछा। बहूने दुखित होकर कहा--'यह भी कोई खानेका तरीका है कि यहां बिस्तर लगे। हमारे बाप को तो वहीं से बिस्तर पर रखकर लाते थे।'" सूरजजीने अपनी बात का निष्कर्ष निकाला—"सो बन्धु, यही कुछ स्थिति अपनी है। अब तो तबीयत होती है बिस्तर यही लग जाय।"

शरद और कपिल दोनों ठहाका लगाकर हँस पड़े। काफ़ी देर हँस चुकने के बाद शरद बोला—"सचमुच, यह है तो भगवान का अन्याय ही, ऐसे किसी मौक़े-बेमौक़े के लिये उसे एक दूसरे पेट का प्रबन्ध और करना चाहिये था—।" शरद समझ गया यह अप्रत्यक्ष रूप से कपिल के खाने की प्रशसा हो रही है। इसलिये उसने भी मज़ाक में सहयोग दिया।

"नहीं, फिर तो रावण की तरह कई मुंह भी देने पड़ेंगे--एक से खात-खाते थक गये तो फिर दूसरे से खाने लगे।" सूरजजी बोले।

सुधा काँच के जग को फिर भर लाई थी। यह सब लोग बाहर उस सँकरी गली में निकल आये। कपिल ने सबके हाथ धुलवाये—और बाद में अपने कन्धे पर पड़ी तौलिया सबको दी। जब सब पुनः कमरे में लौटे तबतक सुधा सारी थालियाँ उठा ले गयी थी और इस समय क़लई की एक आयताकार तश्तरी में पान इत्यादि ला रही थी। कपिल ने उसके हाथ से तश्तरी लेकर सब की ओर पान बढ़ाये। सुधा तश्तरी लौटा ले जाने के लिये खड़ी रही, उसने कहा—"भाई साहब, भाभी जी ने फिर पूछा है आपको कितनी देर लगेगी?"

"उन्हें जल्दी क्या है?" कपिल ने इस बार शरद की ओर देखा। कहीं उन लोगों का कुछ और तो प्रोग्राम नहीं हैं।

"अभी चलते हैं बस, दस मिनट में। उनसे कहदो, दस मिनट में आ जायँ।"

आश्चर्य शरद को भी था—आखिर जया इतनी जल्दी क्यों मचा रही है। घर पर तो कोई काम है नहीं—फिर क्या कुछ खास बात है? कहीं पद्मा से तो कोई समय निश्चत नहीं कर रखा। उसकी इच्छा हुई बुला कर पूछे। सूरजजी अपने पान के विविध मसाले एक-एक करके मुँह में भरे जा रहे थे।

"सूरजजी, सच पूछा जाय तो खाने के काम में लेते हों या न लेते हों; लेकिन मुँह तो हम लोगों के अभी भी दो-दो तीन-तीन है।" कपिल ने मुँह में पान भर कर सिगरेट जलाई और 'गोल्ड-फ़्लेक' का डिब्बा बीच की मेज पर फेंक दिया कि उठा कर जो चाहे, पीले। आगे कपिल ने कहा—"हम लोग सिद्धान्त और आदर्श की तो ऊँची-ऊँची बातें बघारते हैं; लेकिन सच देखा जाय तो हमारे व्यवहार क्या हैं? मित्रों में बैठकर हम कुछ कहते हैं और अपने मालिकों के सामने कुछ और। लिखते कुछ और हैं, और सोचते कुछ और हैं।"

शरद और सूरजजी समझ गये—यह उनकी बात का क्षोभ है, जो अब एक बहुत निर्बल-सूत्र पकड़कर अपने को अभिव्यक्त कर रहा है। सूरजजी बात के लक्ष्य और आशयको समझे; और जैसे नासमझ बनकर बोले—"इस तरह के कई मुँह होना किसी का शौक़ नहीं है, कपिल साहेब! यह आज के समाज की विवशता है, उसने मनुष्य के व्यक्तित्व को इस तरह कई हिस्सों में ताड़ दिया है कि वह किसी भी ओर अपनी पूर्ण-निष्ठा नहीं दे पाता। हम समझ नहीं पाते कि हमारे व्यक्तित्व का सच्चा हिस्सा कौन-सा है। अभी मैंने एक मज़ाक़ पढ़ा था। बच्चे को मास्टर ने बताया कि देखो, 'ब्रह्मा के चार मुँह हैं।' उसने बड़ी चिन्ता-पूर्वक पूछा—'तब तो जब वह सोता होगा तो उसका एक न एक मुँह जरूर दबता होगा।' सो बन्धु, कई मुँह होना हमारी विवशता है—लेकिन ध्यान हमें यह रखना हैं कि कहीं वे इतनी दूर न पड़ जायें कि हमारा एक मुँह जब सामने हो तो दूसरा दबे, या ठीक उसकी विरोधी दिशा में पड़ जाय।" सूरजजी ने अपने प्रहार को ज़रा और भी साफ़ किया—"यह स्थिति वास्तव में बड़ी भयावह है कि सड़क बाज़ार सभी जगह हम जिन-लोगों का मज़ाक़ उड़ाते हैं—गाली देते हैं, सामने आनेपर या मतलब पड़ने पर हम उनके पैरों तक पर झुकने पर को तैयार हो जाते हैं।" अभी तक पान को दाढ़ के नीचे दबाये-दबाये सूरजजी बातकर रहे थे, अब उन्होंने ढेर-सा तम्बाकू ऊपर मुँह उठाकर चुटकीसे भर लिया।

कपिल तिलमिला उठा। प्रहार लगभग सीधा था। वह जैसे विक्षुब्ध होकर कह उठा—"सूरजजी, मैं पूछता हूँ यही बात कहाँ नहीं है? आप किसी एक को इसके लिये गाली कैसे दे सकते हैं? आप अपने को भी तो देखिये—आप क्या वही सब करते और लिखते हैं जो चाहते है? आज क्या आपने मन्त्रीजी के विषय में वही बातें लिखी हैं जो आपने कहने की आवश्यकता समझी है? आप जो अपने को क्रान्तिकारी और समाजवादी कहते हैं।—क्या सचमुच वही व्यवहार करते हैं—वही बातें कहते हैं? मैं कहता हूँ, आप समस्याओं से भागते हैं—वास्तविकता

से भागते हैं। आप हद दर्जे के पलायनवादी और भाग्यवादी हैं। निश्चतरूप-से मुझे तो यह लगता है कि जिन्दगी में आपके कोई सिद्धान्त नहीं है। आपकी सारी तेज़-तर्रारी एक अवसरवादिता के सिवा कुछ नहीं है।" कपिल की आवाज़ तेज़ हो गयी थी। उसे पता नहीं था वह क्या कह रहा है।

दरवाज़े तक जाकर मुँह की पीक को आवेश मे थूक कर सूरजजी ने बड़े बेमुलाहिज़ा स्वर में कहा—"आप तो सूरजजो को सिर्फ तीन 'वादी' ही बता कर रह गये—कुछ और 'वाद' शायद आपके शब्दकोश में हैं नहीं ?" फिर अपने आप को भरसक शान्त, लेकिन वाणी की तेजी को क़ायम रखते हुए बोले—"जैसे आपने मुझे पलायनवादी-भाग्यवादी और अवसरवादी कहा न, ठीक वैसे ही कुछ लोग कम्यूनिस्ट होने का फ़तवा सूरज पर चिपका देते हैं तो वो क्या करे ? मुझसे पूछें तो मे कोई वादी नही हूँ ! मैं अनारकिस्ट था और निहिलिस्ट यानी शून्यवादी हो गया हूँ। ज्यादा प्रतिक्रिया हुई तो शायद फ़ासिस्ट हो जाऊं।" और अपने ही व्यंग्य से उनका चेहरा विकृत हो उठा—"मैं जानता हूँ, यह सब कुछ आप नहीं कह रहे—मेरा वह रिमार्क कहलवा रहा है। और जब मैंने वह बात कही थी तब मुझे अफसोस था—मगर अब ?—अब कोई अफसोस नहीं है, क्योंकि वह बात ठीक है।"

शरद कभी कपिल को देखता, कभी सूरजजो को। समझते और मन-ही-मन अनुभव करते हुए भी यह विक्षोभ उसे बड़ा अस्वभाविक और अप्रत्याशित लगा। एक क्षण को तो उसकी इच्छा हुई कि दोनों को लड़ता छोड़कर भाग खड़ा हो। उसे बड़ी ऊब लग रही थी।—यह सब क्या हो रहा है। वह देखता रहा, शायद दोनों अगली बात पर शान्त हो जायेंगे, लेकिन ऐसे कोई लक्षण दिखाई नहीं दिये। उलटे ऐसा लगा जैसे बात प्रतिक्षण कड़ी और ज़हरीली होती जा रही हैं। उसने व्यक्तिगत बात को साधारण के स्तर पर लाने का प्रयत्न करते हुए कहा—"मिस्टर कपिल, और सूरजजी मैं आपसे भी कहूँगा, कि बात को इतने व्यक्तिगत-स्तर पर लाने की ज़रा भी ज़रूरत नहीं थी। सचमुच वास्तविकता तो यह है कि हम सब टूटे हुए व्यक्तित्व के लोग हैं—हमारे स्वाभाविक-गठन और व्यक्तित्व को कुछ इस तरह मरोड़ दिया गया है, जैसे गीली मिट्टी से बनी सुन्दर मूर्ति को कोई अत्यन्त निर्दयता से मरोड़ डाले। इस तरह की कुछ हमारी सूरतें हो गई हैं। हम देखते कहीं हैं, चलते कहीं हैं, और वास्तविकता कुछ और है। और हम इतने मुड़े-तुड़े हैं कि अपनी सारी शक्तियों को कहीं एक जगह केन्द्रित भी नहीं कर पाते, इसलिये भटकते-लड़ते हैं, और कष्ट पाते हैं। एक दूसरे को दोषो ठहराते हे। मैं अपनी ही बात कहूँ, विवाह मे पहले हमने और जया ने स्त्री और विवाह समस्या पर जिस तरह के स्वप्न देखे थे, जिस तरह की बातें की थीं, क्या उन्हें आज मैं निभा पाता हूँ ? मैं कहता हूँ, मैं नहीं निभा पाता। इस जीवन में नहीं निभा पाता, नहीं निभा सकता। हर जगह समझौता करना पड़ता है, हर जगह झुकना पड़ता है; वर्ना क्या करें ?—कहाँ जाँय ? यों गोर्की

ने लिखा है कि समझौते से बढ़कर दुनियां में कोई ऐसी चीज नहीं है जो मनुष्य की आत्मा को तोड़ती हो—कमजोर बनाती हो। लेकिन अब आत्मा को देखें या जिन्दा रहें ?" लेकिन शरद अपनी बात अधिक नहीं चला पाया—क्योंकि बीच में सोचने के बहाने जैसे ही उसने रुककर इधर-उधर दोनों की ओर देखा—इन पर क्या प्रभाव पड़ रहा है, तभी पर्दा हटा कर सामने जया आ गई। पर्दे से निकल कर उसने भीतर की ओर मुंह करके पर्दे तक छोड़ने आनेवाली महिला को प्रणाम किया—होठों पर मुस्कान आयी और ग़ायब हो गयी। शरद ने चकित होकर उस ओर देखा—पता नहीं जया को चलने की क्या जल्दी है। बात को बीच में ही रोक कर वह उठ खड़ा हुआ, बोला—"अच्छा, कपिल साहब, शेष बातें फिर कभी करेंगे। आज के स्वादिष्ट भोजन और आपके कष्ट के लिये बहुत-बहुत धन्यवाद।"

"छोड़िये, आप भी क्या फ़ॉर्मैलिटीज़ में पड़े हैं।" पिछले कड़वेपन को घूंट भर पीकर वह बलात् मुस्कुराया—"अभी बैठिये, जल्दी क्या है ?"

"नहीं, चलेंगे अब।" शरद ढीले पाजामें को ज़रा और ऊपर खिसका कर बोला—"अगर आप कुछ ग़लत अर्थ न लगायें तो मैं भी कहूँगा कि खाना और दिनसे ज़्यादा खा लिया।"

"क्या इसे प्रशंसा समझा जाय ?" कपिल जोर से हँस पड़ा।

सूरजजी चुप रहे। सब लोग बाहर निकल आये।

"आइये—आपको गली के मुँह तक छोड़ आयें।" कपिल बोला।

"अब आप बैठिये—आराम कीजिये। तकल्लुफ़ में क्या रखा है।" शरद अत्यधिक नम्रता दिखाकर जैसे सूरजजी की ओर वे पैदा हुई कड़वाहट को भी भुला देना चाहता था—"हाँ, तो आप कल आ रहे हैं ?"

"देखियेऽ।" अन्यमनस्क स्वर में कपिल ने उत्तर दिया।

"देखिये क्या होता है ?—कल आप ज़रूर आ रहे हैं।" शरद के मुंह पर आकर पल्लो को साथ लाने की बात रुक गयी—माथे तक हाथ जोड़कर उसने मुड़ते हुए कहा—"अच्छा, अब आप बैठिये, नमस्कार।"

जया सबसे आगे जाकर खड़ी हो गयी थी—मानो उसे जाने की सबसे अधिक जल्दी हो। उसने वहीं से मुड़कर नमस्कार किया। सूरजजी एक हाथ जेब में ठूंसे और एक में टॉर्च लिये हुए बिल्कुल निर्लिप्त की तरह गली के दोनों ओर के बन्द किवाड़ों या ऊपर तक चले जाते मकानों और गौखों को देख रहे थे। गली के मोड़ वाले कोने में हाथ-भर की छड़ के सिरे पर लटका लट्टू छोटे-छोटे भुनगों और कीड़ों से घिरा जल रहा था। लगभग पूरी गली शान्त थी। चलते-चलते उन्होंने बिना किसी को लक्ष्य किये हुए ऐसी लापरवाही से एक हाथ माथे की ओर फेंका—जैसे दीवार को नमस्कार कर दिया हो। कपिल ने लौटकर दरवाज़े के भीतर जाते हुए पूरी ताक़त से सिगरेट के बचे हिस्से को नाली में फेंका और जोर से किवाड़ बन्द

कर लिये।

मोड़ सभी लोगों ने चुपचाप ही पार किया। केवल चप्पलों और जूतों के बजने की आवाज़ें गली की ऊबड़-खाबड़ ईंटों से आती रहीं। गली अनेक दुर्गन्धियों के विभिन्न मिश्रण और सीलन से भरी थी। थोड़ी-थोड़ी देर में कभी भीतर और कभी बिल्कुल गली के किनारे ही रेडियो की आवाज़ सुनाई दे जाती थी। नीचे के हिस्से अक्सर बन्द थे, और दूसरी मंजिलों में रोशनियाँ थी। इस सब वार्तालाप, जया भिचें हुए होंठ और कठोर मुख-मुद्रा को लक्ष्य करके शरद बड़ा उद्विग्न था—जया की भवें अस्वाभाविक रूप से ऊपर तनी हुई थीं, और माथे पर दो-तीन सिकुड़नें पैदा कर रही थी। इस समय उसे सूरजजी का साथ अधिक अच्छा नहीं लग रहा था। उसकी इच्छा हो रही थी, उन्हें रुक जाना चाहिये। वैसे वह अपने में डूबे हुए सिर झुकाए चले जा रहे थे। वे सबसे आगे थे।

शरद ने जया के पास आकर पूछा—"क्यों, क्या बात है? कुछ तबियत खराब हो गयी क्या?"

जया ने सिर हिला कर इस तरह का भाव दिखाया जैसे वह अधिक नहीं बोलना चाहती। उसने गली की ओर मुड़कर ज़रा झुक कर ज़ोर से नाक साफ़ की और रूमाल से इतनी ज़ोर से पोंछा कि नथुने लाल होकर फड़कने लगे।

"बताओ न?" शरद ने अनुरोध से पूछा।

अनिच्छा दिखाकर जया ने अपनी चाल तेज़ कर दी।

मुँह के पान को बीच सड़क पर ज़ोर से थूक कर सूरजजी ने कहा—"देखा, लोग कितनी जल्दी बैलेन्स छोड देते हैं। जब तुममें सुनने की शक्ति नहीं है, तो कहते ही क्यों हो कोई बात?"

शरद जया से पूछना चाहता था लेकिन बीच में ही उसे सूरजजी की बात का जवाब देना पड़ा—"लेकिन सूरजजी, ग़लती आपकी भी थी, आपको इतनी जल्दी उत्तेजित नहीं हो जाना चाहिये था। सुनकर आप टाल भी सकते थे।"

"मेरी ग़लती?" सूरजजी ने मुड़कर पूछा—'सूरज की ग़लती हो आप बताइये? मैंने कुछ ग़लत कहा? आपने खुद नहीं सुना, एक मिनट पहले ही कैसी बातें कर रहा था? बनने को ऐसा फ़ॉरवर्ड बनता है—इसकी मिसेज़ के साथ वहां गया, उसकी मिसेज़ के साथ वहाँ गया। बोलो, जब मिसेज़ सिंह से तेरे ऐसे ही सम्बन्ध हैं तो क्यों इस-उसकी खुशामद करता फिरता है?—क्यों नहीं उसीसे कहलवा देता? लेकिन वहां तो 'ऐरिस्टोक्रैट' के चाचा बने रहेंगे।" विद्रूप से उनकी वाणी काँप रही थी।

"अरे सूरजजी, सब चलता है। देखिये कमज़ोरी हर आदमी में होती है—।"

"ठीक है। फिर दूसरे की कमज़ोरी पर इतनी चिल्ल-पों मचाने की क्या ज़रू-

रत है ?" सूरजजी ने बात काटी—"यों तुम भरे बाज़ार में देशबन्धुजी को गाली देते हो लेकिन दूसरी साँस में ही उनके आगे दुम हिलाने की इच्छा प्रकट करते हो। इसका सीधा मतलब तो यह हुआ कि तुम्हारी गालियां सिर्फ तुम्हारी ईर्ष्या और असफल इच्छाओं का इज़हार हैं, वर्ना मन-ही-मन चांस तुम भी वही खोजते हो जिसपर दूसरे को गालियां देते हो—यह नैतिकता है ? हुँ:ह·····" कह कर सूरजजी फिर चुप-चाप चलने लगे। शरद ने एक क्षण राह देखी कि यदि सूरजजी का उफान शान्त हो तो वह फिर जया से उसकी इस अस्वस्थता का कारण पूछे। लेकिन आठ-दस क़दम उस टेढ़ी-मेढ़ी; लेकिन पहले की अपेक्षा अधिक चौड़ी गली में चलते हुए जो सामने मुख्य सड़क में खुल गयी थी—सूरजजी बोले—"लेकिन तुम्हारी बात मुझे पसन्द आई। सचमुच आज की समाज-व्यवस्था में जीवन का संघर्ष इतना विषम और कठिन हो गया है कि स्वतन्त्ररूप से आपके व्यक्तित्व का विकास हो ही नहीं पाता। व्यक्तित्वके किसी हिस्सेपर अँकुश रखकर, किसी को कुचलकर, किसी अनावश्यक हिस्से का ज़बर्दस्ती विकास करके आपको अपनी इच्छा के विरुद्ध उसे तोड़ना-मरोड़ना और ढालना पड़ता है। आप साफ़ बात कहना चाहते हैं, अन्याय का विरोध करना चाहते हैं—लेकिन कुछ बातें सोचकर आपको चुप रहना पड़ता है, सब कुछ कह दें तो पता नहीं कल पागलखाने में होंगे, या सड़क पर भीख मांग रहे होंगे। ज़िन्दगी हमारी कितनी विकृत हो गयी है ? यह सब क्यों होता है, पता है ?" सूरजजी ने सोचकर पूछा।

"समझौता—अपनी इच्छा के विरुद्ध समझौता।" सूरजजी को उसकी बात पसन्द आई इसलिये उत्साह से शरद ने कहा।

"सो तो है ही।" फिर कुछ क्षण चुप रहकर उन्होंने अपनी फैली उँगलियों वाले हाथों को इस तरह करके कहा, जैसे अदृश्य-वस्तु को पकड़ कर ला रहे हों—"मैं बौद्धिकता के विरुद्ध नहीं हूँ, लेकिन फिर भी मुझे ऐसा अनुभव होता है कि इस बौद्धिकता ने हमारे सारे विश्वासों की जड़ें हिला दी हैं, जैसे हमें कुएं से निकाल कर बाहर उजाले में लाकर खड़ा कर दिया है। इस कुएं में हम सदियों से पड़े थे—और अब एकदम बाहर आकर इतने चकाचौंध हो गये हैं कि प्रकाशांध हो गये हैं। भगवान, धर्म, नैतिकता, समाज-व्यवस्था, आदर्श, सभी के प्रति एक अविश्वास, एक भयंकर अविश्वास हमारी नस-नस में समाया हुआ है—क्योंकि उस सबका हमने निर्मम रूप से विश्लेषण कर डाला है—और पाया है कि सचमुच हम बन्दरिया के बच्चे की तरह किन मरी हुई चीज़ों को और कैसे इतने अधिक समय छाती से चिपकाये रहे ? आखिर यह सब सम्भव कैसे हुआ है ?"

"तो आपका मतलब यह कि हम सब उन्हीं सड़ी-गली मान्यताओं से चिपके रहते ?" शरद ने बीच में ही पूछ डाला।

"नहीं, —यह अच्छा ही हुआ कि हमने उस सब मृत, घृणित और वीभत्स को

छोड़ दिया, अविश्वास से उन्हें एक ओर फेक दिया। वह भगवान, वह धर्म, वह नैतिकता—सब कुछ इतने मर चुके थे कि यदि हम उन्हे और भी चिपकाये रहते तो निश्चित रूप से हम भी मर जाते। लेकिन यह अविश्वास हमारे खून के रेशे-रेशे में इस तरह समा गया है कि अब किसी भी नयी बात को ग्रहण करते समय सामने आ खड़ा होता है। एक प्रश्न है, कि जो हमारे हाथ पकड़ लेता है: कही पुराने को नये से बदलने के जोश में हम पुराने से भी खराब तो नही लिये ले रहे? कहीं एक अन्धविश्वास को छोड़कर दूसरे में तो नहीं फँस रहे? इसलिये किसी भी नयी चीज को उन्मुक्त होकर ग्रहण नहीं कर पाते। फलत. हम जबानी सिद्धान्तों की बातें करते हैं; नयी नैतिकता की, नये आदर्श की बात करते है —नये समाज की बात करते हैं। और इतने जोर से करते है कि अपने चारो ओर एक भ्रम, एक माया-जाल बनाये रखना चाहते है—कि ये बातें सच है! उसी भाषा जाल में भूले रहना चाहते है, जैसे बच्चे धूल में खेलते हुए इतनी धूल उछालते हैं कि उसी में भूल जाते है। लेकिन सच पूछा जाय तो उनमें से एक भी सिद्धान्त, एक भी आदर्श पर हमें विश्वास नही है। अन्ततंम मे हमारे पास सचमुच कुछ भी ऐसा नहीं है जिसके लिये मर सकें—जिसके लिये सारे जीवन को हम धनुष की प्रत्यचा की तरह तानकर उस पर टूट पड़ें। कोई भी सपना हमारी आत्मा में ऐसा नही है जो हमारी कल्पना, हमारी आशा, हमारी बौद्धिक-चेतना और सारी निष्ठा को जकड़ कर रख ले, और जिसे लक्ष्य करके हमारा व्यक्तित्व एक नुकीले भाले-सा बन जाय। एक अनोखा दिग्भ्रम हमारे चारों ओर छाया हुआ है। वर्तमान ने हमारी कमर को ऐसा तोड़ दिया है कि किसी सुन्दर भविष्य की बात-सोचना असम्भव हो गया है, और जब हम भविष्य की बात सोचते है तो निश्चित-रूप से जानते हैं कि उस सुन्दर भविष्य तक हमें जीवित नहीं रहना है। कोई और है जो हमारी लाशो पर उगे हुए भविष्य के इन सपनों के फल खायेगा: हमारे लड़के—उनके लड़के, पता नही कौन है! लेकिन हम निश्चय ही नहीं हैं। यों अविश्वास ने हमारी एकाग्रता को—मानसिक एकाग्रता को तोड़ दिया है, और हमने बिल्कुल निश्चेष्ट की तरह अपने व्यक्तित्व को खण्ड-खण्ड में बिखर जाने की छूट दे दी है। इस तरह हमलोग जैसे अँधेरे और बन्द कमरों मे भटक रहे हैं—आँखों पर पट्टी बँधी है, और इधर-उधर टटोल रहे हैं। एक दूसरे को गालियां देते हैं। लेकिन आप सोचिये, इसमें सिर्फ़ एक या कुछ आदमी ही दोषी क्यो हो?" सूरजजी ने चलते-चलते रुक कर पूछा।

"सूरजजी मेरा विश्वास कुछ और है—" शरद ने काफ़ी ग़ौर से उनकी बात को समझते हुए कहा—"मैं आपके विश्लेषण से पूरी तरह सहमत हूँ, और मैं मानता हूँ कि अँधेरे कमरों में भटकते और टटोलते हुए हम अविश्वासी और निराश हो गये हैं, इतना ही शायद कहना काफ़ी नहीं होगा। मुझे तो ऐसा लगता है इस बौद्धिक अविश्वास और चारों ओर की वस्तुगत निराशा ने एक विचित्र-से अन्धविश्वास को

हमारे भीतर भर दिया है कि हमारे बीच में ही कहीं कुछ ऐसा चमत्कार हो जायेगा कि ये सारी अँधियारी और कष्ट के बादल धुएँ की तहों की तरह ग़ायब हो जायेंगे ; हम हो लोगों में कोई एक असाधारण चमत्कारी-व्यक्तित्व होगा, जो फूक से इन सारी विषम परिस्थियों को बिना खून-खराबे के बदलकर रख देगा। एक सुबह हमलोग उठेंगे और देखेंगे कि दुनियाँ एकदम बदली हुई है ; सारी विषमताएँ, और अव्यवस्थायें एकदम बदल गई हैं। और उस अनजान असम्भाव्य व्यक्तित्व के ऊपर ही हम सब अपने भाग्यों और कार्यक्रमों को छोड़ कर बैठे हुए हैं—क्या आप सचमुच कह सकते हैं कि इस तरह का अन्ध-विश्वास हमलोगों में नहीं है ?" मुख्य सड़क पर आते हुए शरद ने पूछा। ये लोग अब बाज़ार में थे, लेकिन इनकी सड़क जिस ओर जाती थी उस ओर दूकानें कुछ दूर दूर खुली थीं, और बाज़ार में भीड़ भी इस समय कम हो थी।

"मैं मानता हूँ कि इस तरह का एक अन्धविश्वास हम लोगों में है—और हम चांस अर्थात् परिस्थितियों के आकस्मिक-परिवर्तन के आधार पर ही सही, कम और बेश भाग्यवादी बने हुए हैं। कपिल ठीक कहता था मैं भी भाग्यवादी हूँ, लेकिन इसके साथ एक विचित्र अन्तर्विरोध यह है कि हमारी अन्तर्तम की सजग और सतर्क बौद्धिक-चेतना वास्तव में विश्वास उसपर भी नहीं करती। भले ही हम इस अन्ध-विश्वास को पाले रहें कि लैनिन और माओ जैसे प्रचण्ड व्यक्तित्ववाले किसी चमत्कारी पुरुष की अध्यक्षता में एक लाल फ़ौज—या मुक्ति-फ़ौज आकर हम सबको इस मकड़ी के जाले से छुड़ाएगी, और इसके लिये हमें करना कुछ नहीं है केवल शान्ति-पूर्वक उसकी राह देखनी है बैठकर ; लेकिन सच बात जैसी कि मैंने अभी बताई विश्वास हमें उसपर भी इसलिये नहीं कि आज की कोई भी सजग-बुद्धि ऐसे चमत्कारों पर विश्वास नहीं करती—कर नहीं सकती। इसलिये हम सब जानते हैं कि यह कुछ नहीं होगा, और स्थितियां हमारी बुरी से बुरी होती जाएँगी। साथ ही हम निरन्तर एक उत्कट द्वन्द्व मन ही मन अनुभव करते हैं कि कहीं-कुछ हो, कहीं कुछ हो। हममें से हरेक सोचता है कि ठीक है, कुछ विशेष और अनिवार्य-परिस्थितियाँ मेरे साथ हैं जिनके सामने मैं विवश हूँ, मुझे झुकना, समझौता और समर्पण करना पड़ता है—न चाहते हुए भी कुछ समय की मुसीबत कहकर अपने को उनके अनुकूल ढालना पड़ता है ; लेकिन हम झुँझलाते इसलिये हैं कि हम तो असमर्थ हैं ही, हमारा यह दुष्ट पड़ौसी, हमारा यह मित्र भी क्यों हमारी तरह ही कमज़ोर है, समझौता-पसन्द है ? उसमें क्यों नहीं इतनी हिम्मत है कि इन सबको जिसे वह और हम ग़लत समझते हैं, झुठला दे, इन सबके विरुद्ध जिहाद बोल दे। लेकिन चूंकि हम सब एक-से हैं इसलिये वह भी हमारी तरह से जकड़ा है। फलतः यह निष्क्रियता की ग्लानि झुंझ-लाहट बनकर फूटती है—हम उसी चीज़ के लिये जो हम करते होते हैं—दूसरे को कोसते हैं—गालियाँ देते हैं और उससे लड़ते हैं—और उस सबके पीछे हमारा सबका

विक्षोभ है ! मैं सचमुच इसमें किसी एक को दोषी नहीं ठहराता !" अपना यह निर्णय निकालकर सूरजजी का उद्वेग लगभग शान्त हो गया, और वह चुप होकर सोचने लगे।

"लेकिन सूरजजी, दिक्कत तो असल में यही है ; कल के भगवान पर हमारी ज़रा भी आस्था नहीं है, कल के धर्म को हम ढकोसले के सिवा कुछ नहीं मानते—कल के पाप-पुण्य की परिभाषाएं ओछी और छिछली हो गयी हैं, और आनेवाले कल पर भी हमें कोई विश्वास नहीं है—क्योंकि, कल होगा भी या नहीं इस पर ही हमारा विश्वास नहीं है—और उस समय तो यह विश्वास और भी ध्वस्त हो गया है जब पूंजीवाद और हाइड्रोजन-बम का गठबन्धन हो गया है—क्योंकि हम जानते हैं पूंजीवाद एक ऐसी मरती हुई शक्ति है जो अपने बचाव के लिये—या कहना चाहिये अपनी आसन्न-मृत्यु से—इतनी भयभीत हो उठी है कि उसे बचने का तरीक़ा एक मात्र यही दीखता है कि हाइड्रोजन-बम फोड़ कर खुद अपने कपड़ों में आग लगाकर मर जाय, इस तरह पूंजीवाद के साथ कोई भी ईमानदार बुद्धिजीवी आना नही चाहता ; दूसरी ओर कम्यूनिज्म से वह डरता है, क्योंकि उसे वह समझता नहीं है और जितना कुछ समझता है वह एक हौए के रूप में। इसलिये कोई एक बीच का रास्ता वह खोज डालना चाहता है, त्रिशंकु की तरह लटकता है और सबसे अलग रास्ते के राग अलापता है ; या पुनरुत्थानवादी हो जाता है, अपनी सारी वर्तमान समस्याओं के हल अतीत में खोजता है। जैसे खेल-खेल में किसी लड़के की कॉच की गोली कोई दूसरा बच्चा निगल जाय और वह उसकी छाती पर चढ़ जाय, उसके मुँह में उँगली डाले, मारे, दबोचे 'ला मेरी गोली—ला मेरी गोली।' ठीक वैसे ही ये लोग इतिहास को मरोड़ते हैं, उसे सीधे वैज्ञानिक विकास-क्रम में देखने की बजाय उलटी-सीधी तोड़-मरोड़ करते हैं और जैसे हरबार ऐसा करते समय वह पूछते हों—'निकाल आज की समस्या का हल—निकाल आज की समस्या का हल।' शेष किन्हीं अनोखे सपनो—अनोखे भगवान बनाने की उलझनों में फँसे होते हैं। लेकिन भीतर से बीमारी सबकी एक है—एक कसक है जो सबको इधर-उधर भटकाती है। जमने नही देती। समझ में नही आता क्या किया जाय, किस दुर्ग का द्वार है जिसपर चोट की जाय और कौन वह भीम होगा जो उसे एक चोट में तोड़ेगा।" शरद गम्भीर-चिन्तन में पड़ा हुआ जैसे बहता चला गया—उस क्षण वह बिल्कुल भूल गया कि अभी जया की व्याकुलता और व्यथा को वह बाँटना और जानना चाहता था।

लेकिन जया बिल्कुल भी नहीं भूली थी और उसका मन इन बेकार की बातों (कम से कम उसने उस क्षण यही समझा) में ज़रा भी नहीं लग रहा था। एक गोला था जो उसके कलेजे से उठकर गले में अटक जाता था और साँस लेनी मुश्किल हो जाती थी। अभी सुने शब्द गोलियों की तरह उसकी छाती में घुस गये थे और

अब रग-रग जलाये दे रहे थे। वह उन्हें शरद से कह कर अपनी जलन की व्यथा को कम करना चाहती थी लेकिन कम्बख्त सूरजजी साथ थे। बार-बार न चाहने पर भी सब कुछ अपमान की प्रताड़ना बनकर उसको आँखों के आगे आ जाता।

पर्दे के भीतर जैसे ही उसने पाँव रखा, उसे लगा जैसे उसने एक बिल्कुल अलग दुनियाँ में क़दम रखा हो।

दूसरे कमरे में बड़ी हल्की ताक़त का बल्ब जल रहा था और यह कमरा लगभग बैठक की तरह का था। पहले क़दम पर जया की ठोकर एक काठ के खिलौने से लगी—उसने झुककर उसे उठा लिया—लकड़ी का एक घोड़ा था जिसके पूँछ-कान, पहिये इत्यादि सब टूटे हुए थे ओर गले में एक रस्सी का टुकड़ा—जो मैल से जैसे लदा हुआ था, बँधा था। उसे छूते ही जया के हाथ में चिप-चिपा, चिप-चिपा-सा कुछ लग गया। शायद बच्चों की लार-थूक इत्यादि लगते रहने से यह उसका स्थायी गुण हो गया था।

"यह हमारा खिलौना है!" कहकर अमिताभ ने उसे ले लिया। इस कमरे में खाट पर एक और ढेर-से बिस्तर रखे थे, और उसके पास ही बड़े ऊँचे तक संदूक़े चुनी हुई थीं। अलगनी पर इतने कपड़े लटके हुए थे कि उनके पार कुछ देख पाना असम्भव था। जया ने जब यह कमरा पार कर लिया तो अपने को एक ऐसे चौक में पाया जो दो तरफ़ बरामदों से घिरा था—यह बरामदे चौक से आधी-आधी फ़ुट की ऊँचाई से यह शुरू होते थे। एक ओर जो दरवाजा बना था उसमें से निकलते हुए धुएँ और वहां की कालिमा इत्यादि से अनुमान लगाया जा सकता था कि वह चौका है। चौके के बगल में ग़ुसलखाने-नुमा स्थान में दीवार में लगा नल दिखाई दे रहा था। चौक के दूसरी ओर दो-एक दरवाज़े और ऊपर जाने के लिये ज़ीना था, शायद बाहर निकलने के लिये सीधा रास्ता भी था। ऊपर एक लोहे का जाल या टट्टर डला था, और वहां स्त्री-पुरुषों, बच्चों के हल्ले-गुल्ले से स्पष्ट था कि कोई दूसरा परिवार है। सामने वाले बरामदे में एक खाट पड़ी थी, और उसके आधे-लटकते कपड़ों में कोई बच्चा लेटा हुआ था। यहीं भीतर जाने को दरवाजा था, और जब जया चौक में आकर इधर-उधर देखने लगी तो इसी में से किसी महिला का शरीर आता दिखाई दिया। बरामदे के दूसरी ओर खाटें खड़ी थीं—कुछ घड़े, डिब्बे, डलिया सूप और चौक के किनारे ही एक ओर पीने का पानी इत्यादि रखे थे। चारों ओर पूरे घर में कहीं कोई गन्दे कपड़े का टुकड़ा, कहीं पानी फैलाता हुआ लुढ़का-गिलास, कहीं औंधा जूता और कहीं डिब्बे-डिबिया-सी पड़ी थीं। जया को यह सब बड़ा

घुटा-घुटा-सा लगा—हालाँकि चौक का बल्ब काफ़ी तेज़ था।

महिला बरामदे में आ गई तो जया ने बड़ी शालीनता से नमस्कार किया। उनकी गोद में बच्चा था, और उसे वह इतनी गन्दी गद्दी में पोटली की तरह बन्द किये थीं कि जया को उबकाई-सी आने लगी। गहरे हरे रङ्ग की रेशमी इधर-उधर से ढीली सीधे-पल्ले की साड़ी और गुलाबी नैनसुख का जम्पर। गले में तीन लड़ की सोने की माला, हाथों में नाखूनों तक डूबी हुई मेहदी के बाद अँगूठी, सोने के दस्तबन्द पाँवों की उँगलियों में सोने की चुटकी जो चलने में बजती थी। कमर में तीन-चार लड़ की ही तगड़ी सुन्दरता इत्यादि का काम कम देती थी, फिसलनी साड़ी को साधने का अधिक। महिला का रङ्ग गोरा था, और सिंदूर की मोटी रेखा बड़ी दूर तक चली गयी थी। आँखों में लगे काजल का चिकनापन आँखों को चिपचिपा-सा बनाये हुए था, माथे के बीच में गोल-बिन्दी, कानों में जड़ाऊ कर्णफूल। गाल फूले हुए, पतली-सी नाक और दबी हुई ठोड़ी, जिसके कारण दाँत कुछ बाहर निकले दिखाई देते थे, और आँख फूले गालों के कारण गड्ढों में घुसी-सी लगती थी। स्त्री ने मुस्कुराने की कोशिश करते हुए नमस्कार का उत्तर देने के लिये हाथ जोड़े लेकिन गोद में बच्चा होने के कारण उसके हाथों की उँगलियाँ कमर के पास ही एक दूसरे को छू सकीं। यहाँ तक आकर अभिताभ थोड़ी देर तो चुपचाप खड़ा रहा—फिर माँ के पीछे जाकर छिप गया। नमस्कार करने के बाद दोनों एक दूसरे की ओर देखकर मुस्कुराईं। वे जैसे शरमा गयीं—कुछ देर दोनों को लगा कि अब बातचीत बिना किसी मध्यस्थ के कैसे शुरू की जाय। लेकिन जया ने ही परिचयकी अत्यन्त प्रसन्नता दिखाकर कहा—'आपकी तबियत ठीक है?"

'हमारी तो ठीक है, लेकिन इसकी—" उन्होंने यहां बाँह के बच्चे को ज़रा ऊपर उठाकर कहा—"दाँत निकाल रहे हैं, रात-रात भर तङ्ग करता है।"

जया प्रतीक्षा कर रही थी कि वे उससे बैठने को कहेंगी; लेकिन इसकी ओर जैसे उनका ध्यान ही नहीं था। जया पहली ही निगाह में समझ गयी कि महिला अशिक्षिता है। उसने बैठने की कोई चीज़ इधर-उधर देखते हुए कहा—"क्या उम्र है?"

'अभी छः महीने का भी कहां है पूरा?" अत्यन्त शिकायत भरे नाक के स्वर में उन्होंने बताया, और ज़रा-सा कपड़ा हटाकर उसकी सूरत दिखाई। छोटे-से गोल गुलाबी मुँह पर, आँखों और माथे पर लगे तीन काजल के धब्बे, और गले में पड़े दो-तीन मोती के दाने दिखाई दिये। जया को बच्चा बड़ा प्यारा लगा। वह चौक में खड़ी थी, और वे बरामदे में। सुधा चौके में चूल्हे पर कुछ भून रही थी। जया ने बुरी तरह ऊबते हुए उधर देखा—उसके चेहरे पर प्रश्नात्मक भाव आ गया।

"हमारी ननद हैं।" प्रोफ़ेसरनी ने कहा। जब जया ने काफ़ी देर खड़े रहने के कारण पैर बदले तो न जाने कैसे उन्हें याद आ गया कि बैठने के लिये कहा

जाय । कहा—"बैठो न !" उन्होंने बैठने की चीज़ के लिये इधर-उधर देखा। जया ने भी नये सिरे से देखा और बोलो—"नहीं-नहीं, कोई बात नहीं है।"

"बेटा अम्मू, चाची को बैठने को मुढ़िया ले आओ।" पीछे खड़े अमिताभ के सिर पर प्यार से हाथ रखकर प्रोफ़ेसरनी बोली; लेकिन वहाँ से हिली नहीं।

जया को लगा वह बेकार भीतर चली आई है। इससे अच्छा तो वहीं बैठती। उसने कहा—"नहीं ज़रूरत क्या है, किसी पर बैठ जायेंगे।" उसने दीवार के सहारे खड़े काठ के पटरे की ओर देखा, वह उधर बढ़ी।

"मैं दिये दे रही हूँ।" प्रोफ़ेसरनी ने घूमकर पांव से पट्टे को गिरा लिया. और जया की ओर सरका कर कहा। पाँव में महावर की मोटी रेखा के ऊपर चाँदी के तोड़िये थे।

जया उसपर बैठ गयी। प्रोफ़ेसरनी कमरे के दरवाज़े की चौखट पर टाँग फैला कर बैठ गयी और बच्चे को जाँघ पर लिटा लिया।

जया ने पूछा—"कितने बच्चे हैं ?"

"यह तीसरा है। सच बहनजी, मुसीबत हो जाती हैगी—दो लड़के है; और एक लड़की है।" प्रोफ़ेसरनी की इस शिकायत में भी उनकी कोख की सुफलता के आनन्द की अभिव्यक्ति थी—"तुम तो अभी इन सबसे बरी होगी ?" वे मुस्कुराईं।

जया लाल हो गयी। वह एकदम गर्दन मोड़कर दूसरी ओर देखने लगी। न जाने कहां से निकल कर महरी पीने के पानी के पास सिल पर धनियाँ पीस रही थी। जया उसका धनियाँ तोड़ना देखती रही। सिल पर हरे धनिये का ढेर था।

"नई शादी हुई मालूम पड़ती हैगी ?" अनुभवी की तरह प्रोफ़ेसरनी ने पूछा—"कितने दिन हो गये ?"

"दो-तीन महीने।" जया ने टालने के लिये कह दिया। यों यह एक स्वाभाविक प्रश्न था, लेकिन जया को प्रोफ़ेसरनी के इस प्रश्न में कुछ ऐसा तीक्ष्ण-तिक्त लगा जैसे वह तहक़ीकात कर रही हों।

"बस ?" और गम्भीरता से पूछा—"क्या-क्या दे दिया तुम्हारे पिताजी ने ?" लेकिन यह प्रश्न पूछते समय उनके होठों के कोनों पर ऐसा महीन मुस्कान-मय व्यग्य था जिसे वे अभिव्यक्त भी होने देना चाहती थी, और दबा भी रही थीं।

जया एकदम हकबका उठी. इस प्रश्न का क्या उत्तर दे। वह थोड़ी देर चुप रही—जैसे वह महरी को देखने में अधिक व्यस्त है, और उसने प्रोफ़ेसरनी की बात नहीं सुनी। तब तक अमिताभ उसकी बग़ल में लटके हुए पर्स को न जाने कहाँ से आकर धीरे-धीरे खोलने की कोशिश करने लगा था।

"शादी में क्या-क्या मिला ?" प्रोफ़ेसरनी ने फिर पूछा। गोद का बच्चा कुनमुनाने लगा—वे ज़रा सीधी तनीं और अपना भारी-सा स्तन निकाल कर बच्चे के मुंह में ठूंसते हुए पूछा।

आखिर जैसे बड़ा साहस करके जया ने वाणी को भरसक स्वाभाविक-रूप देकर कहा—"हमलोगों ने शादी अपनी इच्छा से की है।"

"अच्छा!" कुछ विस्मय से कहकर प्रोफ़ेसरनी मुस्कुरायीं—जया को वह मुस्कान बड़ी गूढ़, बड़ी व्यंग्यपूर्ण, बड़ी व्यथा और ईर्ष्यापूर्ण लगी। ज़रा रुचि पूर्वक पूछा—"पहले से जान-पिछान होगी?"

"बिना जान-पहचान के कैसे हो जाती?" जया भी ज़रा धीरे-से हँसी।

'अँग्रेजी तरीके से हुई होगी—गिरजाघर में जाके?" प्रोफ़ेसरनी ने पूछा—"हमने तो सुना है, वहां तो अँगूठी बदल ली और कमर में हाथ डालकर चल दिये।"

"अँग्रेजी ढङ्ग से क्यों होती? अपने हिन्दुस्तानी ढङ्ग से हुई है, आपस में।" जया की आंखों के आगे शरद से मिलने के दृश्य आगये।

"यार-दोस्त तो सब आये ही होंगे?" प्रोफ़ेसरनी को सन्तोष नहीं हो रहा था, वे हर बात जानना चाहती थीं। फिर उन्होंने महरी की तरफ मुंह करके ज़ोर से पूछा—"आलू छील दिये?"

"हां, बीबीजी।" महरी ने सिल पर लोढ़ी चलाना छोड़कर हथेली के पीछे वाले हिस्से से इधर-उधर बिखर आये बाल और धोतीकी किनारी ऊपर सरकाकर कहा।

आखिर जया ने जरा गर्व से कह ही दिया—"हम लोगों ने आपस में ही तय करके की। यार-दोस्त किसी को भी नहीं बुलाया।"

तब तक सुधा जया के पास आकर खड़ी हो गयी थी। उसके हाथ आटे में सन रहे थे। जैसे ही जया की बात खत्म हुई, वक्र-दृष्टि से उधर देखकर प्रोफ़ेसरनी ने पूछा—"क्या बात है?"

"भाभीजी,—आटा मँढ़ गया है। भैया कर रहे हैं परावँठे सेकों।"

"एकाध डालो तो सही, चलो-चलो उधर ही चलो।" प्रोफ़ेसरनी ने आँख से इशारा करके कहा।

इस बार जया ने पूछ लिया—"प्रोफ़ेसर साहब को, क्या आप भी पहले से जानती थी?"

"हमारे करनेवाले तो सब बाप-भैया थे।' इस बार प्रोफ़ेसरनी का गर्व करने का नम्बर था—उन्होंने अत्यन्त ही दृढ़-कण्ठ से कहा।

जया को लगा जैसे, वह कहना चाहती हैं कि तुम्हारे बाप-भैया नहीं थे, इसलिये तुम्हें खुद करनी पड़ी। जया ऊब उठी—जाहिल औरत। क्या बात की जाय! उसने झाँक कर देखा, सामने के खुले किवाड़ों-वाले कमरे के दूसरे दरवाज़े पर वह पर्दा दिखाई दे रहा था—जहां सब लोग बैठे थे। अमिताभ की हिम्मत काफ़ी बढ़ चुकी थी। वह जया के कन्धे पर लदकर उसका पर्स उतारने की कोशिश कर रहा था। जया की इच्छा हो रही थी कि एक झटका दे कि दूर जा गिरे। पहले

तो वह कन्धे को इधर-उधर करके मन-ही-मन कुढ़ती हुई कि ब्लाउज और साड़ी खराब हो रही है—अपना विरोध करती रही, फिर उसने पर्स निकाल कर दे दिया। अमिताभ ने सबसे पहले उसकी दोनों घुण्डियों को दाँतों से दबा लिया। जया भुन गयी। "भैया, इसे यों मत करो—खराब हो जायेगा।" उसने झुककर उससे पर्स लेने की कोशिश करते हुए कहा—जोर से वह छीन भी नहीं सकती थी। अमिताभ और भी पीछे सरक गया।

"दे दे रे, दे क्यों नहीं देता हैगा ?' प्रोफ़ेसरनी ने जैसे बिना किसी को लक्ष्य किये हुए यों ही हवामें शब्द फेंक दिये, और पूछा—"कितने भाई-बहन हो तुम ?"

"हम दो बहनें हैं, और एक भाई।" जया झल्ला गयी मन-ही-मन ; क्या बेकार की बातें पूछ रही है जैसे कोई और विषय ही बात करने को न हो। अब पूछेगी—कौन कितना बड़ा है ? कहां है ? इसलिये उसने खुद ही कहा—"भाई आठवें में है, बहन एक दसवें में पढ़ रही है, एक ग्यारहवें में।"

"तुम्हारी इनसे जान-पिछान कॉलेज में ही हुई होगी ?" प्रोफ़ेसरनी फिर पहले विषय पर खिसक आई, और मुस्कुराकर पूछा।

जया की इच्छा हुई, उन्हीं की भाषा और स्तर पर आकर जरा विनोदमें कहदे —"हमारे पड़ोसी थे सो आँख लड़ गयीं ?" लेकिन उसने उत्तर दिया—"हमारे यहां शुरू से ही आते-जाते थे ये—। इनके पिताजी, हमारे पिताजी के साथ छोटे स्टेशन-मास्टर थे। फिर हमलोग शहरमें आ गये—इनके पिताजी कहीं दूर चले गये।" उसने उन्हें संतोष देने के लिये कुछ झूठ, कुछ सच कह दिया।

"हुँऽऽ सो ही तो,—हमारे यहाँ भी पड़ोस में एक मास्टर आवै थागा। जरा खिड़की खुली रह जाती सो मटर-मटर ताकै थागा मरा···" वे 'मास्टर' शब्द लपक कर बोलीं।

"कहाँ ? यहीं ?" जया ने उत्सुकता से पूछा।

"नहीं, तब हमारी शादी नहीं हुई थीगी, सो मरा पढ़ावै-लिखावै तो कुछ थागा नहीं, जब देखो तब अखबार पढता दिखाई देता थागा। अखबार सामने रख लिया और बैठ गये दोनों—जाने क्या घुसुर-पुसुर किया करतेथेंगे।" उंगलियां नचा-कर प्रोफ़ेसरनी बोली।

"फिर ?" जया समझी नहीं, वह क्या कहना चाहती है।

"फिर क्या, पेट रह गया। उसके बाद कम्बख्त का पता ही नहीं चला कहां चला गया। आजकल बहनजो, लड़कियों को पढ़ाना पाप है।"

यह सब सुनाकर वे क्या संकेत करना चाहती हैं, या क्या समझाना चाहती हैं, जिसे जया चुपचाप स्वीकार करले—इसे जया कुछ समझी भी, कुछ नहीं। और जितना समझी उससे उसका मन एक विचित्र उबकाई से भर उठा।

"लड़कियों को पढ़ाते तो प्रोफ़ेसर साहब भी होंगे।" जया ने हिम्मत करके

एक सीधी बात कह दी—उसका आधा ध्यान पर्स में लगा था, जिसे अमिताभ खोल नहीं पाया था; लेकिन खोलने की हर मुमकिन कोशिश कर रहा था। कहीं तोड़-ताड़ न डाले।

"भाभी, भैया खाना मँगा रहे हैं।" सुधा ने चौके में से कहा।

"भाभी को खा लो—एक मिनट चैन से बात नहीं करने देते हैंगे।" प्रोफेसरनी ने दाँत भींचकर कहा, और एक हाथ धरती पर टेक कर दूसरे में बच्चे को सँभाले हुए ही उठते-उठते बोली—"हमारे प्रोफ़ेसर साहब ऐसे नहीं हैं।"

जया के मन में आया कह दे—सड़क पर लड़कियों को घूरने वाले तो हैं। जब वह पढ़ाती थी तो कई बार बाढ़-रिलीफ़ इत्यादि का चन्दा लेने उसे घरों में लड़कियों के साथ जाना पड़ता था, और उन दिनों तरह-तरह की राये ऐसी लड़कियों के विषय में सुनने को उसे मिलती थी, जो स्कूल-कॉलिज में पढ़ती हैं—जो घर-घर चंदा माँगने के बहाने घूमती हैं, जो अस्पतालों में नर्स हैं। लगभग उसी तरह के लोगों में से प्रोफ़ेसरनी भी उसे लगी। लेकिन यहाँ हर बात में एक ऐसी चुभन—हर साँस में, वातावरण में व्याप्त एक ऐसी घुटन,उमस थी कि वह रह-रह कर गरदन उठा कर इस तरह चारों ओर देखती जैसे डूबता हुआ आदमी पानी में सिर निकलने पर इधर-उधर सहारे के लिये सिर घुमा कर देखता है। हर बार उसकी निगाह चौके तथा दो दरवाजे पार लटके पर्दे पर जाकर अटक जाती—उसकी इच्छा होती ज़रा-सा पर्दा हिल जाय और शरद बैठा दिखाई दे जाय तो वह संकेत से ही कहे कि मुझे बुलवा लो। लेकिन हर बार पर्दे को कोई ठीक कर देता। कभी-कभी बहस का एकाध शब्द उसके कानों में पड़ जाता।

प्रोफ़ेसरनी बच्चे को दूसरे बच्चे की बग़ल में खटिया पर लिटा चुकने के बाद कह रही थी—"महरी, यह तुम्हारी क्या आदत हैगी, एक काम दे दो, बस उसी में लग जाती होगी। अब बर्तन मँजे नहीं हैंगे, 'मरदों' को खाना काहे में जाय?"

जया ने पुचकार कर अमिताभ से कहा,—"ला भैया, मैं खोलूँ।" लेकिन अमिताभ ने दोनों हाथ दूसरी ओर कर लिये—"उहुंक।" अशिष्टता से भौंह ताने वह बोला।

"दे क्यों नहीं देते होंगे? जब से जान खा रहे हो? जाओ, उधर अपने डैडी के पास।" प्रोफ़ेसरनी ने पर्स खींचकर जया की गोद में डाल दिया और बाँह पकड़कर उसे उठाते हुए वे लगभग घसीटती हुई चौके के बीच तक लेगयी। बड़ा ठुनकता और घिसटता हुआ-सा वह जाकर चौके में खड़ा हो गया—प्रोफेसरनी ने हल्के-से बैठक की ओर धकेल कर कहा 'जा' और स्वयं चौके में घुस गयीं। थोड़ी देर खड़े रहने के बाद अमिताभ धीरे-धीरे बैठक में चला गया।

महरी ने चौके में गुसलखाने के पास की दीवार में लगा हुआ नल खोल दिया और नीचे लाकर बर्तनों का ढेर लगा दिया। जया बर्तनों पर पड़ती धार को देखती

रही। फिर उसे ध्यान आया कि उसे चौके में जाकर कुछ सहायता के लिये पूछना चाहिये। बच्चे के गोद में उसकी थूक इत्यादि से गीला पर्स पड़ा था—जिस ढंग से वह उसकी गोद में डाला गया था वह उसे बहुत ही बुरा लगा। लेकिन जल्दी ही उसने इस बात को भुला दिया।

चौके की चौखट पर पहुँचकर उसने कहा—"लाइये, आपकी कुछ मदद कर दूँ।"

"नहीं-नहीं, तुम वहीं बैठो।" उन्होंने ऐसे कहा यदि जया छू लेगी तो शायद चौका खराब हो जायेगा। अपनी बात के प्रभाव को कम करने के लिये आगे उन्होंने जोड़ा—"तुम देखती रहो, मैं सब कर लूंगी। जरा-सा चौका है, धुआँ है, तुम कहाँ आओगी यहां ?"

जया सहम कर थोड़ी देर चुपचाप खड़ी रही, उन्हें परावँठे बेलते, उनमें आलू भरते और सेकते देखती रही—फिर आकर अपनी उसी जगह बैठ गयी। कहाँ आ गयी ? इससे अच्छा, न ही आती। वहाँ पद्मा के पास चली जाती तो कुछ बातें होतीं। यहाँ दम वैसे ही घुटा जा रहा है। ऊपर की मंजिल पर चौक के ऊपर पड़ा जाल रह-रह कर किसी स्त्री-बच्चे के आने-जाने से बज उठता, तब जया की दृष्टि स्वतः ही ऊपर उठ जाती। ऊपर से गुजरती हुई स्त्रियों की जांघें तक नीचे से खुली दिखाई देती थीं—जया घृणा से भर उठती। लेकिन शायद वहाँ के सभी लोग इसके काफ़ी अभ्यस्त थे, और किसी को भी इस बात का ध्यान नहीं था। जया कभी चौके में देखती; कभी बाहर 'मरदों' को खाना खिलाती सुधा को। सुधा जब खाना ले जाती तो पर्दा उठाते ही मेज़ पर कपिल खाना खाता दिखाई देता—उस समय हरबार वह जया को बैठे देख लेता। मेज़ से लगा अमिताभ खड़ा था। बर्तन काफ़ी थे और महरी माँजे चली जा रही थी। कभी बैठक में जाने से पहले परदे के पास खड़ी होकर सुधा अपने कमरे ठीक करती, साड़ी की सलवटें निकालती।

इस बीच में उसने दो-एक बार ऊबकर जल्दी चलने को पुलवाया भी। यहाँ बैठी-बैठी जँभाई लेती क्या करती ?

और जया को याद आगया जब मरदों के खा चुकने के बाद वहीं उनके लिये जमीन पर ही सुधा ने गिलास रखे, तो इतनी देर के आलस्य-ऊब और जड़ता छुड़ाने के लिये पर्स एक ओर डालकर उत्साह से वह उठ खड़ी हुई थी, उसने कहा था—"लो तुम बैठो, मैं पानी भरती हूँ।" उसने महरी के पास से लोटा उठाकर घड़े से भर लिया था। तभी चूल्हे से बड़े-बड़े कोयले, सामने चिमटे से निकाल कर उन्हें अंगीठी इत्यादि के लिये बुझा रखने के विचार से पानी डालकर ढेर-सा धुआँ और राख उड़ाकर प्रोफ़ेसरनी वहीं से दहाड़ी—"सुधा, पानी तुम खुद क्यों नहीं ले लेती होगी, उन्हें क्यों तंग कर रही होगी ?" जया का कलेजा इस दहाड़ से हिल उठा। उसने

लाटा वहीं रख दिया। खाने से पहले मुँह-हाथ धोने के विचार से वह सिर झुकाकर छींटे उछालती महरी से, अपनी साड़ी उठाकर बचाती हुई गुसलखाने में आगयी—गुसलखाना उसने भीतर से बन्द कर लिया।

तौलिया से मुँह पोंछते हुए उसने सुना, प्रोफ़ेसरनी भिंचे गले से कह रही थी—"सुधा, तुम अन्धी हो रही होगी। मेरा दम-आने का घड़ा खराब कर दिया—जाने कौन जात की हैगी, यह कम्बख्त राँड़।" —जया धक् से हो गयी।

फिर आवाज और भी पास, लेकिन और भी दबी आई—महरी पूछ रही थी—"कौन जात हैं?"

जया ने कल्पना की, प्रोफ़ेसरनी ने उँगलियाँ मटका कर कहा होगा—स्वर उसने सुने थे—"पता नहीं, जाने कौन जात है? इन लोगों की शादी थोड़े ही हुई है?"

"तो?" महरी ने पूछा। जया चुपचाप दम साधे सुनती रही। शायद उनमें से किसी को उसका ध्यान नहीं था।

"अरे, प्रोफ़ेसर साहब के दोस्त हैं न, सूरजजी-सूरजजी, वो कह रहे थे—भाग आये हैं दोनों। अभी सुना नहीं तुमने, खुद भी तो बता रही थी? मुझसे पूछा, शादी से पहले तुम भी प्रोफेसर साहब को जानती थी? मैंने तो कह दिया, हमारे क्या बाप-भैया मर गये थे सो मैं जानती? इत्ता-सा मुँह निकल आया!"

"खुद कह रही थी?"

"सच महरी, हमारी तो आज भी हिम्मत नहीं पड़ती हैगी, जैसी वो अपने खसम के बारे में कह रही थीगी। और उसका दीदा थोड़े ही लग रहा था, हमसे बात करने में। झाँक-झाँक कर बाहर देख रही थी। उसे तो चाट है न, मरदों में बैठकर मटकने की, आँखे लड़ाने की।"

"बहू जी, मैं तो देख कै ही समझ गयी—टिकैगी थोड़े ही—तुम देख लेना।"

"अरे, उसका टिकै सींग! ऐसी औरतें कहीं टिकती होंगी एक जगह? उन्हें तो घर-घर की झूठन की चाट लग जाती हैगी। बोलो, पच्चीस साल गुलछर्रे उड़ाये, जब देखा होगा अब नहीं चलता, तो भग आई। महरी, मुझे तो यों लगै, कैसे हिम्मत पड़ जाती हैगी इन रडियों की? सुधा वहाँ खड़ी-खड़ी बात सुनने लगी, मैंने तो फौरन हटा दिया। तुम जानो, बुरी बातों का असर बड़ी जल्दी पड़ता हैगा लड़कियों पर।"

जया से आगे नहीं सुना गया था—वह क्रोध-झुँझलाहट और ग्लानि से ऊपर से नीचे तक काँप उठी थी—और पता नहीं कैसा एक हवा का बगूला-सा उसके पेट में उठकर गले में आ रुका था; लाख रोकने पर भी आँसू उससे रुके नहीं थे। बिना बाहरवालों की चिन्ता किये उसने दुबारा मुँह-हाथ धोये, गला साफ़ किया, नाक साफ़ की, और जब ज़ोर से निर्द्वन्द होकर किवाड़ खोले तो दोनों बड़ी सहमी और अपराधिनियों की तरह कनखियों से देख रही थीं। खाना लगाया जा चुका था—

दो थालियों में।

उससे ज़रा भी खाना नहीं खाया गया। शिष्टता का बन्धन न होता तो वह ठोकर मार कर चली आती—और ज़िन्दगी भर कभी इस औरत की सूरत देखना पसन्द न करती। लेकिन उसे थाली के सामने बैठना पड़ा, मुस्कुराना पड़ा, और इधर-उधर की बातें सुननी पड़ी—प्रोफ़ेसरनी ने बताया, कौन-सी साड़ी कब ख़रीदी थी—कौन-सा गहना किसकी शादी में बनवाया था, उस समय सोने का भाव क्या था और बनवायी-घड़ाई क्या थी—आज उसका अनुमानित मूल्य कितना बढ़ा हुआ हो सकता है। कौन-सा बच्चा किन दिनों में कहां हुआ, या उनके बच्चे किस प्रकार खेलते-कूदते और बातें करते हैं। जया के सिर में दर्द हो रहा था— बार-बार झुंझ-लाहट की लहर आती और खाना उसके गले के नीचे नहीं उतर रहा था। उसे ऐसा लगता जैसे वह या तो भूसा खा रही है या मिट्टी। ज़रा देर पहले चौके से उठने वाली गन्ध कभी-कभी जो उसकी भूखको निमन्त्रित कर रही थी—वह सब झूठ था। वह मुश्किल से आधा परांवठा खा सकी। बहुत अनुरोध पर भी उससे खाया ही नहीं गया। उसने बताया उसके सिर में बहुत ज़ोर से दर्द हो रहा है—उससे ज़रा भी नहीं खाया जायेगा, और इस तरह अचानक कभी इतने ज़ोर का दर्द उठ आने की उसे काफ़ी दिनों से बीमारी है कि खाना-पीना सब हराम हो जाय!

वह चलते-चलते सोच रही थी, क्यों वहां गयी? अब उसके दिमाग में बस एक ही धुन थी—कब वह घर पहुँचे और कब वह खूब फूट-फूट कर, बिखर-बिखर कर रो उठे। बड़ी मुश्किल से वह उमड़ी उठी चली आती रुलाई को रोके, दांत भींचे, बिना शरद और सूरजजी की बहस सुने चली जा रही थी। उसे यह भी नहीं मालूम था, वे लोग कहां जा रहे हैं—वह स्वयं कहां जा रही है—या उसके आस-पास क्या निकला जा रहा है—जैसे स्वप्नाविष्ट, लीन। बस, एक चक्रवात था जो उसके मस्तिष्क में बिजली की चक्कियों की घड़घड़ाहट करता गूंज रहा था। तभी उसने सुना सूरजजी कह रहे थे—

"क्या बजा होगा?"

रोशनी का लट्टू पास आने पर शरद ने कलाई उठाकर गौर से देखकर कहा —"नौ समझिये।"

"बस?—मैं समझ रहा था, दस-साढ़े दस का टाइम होगा। अब क्या करोगे तुम जाकर?"

"मैं···मुझे तो कुछ नहीं करना, सोना है बस?" उसने जया की ओर देखा इस आशा से कि जया भी बताये उसे आख़िर क्या जल्दी थी—उसे घर क्या काम है?

जया को सूरजजी पर गुस्सा आ रहा था—इन्होंने कपिल से क्यों कहा सब। शरद का आशय समझ कर भी वह अनजान रही। हालाँकि शरद जो बार-बार घूम-घूम कर उसकी ओर देखता था, उस बेचैनी और व्यथा को वह समझ रही थी।

"तो चले आओ, आज तुम्हें सूरजजी की जगह दिखायें। रेल के पुल के खम्भे पर जहाँ मैं अक्सर जाकर बैठता हूँ—बड़ा मजा आता है! नीचे बहती नदी—रेल का पुल, खुला आसमान, दूर पर किनारे—सब कुछ शान्त, ऊपर हँसता चाँद. बिल्कुल ऐसा लगता है जैसे आप स्वप्न-लोक में आ गये हैं।" अपने हाथ की टॉर्च को उन्होंने चलते-चलते इस हाथ से उस हाथ में लेकर खेलते हुए कहा।

"इतनी रात को?" शरद ने फिर जया की इच्छा जानने को उधर देखा, फिर पूछा—"यहां कोई रोक-टोक नहीं है? कोई पुल तोड़नेवाला ही पहुँच जाये!"

"अरे पुराना होने पर कस्टमर को सभी जगह सुविधाएँ मिल जाती हैं। मैं वहाँ दो बजे तक पड़ा रहता हूँ।" खुले चाँद को देखकर वे बोले।

जया की इच्छा हुई कहदे, आपलोग जाइये, मेरी तबीयत ठीक नहीं है। मैं घर जाकर पड़ती हूँ।

"क्यों जया, चले?" शरद ने पूछा।

जया ने सिर हिला दिया—बोली कुछ नहीं।

चाँदनी, प्रेम और बन्दूक की गोली

सूरजजी ने जया को टॉर्च से रास्ता दिखाकर हँसते हुए कहा—"सँभल-सँभल कर उतरिये, वर्ना बेकार ही सूरजजी और शरदबाबू एक लड़की को डुबा मारने के अभियोग में कल बन्द दिखाई दें।"

सचमुच पुल के खम्भे के ऊपर की सड़क में से, पेंच और लोहे के इतने झाड़-झंखाड़ों में एक पतली-सी सीढ़ी डाल देने में, बनानेवालों की जितनी चतुराई और दूर-दर्शिता थी, उससे अधिक आश्चर्य शरद को हुआ सूरजजी की इस स्थान को खोज निकालने वाली बुद्धि पर। पुल पर रेल की पटरी थी और इधर-उधर पैदल चलने वालों के लिये अलग से रेलिंगदार फ़ुटपाथ-से बने थे। उसी में एक खम्मे के लिये यह रास्ता था। शरद पहले उतर आया था और खुले खम्भे पर खड़ा होकर वातावरण को देख रहा था। उसने ऊपर देखते हुए अपना हाथ जया की ओर बढ़ा दिया—"लो, पकड़ लो हाथ।"

सूरजजी ने वहीं से मज़ाक किया—"हाथ क्या पकड़ती हैं, वह तो ज़िन्दगी भर के लिये पकड़ा ही हुआ है, कन्धे पर पाँव रखिये और उतर जाइये।"

जहाँ शरद खड़ा था, पुल लगभग उसकी छाती की उँचाई से शुरू होता था—वहाँ मोटा-सा रेलिंग था—इसके बाद लगभग इतनी ही ऊँचाई पर रेल की पटरियों की सतह थी। लोहे की नसैनी के आठ-दस डण्डे उतरने पड़ते थे। उतरते समय जया को ऐसा लगा जैसे किसी बहुत भारी कारखाने में उतर रही हो : चारों तरफ लोहे की पटरियां-लठ्ठे, रेलिंग और तानें—उसके बीच में पड़ी पतली-सी सीढ़ी। बचपन में उसे मोटर-लॉरी के पीछे लगी नसैनी से चढ़ कर बन्दर की तरह छत पर पहुँच जाने का बेहद शौक था—और उतरने-चढ़ने मे उसे कभी डर नहीं लगा। लेकिन अब उसका दिल धक्-धक् करने लगा था। बड़े सँभाल और साध-साधकर वह एक-एक पाँव रखती—और हर पाँव रखने से पहले इधर-उधर पकड़ने के लिये कोई बड़ा-सा पेंच, तान या रेलिंग का मोड़ देखती। जब नीचे पहुँच गयी, तो झुककर उसने एक हाथ शरद का पकड़ा दिया, लेकिन एक से रेलिंग पकड़े रही। आगे पकड़ने को कुछ नहीं था, चार-पाँच डण्डे रह गये थे। सूरजजी ने ऊपर से पूछा—"बस ?"

जवाब शरद ने दे दिया, 'बस', और जया को नीचे खींचता हुआ बोला—"कूद पड़ो न ! रेलिंग छोड़ती क्यों नहीं हो ?" टॉर्च बन्द हो गयी।

"हम अपने आप उतर आयेंगे, खींचिये नहीं।" जया ने अनुनय के स्वरमें कहा। बड़ी मुश्किल से वह एक डण्डा और उतरी, लेकिन लम्बा हाथ किये रेलिंग को पकड़े रही। तब शरद ने हल्के-से उसे झटका देकर नीचे खींच लिया। वह

वहीं से दूसरा हाथ फैला कर कूद पड़ी और ज़ोर से शरद की गर्दन से लटक गयी। शरद के नथुने उस चिर-परिचित मादक सुगन्धि से भर गये, और अचानक जाने क्या हुआ कि उसने दोनों हाथों से जया को भींचकर उसके गालों को चूम लिया। एक क्षण को उतरने के श्रम तथा भय से धड़कती जया की छाती शरद के हृदय और नस-नस में बजती रही, और उसकी इच्छा हुई इस संगीत को वह यों ही युग-युग तक सुनता रहे लेकिन हठात् उसे सूरजजी का ध्यान हो आया, और उसने अलग होकर हाँफते-काँपते स्वर में कहा—"हो बड़ी वो, अभी दोनों नीचे जा पड़ते तो ?" उसने ऊपर देखा, कहीं सूरजजी ने देख तो नहीं लिया। लेकिन अभी वे सीढ़ियाँ ही उतर रहे थे और उनकी टांगें ही नीचे दिखाई दे रही थीं, शेष शरीर पुल में छिपा था। शरद के कान के पास ही जया धीरे-से बोली—"क्या होता ? गिरते तो दोनों ही।"

"ओ हो, बड़ी कविता सूझ रही है, नीचे गिर जाओगी तो 'बचाओ-बचाओ' के सिवा कुछ ध्यान नहीं आयेगा।" शरद ने हँसकर कहा।

पुल के कारण खम्भे के कुछ हिस्से पर छाया थी—शेष चाँदनी में डूबा हुआ था। जया मुस्कुराकर धीरे-धीरे उधर टहलती चली गई। शरद ने देखा अच्छे-खासे कमरे कमरे की लम्बाई-चौड़ाई की जगह थी—पुल पर से गुजरते हुए या ऊपर से यह जगह ऐसी नहीं दिखाई देती थी।

"क्या बात है ?" सूरजजी ने उतर कर पूछा।

"कुछ नहीं, जया कह रही थी, जगह तो बहुत अच्छी है !" शरद ने इधर-उधर देख कर कहा।

"अरे सूरजजी की चॉइस है ! ऐसी-वैसी जगह थोड़े ही छाँटता हूँ मैं !" सूरजजी ने गर्व से इधर-उधर मुँह घुमाकर कहा।

जया देख रही थी—नदी के इस सिरे से उस सिरे तक काँतर की तरह पड़ा पुल चांदनी में स्तब्ध था। ऊपर बादलों के आवारा घूमते टुकड़े और शायद त्रियोदशी का चाँद, नीला गहरा चुपचाप सोया आसमान, नीचे नदी की चिलकती-चमकती चौड़ी-धार—और हल्का-हल्का पड़ता कोहरा—थोड़ी दूर जाकर धार इस तरह आसमान में खोती हुई लगती थी जैसे कहीं आसमान से ही उतर कर आ रही हो। एक ओर ओंघती बत्तियों में मिचमिचाता शहर सोया-सा पड़ा था, मकान काग़ज़ के डिब्बों-से एक दूसरे पर रखे दिखाई दे रहे थे—और धार घाट की सीढ़ियों को छूकर सरकती जा रही थी। मिल और कारखानों की चिमनियां, एकाध मन्दिर का कलश और कोई ऊँची हवेली—धुंधले-धुंधले दिखाई दे रहे थे। दूसरे किनारे पर पानी से लगा बालू का किनारा चमक रहा था, और फिर उस रेत में बने खेत शुरू हो गये थे. जिनके बीच-बीच में पेड़ों के झुण्ड थे। कोई पेड़ अकेला भी खड़ा था। और बीच में चाँदनी के अभ्रक के चूर्ण में विभोर रेशमी साड़ी-सी नदी फैली थी। लगभग यह खम्भा बीच में था; इसलिये नदी का एक पूरा 'व्यू' दिखाई देता था। पानी की

उठती-गिरती सतह पर बादल भाग रहे थे, और चांद जैसे खण्ड-खण्ड होकर लहर-लहर में बिखरा था। नदी में चाँद का प्रतिबिम्ब कहीं एक जगह न होकर एक चौड़ी अगणित चांदों की पट्टी बन गया था, जो नदी के बीच में फैलती-फैलती क्षितिज में जाकर डूब गयी थी। किनारे पर धोबियों के पत्थर तक चाँदनी में दिखाई दे रहे थे। बीच में यहां हवा तेज थी, और कुछ अधिक ठण्ड थी। जया ने यह सब देखा, और उसका शरीर आनन्द की एक विचित्र अनुभूति से रोमांचित हो आया। उसे हवा में लहराते कनपटी के नीचे झूले आये बालों के कम्पन में अभी भी एक तप्त-मधुर-स्पर्श अनुभव हो रहा था—और जैसे-जैसे लहरों को गुदगुदाती हवा उसके रोम-रोम में समा रही थी—उसके हृदय का इतनी देर से छाया विक्षोभ एक अछूते स्वप्न का उच्छ्वास बन कर हृदय में फूले स्पंज की तरह पुलक उठा था। आनन्द से उसकी आंखों में आंसू आ गये और पता नहीं क्यों जो रोने-रोने को कर आया। जैसे हर बार उसके मन में कोई दुहराता—'ओह, इतना सुन्दर!' उसे लगता इस सुख के बोझ के नीचे उसका हृदय इतना दब गया है—या उल्लास से इतना अधिक फैल जाना चाहता है कि छाती में जगह नहीं है, और फूट-फूट कर रोने से ही हल्का हो सकेगा। वह अभी थोड़ी देर पहले गुज़री सारी बातें भूल गयी—उन्हें याद नहीं करना चाहती थी। उसने उसे फिर कभी सोचने को स्थगित कर दिया। वह जैसे अपने अस्तित्व की हर चेतना से, हर इन्द्रिय-बोध से उस दृश्य को पी जाना चाहती थी। अपने भीतर समा लेना चाहती थी—या उसमें घुलकर निराकार हो जाना चाहती थी। कैसा अच्छा होता, काश, उसके पंखे होते और परी की तरह पानी की सतह के ऊपर ऊपर निशब्द पङ्ख फड़फड़ाती चांद की इस रेखा के सहारे-सहारे दूर क्षितिज में चली जाती—चलती चली जाती। आस-पास पेड़-पौधे, मैदान, नगर, पहाड़ और रेगिस्तान गुज़रते चले जाते, लेकिन न उसके परों में थकान होती, न धारा समाप्त होती और न कभी यह चाँद की रेखा टूटती। बादलों की परछाइयाँ कैसी तैर रही थीं। दोनों कोरों से ढुलकने वाले आंसुओं को उसने अपनी अनामिका से लेकर अँगूठे की सहायता से छिड़क दिया। उसके मन में उठा, एक छलाँग लगाकर वह नदी के अथाह पानी में कूद पड़े—और शरीर को निश्चेष्ट बहते रहने के लिये छोड़कर अपने प्राणों को इस अप्रमेय आनन्द में घुल जाने के लिये मुक्त कर दे। पानी कितना नीचा है, यह देखने के लिये उसने डरते हुए ज़रा-सा झुककर देखा—खम्भे के कट जाने के कारण लहरें शब्द कर रही थीं और खम्भों की लम्बी कंघी से छनता पानी ऊपर पुल होने के कारण घरघराता हुआ गूंज रहा था—यह घरघराहट ऐसी थी जैसे कोई सुबह की मीठी नींद में चक्की चला रहा हो। पुल पर लगे टेलीफ़ोन के तार जैसे इस घरघराहट को दुगुना कर रहे थे। पुल जहां समाप्त होता था, वहां सिगनल की लाल-बत्ती चमक रही थी। पीछे दूर, कभी-कभी सियार बोल उठते थे।

"उधर मत जाओ, ज़रा-से में पांव डगमगा जाय।" शरद बोला।

उसने मुड़कर देखा सूरजजी दोनों टाँगें फैलाकर पीठ के पीछे हथेलियाँ टेक कर बड़े आराम से बैठ गये थे। शरद आलथी-पालथी मार कर बैठा था। सूरजजी एक हाथ से बता रहे थे: देखिये, वो स्टेशन है ; उधर जो कई बत्तियाँ एक साथ चमक रही हैं न, वहीं उधर कॉलेज है, वो सामने 'सत्या कॉटन मिल्स' है, उधर मकानों के पीछे ज़रा हटकर 'स्वदेश-महल' है...

शरद चुपचाप हाँ-हूँ करता सुनता रहा। जया पास आकर खड़ी-खड़ी सुनने लगी, शरद ने हाथ धरती पर थपथपाकर बैठने का संकेत किया। जया बैठ गई, घुटने समेट कर उसने उनपर अपनी ठोड़ी टिकादी। उसके दोनों हाथ घुटनों के इधर-उधर झूलते रहे—वह नदी की धार को अपलक देखती चुपचाप सुनती रही। बड़े धीरे-धीरे कनपटीके दोनों ओर उड़ते उसके बाल शरद को बड़े भले लगे—वह उन्हें देखता रहा—सामने से जया चाहे इतनी सुन्दरी न हो, लेकिन उसका 'प्रोफ़ाइल' ग़ज़ब कर रहा था...

शहर में कहीं लाउडस्पीकर से सिनेमा के गीत की लय झूमती-सी कभी-कभी सुनाई दे जाती थी।

पता नहीं उन लोगों की बातें कब ख़त्म होगईं और तीनों चुपचाप बैठे रहे। शरद धीरे-से जया के पांव के पंजों पर सिर रखकर चित लेट गया। बड़ी कठिनाई से वह जया की गोद में सिर रखकर लेटने की उत्कट इच्छा को रोक पारहा था। उसके मस्तिष्क में जया की जाँघों का मांसल गुदगुदापन छाया हुआ था। सूरजजी ऊपर मुँह किये आसमान ताकते अपने पान का आनन्द सटक रहे थे। जया घुटनों पर ठोड़ी रखे चुपचाप बैठी थी। ऐसा लगता था जैसे खम्भे के साथ ही यह तीन मूर्तियाँ किसी ने बना दी हों—जो हिलना-डोलना-बोलना कुछ भी नहीं जानतीं! या जादू के ज़ोर से इन्हें पत्थर का बना दिया है। शरद ऊपर देख रहा था, सफ़ेद बादलों के टुकड़ों के नीचे धुंए के गुब्बारों-जैसे काले बादल तैरते चले जारहे थे। चांद कभी पूरा ढँक जाता तो एक हल्की-सी छाया सारे वातावरण में व्याप्त हो जाती और कभी बादलों में से चमकता चाँद ऐसा लगता जैसे सफ़ेद मलमल के दुपट्टे की आड़ करके कोई झाँक रहा हो ; एक स्वप्न था जो ठहर गया था!

और पता नहीं कब शरद को अपने माथे पर जया के हाथ का हल्का स्पर्श महसूस हुआ। अनजाने और अनायास ही जया का हाथ शरद के माथे पर घूमता और बालों को थपथपाता हुआ फिर माथे पर आ जाता—और जैसे हर-बार एक मन्त्र, एक सम्मोहन-सा शरद की नस-नस में उतरता चला जा रहा था, समाया चला जा रहा था। जया का यह हाथ उसके घुटनों की आड़ में था। शरद की सनसनाती कानों की लवों को जया की शिफ़ॉन की साड़ी का मुलायम किनारा हवा में बार-बार सहला रहा था। क्रीम-कलर साड़ी चाँदनी में डूब गयी थी।

कहीं लाइन-क्लियर होने की रेल की घण्टी बड़ी दूर बजी।

सूरजजी ने ढेर-सी साँस, फेफड़े फुलाकर बाहर निकाल कर बड़े उच्छसित स्वर में कहा—"मेल आ रहा है. यही मुझे अक्सर सचेत कर देता है। कभी मन हुआ तो चला जाता हूँ, नहीं तो पड़ा रहता हूँ। आज यह लेट है।"

जया के दिल में इस आदमी के लिये बड़ी ममता महसूस हुई। बेचारा कैसे अपनी ज़िन्दगी काटता है—अकेला, न जिसके कोई आगे है न पीछे। क्या है इसका भी! एक ऐसा भी तो नहीं है, जहाँ कभी-कभी हृदय हल्का कर लिया करे।

एकदम जैसे सारे ऐन्द्रजालिक वातावरण के जाल को झटके-से एक ओर फेंक कर सूरजजी सचेत हो गये। सीधे बैठकर दोनों हथेलियों को एक दूसरे में मारकर धूल झाड़ते हुए सूरजजी बोले—"आइये, आज मैं आप लोगों के हाथ देखूंगा।"

शरद जाग रहा था—खूब सचेत था; लेकिन इस वातावरण, इस हवा, इस चांदनी, जया का सान्निध्य—यह माथे पर घूमते कोमल स्पर्श की मोहिनी,—जैसे वह बिल्कुल अचेत हो गया था—बेसुध। शायद अब काफ़ी देर हो गयी थी, और इस सम्मोहन के समर्पण की स्थिति को स्नायविक संवेदन हल्के-हल्के अस्वीकार करने की आवश्यकता अनुभव कर रहे थे। शरद भी बड़ी कोमलता से जया का हाथ हटाकर स्प्रिंग के झटके से जैसे सीधा बैठ गया।

सूरजजी ने पास उलटी रखी टॉर्च उठाकर हाथ में ले ली।

"अब ?—अब क्या ध्यान आया आपको ?" शरद ने पूछा।

"यों ही—आप दोनों, अपने हाथ धरती पर फैला दीजिये।" सूरजजी ने टॉर्च उठा ली।

शरद जया के घुटनों से सटकर बैठ गया और लगभग उनपर लदते हुए-से उसने जया के दोनों हाथ अपने हाथों से पकड़ कर धरती पर फैला कर रख दिये,—"पहले इसका हाथ देखिये।" यद्यपि शरद को ज़रा भी विश्वास नहीं था, फिर भी कुतूहल के लिये उसने सूरजजी की बातों में रुचि दिखाते हुए कहा।

"नहीं, दोनों साथ फैलाइये।" सूरजजी टॉर्च बिल्कुल हथेली से सटाकर झुक गये। जब शरद ने भी बराबर में अपनी हथेलियाँ फैला दीं तो कभी इसे और कभी उसे झुक-झुक कर देखते रहे। सूरजजी ने नीचे झुके थे, और उन लोगों के सिर एक दूसरे को स्पर्श कर रहे थे। शरद को शैतानी सूझी तो उसने जया के कान की लव को दांतों से काट लिया। जया ने ज़ोर से सिर झटक कर कहा—"अरे, यह क्या···"

"क्या ?" सूरजजी ने ग़ौर से देखना छोड़कर सिर उठाकर पूछा।

शरद बीच में ही बात काट कर बोला—"दिन में शायद अधिक अच्छी तरह दिखाई देता।"

"खैर, जो देखना था सो तो मैंने देख लिया।" सूरजजी ने एकबार चारों हथेलियों पर निगाह मार कर टॉर्च बन्द कर दी।

"हां, अब बताइये।" जया ने हथेलियां उठा लीं और कुहनी से शरद को सीधा बैठा दिया। उसकी कलाइयां थक गयी थीं—उन्हें मसलती रही थी।

"अब आप जो पूछिये सो बताया जाय।" सूरजजी ने कहा।

"नहीं, आप बताइये. आपने क्या देखा ?" जया ने पूछा।

"मैंने तो सभी चीजें देखी हैं—खैर, तो सुनिये। पहली बात तो यह है कि आप लोगों ने इन्टरकास्ट मैरेज की है।"

"इसमें क्या है,—यह तो मैंने खुद ही आपको बताया था, यह भी कोई बात हुई।"

सूरजजी ने बिना उसकी चिन्ता किये हुए ही कहा—"दूसरी बात यह कि आप लोगों ने मैरेज नहीं की, यों ही चले आये हैं।"

शरद 'धक्' से रह गया। यह बात सूरजजी को कैसे पता चली ! फिर उसने अपने को तुरन्त ही सँभाला· वैसे ही चले आये हैं तो क्या बुराई की है। सूरजजी ने इस तरह के दो-एक संकेत उस दिन खाना खाते समय भी किये थे। उसने जया की ओर देखा, जया चुपचाप गुमसुम बैठी थी। उसे प्रोफ़ेसरनी का एक-एक शब्द याद हो आया। सूरजजी के प्रति एक विक्षोभ से वह तिलमिला उठी। उसके हृदय की सारी भावुकता जैसे उड़ गयी। वह शब्द और अवसर खोजने लगी—कब सूरजजी से कहे। शरद ने कहा—"यह आपने हाथ में देखा या यों ही उड़ा रहे हैं ?"

"गलत कह रहा हूँ ?" सूरजजी ने पूछा।

"ग़लत न भी सही, लेकिन मैं पूछता हूँ, क्या यह हाथ की लाइनों की रीडिंग है ?" शरद ने पूछा।

"शरदजी, आप यह समझते हैं—और आप ही क्या हर भावुक उम्रवाले लोग यही समझते हैं कि उनको छोड़कर दुनियाँ के सारे लोग बेवकूफ़ हैं। जब आप चढ़ते जाड़े के मौसम में दो अटैची और एक बिस्तर लेकर चले आये, तब क्या यह समझना कुछ ज्यादा मुश्किल था ? और मैं ही क्या 'स्वदेश-महल' का हर आदमी समझ गया। किसी ने आपसे कहा नहीं है तो इसका क्या मतलब है कि कोई समझा ही नहीं ?—आपस का व्यवहार, यह सामान, सभी ने सिद्ध कर दिया कि आप कैसे आये होंगे। यदि सचमुच वास्तविकता यह न भी होती, और आप इसी तरह आये होते तो लोग इसी तरह उड़ाते।" सूरजजी ने कहा—उनकी दृष्टि दूर टिकी थी।

शरद को कुछ नहीं सूझा, मन-ही-मन इस बात को उसने अनुभव किया था, लेकिन स्पष्ट-रूप से नहीं समझ पाया। उसे लगा सूरजजी उसे उसकी असावधानी के लिये जैसे डाँट रहे हैं। अपराधी की तरह उसने सिर झुका लिया—अपने पाँव के नाखून को टटोलता रहा।

"आप इसे बुरा समझते हैं ?" आख़िर हिम्मत करके जया ने कहा—वह राह देख रही थी कि क्यों नहीं शरद कह देता कि, 'आये हैं तो क्या किसी के बापका

कुछ लेकर आये हैं। लोगों के पेट में दर्द क्यों होता है ?"

सूरजजी ने उसके स्वर के रूखेपन को समझ कर कहा—"बुरा समझने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता। आते ही सूरजजी ने जो कुछ अपना रूखा-सूखा खाने की दावत दे डाली थी, वह अपने आप में इस बात का काफ़ी अच्छा सबूत था कि मैं आपको पुरस्कार ही देना चाहता था। और आप विश्वास कीजिये, यदि मेरे पास उस समय 'ताजमहल' होता तो बिना अधिक आगा-पीछा सोचे हुए, उसे भी इनाम दे सकता था···।" सूरजजी को सहसा पान की याद हो आई।

"ठीक है···" जया सोचकर रह गयी कि बात को उतने ही कड़वेपन से कहे, जितने से उसने स्वयं अनुभव की है या कुछ सुधार दे। इसी पशोपेश में वह चुप रही।

"क्या ठीक है ?" सूरजजी ने पूछा।

"शायद आपने ही यह बात कपिल साहब की 'वाइफ़' को बताई थी।" जया ने अपने स्वर की तेज़ी की छिपाने की ज़रा भी कोशिश नहीं की।

"क्या उनकी 'वाइफ़' कुछ कही थी ? मैंने उनसे तो बात भी नहीं की—बोलता नहीं हूँ—हां, कपिल से शायद इस तरह की बातें हुई थीं।" सूरजजी ने कुछ चिन्तित स्वर में कहा—"वे क्या कह रही थीं ?"

"कहती क्या ?" जया ने विद्रूप से मुँह मटका दिया। उसे इतनी देर से भूली हुई बातें याद हो आई और पता नहीं कैसे गला रुँध आया। उसने बड़े गीले स्वर में कहा—"आपको यह सब कहना नहीं चाहिये था।" और उसने ज़ोर से पल्ले से आँखें पोंछ लीं।

सूरजजी और शरद दोनों चौंक पड़े। शरद समझ गया, इस बात को लेकर शायद कपिल की पत्नी ने जया से कुछ कहा है। उसकी सुस्ती और जल्दी मचाना सब उसे याद आ गये। सान्त्वना के स्वर में पूछा—"तुमने कुछ कह दिया क्या ?"

जया ने उत्तर कुछ नहीं दिया। आँखों से पल्ला लगाये रही।

शरद ने क्रुद्ध-स्वर में कहा—"अब जो कोई कुछ कहे न, तो साफ़ तड़ाक् से कह देना, तुम्हारे तो बाप का कुछ लेकर नहीं भागे, भागे होंगे अपने मां-बाप का कुछ लेकर भागे होंगे। पता नहीं लोगों के क्यों पेट में दर्द होता है ? हाँ, हम लोग भागे हैं, जिससे कुछ हो सके कर डाले। हम भी देख लेंगे।" और उसने ढाँढ़स बँधानेके लिये जया का पल्ला उसकी आंखों से हटा दिया। वह मानों इस तरह कहने वाले, भूत और भविष्य के सभी लोगों को जवाब दे रहा था।

इस बार सूरजजी अपराधी की तरह हाथ की तम्बाकू की चुटकी यों ही हाथ में लिये चुप रहे। कुछ देर बाद बोले—"सचमुच मुझे बहुत अफ़सोस है शरद बाबू, मैंने जिस आदमी से और जिस रूप में बातें कही थीं, कभी सोचा भी नहीं था कि वह इस रूप में पहुँचेगी। सचमुच जया बहन, मैं बहुत दुःखी हूँ।" स्वर

उनके दुख में डूबा था। चुटकी की तम्बाकू को दूसरे हाथ की हथेली पर रखकर यों ही उँगली से मसलते रहे। वैसे उन्हें तम्बाकू मलकर खाने की आदत नहीं थी। कोई बात थी, जो उनके मन में घुमड़ रही थी—और उसे वह कहना चाहते थे। आखिर उन्होंने कहा—"आप लोगों की हिम्मत का तो मैं बहुत-बहुत आदर करता हूँ! काश, यह हिम्मत सब जगह होती तो···" अगले शब्द उनके गले में आकर अटक गये, फिर सारी झिझक को एकदम धकेल कर उन्होंने कह ही डाला—"तो सूरजकी ज़िन्दगी कुछ और होती।"

"क्या मतलब—?" शरद और जया दोनों अपनी बात भूलकर एकदम चौंके। सूरजजी के मुँह से इस बात की कल्पना भी नहीं की थी—तो सूरजजी के साथ कुछ इस तरह की चीज़ है! शरद ने अनुभव किया कि सूरजजी के भीतर का कुछ है जो इस समय खुलकर बह पड़ने के लिये आतुर हो रहा है। वह निर्णय नहीं कर पा रहा था कि इस समय वह उन्हें उकसाये या चुप रह कर राह देखे। वह सूरजजी के चेहरे को ग़ौर से देखता हुआ उनके सिर के पीछे दूर तक देखता रहा। सिगनल झुक गया था, और लाल की जगह हरी बत्ती चमक रही थी।

सूरजजी ने कुछ नहीं कहा—उनकी हथेली पर रखी तम्बाकू न जाने कब खिसक कर नीचे जा गिरी। बड़ी दूर क्षितिज से कहीं रेल की गड़गड़ाहट उभरती चली आ रही थी। बड़े कोमल स्वर में शरद ने ही कहा—"खैर, ज़रा जोश में हमलोगों ने कोई तेज़ बात कह दी हो, या ऐसी चीज़ कह दी हो जो आपको नागवार गुज़री हो तो सच ही हम क्षमा चाहते हैं। हमारा यह मंशा कभी भी नहीं था। लेकिन एक बात मैं पूछने को कई दिनों से सोच रहा था। कपिल की बात मुझे काफ़ी हद तक सही लगी—एक ओर तो आप इतने प्रचण्ड तर्कवादी, युक्तिवादी और रैशनल हैं, दूसरी और इतने अधिक भाग्यवादी कि जीवन और जगत् के भविष्य को हथेली के मोड़ से पड़नेवाली रेखाओं में खोजने की कोशिश करते हैं! एक ओर तो इतने पुरमज़ाक, परिहास-प्रिय और 'विटी' हैं, और दूसरी ओर दुनियाँ की हर चीज़ के प्रति आपका रवैया कुछ ऐसा है जैसे 'अरे होगा भी; हमें क्या लेना है।' —एक ओर अत्यधिक क्रान्तिकारी, तेज़ और किसी से न दबनेवाले और दूसरी ओर ऐसे विसर्जनवादी, समर्पणशील कि आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता। इन चार-पाँच दिनों में ही मैंने आपको इतने अद्भुत अन्तर्विरोधों से भरा पाया है कि आश्चर्य होता है! कभी लगता है कि आप बहुत अधिक बातूनी और झक्की हैं, कभी लगता है आप ज़रूरत से ज़्यादा चुप हैं। कल आपके जिस रूप का आभास केशव ने दिया, उसे तो मैं सोच भी नहीं सकता था—"

"क्या?" स्वर बड़ा तन्द्रिल और खोया था।

"यही कि कल आप दिन-भर नदी के खादरों में घूमते रहे। यह आखिर सब क्या है? मैं मानता हूँ अन्तर्विरोध—व्यक्तित्व की यह विकृतियाँ हम सभी में है

और जब तक यह समाज-व्यवस्था है तब तक हमारा व्यक्तित्व, हमारी जीवनी-शक्ति इन अन्तर्विरोधों द्वारा तोड़ी जाती रहे—यह अत्यन्त ही स्वाभाविक है। लेकिन इतने तीखे रूप में तो मैंने इन्हें शायद देखा ही नहीं। आप में यह अन्तर्विरोध बड़े ही शार्प हैं।"

रेल की गड़गड़ाहट पास आ गई थी—और दूर इञ्जन की रोशनी दीख रही थी। सूरजजी बोले—"फिर पूछने की बात ही क्या है ? जवाब आपने खुद ही दे लिया। जहाँ यह समाज-व्यवस्था, और साफ़ कहो तो, वर्ग-विषमता जितनी स्पष्ट तीखी और एक दूसरे की विरोधी है, व्यक्तित्व की भी वहाँ यही हालत है। यही समझ लीजिये कि मैं इस विषमता का बहुत अधिक शिकार रहा हूँ।" —सूरजजी के स्वर में कोई भाव नहीं था।

"नहीं," शरद ने दृढ़ता से कहा—"मानव-हृदय या मनुष्य का मनोविज्ञान वर्ग-विषमता और समाज-व्यवस्था का प्रतिबिम्ब ज़रूर है ; लेकिन वह इतना सीधा और जड़ प्रतिफलन है, इसे मैं स्वीकार नहीं करता। कभी-कभी तो मनुष्यकी बौद्धिक-चेतना, यानी प्रतिरोध की जीवन-शक्ति इतनी बलवती होती है कि वह वर्ग के प्रभाव को सीधे उसी रूप में नहीं स्वीकार करती, जैसा दिखाई देता है। वैज्ञानिक शब्दावली लें तो अपने अनुसार जैनरेट करती है। यदि ऐसा न हो तो मध्यम-वर्ग से आने वाले मार्क्स और उच्चवर्ग से आने वाले एंगिल्स को सर्वहारा-वर्ग का हितैषी सिद्ध करना बड़ा मुश्किल पड़ जायेगा।"

जया अपते प्रातिभ-ज्ञान से जैसे सूरजजी की मनःस्थिति को हृदयंगम कर रही थी। वैसे भी इस वातावरण में यह वैज्ञानिक बहस उसे पसन्द नहीं आई। सूरजजी से कुछ जानने को उत्सुक वह भी थी। अधीर होकर बोली—"आपभी क्या बातें लेकर बैठ गये ? जो बात पूछ रहे थे वह पूछिये।"

"तो मैं पूछ रहा था कि अन्तर्विरोधों का यह सम्मिश्रण आप एक साथ ही सह कैसे सकते हैं—पाते हैं ?" शरद ने बिना उस ओर ध्यान दिये पूछा।

अमेरिकन रेल का इञ्जन ज़ोर से गोली लगे सिंह की तरह दहाड़ा और उस सुनसान रात में उसकी दहाड़ हवा के पर्दों को फाड़ती हुई आसमान के इस सिरे से उस सिरे तक फैल गयी—जैसे कोई भारी लट्ठा सनसनाता चला गया हो ; फिर कहीं दूर जैसे किसी दीवार से टकरा कर खण्ड-खण्ड में बिखर कर सारे वातावरण में फैल गया। आवाज़ की गूँज बड़ी देर तक हवा में लरज़ती रही। सूरजजी मन-ही-मन उलझ रहे थे, पराजित हो रहे थे। फिर एक बार अपनी पराजय को मज़ाक में उड़ा देना चाहा, बोले—"इसमें सह सकने और सह पाने का सवाल ही नहीं है। यह तो मेरा व्यक्तित्व बन गया है। हमारी सांस्कृतिक-परम्परा ही सम-न्वय-वादी रही है। शिव के व्यक्तित्व में सिवा विरोधी-तत्वों के सम्मिश्रण के और क्या है ?"

शरद ने प्रार्थना के स्वर में कहा—"सूरजजी, आप तेज़ आदमी हैं, मेरी बात को मज़ाक में उड़ा सकते हैं। लेकिन सचमुच हमलोग जानने को उत्सुक हैं कि आपके जीवन की क्या विवशताएँ रही हैं, जिन्होंने आपको इस तरह ढलने को बाध्य कर दिया ? पूछने का अवसर मैं दो-तीन दिन से खोज रहा था, लेकिन आज जब आपने खुद ही स्वीकार किया कि 'यदि सभी लोगों में इतनी हिम्मत होती तो शायद आपकी ज़िन्दगी कुछ और होती'—इस बात ने तो हमारी उत्सुकता को बहुत बढ़ा दिया है। यदि आप कोई हानि और हर्ज न समझें तो हमलोग आपके पिछले जीवन की कुछ बातें सुनना चाहेंगे।"

"क्या ज़िन्दगी···कुछ बात भी तो हो सुनाने लायक।" सूरजजी की वाणी मे ऐसी व्यथा थी—और वह आवाज़ ऐसी मरी और निर्जीव थी, जैसे अगरबत्ती जल गयी हो और उसकी फुसफुसी राख रह गयी हो। वे होंठ बन्द करके इस तरह चुप हो गये जैसे आगे कुछ बोलना ही न हो।

तब रेल पुल पर आ गयी थी। सारा वातावरण भयंकर गड़गड़ाहट से गूंजने लगा था—चुटीले सांप की तरह फुफकारता इञ्जन सरकता चला आ रहा था। पूरा पुल थरथरा उठा था। लोहे की पटरियों से पहिये जूझ रहे थे—खनन-खनन करके पटरियां बज उठती थीं। कभी-कभी ऐसा लगता जैसे किसी बड़े कारखाने में घन के ऊपर सैकड़ों जगह लोहा कुट रहा हो। पुल के हिलने का कम्पन खम्भे पर स्पष्ट महसूस होता था—टनों भारी भागती रेल के बोझ से त्रस्त होकर पुल धसक-धमक उठता था—और यह गूंज नदी के पानी पर हवा में मीलों फैलती चली जा रही थी। नाचती लहरों में दीप-मालिका दौड़ रही थी—रेल की खुली खिड़कियों से निकलती रोशनी के चौड़े फ़ीते पुल पर लगे आड़े-तिरछे लट्ठों से कट जाते और प्रतिबिम्ब पानी पर पट्टियों की गति के साथ थिरक-थिरक कर दौड़ता—भयंकर स्वर करती रेल को लगभग अपनी छाती पर चली आती, निरन्तर कम-होती, निकटता का अनुभव कैसी विचित्र था—कैसा भयोत्पादक, कैसा रोमांचकारी, थ्रिलिंग।

...और मेल इनके सामने से गुज़र गया। पुल काफ़ी ऊँचा होने से डिब्बों के भीतर की स्थिति तो दिखाई नहीं दी—लेकिन हर खिड़की में कोई सिर चमक उठता था। और जब भी रोशनी गुज़रते हुए सूरजजी के चेहरे पर पड़ जाती, तो जया को ऐसा लगता जैसे एक मर्मान्तिक-व्यथा से सूरजजी का चेहरा विकृत हो उठा है और चश्मे के पीछे से झाँकती आँखों की चमक का स्विच किसी ने बन्द कर दिया है, जैसे यह रेल कहीं भीतर नके दिमाग़ में—दिल की गहराइयों में गड़गड़ाहट का शोर करती, भाफ और कोयले छोड़ती, फुफकारती गुज़र रही है। इस विचित्र संवेदन से जया का रोम-रोम काँप उठा। वह अपनी बात बिल्कुल भूल कर फिर जैसे 'स्व'-हीन हो गयी थी.....

आख़िर रेल गुज़र गयी—और सबसे पीछे की लाल बत्ती अँधेरे में सरकती

चली गयी—सरकती चली गयी। सारी आवाज़ें धीरे-धीरे हवा में खो गयीं। तीनों चुप थे।

सूरजजी कटी डाली की तरह ज़मीन पर चित्त लेट गये और एकटक चाँद को देखते हुए उन्होंने चश्मा उतार कर सिर के पास रख लिया। उँगलियों से आंखें मसलते हुए बोले—"तो लीजिये, आज सूरजजी की आत्म-कथा ही सुन लीजिये; और जिस तरह मध्यकालीन पेशेवर क़िस्सागो हर कहानी को कुछ शेर, दोहों और छन्दों से प्रारम्भ करते थे, कुछ वैसे ही वह कहानी शुरू होती है, अब आप लोग भी आराम से बैठ जाँय तो अच्छा...।"

"जी हाँ, ठीक है हमलोग।" कहकर जया जो एक ही तरह बैठने से थक गयी थी, पीछे हथेलियाँ टिकाकर, आराम से पाँव फैलाकर अधलेटी बैठ गयी—और इतनी देर से उठनेवाली इच्छा को जब शरद न रोक सका तो जया की जाँघ पर सिर रखकर सूरजजी की ओर मुंह करके लेट गया। जया ने कोई विरोध नहीं किया। सूरजजी की बात पर ध्यान केन्द्रित करके शरद के हाथ अपनी छाती पर जया की वेणी से खेलने लगे थे.....

सूरजजी ने गहरी साँस लेकर कहा—"तो शेर है :—

"काबे की तरफ जा रहा हूँ, निगह सूए दैर है,
फिर-फिर के देखता हूँ, कोई देखता न हो.....

"असल में मैं आज तक ठीक से नहीं कह सकता कि मेरे माँ-बाप कौन थे। आपको याद होगा मैंने पहले ही दिन कहा था कि 'सूरज इस धरती पर आ कैसे गया यह एक रहस्य है।' जब मैंने होश सँभाला—या कहो जहां तक बचपन की बात मुझे याद है, उसमें उभर कर एक बात बार-बार आती है। एक छोटा-सा बच्चा बार-बार मेरी गोद में ठूँस दिया जाता था, दोनों बाँहों में बड़ी मुश्किल से उसे बांधे मैं मुंह-फाड़ कर चीखते बच्चे को चुप करने के लिये इधर से उधर घूमा करता। मेरे हाथ दुख जाते थे—मैं घूमता-घूमता थक जाता था; लेकिन पता नहीं वह बच्चा किस धातु का बना था कि मैं ज़रा चुप हुआ कि उसने दहाड़ मार-मार कर रोना शुरू किया। उसे गाना सुनाओ, घुमाओ। धरती पर छोड़ना तो उसे गोली मार देने के बराबर था। अब आप कल्पना कीजिये, बालिश्त भरके सूरजजी, सिर घुटाये, शरीर पर केवल जाँघिया पहने, कमर पर बच्चे को लादे; बोझ से दुहरे होकर घूम रहे हैं। एक कमरे में बैठा एक लड़का-सा मास्टर आठ-दस लड़कों को पढ़ाया करता। बच्चों को देख कर कभी मैं वहां जाकर खड़ा होता कि गोद का वह पिल्ला गला फाड़ कर रो उठता। मास्टर और लड़के सब मुझे भगा देते। फिर तो शायद उन्हें ऐसा

अभ्यास हो गया कि उन्होंने ज़रा मेरी सूरत देखी और भगा दिया। मुझे उनके पास खड़े होकर चुपचाप देखने का बड़ा शौक़ था। जितना ही वे मुझे भगाते उतना ही मैं छिप-छिपकर देखता। जहाँ तक मुझे याद है, बाल घुटाते समय मेरे सिर पर एक चूहे की पूँछ-सी चुटिया भी रखी गयी थी। उसकी कोई और उपयोगिता चाहे हो या न हो, एक उपयोगिता थी। घर की स्त्रियाँ और उनके देखा-देखी मुझसे बड़े और बराबर उम्र के बच्चे, वक्त-बेवक्त उस चुटिया को पकड़कर मेरे गालों पर तड़ातड़ चाँटे मारते। चुटिया पकड़े जाने से मैं अपने बचाव के लिये, मुँह इधर-उधर भी नहीं घुमा सकता था। और यही क्यों, मारना तो उन लोगों में कुछ ऐसा आवश्यक काम समझा जाता था जैसे घड़ी का घण्टे बजाना। हर इधर-उधर से आने-जाने वाले से मैं डरता था कि इसने मेरी चुटिया पकड़ी और इधर-उधर से दो तमाचे मेरे गालों पर जड़े। फिर वह मारनेवाला निर्लिप्त होकर इस तरह चला जाता था जैसे कोई भी खास काम नहीं किया। बराबर वाले बच्चों से तो मैं आँख दिखाकर बच भी लेता था; लेकिन बड़ों की मार पर सिवा रोने के और था भी क्या। चोट लगती थी तो मैं रोता था और जब तक वे आँसू सूख पाते तब फिर नयी चोट लग जाती। आप विश्वास कीजिये, अगर एकाध-घण्टा यों ही चला जाता तो मुझे खुद आश्चर्य होता। जैसे मैं उसकी अपेक्षा करने लगा था! 'क्यों रे, यहां धूप में क्यों खड़ा है—बच्चे की तबियत खराब हो जायेगी।' 'भीतर क्या घुसा बैठा है, बाहर हवा में खिला।' 'गोटी खानों को क्या टुकुर-टुकुर ताक रहा है—बखत पर मिलेगी, जा बच्चा को घुमा ला।' 'हाथ टूट गये हैं—हाथों में दम नहीं है क्या? ठीक से क्यों नहीं हिलाता है उसे।' 'चल उधर चल, इधर मास्टर पढ़ा रहा है' इत्यादि वाक्य मुझे ज्यों के त्यों याद हैं। बच्चे को कभी रेत में बैठाकर हम-उम्रों के साथ खेलने लगता और वह रो उठता तो ऐसा क्रोध आता कि जमना में डुबा दूँ। सब बातें तो याद नहीं हैं, बस इतना याद है कि मार खूब पड़ती थी-और कोई अपना था नहीं। एकबार पता नहीं क्या किया कि कनेर की टहनियों से मार पड़ी। रात भर मैं खाट पर बेहोशी में उछल-उछल पड़ता था; लेकिन कोई अपना था ही नहीं। एकबार खेलने में मेरी बराबर का लड़का शायद हार गया। हारकर नोचने-काटने लगा—मैंने उठाकर दे मारा। उन दिनों शरीर कुछ तगड़ा था। बस फिर क्या था, मालिक के लड़के को गिराना कोई छोटा-मोटा जुर्म नहीं था। सबसे पहले तो लात-घूँसा और न जाने किस-किस से मेरी मरम्मत हुई। मुर्ग़ा बनाया गया, पूरे दिन कोठरी में बन्द रखा गया—दो दिन खाना नहीं दिया गया। और आप ताज्जुब करेंगे जिस बच्चे के लिये मैं पिटा या जिसे मैंने उठा कर दे मारा, उसीने अपने हिस्से का खाना मुझे चुराकर खिलाया था। यह सब मुझे एक-एक बात याद है। वही मुझे कभी-कभी बताया करता कि मास्टर साहब ने आज यह पढ़ाया, वह पढ़ाया। शायद उन्होंने ही मेरा नाम

मुरलीधर रखा था, क्योंकि वे लोग मुझे मुरला या मुल्ला कहकर पुकारते थे। कानों पर मुल्ला-मुरला की दनादन गोलियों जैसी आवाजें लगती थीं—मुझे अपने इस नाम तक से घृणा हो गयी थी—

"शायद तभी आपने अपना नाम सूरज रख लिया—क्योंकि मनोवैज्ञानिक रूप से आप उस नाम से बुरी तरह घृणा करते थे।" शरद ने पूछा।

"नहीं, 'सूरज' नाम किसी प्रतिकार-स्वरूप रखा गया नाम नहीं है। मैं मानता हूँ वह भी अपने आप में ऐसा अच्छा नाम नहीं है; लेकिन जिसने भी यह नाम पहले रखा था, वह कुछ ऐसा मधुर-क्षण है कि मैं बयान नहीं कर सकता। और शायद यह उसीकी प्रतिक्रिया है कि जहां मैं एक नाम को बिल्कुल सुनना नहीं चाहता था, वहां यह दूसरा नाम इतना प्रिय था कि इसे बार-बार सुनना चाहता था और इसी झोंक में शायद अपना नाम कभी-कभी खुद भी लेने लगा। अब तो यह मेरे व्यक्तित्व का एक हिस्सा हो गया है। खैर, यह बात अभी आयेगी। तो पहले जीवन की मुझे बस एक बात और याद है कि न जाने कैसे, पास-पड़ोस के किसी नौकर से या कैसे, मैं बीड़ी पीने लगा और एक दिन जब पकड़ा गया तो ऐसी मार पड़ी कि शायद आज तक याद नहीं है, उतनी मार बाद में कहीं खाई हो। हाथ-पाँव बाँध कर एक घण्टे-भर कुएँ में अधर लटका रहा।"

"हाय! नीचे जा पड़ते तो...।" उस दृश्य की कल्पना से सिहर कर जया बीच में बोल पड़ी।

"जा पड़ते तो उनकी बला से। सचमुच जयाजी, अब जब कभी मैं उस बात को सोचता हूँ, तो यह बात मेरे सामने साफ़ हो जाती है कि मैं किसलिये बीड़ी पीने पर पीटा गया था। मैं इसलिये नहीं पीटा गया था कि कोई बुरा काम सीख रहा था, या एक ऐसी आदत सीख रहा था जिससे मेरा कोई नुक़सान हो जाने की सम्भावना थी—बल्कि कहीं मेरी इस आदत से उनके सुपुत्रों में ऐसी कोई आदत न लग जाय—यह था मुख्य कारण।"

"सचमुच आपको अपनी माँ की कोई बात याद नहीं?" जया ने फिर बीच में पूछा। वह सोच रही थी कि ऐसे दुख और मार के बाद वह कौन-सी गोद थी जहां यह व्यक्ति अपनी आत्मा को शान्ति देता था।

"माँ? मैंने बताया न, अपने माँ-बाप का मुझे कोई ध्यान नहीं है। हाँ, तरह-तरह की बातें ज़रूर सुनी थीं। जैसे वे लोग मुझे किसी अनाथालय से उठा लाये थे—और मैं किसी विधवा या कुमारी के पेट की उपज था; या मेरी माँ खुद ही मुझे इनके हाथों बेच गयी थी—या मैं कहीं भटक रहा था; इन लोगों ने पाल लिया। पता नहीं कौन-सी बात ठीक है। हाँ, इतना ज़रूर है कि उन्हीं दिनों एक भयंकर अकाल पड़ा था. और हो सकता है कि मेरे बेचे जाने की बात सही हो। खैर, तो जहाँ उन लोगों की गाय-भैंसों के लिये भुस रखा रहता था, उसी में एक

ओर मेरी जगह थी। बस, वहीं जाकर मैं अक्सर रोया करता। फिर पता नहीं उनलोगों का क्या हुआ—तबादला हो गया या क्या हुआ। हो सकता है, मैं ही भाग खड़ा होऊँ और मुझे याद न हो। दूसरी बात मुझे एक मोटर के अड्डे की याद है। मोटरों के क्लीनर और ड्राइवर दोनों चीख़-चीखकर आवाज़े लगाते थे—सवारियों को बुलाते थे। कभी-कभी तो आपस में अपनी-अपनी मोटरों पर चढ़ानेके लिये सवारियों की खींचा-तानी करते, पोटली कोई रख रहा है—हाथ दूसरा खींच रहा है। और भीतर बैठी हुई सवारियां गर्मी में घबराती और हाँफती, चलने की जल्दी मचातीं। कभी-कभी सिर चकराने से क़ै भी कर देतीं—लेकिन जब मोटर ऊपर-नीचे खूब लद लेती, तब चलती। शायद उस शहर से किसी गांव की तरफ़ मोटर जाती थी। मोटर के आने-जाने के बीच के वक्त के लिये एक अलाव जलता रहता, जिसमें से गाँव-वाले चिलम भर-भर कर पीते। वहीं हम बनियान और एक अँगोछी-सी बाँधे इधर-उधर पड़े रहते। तीन-चार थे। शायद पैसे मांगते, चिलम भरते थे और किसी का सामान इधर-उधर रख देते थे। किसी चाट-खोम्चे वाले से कोई मुसाफ़िर कुछ खाता होता तो आंखें फाड़-फाड़ कर उसे देखते—वह चाटवाला भारी भारी गालियां देता हुआ अपने मक्खी उड़ानेवाले डण्डे से हमें और पास खड़े हुए कुत्ते को डाँट कर भगाता—तो हम कुछ दूर खड़े हो जाते। यहां मैं बता दूं कि इतनी मार-पीट के बाद भी बीड़ी पीने की आदत हमें लग ही गयी थी—सो इधर-उधर फेंकी हुई बीड़ियों को झट उठाकर पीने लगते या वक्त-बेवक्त के लिये बुझाकर कान में लगा लेते। कभी-कभी तो एक-एक बीड़ी के लिये आपस में ऐसे भयंकर युद्ध हुआ करते कि दाँतों और नाखूनों से सब लहू-लुहान हो जाते। जाड़ा होता तो हलवाई की भट्टी या उस अलाव के पास या कहीं इधर-उधर घुसकर काट देते। मोटरों के इञ्जन में पानी भरने वाला, जो मुसाफ़िरों को भी पानी पिलाता था—एक महाराज था, वह अपनी मोटी हाथ की बुनी गाढ़े की रज़ाई बिछाकर एक दूकान के तख्ते पर खाट डाल कर सोता था। उसकी रज़ाई आधी लटकती रहती थी। उसकी खाट के नीचे मैं घुसकर सो जाता। पेट कैसे भरता था—और भरता भी था या नहीं यह अब याद नहीं है।

"हां एक बात और है—या तो कहिये कि मैं पिछले ऐसे जीवन से आया था जहां पढ़ने का महत्व, मुझे आस-पास न आने देकर मेरे दिमाग़ में बैठा दिया गया था—या कुछ स्वाभाविक-रुचि थी। अक्सर अड्डे के इधर-उधर के मकानों पर बड़े लम्बे-चौड़े विज्ञापन लिखने के लिये पेण्टर आया करते थे। पेण्ट के डिब्बों में तार बांधकर डोल की तरह लटका लिया और कोई आज यहां सफ़ेद पोतकर लाल लिख रहा है, कोई नीला पोतकर सफ़ेद। अब अन्दाज़ा लगाता हूँ शायद 'बालामृत' घुटी या हैज़े, क़ै से बचने की कोई अचूक दवा या फिर स्त्री-पुरुषों की गुप्त-बीमारियों के इलाज। जो भी हो, मै वहां खड़ा-खड़ा बड़े ग़ौर से हर अक्षर को बनते देखता और

आश्चर्य करता। मुझे यों खड़ा देखकर कभी-कभी वह पेण्टर मेरे हाथ में सफ़ेदे की डोलची पकड़ा देता—और शान से बीड़ी पीता हुआ अक्षर बनाता। उससे बीड़ी का पारिश्रमिक ठहरता था। या कोई मुसाफ़िर अख़बार पढ़ता होता तो मैं चकित होकर भौंचक-सा उसके चेहरे को देखा करता कि आख़िर ये लोग इतनी देर तक इस काग़ज़ में क्या घूरते हैं। कभी-कभी तो बेचैन होकर अख़बार पढ़नेवाले को ही मुझे भगाना पड़ता। कहना न होगा कि यहाँ भी कुत्ते की तरह चिढ़ाना और दुतकारना अपना जीवन था और यह सब इतना स्वाभाविक था, कि इसके अलावा मैं कुछ सोच ही नहीं पाता था।

"वहीं पास में एक प्राइमरी स्कूल था। मैं वहाँ जाकर घण्टों खड़ा रहता। मास्टर चारपाई बिछाकर सोता रहता, दो लड़के पैर दबाते, दो हवा करते—और चौक के छोटे-छोटे टुकड़ों पर लड़ते। सन के टाट के पट्टे बिछे रहते और तरह-तरह के लड़के आमने-सामने बैठे कालौंच रँग कर दवातों या चौड़े चूड़ी के टुकड़ों से पट्टियां खूब घोटते और फिर आपस में मिलाते कि किसकी पट्टी अधिक चिकनी है। ज़रा-सा पाँव छुलने पर किताबों और पट्टियों को बार-बार माथे से लगाते और स्याही या कालौंच से चितकबरे चीथड़ों में खूब दत्तचित्त होकर किताबें निचला होंठ दांतों के नीचे दबाकर रच-रच कर लपेटते। फिर बैठकर खड़िया की दवात में जिसे वे 'बुद्का' कहते, पानी मिली खड़िया को कलम के पिछले हिस्से से बिलोते और समझते स्याही गाढ़ी हो रही है। चाकू से नरसल की क़लमें बनाते और उसके भीतर से जो सीक-सी निकलती उसे 'बिद्या रानी' का 'परसाद' समझकर खाते। एक दूसरे पर टोटके टोने करते। पट्टी धोते समय धुली हुई पट्टी को हिला-हिला कर हवा में सुखाते हुए गाना गाते, और जब एक दूसरे पर छींटें पड़तीं, तो या कंचों पर या अन्य किसी बात पर लड़ मरते और एक दूसरे को उठा कर पटक देते, तब मास्टर हड़बड़ा कर उठ बैठता और अपने किसी 'प्रिय' विद्यार्थी को इसलिये दो-एक थप्पड़ मारता कि क्यों नहीं उसने उसके बेंत को सँभालकर रखा। बेंत मिलते ही इसकी-उसकी जो सामने पड़ता उसकी धुनाई करता, फिर सबको लाइन में बैठाकर पढ़ने का आदेश देकर खर्राटे भरने लगता। शायद दिन में आध-घण्टा वह पढ़ाता होगा। उस समय भी अधिकांश वह लड़कों से ही ब्लैक-बोर्ड पर सवाल करवाया करता था और ग़लत होने पर सही बताने वाले लड़कों से या तो पूरे क्लास के लड़कों को चांटे मरवाता या फिर खुद मेज़ पर हथेली फैलवाकर रूल मारता! ख़ैर जो भी हो; सुबह प्रार्थना करने से लेकर शाम के कबड्डी के खेल तक मुझे सारा दृश्य बड़ा ही आकर्षक लगता और मुझे उन लड़कों से बड़ी ईर्ष्या होती। वह जैसे एक ऐसा स्पृहणीय स्वप्न-लोक था जहां तक पहुँचने का रास्ता मुझे नहीं मालूम था। यह मेरे जीवन का दूसरा मोड़ है। आप लोग सो तो नहीं रहे हैं!" सूरजजी ने रुककर पूछा।

"नहीं-नहीं आप कहिये···।" दोनों ने एक साथ कहा।

"मैं शायद बहुत अधिक विस्तार के साथ बता रहा हूँ। खैर, अब अधिक संक्षेप में बताऊँगा। बात यह है कि जब पिछला जीवन कोई याद करने बैठता है तो सचमुच उसके सामने बड़ी दिक़्क़त आ खड़ी होती है कि क्या छोड़े और क्या न छोड़े। बुरा हो या अच्छा, अपना होने के कारण उसमें इतना कुछ आकर्षण होता है कि आदमी विवश हो जाता है। मेरी तो इच्छा है कि मैं भी 'भूतनाथ' की तरह अपनी जीवनी कम से कम बीस खण्डों में लिखकर दूँ, लेकिन देखिये कब होता है, और सब होता भी है या नहीं। हाँ, तो अब संक्षेप में ही बताऊँगा। जिन्दगी का तीसरा हिस्सा है मेरा जेबकट के रूप में। स्टेशन पर, कहीं टिकटघर के आस-पास, कहीं मुसाफिर-खाने में या प्लेटफ़ॉर्म के पुल के आस-पास बैठे रहना-ओंघते पड़े रहना और ताकना कि कौन मुसाफ़िर टिकट ख़रीदकर या खाने-पीने की चीज़ ख़रीदकर पैसे कहाँ रखता है। इसमें हम पाँच-छः लड़के थे। तब मैं बारह-तेरह साल का हो चुका था। बैठकर हम सब बीड़ी पीते, सिगरेट पीते और जुआ खेलते। ताश में माँग-पत्ता एक खेल होता है। एक पत्ता निश्चित कर लिया और उस पर पैसे लगाकर बाँटने लगे—जिसके हिस्से में ताश आ गया वह सारे पैसे समेट ले गया। हमारे साथ रेल के क़ुली, खलासी भी आ जाते थे। सिपाही अक्सर हमें तंग करते थे। उन्हें दो-चार-आने देने पड़ते, वर्ना वे लोग थाने में ले जाकर मारते थे। मारने से भी बुरा उनका नोचना होता था। वे बग़ल के पीछे के पुट्ठे के नीचेवाले मांस को मुट्ठी भर कर पकड़ लेते और बुरी तरह मसल कर नोंचते तब सारा शरीर तड़प कर रह जाता। यह मारने से कई गुना भयंकर कष्ट था। मज़ा यह कि नोंचते समय हमें बिलबिलाता और तड़फड़ाता देखकर सिपाही या थानेदार राक्षस की तरह खिलखिलाकर हंसते थे। खाली वक़्त में इधर-उधर आँखें बचाकर अटैची-बिस्तर उड़ा देना। लेकिन इन सभी कामों में हमारी एक सीमा थी इससे आगे हमें नहीं जाने दिया जाता था। क्योंकि फिर बड़े-बड़े हाथ मारने वाले बड़े-बड़े लोग थे। अपने क्षेत्र में क़दम रखते देखकर वे लोग हमें मारकर भगा देते थे। आप विश्वास कीजिये शरद बाबू, भारतीय रेलों से बढ़कर चोरी-डकैती का दूसरा स्थान नहीं है—केन्द्र समझिये, केन्द्र। वहाँ एक काम होता है? ब्लैक के माल से लेकर चोरी छिपे नाजायज़ शराब, गांजा इत्यादि ले जाने का कारबार, हत्या, डकैती, चोरी का काम, जेब काटने-लूटने का काम, लड़कियाँ इधर-उधर ले जाने-भगाने ख़रीदने-बेचने का काम, औरतों को बहकाने, बलात्कार का काम; —एक काम है वहाँ? मेरा तो दावा यह है कि आप दुनियाँ का कोई भी अपराध किसी भी स्तर पर करना चाहते हों—भारतीय रेलवे से बढ़कर सारी सुविधाएं आपको एक जगह मिलना बहुत ही कठिन है—इस क्षेत्र में चाहे आप सिक्खड़ हों या माहिर, आपके लिये पूरा क्षेत्र खुला है। लूट का ऐसा खुला रूप शायद कहीं नहीं दिखाई देता। क़ुली-खलासी से लेकर टी० टी० हो या सिपाही—यह सब तो बाक़ायदा हाथ में से अठन्नी तक

झपटने के लिये स्वतन्त्र हैं ही—बड़े लोगों के बड़े क़ायदे हैं। उनके हिस्से बँधे हैं। आप उनका हिस्सा दे दीजिये और निर्द्वन्द्व होकर अपना काम किये जाइये; कोई आपसे पूछने वाला नहीं है। कोई लड़की अकेली प्लेटफ़ॉर्म पर बैठी है, वेटिंगरूम में है; किसी टी० टी०, ए० एस० ए०, एस० एम० या एस० ओ० साहब की इच्छा आ गई—फिर वह लड़की बचकर नहीं निकल सकती। ऐसे केस तो हज़ारों होते थे जैसे नये विवाहित पति-पत्नी या ऐसे ही कोई जा रहे हैं, किसी स्टेशनवाले का मन आ गया। ज़रा देर में एस० ओ० साहब आयेंगे—'आप लोग भागकर आये हैं।' ज़बर्दस्ती उन्हें थाने ले जाया जायगा, साथ वाले आदमी में दो एक धौल-डण्डे जमाये जाएँगे। उसकी जेब ख़ाली करा ली जायेगी, और यदि किसी पहले स्टेशन पर इसी तरह उनकी जेब ख़ाली करा ली गई है तब तो उनकी पिटाई की ख़ैर नहीं है; फिर उन्हें हवालात में बन्द कर दिया जायेगा। अब साथ वाले महोदय सीखचों के पीछे बैठे देख रहे हैं कि उनकी पत्नी, प्रेयसी या बहन स्टेशन के इस अफ़सर के पास से उस अफ़सर के पास ले जायी जा रही है। आप कुढ़ रहे हैं, कुछ कर आप सकते नहीं क्योंकि मौके पर एक भी गवाही आपको नहीं मिलेगी। हिन्दुस्तान में दो ही ऐसी जगहें हैं जहां चाहे आप प्रारम्भिक स्थिति में जायें या कुछ सीखकर, आप उस दिशा की चरम सीमा छूकर ही रहेंगे; बीच में चाहें भी तो नहीं रुक सकेंगे—वे हैं जेल और रेल! और समझ लीजिये सूरज उसी चक्कर में पड़ गया था। ब्लेड के एक ओर कपड़ा, काग़ज़ या पुट्ठा बांध कर उसे इस लायक़ किया जाता कि काटने वाले की उंगली न काटे, फिर पैंतरे ताके जाते। सूरज के भाँपने की कला इन दिनों जैसी विकसित हो गयी थी—उसे सोच कर आश्चर्य होता है—उसी का तो प्रताप है कि—"

"तब तो आपसे होशियार रहने की ज़रूरत है।" सूरजजी फिर बहक रहे हैं, यह बात समझकर जया ने जँभाई लेते हुए मुँह के आगे हाथ रखकर हंसी में कहा।

"होशियार तो आप लोग वैसे भी काफ़ी हैं।" सूरजजी बोले और वे करवट बदल कर लेट गये। उन्होंने हथेली पर अपना सिर उठा लिया और कुहनी धरती पर टेक दी। अभी तक वे आकाश की ओर देख रहे थे—इस लिये जया इस ख्याल से जाँघ पर शरद का सिर लिये चुपचाप बैठी थी कि वे ऊपर देख रहे हैं। अब वह उसका सिर हटाने के लिये कुनमुना उठी; शरद ज़बान से कुछ न बोल कर सारी ताक़त से सिर को वहीं जमाये रहा—जो आदमी जीवन के अपने गुह्यतर स्तरों को यों बेझिझक हो कर बोल दे रहा है, उससे क्या पर्दा?

आख़िर सूरजजी ने कहा—"बैठी रहिये न, कोई ऐसी अनोखी बात तो यह है नहीं कि जिसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता।"

जया लज्जा से कटकर बुरी तरह संकुचित हो उठी। शरद ने पूछा—"हाँ,

फिर ?"

"हां तो, जेब काटने का यह काम ज़्यादा नहीं चला। क्योंकि इसके साथ ही एक काम हम और करते थे—यार्ड में खड़े हुए या इधर-उधर पड़े हुए मालगाड़ी के डिब्बों में से सामान निकालना। बोरियों चीनी. सोडा, दाल, नमक—चाय और अन्न हमने इधर-उधर किया। फलों की तो कोई शुमार ही नहीं थी। इन सबको बाज़ार में बेचना और पैसे सीधे करना—फिर सिनेमा, थियेटर, जुआ और दावतें। एक बार पकड़कर छः महीने को ठूंस दिये गये। यों तो एक हफ़्ते तक कभी-कभी हवालात में रहे थे ; लेकिन इतनी लम्बी सज़ा यह पहली थी। वहाँ का कुछ और ही हाल था। छः महीनेकी सज़ा वाले को तो कोई पास खड़ा रहने देना पसन्द नहीं करता था—मार कर भगा देते थे। वहां तो कोई गर्व से कहता चार साल, कोई कहता, छः साल, कोई कहता, आठ साल, और इसी हिसाब से उसकी इज़्ज़त होती। अपनी तो कोई गिनती ही नहीं थी। वहाँ हमें पढ़ाया भी जाता था। खैर, वहाँ से आया तो फिर उसी काम में लग गया। लेकिन पता नहीं क्यों मन वहां से ऊब गया। दुनियां भर की ज़लालत, मार-पीट, जेल और गाली ; यह हमारे सिर थी और हिस्सा सबका होता था। सबको खिलाओ-पिलाओ; एक दिन न दो तो बेमुरव्वत होकर गर्दन काटदें ; जेल भेजने में ज़रा भी न हिचकें। पचास पर हाथ मारो तो हिस्सा दे दिलाकर वही पाँच बच रहते। आखिर मैंने फिर लाइन बदलने का निश्चय कर लिया। वहां रहते हुए यह सम्भव नहीं था—क्योंकि किसी एक लाइन में सैट हुआ आदमी इतना बँधा होता है—ऐसा विवश होता है कि वह चाहे भी तो लाइन नहीं बदल सकता। साथवाले, हिस्सेवाले, शुभ-चिन्तक, यार-दोस्त, पूरा एक षडयन्त्र होता है जो आपको ज़रा भी फ़ुर्सत नहीं देंगे। आप हिल ही नहीं सकते। और आखिर मैं भाग खड़ा हुआ। इस कार्य से मुझे घृणा हुई एक छोटी-सी घटना से। एक दिन हमने माल-गोदाम के डिब्बे से सात सेर काजू चुराये, जैसे ही निकलने को हुए कि एक दीवान की निगाह पड़ गयी। कोई देखता होता तो वह ज़रूर मारता पर अब उसने आधा-हिस्सा ले लिया। आगे बढ़े तो देखा ए० एस० एम० साहब चले आ रहे हैं, उन्हें देना पड़ा। और संक्षेप में बात यह कि मुट्ठी भर काजू अपने हिस्से में आये। और वे काजू मैंने लिये कैसे थे ? डिब्बे में से चुराकर जैसे ही बाहर आया, देखा तो चौकीदार खड़ा है। मैं भागा। रास्ते में तार लगे थे, कांटे-दार। सिनेमा में देखता था कैसे पतली-सी जगह में से हीरो छलाँग लगा कर बचता हुआ निकल जाता था। मैंने भी उसी तरह छलाँग लगाई। पार तो खैर किसी तरह जा पड़ा; लेकिन घुटने की खाल बड़ी लम्बी फट गई। पीछे चौकीदार लगा था। जब मैं गिर पड़ा तो बोला—'लड़के, रुक जा, मैं तुझे मारूँगा नहीं।' लेकिन वहां होश किसे था। जैसे-तैसे गिरता पड़ता भागा तो सामने दूसरा दीवान खड़ा था। उस दिन मुझे बड़ी झुँझलाहट आई। मैंने वह

मुठ्ठी भर काजू भी उठाकर नाली मे फेक दिये। स्टेशन पर आ पड़ा। हावड़ा ऐक्स-प्रेस आई। चौदह-पंद्रह साल का एक गोरा-सा लड़का बैठा था एक डिब्बे में। दाँव लग गया तो उसका बटुआ हमने पार कर दिया। उसमें रुपये तो अधिक नहीं थे —शायद दस हों, लेकिन टिकट इत्यादि सभी कुछ था। जैसे ही मैं डिब्बे से निकला —उधर से घुस आये दो टी० टी०। उस दिन 'गैंग' चल रहा था; स्पेशल् मैजि-स्ट्रेट ड्यूटी पर था। लड़का पकड़ा गया और बन्द कर दिया गया। गैंग तो अगले स्टेशन पर चला गया—लेकिन उस लड़के की जो हालत हुई उसे न कहना ही अच्छा है। बलिया की तरफ़ के दो-तीन उजड्ड सिपाही थे। लड़का किसी अच्छे घर का था। शायद लड़कर या भागकर आया था। दो-एक दिन तो उसने नाम ही नहीं बताया—फिर नाम बताया तो माँ-बाप को आते-आते दो दिन लग गये। इस बीच में उन कम्बख्त सिपाहियों ने उस लड़के का सत्यानाश कर डाला था। इसके बाद जब घर पहुँचाया गया तो सुना दूसरे या तीसरे दिन उसकी मौत हो गई। यह एक ऐसी बात थी कि मैं आज तक अपने को अपराधी समझता हूँ। रह-रहकर मन मे उठता—यह हत्या तेरे सिर है। कई दिनों मैंने इस आवाज़ को झुठ-लाया—और आखिरकार भागना ही पड़ा।

"इसके बाद बोझा उठाने से लेकर इधर-उधर के बहुत से काम किये। फिर पता नहीं किस तरह अखबार बेचने लगा। पहले आवाज़ लगाने के लिये किसी राह चलते से कोई लाइन पढ़वा कर उसकी आवाज़ लगाता था—धीरे-धीरे खुद भी हिज्जे कर करके पढ़ने लगा। क्योंकि जो सुनता था उसे ही मोटे अक्षरों में पहचानने की कोशिश करता। उन दिनों पेण्टरों वाले अक्षर दिमाग़ में उभर आते थे। साल-डेढ़ साल अखबार बेचे। फिर एक किताब की दूकान में नौकरी करली और ट्रैवलिंग एजेण्ट हो गया। बस, दो संदूकें किताबों की भरी और घूम रहे हैं। समझिये किताबों की दूकान में नौकरी करना मेरी ज़िन्दगी का बहुत बड़ा मोड़ था।

"घर-घर जाकर किताबें दिखानी पड़ती थीं, लोगों को समझाना पड़ता था। इसलिये पहले से किताब को उलट-पलट देखना पड़ता था। आगे पीछे पढ़ना भी पड़ता था। इस दिशा मे मैने अपने और साथियों की अपेक्षा ज़रा अधिक मेह-नत की। मैं चाहता था कि जितनी किताबें मैं ले जाऊँ या मेरे साथ हों, उनपर मै अधिकार के साथ ग्राहक को बता सकूँ, चुनाव कर सकूँ। क्योंकि मेरा ख्याल है किताबें बेचना शायद सबसे अधिक विचित्र अनुभव है। मैं जहाँ जाता था, सराय या रास्ते के होटल में सामान रखा, एक कुली के सिर पर बक्सा लदवाया, खुद थोड़ी सी किताबें लीं और चल दिये। स्कूल के मास्टरों, लाइब्रेरियों इत्यादि सभी जगह घूमने से दो बातें मेरी समझ में आगई। एक तो बोलने-चालने का सलीक़ा सबसे ज़्यादा ज़रूरी है, दूसरे हैं कपड़े। सो दोनों ओर मैं अधिक से अधिक ध्यान देता। आप सच मानिये, एक सालभर बाद यह पहचानना मुश्किल हो गया कि यह आदमी

कितना पढ़ा-लिखा है। हाँ, तो मैं बेचने के विचित्र अनुभव बता रहा था। मैं जानता था कि निम्न-मध्यवर्गीय लोगों, और अधिकांश बाबू-लोगों की स्थिति ही नहीं होती कुछ खरीदने लायक़; इसलिये उधर जाना बेकार था। अतः कोठियों या रईस व्यापारियों की तरफ़ ही मैं जाता। कहीं तो बड़ा आदर होता, कुर्सी पर बैठाया जाता, पानी इत्यादि के लिये पूछा जाता—चाय तक कहीं-कहीं दी जाती। कहीं ड्रॉइङ्गरूम में बैठे कैरम खेल रहे हैं—साग-सब्ज़ी-वाले की तरह कह दिया—'दिखाओ, क्या-क्या है?' अब एक-एक किताब दिखा रहे है। हम तो उस किताब का वर्णन करने में खून-पसीना एक किये दे रहे है, और वे लोग अपने चैप, कट, फ्लुक और रिबाउण्ड में लगे हैं। तबियत कुढकर खाक हो जाती थी। एक ही परिवार में अलग-अलग तरह की रुचियाँ देखने में आती। लड़की कोई चटपटा-सा उपन्यास चाहती है, अम्मा-जान मोटे अक्षरों वाली गीता की माँग करती है और बाप मिया कोई दर्शन-शास्त्र की किताबें चाहते हैं। अँग्रेजी अपनी समझ से परे थी इसलिये अँग्रेज़ी की किताबे मैं रखता नही था। लेकिन ऑर्डर ले लेता था। क्योंकि जिस दूकान पर काम करता था वे लोग अँग्रेज़ी की किताबें भी बेचते थे। सच मानिये शरद बाबू, ज़िन्दगी जितनी अच्छी तरह घूमनेवाले को दिखाई देती है, किसी भी दूसरे आदमी को नही। कोई जगह मैंने छोडी थी? शहर-शहर गली-गली और दर-दर घूमा। हर अच्छे-बुरे आदमी के पास मैं गया। पहले तो झिझक लगती थी। पता नही यह खरीदेगा या नही; लेकिन फिर झिझक खुल गई। कारखाने, दफ्तर सभी जगह मैं जाता और तब देखना। तरह-तरह के लोगों से मुठभेड़ होती। इस तरह मैंने उन दिनों एक नया रूप देखा। लगा, जीवन का दर्शक बनने मे बड़ा सुख है।

"जिस मकान में मैं कोठरी लेकर रहता था, वह एक हवलदार की विधवा का मकान था—उसके एक लड़की थी और एक छोटा-सा लड़का। इस मकान के अतिरिक्त उसकी एक पनचक्की थी। विधवा चालीस-पैंतालीस साल की होगी। बहुत ही कर्मठ थी। खुद ही सब देखभाल करती थी। एक नौकर चक्की पर रख दिया था—और सब कामों पर निगाह रखती थी। मुझे अक्सर रहना तो बाहर ही पड़ता था; लेकिन जब भी यहां आ जाता तो दूकान पर डिस्पैंच इत्यादि का काम करना पडता। मेरा 'टूर' मालिक ही तैयार करके देता था। उन दिनों कभी होटल में खा लिया—कभी खिचड़ी डाल दी। रात को सैकेण्ड-शो, या इधर-उधर घूमने चला जाता, और काफ़ी रात को लौटता। सुबह या कभी छुट्टी के दिन बैठा बैठा किताबों से सिर मारा करता। मेरा तो विश्वास यह है कि आप चाहे कैसी भी कम्पनी में क्यों न रहे हों, पन्द्रह से चौबीस साल के बीच में निश्चित-रूप से दो एक साल का समय ऐसा आता है, जब लगता है कि आपसे ज्यादा अकेला, उदास और अभागा दुनियाँ में कोई नहीं है। कम-से-कम मेरा हाल यही था। दिन भर भट-

कता-घूमता; निरुद्देश्य। पिछले जीवन की ओर लौटने या लौटकर देखने की कोई ख़ास इच्छा नहीं होती थी, थोड़ा बहुत पढ़कर या खुद देख-सुनकर मैं समझने लगा था कि वह जीवन कोई विशेष अच्छा नहीं था। बल्कि उससे उत्कट घृणा हो गयी थी, जो जीवन के इस छोर से उस छोर तक छाई रहती। 'टूर' की तो खैर कोई बात ही नहीं—तब तो दिन पता भी नहीं लगता था, लेकिन यह दिन सचमुच बड़े कठिन हो जाते।

"कभी मैं अपनी कोठरी में बैठा ले जाने के लिये, या लाई हुई किताबें सँभालने लगता तो वह हवलदारिन की लड़की 'चन्द्रा' आकर खड़ी हो जाती। वह आठवें या नवें में पढ़ती थी। वह मुझसे माँगती—'हमें कोई किताब दे दो न! लेकिन अच्छी-सी देना, जिसमें हमारा मन लगे।' मैं उससे कहता, 'आप छाँट लीजिये।' वह दो-एक उलट-पलट कर देखती, फिर कहती, 'आपही देख दीजिये न' बात को ज़्यादा न बढ़ाकर मैं बता दूँ कि उसको कौन-सी किताब अच्छी लगेगी, यह देखने के लिये मैं रात-रात भर दिया जला कर किताबें पढ़ता था। उसे देता; फिर पूछता कैसी लगी। कभी जब मैं एकाध-महीने बाद लौटकर आता तो वह बैठ कर मेरी यात्रा का पूरा विवरण सुनती। अब मन की बात छिपाने से कोई फ़ायदा भी नहीं है, मैं उन दिनों किसी ऐसे साथ के लिये भटक रहा था जहाँ अपने तन, मन, प्राण सपने, सभी को निछावर कर दूँ। यों लड़कियों का साथ दो-एक बार पहले भी हो चुका था और उस समाज में जिससे मैं आया था, स्त्री का क्या उपयोग है—यह मैं समझ चुका था। लेकिन उन पढ़ी हुई किताबों ने पता नहीं मन में कैसी एक भूख जगा दी थी। मैं नारी के साथ के लिये तरसता था—माँ-बहन या किसी भी सगे-सम्बन्धी के रूप में स्त्री को नहीं देखा था। आप विश्वास कीजिये, बहुत शुरू से ही मैं स्त्रियों को देखकर विचित्र-विचित्र बातें सोचा करता था। आख़िर ये लोग कौन हैं—जो पुरुषों से भिन्न है? क्यों इन्हें भगवान ने ऐसा बना दिया है? मन में जिज्ञासाओं का ज्वार उमड़ पड़ता था। अब कभी चन्दा मेरी यात्रा के विषय में मुँह फाड़े, आकांक्षा-भरे नेत्रों से सुनती, मैं किन-किन शहरों में गया, वहाँ क्या-क्या देखा, किस प्रकार दिन और रात बीते, तो मुझे ऐसा लगता कि यह महीने भर की यात्रा मैंने केवल इसीलिये की थी कि एक दिन बैठकर चन्दा को सुनाऊँगा। अक्सर वह या तो दोपहर को आती या स्कूल जाते या आते समय। मैं कुछ भी करता, चन्दा मेरे दिमाग़ में होती। धीरे-धीरे मुझे ऐसा लगने लगा जैसे मेरे अस्तित्व और व्यक्तित्व के एक-एक कण में—रग-रगमें चन्दा समा गयी है। मैं चन्दा के लिये दुनियाँ का कोई काम कर सकता हूँ, किसी भी शक्ति से टक्कर ले सकता हूँ, कहीं भी जा सकता हूँ। उन दिनों तो सचमुच नहर खोदना भी मुझे कोई विशेष कठिन काम नहीं लगता। अक्सर हमारी बात-चीत पत्रों द्वारा होतीं। यह उन दिनों पढ़ी हुई किताबों का प्रभाव कहिये, अधकचरे दिमाग़ का उफान कहिये या जो कुछ—इतने

लम्बे खत मैंने जीवन में कभी नहीं लिखे। जैसे खत में लिखता, उनसे अधिक भावुकतापूर्ण वह लिखती। और मुझे यह विश्वास हो गया कि हमारा अलग कहीं कोई अस्तित्व नहीं है। हम एक दूसरे से अलग नहीं रह सकते। उन दिनों चलनेवाले गानों की कोई लाइन हमने नहीं छोड़ी—कोई अच्छा 'कुटेशन' नहीं था जो उसकी कोर्स की किताब में बचा हो। मुझे काम पर जाना या टूर पर जाना अच्छा नहीं लगता, और जब लौटकर आता तो पाँवों में पंख लगे होते। उसकी माँ और पास-पड़ोसी न जाने कैसी-कैसी निगाहों से देखते। शायद आपस में कुछ कहते-सुनते भी। माँ उसे रोकती—डांटती भी। एकाध-दिन रोना-नाराज होना—फिर वही सब ठीकसे चल निकलता। उन दिनों उसके पत्रों में सिवाय 'मृत्यु' और 'भाग्य के खेल' के कुछ और होता ही नहीं था—वही अधकचरे मस्तिष्क का उबाल, 'दुनियाँ हमारी इतनी पवित्र और निश्छल मुहब्बत पर कुढ़ती क्यों है? क्यों वह दो आत्माओं के मिलन में दीवार बन कर आती है।' शायद कोई हफ़्ता नहीं जाता था जब हम लोग पत्र-व्यवहार न कर लेते हों। वह 'टूर' में भी मुझे खत भेजती। मैं खुद अपने पते पर उसको लिखता।

"संकेत-रूप में बतादूँ यह नाम उन्हीं दिनों का है। मैं अक्सर उससे पूछता —'चन्दा, तू क्यों इतनी सुन्दर है? खाली मुझे जलाने को?' वह कहती—'अभी क्या है?—अभी तो और भी जलाऊँगी। तुम तो जलने को ही बने हो। जितना जलोगे उतना ही तो मैं सुन्दर बनूंगी।' मैं कहता—'तो यों क्यों नहीं कहती कि तू सोना है? वाह री, लड़की; अपने को सोना कहते तुझे शर्म भी नहीं आती? यानी कि हम जलें और आप तप-तप कर निखरें। इस भ्रम में भी न रहना।' वह हँस कर मुंह मटका कर चली जाती, और मेरा रोम-रोम जैसे कदम्ब के फूल की तरह कण्टकित हो आता। एक दिन कहीं क्लास में उसने जायसी की यह लाइन पढ़ ली—'चाँद कहां जोत औ करा। सुरज कै जोत चाँद निरमरा।' चांद में अपनी ज्योति कहां है? वह तो केवल सूरज की ज्योति से निर्मल चमकता रहता है। और जिस दिन उसने यह लाइन पढ़ी उस दिन लिखा—'मेरे सूरज, तुम्हारी ज्योति में, तुमसे अलग मैं चाँद की तरह प्रकाशित रहूँ, और मिलन के समय तुम्हारे प्रेम की ज्वलित बाहों में डूबकर खो जाऊँ, यही मेरी आकांक्षा है, जीवन का लक्ष्य है।' मैं उसे लिखता—'मेरे भाग्य के चाँद! मेरी चन्दा, मैं सूरज ही सही, लेकिन मेरी सारी भाग-दौड़—जीवन का यह स्पन्दन और गति, प्रकाश और ज्योति केवल तेरे लिये है—केवल तेरे लिये?' इस तरह हमलोगों में यह सूरज-चाँद के सम्बोधनों का विनिमय होने लगा। यह नाम मुझे स्वयं इतना मोहक और मधुर लगता कि कल्पना में मेरे कानों की लौ के आस-पास हमेशा ही 'सूरज!' 'मेरे सूरज' कहते-कहते उसके होंठ नाचा करते। मैं पागल हो गया था—सचमुच प्रेम के ऐसे उन्मत्त नशे की मैंने कभी कल्पना ही नहीं की थी। रात-दिन एक ही बात। आपने वे

लाइनें पढ़ी हैं ? शायद ह्यूगो की या किसकी हैं—'कोई आपको प्यार करता है, शायद इस बात की अनुभूति से बढ़कर सुख संसार में कुछ भी नहीं है।' मुझ उस सुख ने उद्भ्रान्त कर दिया था। मुझे उससे पहले कभी प्यार नहीं मिला था। वही ताड़ना, मार-पीट, अपमान और लांछना मेरा जीवन रहा था। मैं उसी कीचड़ में सिर से पाँव तक डूबा हुआ था—और उसी में सिर छिपाकर सो रहता था —फिर मुझ मिला प्यार—वह भी ऐसा कि जिसके लिये देवता तक तरसें ; राक्षस पायें तो देवता बन जाँय। मेरी समझ में नहीं आता था कि मैं अपने सौभाग्य को कहाँ रखूँ। दुनियाँ का हर प्राणी अपनेसे ईर्ष्या करता और मुझसे उसे छीनने को आतुर लगता। और मै था कि ग़रीब के धन की तरह उसे छाती से लगा कर मर जाना चाहता था।

"और तीन साल बाद उसका विवाह हो गया। जिन दिनों उसके विवाहकी बात-चीत चल रही थी, उन दिनों के पत्र यदि आज मिल जायें तो मैं दावे के साथ कह सकता हूँ शरद बाबू, आप फूट-फूट कर रो पड़ेंगे। ऐसे करुण और ऐसे कातर पत्र थे। मैंने उससे हज़ार बार कहा—'चल, हमलोग कहीं भाग चलें, मैं तेरे लिये चोरी करूँगा, डकैती डालूँगा, कपड़े-लत्ते बेच दूँगा और अगर चाहेगी तो अपनी खाल से तेरे लिये जूते बनवा दूँगा।' आप विश्वास कीजिये, मैं उसके पाँवों पर सिर रखकर हिचक-हिचक कर रोया और जिस दिन उन कोमल गुलाब जैसे पाँवों में शादी की महावर लगी, उस दिन तो मैंने अपने आँसुओं से उसकी महावर धो दी थी। मैं उससे अन्त समय कहता रहा—'चल, मेरे पास काफ़ी रुपये हैं ! हमलोग कहीं दूसरी दुनियाँ बसा लेंगे। तू जो चाहेगी, वह मैं करूँगा।' रोती वह भी थी, और दो-एक बार तो वह बेहोश हो गयी; लेकिन उसमें हिम्मत नहीं थी। वह जिन जंज़ीरों से बँधी थी उनके भीतर ही रोती थी, बिलखती थी—लेकिन ज़रा भी उन्हें झक-झोरने की बात उसके मन में नहीं आती थी। शक्ति थी, चाहती तो वह उस सड़ी-गली दुनियाँ के पार आ सकती थी; लेकिन इच्छा-शक्ति नहीं थी। उसके भीतर उबाल आते थे और सोखकर-जलाकर ख़त्म हो जाते थे। उस समय उसकी उम्र सत्रह-अठारह साल की थी और वह इन्टर के इम्तहान की तैयारी कर रही थी। वह खुद भी कहीं कुछ कर सकती थी। एक तरफ़ तो वह यों कहती कि 'मैं मर जाऊँगी, मुझे टी० बी० हो जायेगी, मैं आत्म-हत्या कर लूँगी। दूसरी तरफ़ यह रोती कि मझे मर जाने दो सूरज, मुझे मर जाने दो। यही भाग्य में लिखाकर लाई हूँ—मेरे भाग्य के आगे मत खड़े होओ—नहीं तो तुम भी जल जाओगे।' मैंने उसे हर-चन्द समझाने की कोशिश की, कि 'मै तेरे भाग्य को, जीवन को बदल सकता हूँ।' लेकिन बस, रोती थी और कहती कुछ नहीं थी। एक दिन तो मैं उसके सामने पड़ गया—'जाती हो तो मुझे ठुकराकर चली जाओ, मेरे ऊपर से चली जाओ—मेरी छाती पर लात रख कर चली जाओ, अगर जीवित रहा तो विश्वास करो, विष्णु

की तरह पांव का निशान जलते लोहे से छाती पर दग़वा लूँगा। वह वहीं गिर-कर बेहोश हो गयी—पार नहीं जा सकी। उसके दाँत भिच गये। मैं घबरा गया।

"आखिर उसकी शादी हो गयी। और उस दिन, मैं एक दिन और एक रात इस सड़क से उस सड़क पर घूमता-भटकता रहा। उस दिन वह मेरे सारे पत्रों के बण्डल मेरे कमरे में रख गई। लिख गई—'मैं इस लायक़ नहीं हूँ कि तुम्हारे प्यार की इन पवित्र यादों को सह सकूँ—रख सकूँ। इसलिये लौटा रही हूँ। मैंने तुम्हारे विश्वास को धोखा दिया—मैं बड़ी कमजोर निकली। और मुझे माफ़ कर देना, भूल जाना।' मैंने चुपचाप सारा सामान कोठरी में से निकाला और आधी रात को नदी के किनारे जाकर, एक-एक चीथड़ा करके सब कुछ जला दिया। पहला एक तिनका भी नहीं रखा। मैं अपने को देवदास समझने लगा। जो कुछ पैसा था मेरे पास, सबकी देशी शराब पीगया—रंडियों को दे आया। और हर-क्षण सोचता, 'देखो, मेरा प्रेम कितना सच्चा है, मै अपने को उसके लिये तिल-तिल गलाये दे रहा हूँ। यों ही अपने को उसके लिये चुपचाप गला दूँगा। यों ही किसी दिन अनजान पेड़के नीचे मर जाऊँगा; कराहता, दमतोड़ दूँगा और राह चलता कोई उठाकर फेंक देगा. चील-कौवे, कुत्ते और सियार खा जायेंगे। इस तरह मैं अपने को सच्चे प्रेम के नाम पर मिटा दूँगा। मुझे हर-क्षण अनुभव होता, 'मेरी आत्मा में समाया हुआ दुख कितना महान् है, कैसा पवित्र है! वह धीरे-धीरे मुझे परम शान्ति देगा, नया प्रकाश देगा।' आप विश्वास कीजिये, मुझे अपने को कष्ट देने में पता नहीं क्यों, बडा ही सुख मिलता। और ऐसा लगता जैसे किसी अनजाने लेकिन महान् लक्ष्य की ओर यह कष्ट मुझे लिये जा रहा है। कभी-कभी मैं जोर से धरती पर या दीवार से अपना सिर दे मारता और उससे जो तकलीफ़ होती उसे गहराई से अनुभव करके सुख पाता। उस समय जैसे मेरा अणु-अणु कह उठता—'देख चन्दा, तेरे लिये—तेरे प्यार के लिये, मैं अपने को मिटाये दे रहा हूँ, गलाये दे रहा हूँ। एक दिन चुपचाप यों ही नाम-शेष हो जाऊँगा— तू जान भी न सकेगी। और अच्छा है, न जाने! तेरे सुख की दुनियाँ को अपने जले दिल की राख से धुँधला करने मैं नहीं आना चाहता। मैं नहीं चाहता कि मेरा ध्यान तुझे ज़रा भी दुख पहुँचाये—कभी इच्छा हो तो, मेरा नाम ले लेना, और बस। मुझे इसी में सबसे अधिक सुख मिलेगा कि तू सुखी है।'

"तब मैंने हिन्दुस्तान का कोई ऐसा शहर नहीं छोड़ा जहाँ मैं नहीं गया होऊँ। दो-दो, तीन-तीन दिन भूखा रहता और घूमता। पता नहीं देवदास के विपरीत मेरे भीतर यह क्या चीज़ थी जो मुझे घुमाती थी, एक जगह टिकने नहीं देती थी। हर प्रसिद्ध और बदनाम जगह देखने का मुझे मर्ज़ था। शायद इसका कारण यह था कि मैं अपने को इतिहास में अब तक गुज़रनेवाले सब प्रेमियों से महान्, सच्चा और ऊँचा समझता था, और अपनी प्रसिद्धि के विषयमें मुझे इतना विश्वास था कि मेरे प्रेम

ओर प्रेम के लिये किये जानेवाले त्याग की कथायें सुनकर लोग संसार के हर प्रेम-स्मारक को भूल जायेंगे। शायद उन्हीं सबको चुनौती देता मैं घूमता था। ताज-महल और कुतुबमीनार को देखकर जिस घृणा से मैंने थूक दिया था—वह मुझे अब भी याद है, जैसे कहा हो—'हुँह, यह ताजमहल ? ज्यादा से ज्यादा एक हज़ार साल और होगा, बस ! लेकिन, मे ? मेरे प्रेम को इतिहास छू नहीं सकता।' और शायद इसी भाव से मैं कन्या-कुमारी से लेकर बद्रीनाथ, अमरनाथ तक, बर्मा से लेकर करांची तक भटका। अब तो उन दृश्यों को याद करके हँसी आती है, जब दो-दो दिन बरसते पानी में मैं पेड़ के नीचे एक अलौकिक-सुख का अनुभव करता पड़ा रहता था। धूपमें सोया रहता और अद्‌भुत सन्तोषसे मेरी आत्मा शीतल रहती। लेकिन उस समय तो सब कुछ इतने विश्वास, गम्भीरता और सावधानी से. सीरियली सारी बेवकूफ़ियाँ करता कि मुझे खुद आश्चर्य होता, इतनी कष्ट-सहिष्णुता मुझमें कहाँ थी। मैं तो यह कहता हूँ, अगर कोई पुराना ज़माना होता और मेरे हाथ में तलवार होती तो निश्चित-रूप से विश्व-विजय करके ही लौटता। उस वक्त जुनून सचमुच इस हद तक था कि मैं कुछ भी करने से नहीं झिझक सकता था। अब चाहे मैं उस सबको 'क्विक्‌ज़ोटिक' नशा और पागलपन कहलूँ; लेकिन तब मैं जो करता था उसमें मेरा पूरा विश्वास था—" सूरजजी अपने प्यार की सच्चाई का बखान करने में सन्तुलन को बार-बार भूल जाते थे। कई बार उनका गला भर्राया, बीच में अपनी काँपती वाणी पर अधिकार करने के लिये वे रुके, और अब पूर्णतया स्वस्थ हो गये थे।

आखिर जया ने पूछा—"चन्दा फिर नहीं मिली ?" वह बड़े ग़ौर से सूरजजी की ओर एकटक देखती सुन रही थी। सूरजजी का एक-एक शब्द उसके हृदय में उतरता चला जा रहा था। वह भूल गयी कि सामने लेटे व्यक्ति की ही आत्मकथा सुन रही है। उसे लगा जैसे किसी कहानी का करुण-प्रसंग उसकी आत्मा को छाये दे रहा है।

शरद सोच रहा था—'सचमुच ? सचमुच यह ऊपर से इतना तर्कवादी और रूखा-बातूनी आदमी ही इस जीवन से गुज़र चुका है ? यह उसकी जीवन की परि-चालिका कथा रही है ? उसे सूरजजी के प्रति समय-समय पर दिखाई गयी उपेक्षा या कड़े शब्दों के प्रति पश्चाताप हुआ। उसे विस्मय हुआ : पहले जब वह मिला था तो कैसे उसने निश्चय कर लिया था कि इस आदमी से उसकी नहीं पटेगी। इस सरल व्यक्ति से जिसकी नहीं पटे, वह मूर्ख है !

सूरजजो ने बड़े कष्ट से जैसे कहा—"चन्दा ? हां, चन्दा मिली। मैंने निश्चय कर लिया था कि खुद कभी नहीं मिलूँगा, सो वह मुझे मिली दिल्ली के बिड़ला मन्दिर में। पीछे वाले मन्दिर की ओर मैं जा रहा था—बाल बढ़े थे, बेतर-तीब दाढ़ी थी और कमीज़ भी फटी हुई थी। मैंने शायद आपको बताया नहीं उसकी शादी एक थानेदार से हुई थी। अपनी नयी क़लफ़ लगी खाकी-वर्दी में पिस्तौल

लटकाये, कन्धे पर स्टार लगाये थानेदार साहब रौब से जा रहे थे—और उनके बग़ल में जा रही थी चन्दा। कीमती कपड़े, ज़ेवर। उसका रूप निखर आया था। मैं पेड़ के नीचे पत्थर की बेंच पर बैठकर नाग के मुँह से छूटते फ़व्वारे को देखने लगा। मैंने आँखें मल-मलकर देखा—हाँ चन्दा ही थी। कोई भ्रम नहीं था। मैं ज़ोर से बोल उठा—'चन्दा।' एक ही क़दम में मैं उसके सामने जा खड़ा हुआ। चन्दा चौंक गयी। उसका मुँह एक दम फ़क पड़ गया। भौंचक होकर उसका मुँह खुला रह गया। मैंने फिर याद दिलाया—'चन्दा तुमने मुझे नहीं पहिचाना? सूरज?' चन्दा ने शायद पहली ही बार पहचान लिया था। अब उसका मुँह एक दम कठोर हो गया। थानेदार साहब लौट पड़े थे, पूछा—'कौन है?' वे कभी चन्दा को और कभी मुझे देखते। आख़िर चन्दा बोल उठी—'पागल है, इसे हटाइए न, देखिये कैसी आंखों से देख रहा है? मुझे डर लग रहा।' और दारोगाजी ने मुझे धक्का देकर एक ओर हटा दिया। तब सचमुच मैं पागलों की तरह गला फाड़ कर आसमान की ओर मुंह करके हँस पड़ा—अट्टहास कर उठा। जाते हुए मैंने खुद सुना, चन्दा बता रही थी—'यह हमारे यहां नौकर था। बड़ा अच्छा नौकर था। पता नहीं किसी ने कुछ खिला दिया या क्या कर दिया कि पागल हो गया। तब हमने निकाल दिया!' उस समय सचमुच ऐसा लगा जैसे मैं किसी घूमने वाले चरख़ पर बैठा हूँ और मेरे चारों ओर बिड़ला-मन्दिर घूम रहा है। उस दिन मैं ख़ूब हँसा—ख़ूब हँसा। मुझे विश्वास हो गया कि मैं पागल हूँ, और कुछ नहीं।

"बहते झरने में मैं अपना मुंह देखता और हँसता। मेरे दिमाग़ सड़े तरबूज़ की तरह कोई चीज़ भरी थी। उन दिनों मैं सचमुच पागल हो उठा था। लेकिन उस पागलपन में भी कोई था कि धिक्कारता था, यह पागलपन, यह आत्मघात सब इसके लिये?—उसके लिये जिसने तुझे पहचाननेसे इन्कार कर दिया! यों मुँह फेरकर चली गई, जैसे कभी कोई साथ न रहा हो! कहां गये उसके वे विश्वास, आश्वासन, वायदे? मैं उन पत्रों को जला चुका था; वर्ना मैं उसके पत्रों की वे लाइनें लाल पेन्सिल से रेखांकित करके उसकी आंखों में ठूँस देता जिनमें उसने लिखा था, 'मुझे फूल से ही उपमा देने की इच्छा है तो चन्दा केवल एक फूल बनने को तैयार है—सूरज-मुखी का फूल! तुम प्रकाशित रहो—और मैं मुग्ध-सर्पिणी तुम्हारे प्यार के संगीत पर झूमती देखा करूँ।' सूरजमुखी! सूरजमुखी! सूरजमुखी! लानत है! मैं उसी के लिये अपने को गलाये दे रहा हूँ, मरा जा रहा हूँ? गलत है!

"और धीरे-धीरे यह बात मेरी समझ में आ गयी कि चन्दा का वह सारा प्यार कुछ नहीं, एक 'कॉकेटरी'—एक चौंचलेबाज़ी था। उसे प्यार करने से पहले मुझे अपनी ओर भी तो देखना चाहिये था; मेरा न घर था, न बार, न माँ—का पता, न बाप का। आगे नाथ न पीछे पगहा! पढ़ा-लिखा भी स्कूल के

लिहाज़ से उतना न था। मुझे अपनी मूर्खता पर आश्चर्य होता, कैसे उस आसमान के चाँद के लिये मैं बौना मचल पड़ा था? सचमुच वह मेरे साथ कैसे आ सकती थी। लड़की लाख भावुक हो; लेकिन हर क़दम ख़ूब सोचकर रखती है! वह सब कुछ नहीं—अपने खाली वक्त के लिये उसे एक खिलौने, एक मन बहलाव की ज़रूरत थी और मैंने वह काम दिया। कैसा बेवकूफ़ था मैं। मेरा मन एक विचित्र कड़ुवाहट और तलखी से भर उठा। और धीरे-धीरे दो बातें मेरी समझ में आने लगीं। एक तो यह कि जीवन जिसे मैं दुनियां के सारे अच्छे-बुरे काम करके घसीटे लाया हूँ, इसलिये नहीं है कि एक झूठी-मक्कार और दग़ाबाज़ लड़कीके नाम पर गला डाला जाय। मुझे जीवित रहना होगा, जिन्दा रहकर दिखाना होगा—तू न रही तो सूरज मर नहीं गया। देख, वह ज़िन्दा रह सकता है; शान से ज़िन्दा रह सकता है, हँसते-हँसते जिन्दा रह सकता है। उसे किसी सहारे की ज़रूरत नहीं हैं। दूसरी बात यह कि औरत? औरत के प्रति प्रतिहिंसा, हृदय की सारी कटुता और घृणा मुझे उगल देनी है। इसके लिये एक आदमी की ज़िन्दगी से खेलना कितना आसान है—कैसा स्वाभाविक है! ज़रूरी है कि उसके सिंदूर में किसी के दिल का ताज़ा खून लगे।—"

"अब भी आप यही सोचते हैं?" जया पूछ बैठी।

"अब?—ख़ैर अब और तब में बहुत फ़र्क है।" सूरजजी ने कहा—"तब सिर्फ भावुकता और अपने दृष्टिकोण से ही मैं दुनियां को देखता था। तब तक मैंने समाज के विकास, गठन और अन्तर्प्रवृत्तियों को नहीं समझा था, समाज में स्त्री-पुरुष का स्थान और सामाजिक सम्बन्धों को नहीं जानता था। और अब तो हर-चीज को देखने बड़ा फ़र्क़ पड़ गया है। वे सारे निष्कर्ष तो अपनी नाक से आगे न देख सकने के परिणाम होते हैं। उस सारे दृष्टिकोण को बदलने का श्रेय भी एक औरत को ही है। ख़ैर, तो पहले मैं मरने के लिये शहर और दर-दर भटका था, अब ज़िन्दा रहने के लिये भटकना शुरू किया। बड़ा विचित्र यह देश है, इसमें आप पागल, भिखारी, पुजारी, ढोंगी, गुण्डे और चोर-डाकू बनकर निर्द्वंद्व होकर अपनी ज़िन्दगी बिता सकते हैं; लेकिन ईमानदारी और परिश्रम से एक क़दम चलना मुश्किल है। मैं दो साल बम्बई में भटका; लेकिन लगकर कोई काम नहीं किया। दो काम बस, काफ़ी दिनों किये—एक तो बोझा उठाने का काम, दूसरे साइकिलों में हवा भरने, पंक्चर जोड़ने का काम। वर्ना आज इस बढ़ई के यहां हैं, कल उस गन्ने-वाले के साथ रस पिला रहे हैं, परसों पॉलिश कर रहे हैं। एक चीज़ ने मुझे कभी बाधा नहीं पहुँचाई—वैसे बम्बई जैसे शहर में यह चीज़ सामने आती भी नहीं है, वह यह भावना कि मेरी जाति यह है और मैं यह काम कर रहा हूँ, या कि कोई परिचित देख लेगा तो क्या कहेगा। रोज़ दिन भर मेहनत करना और शाम को चौपाटी या 'नरीमान-पॉइण्ट' पर जा पड़ना।

"यों पिछली निष्क्रियता और नाश के सचेत प्रयत्न की प्रतिक्रिया-स्वरूप जीवित रहने और जिये चलने की आकांक्षा मुझे होती थी लेकिन मेरे जीवन के आगे कोई उद्देश्य नहीं था कि मैं वहाँ अपने आपको घसीट ले चलूँ। जो जैसा चल रहा था—ठीक था। चन्दा ने मुझे बेवकूफ़ बनाया था, इस बात को मैं पूरी तरह जान चुका था; लेकिन पता नहीं कैसा एक मोहक पक्षपात था कि मैं पूरी स्त्री-जाति को कोसता या अपनी घृणा का केन्द्र बनाता था —अकेले उसे या एकान्तरूप से उसे कुछ भी नहीं कहता। उसके विषय में कोई बात सोचते हुए मुझे कष्ट होता था। उसके 'केस' में अपनेको ही अयोग्य और ग़लत साबित करने की कोशिश करके सन्तोष पाता था। इस तरह भविष्य के प्रति एक उदासीन-उपेक्षा और भूत के प्रति एक विरक्ति मेरे मन में घर कर गयी थी। वर्तमान, बस वर्तमान में ही मैं जीता था, और कभी-कभी पागलोंकी तरह कहकहे लगाकर हँस पड़ता कि अपनी भी क्या ज़िन्दगी है!

"सन् बयालीस मे जब मैं यों ही आवारागर्दी करते हुए राजनैतिक-व्यक्ति के रूप में जेल में बन्द कर दिया गया तो पहले-पहल देशबन्धुजी को देखा। हमलोग 'सी' क्लास में थे और दुनियाँ भर के अत्याचार हमारे ऊपर होते थे। यह मज़े में डबल-रोटी, मक्खन और फल उड़ाते थे। अक्सर यह लोग हमारे अधिकारों के लिये लड़ते थे। मुझे यह व्यक्ति पसन्द आया। शायद इन्होंने भी मुझे पसन्द किया। फिर यह कहीं और चले गये। लेकिन हमारे साथ एक और थे रूपेन मित्रा। वह न जाने कहां से 'बिगुल' लाकर हमें सुनाते थे। 'बिगुल' उनदिनों शुरू से ही बड़ा क्रान्तिकारी पर्चा था, बयालीस में तो गजब कर रहा था—एक तरह क्रान्तिकारियों का बुलैटिन था। स्पष्ट और बेलाग बात कहने के लिये 'बिगुल' को लोग पढ़ते थे और जो पढते थे, सरकार उनकी देखभाल करती थी। शायद उन दिनों की छोटी-सी जिन्दगी में उससे पन्द्रह-बीस बार से कम जमानतें नहीं माँगी गयीं, और हर तीसरे दिन वहाँ तलाशी होती थी। गवर्नमेण्ट के नोटिस आते थे और अखबार बन्द हो जाता था—बैन हो जाता था। ज़मानत न दे पाने पर प्रेस नीलाम हो जाता—लेकिन कभी-कभी साइकिलो-स्टाइल से, या कभी कॉर्बन कापी करके भी 'बिगुल' निकलता। जेल के उस पीरियड में मैंने इतना कुछ 'बिगुल' के विषय में जाना, इतना अपने आपको उसके निकट अनुभव किया कि मैं अपने आपको भी 'बिगुल' का एक हिस्सा समझने लगा। कभी-कभी मित्रा बताता, उन लोगों की अनुपस्थिति में कौन लोग उसे निकाल रहे हैं। कैसे उस तक पर्चा पहुँचता है। जब मैं छूटा तो मित्रा ने मुझे कुछ लोगों से मिलने का पता दिया। मैंने सोचा चलो, यही सही। जीवन में इतने अधिक परिवर्तन आ चुके थे कि मैं किसी भी नये परिवर्तन को न तो आश्चर्य की दृष्टि से देखता और न उसे स्वीकार करने में झिझकता। मैं 'बिगुल' के दफ़्तर में पहुँचा। अखबार उन्हीं दिनों खुले रूप में निकलना शुरू हुआ था। शायद सन् ४४-४५ की बात है। इससे पहले चुप-चुप साइकिलो-

स्टाइल से निकलता था।

"ये लोग आठ-दस युवक थे और इनमें एक थी सोमा ताई। ताई, आप जानते हैं किसे कहते हैं? ताई कहते हैं महाराष्ट्रियनों में बड़ीबहन को। बड़ी-बड़ी तो ख़ैर क्या थी—शायद मुझसे भी काफ़ी छोटी थी, लेकिन लोग स्नेह से कहने लगे थे। यों तो स्त्री हमेशा ही बराबर के पुरुष की अपेक्षा अधिक बुद्धिमती—अधिक गम्भीर और अधिक उत्तरदायित्व निबाहने वाली होती है; लेकिन वह सचमुच अपने को 'बड़ी बहन' मानने लगी थी और उसी रौब से बात भी करती थी। एक तरह ऑफ़िस-सुपरिण्टेंडेण्ट का काम वही करती थी। 'ताई, यह चाहिये।—ताई वह चाहिये।—ताई, फ़लाना आदमी काम नहीं कर रहा, या करने दे रहा।' दिन भर 'बिगुल' के ऑफ़िस में 'ताई' की आवाज़ें लगतीं। मैं यहाँ डाक से जानेवाले अख़बारों पर पते लिखता और बाक़ी हिसाब-किताब रखता। ताई का व्यक्तित्व बातचीत का ढङ्ग इतना मधुर था कि मेरे हृदय में औरतों की तरफ़ गरजनेवाली नफ़रत जैसे धीरे-धीरे ख़ुद सो गयी। उन लोगों का बड़ा विचित्र कायदा था। हर रोज़ शाम को मीटिंग होती। 'बिगुल' के ऑफ़िस में जितने काम करने वाले थे, वे मिलकर बैठते और दिन भर का लेखा-जोखा होता। एक दूसरे के काम की आलोचना होती। जो 'मैटर' दूसरे दिन जाने को होता उस पर सबकी राय ली जाती। नीति के ग़लत-सही होने पर बातें होतीं। काम करने का वैसा सहकारी तरीक़ा फिर मेरी नज़रसे नहीं गुजरा। फिर एक प्रकार का 'स्टडी-सर्किल' लिया जाता पढ़ने और सोचने का नया तरीक़ा सामने आता गया। और अपना असली अध्ययन मैंने उन्हीं दिनों किया। ताई के व्यवहार ने सचमुच मेरे हृदय में जड़ पड़ गये, माँ और बहिन के प्यार की आर्द्रता से सींच दिया; मैं अनाथ था और अभागा था—जहाँ भी ज़रा कोई प्यार-से बोल लेता वहाँ जान निछावर करने को तैयार हो जाता। मेरी समझ में स्वयं आगया कि जहाँ सोमा ताई जैसी रमणी है—वह स्त्री-जाति घृणा करने योग्य तो निश्चय ही नहीं है। और पिछली घृणा को मैंने यह तर्क दे-देकर ज़बर्दस्ती भुला दिया कि शायद मेरे देखने में ग़लती हुई है—हो सकता है; वह चन्दा न हो। क्या एक तरह के दो चेहरे नहीं होते? दूसरे, मैं उन दिनों चन्दा के ख़्यालों में इतना डूबा रहता था कि एक ज़रा-सी समानता वाली लड़की में चन्दा को खोज निकालना सचमुच असम्भव नहीं था। लेकिन तब भी कभी शंका उठ ही खड़ी होती; सारी बातें एकदम कैसे मिल जायँगी? पिछले पाँच साल से जो निरन्तर मेरे मनश्चक्षुओं के आगे रही उसे मैं भूल कैसे सकता था? उसे पहचानने में दिक़्क़त कैसे हो सकती थी? ख़ैर, यहाँ मैंने पत्रकारिता सीखी, कुछ समय निकाल कर हम लोग मजदूरों और भङ्गी-बस्तियों में पढ़ाने जाते थे। इसी काल में जीवन को देखने का मेरा सारा दृष्टिकोण ही बदल गया···"

"ताई का फिर क्या हुआ?" शरद ने पूछा। चाँद पर एक बड़ा-सा बादल

आ गया था और चारों तरफ झीना अँधेरा छा गया था।

"सोमा ताई ?" सूरजजी बड़ी व्यथा से हँसे—"सोमा ताई ने विवाह कर लिया और कलकत्ते की तरफ़ चली गई। अब उसका पता ही नहीं क्या हुआ। मेरे साथ यह बड़ी भारी ट्रेजेडी रही है कि जिसने मेरे जीवन को बदला या बदलने में सहायता दी, वे लोग बाद में रहे ही नहीं। दूसरे सोमा ताई मुझसे बहुत नाराज़ हैं—और कुछ हद तक बात सही भी है। वे अगर यहाँ आयें तो शायद मैं खुद मुँह दिखलाने की हिम्मत नहीं कर सकता।"

" 'बिगुल' फिर यहाँ कैसे आ गया ?" जया ने बीच में ही प्रश्न किया।

"शायद आपको बताया नहीं—बिगुल के लिये सबसे अधिक पैसा देते थे थे देशबन्धुजी। जब भी कोई मुसीबत आती, सिक्योरिटी मांगी जाती तो जहाँ तक हो पाता चन्दा करते, शेष कमी यह पूरी करते थे—और जैसा कि हर कल का देशभक्त अपने कल के लिये और दिये हुए की ब्याज सहित कमाई खा रहा है, देशबन्धुजी ने भी बदले में 'बिगुल' हथिया लिया। 'बिगुल' का ऑफ़िस इत्यादि छिन गया तो इन्होंने यहां बुला दिया। और इस तरह 'बिगुल' की सारी क्रान्तिकारी विरासत एक पूंजीपति ने खरीद ली। अब मैं इसका वेतनिक नौकर हूँ, एक प्रूफ़-रीडर और क्लर्क है और 'बिगुल' देशबन्धुजी का भाट है। कल यह 'स्वदेशमहल' से बाहर कदम रखेंगे तो पूरा प्रोग्राम इसमें छपेगा। और मैं उन्हें ही क्यों दोष दूँ—देश की सारी क्रान्तिकारी विरासतें कुछ लोगों ने खरीद ली है—और दिन रात वे अपना प्रचार कराते है। और एक मैं हूँ—बड़े आदर और सम्मान से लाया गया था—और अब यहां इसकी भाटगीरी कर रहा हूँ। सोमा ताई क्यों न मेरे मुँह पर थूक दे ? पता है आपको, सोम ताई ने मेरे मुह पर थूक दिया था ? वे लोग सब अण्डरग्राउण्ड थे, चार्ज मेरे हाथ में था—तभी 'बिगुल' यहाँ आया"

"सचमुच सूरजजी, इसे तो मैं भी अच्छा नहीं कह सकता।" शरद ने ज़रा झटके से सीधे बैठते हुए कहा।

"मैंने ही इसे अच्छा कब समझा ? लेकिन पता नहीं क्या जुनून था। मैं कहता था कि दिन-रात रुपये की ज़रूरत पड़ती ही है। रुपया हम उससे लेते ही हैं, फिर वहीं चले जाने मे क्या हानि है। यह किराया, बिजली और प्रेस का झंझट छूट जायगा; मैं यह भूल गया था कि 'बिज़नेस-मैन' रुपया दान देता कभी नही, वह हमेशा रुपया लगाता है, इन्वैस्ट करता है। अब भी दिन-रात भीतर लड़ता हूँ, अपने आपको कुचलता हूँ और आप समझिये हरवक्त का आत्म-संघर्ष आदमी को कितना कमज़ोर बना देता है। समझौता-पसन्द हो जाते हैं आप। भीतर इस द्वन्द्व को छिपाने के लिये ऊपर से लापरवाही और मज़ाकिया, जॉली होने का कवच पहनना पड़ता है। लगता है, यह एक-एक क्षण जो हम समयसे छीन रहे हैं, क्यों न इसको हँसी-खुशी बिता दें—क्यों इसे खोया जाय ? मैं मानता हूँ, मुझमें कुछ

असाधारण कुण्ठाएं और कम्प्लैक्स हैं, लेकिन अतीत से विरक्त और भविष्य से निराश हर आदमी किसी न किसी रूप में निराशावादी है, क्योंकि वर्तमान से चिपका है —खुशी से नहीं विवशता में।"

"लेकिन इस हद तक भाग्यवादी होना कि हाथ की प्राकृतिक-रेखाओं में भाग्य खोजना वास्तव में समझ में नहीं आता। जब मनुष्य के हाथ की रेखाओं में भाग्य होता है तो निश्चय ही उसके पाँव की रेखाओं में भी भाग्य होता ही होगा ?" शरद हँसकर बोला।

"खैर, यह तो एक मज़ाक की बात है। जब मैं बम्बई में था तो मुझे यह ढोंग भी करना पड़ा था। आधे समय सिनेमा के पोस्टर और प्लेकार्ड रँगता और संध्या को कहीं बैठकर हाथ देखता था। लेकिन सचमुच मैं मानता हूँ कि मेरे भीतर बड़े विचित्र अन्तर्विरोध हैं, और उन्हें जानते हुए भी मैं छाती से लगाये रहता हूँ—क्योंकि वह जिसकी देन है वह सचमुच मुझे बहुत प्रिय है। शायद इसका कारण यह हो कि मेरा विकास, स्वाभाविक और प्राकृतिक-क्रम में नहीं हुआ—वह बड़े मोड़ और मरोड़ लेकर हुआ है। मैं कहूँ तो रुक-रुक कर बढ़ा हूँ। अविश्वास और घृणा यह दो चीजें मुझे चलाने वाली शक्तियाँ रही हैं—मैं ऊपर से चाहे कितना भी सीरियस रहा होऊँ, भीतर मेरे यही दो साँप अँधेरे में अपनी आंखें चमकाते, कुलबुलाते रहे हैं। अविश्वास मैंने नहीं किया है तो बस एक बात पर,—और वह अपनी जीवनी-शक्ति पर। चाहे कुछ भी हो जाय मैं मरूँगा नहीं—कम-से-कम हारूँगा नहीं—यह विश्वास मेरे भीतर दृढ़ है। खैर, जो भी हो, शरद बाबू, एक बात बताऊँ अगर आप ग़लत न समझें तो, जिस दिन से मैं आपसे मिला हूँ—या कहिये जिस दिन से आप जयाजी के साथ यहाँ आये हैं, उस दिन से मेरे भीतर फिर एक उठा-पटक होने लगी है···।" सूरजजी भी लेटे-लेटे थक गये थे—वे सीधे बैठकर देखने लगे।

"क्या ?" शरद ने रुचिपूर्वक पूछा। जया भी सचेत हुई।

" 'क्या' का जवाब ठीक-ठीक नहीं दे सकता। लेकिन लगता है कि उस पुराने पागलपन और जिन 'सिनिक' विचारों के ध्वंसावशेषों को मैं लादे हुए हूँ, वे सब सही नहीं हैं। प्रेम सफल भी होते हैं।···"

शरद जोर से गला फाड़कर हँस पड़ा—"वाह ! सूरजजी, क्या बात आपने कही है। सचमुच इतनी लम्बी कथा का यह निष्कर्ष देखकर तो हँसे बिना नहीं रहा जाता। अच्छा एक बात पूछूँ—आप मज़ाक तो नहीं समझेंगे ? क्या सचमुच चन्दा को आपने इतना ही प्यार किया था कि वह नहीं मिली तो आपकी शक्ति का एक-एक कण यों बिखर गया ? यदि आप बुरा न मानें तो कहूँगा कि चन्दा के प्रति आपके इस एकान्त-समर्पण में—या कहा जाय अप्रतिरोध्य-आसक्ति में प्रेम की चली आती परम्परा का 'अनकांशस' पालन ही अधिक दिखाई दिया। असलमें

हम प्रेम को एक अलौकिक युग की चीज़ समझते हैं—क्योंकि हमारे आस-पास के क़िस्से-कहानियाँ, सिनेमा, उपन्यास, काव्य-कविता सब उसी तरह के क़िस्सों को रटते हैं न, और नतीजा होता है कि हमारे अधकचरे और भावुक मस्तिष्क, जीवन जैसा है उसे वैसा न स्वीकार करके, या प्रेम को उस जीवन की संगति के अनुसार न समझ कर इन क़िस्से-कहानियों के ढाँचों मे फ़िट करने निकलते है। आज के युग में प्रेम क्या हो, मैं नही कह सकता; लेकिन इतनी बात तो आप भी मानेंगे कि जीवन से हटी हुई—और कहीं-कही उसकी विरोधिनी भी—कला जब हमारे लिये अनुकरणीय और आदर्श बन जाती है तो इस तरह के अन्तर्विरोध और कुण्ठाए उत्पन्न होती हैं। अपनी असाम्भव्यता के कारण वह हमारे पलायन का शरणस्थल भले ही बन जाय, निश्चित-रूप से वास्तविक वह नही बन सकती। खैर, मैंने तो प्रेम को एक बहुत ही स्वाभाविक-रूप मे ग्रहण किया—जीवन मे समवयस्क स्त्री-पुरुष को एक दूसरे के पूरक और प्रेरक के रूप मे जितना भी महत्व उसे दिया जाना चाहिये था—उससे जरा भी अतिरिक्त महत्व मैं ने नही दिया। इसलिये वह अपनी असफलता में कुण्ठाए उत्पन्न करे या एक रोग बन जाय इसका अवसर ही नहीं आया। हमारा यह दावा नहीं है कि यह प्रयोग सफल ही होगा। हो सकता है, कल हमलोग अलग हो जायं और यह प्रयोग असफल हो जाय। लेकिन प्रयोग की असफलता को जो लोग निश्चित-अन्त या नियति कहकर सन्तोष करते हे—उनकी असफलता पर प्रसन्न होते या हँसी उड़ाते हैं—मैं समझता हूँ जीवन की गति और शक्ति में उन्हें विश्वास नही रह गया है। वे स्वयं तो निश्शक्त, जड़ और नपुसक हो ही जाते हैं किसी और को भी बढ़ते—या बढ़ने का प्रयत्न करते देख भी नहीं सकते। प्रयोग चाहे और कुछ न हो अपनी वर्तमान-स्थिति से असंतोष या नयी राहें खोजने की छट-पटाहट को तो व्यक्त करता ही है—और जैसा कि गोर्की ने कहा है—'पवित्र है वह असंतोष, जो मनुष्य को जीवित रखता आया है, आगे बढ़ाता लाया है; अदम्य है वह नयी राहें खोजने की लालसा, जिसने मानवता के इतिहास को नये मोड़ दिये हैं।' फिर उसने जया की पीठ के पीछे से हाथ ले जाकर प्यार से दूसरे कन्धे को दबाते हुए कहा—"इनकी यह जानें, लेकिन अभी तो मुझे अपने प्रयोग में असफलता के आसार नज़र आते नहीं है।" बात खत्म करके वह फिर उन्मुक्त-रूप से हँस पड़ा। सूरजजी केवल चकित-से देख रहे थे। चांद का हल्का प्रकाश उनके चश्में के शीशों में चमक रहा था। बात खत्म करके शरद ने हाथ की घड़ी रोशनी की तरफ घुमाकर देखते हुए कहा—"ओः, डेढ़ बज गया। चलिये काफ़ी देर हो गयी अब।"

तीनों इसे अनुभव कर रहे। सूरजजी अपनी कथा कहते हुए भी महसूस कर रहे थे कि काफ़ी देर हो चुकी है। तीनों ही उठ खड़े हुए। उठते हुए हँसकर जया बोली—"और इस प्रकार आज की मीटिंग के मसीहा शरद कुमार हुए।" तीनों ने एक साथ ही बड़े जोर का क़हक़हा लगाया। शरद को लगा कि उसने ज़रूरत

से ज़्यादा आत्मप्रशंसा करदी और जया इसी का मज़ाक बना रही है। उसने लजाकर विभोर-स्वर में कहा—"बड़ी दुष्ट हो तुम!" जया कृतार्थ हो उठी। अभी कपिल के यहां जो सुन-देखकर आई थी; उससे उसके भीतर एक आत्मग्लानि और वितृष्णा भर उठी थी—जैसे सब ही उन लोगों ने कोई अपराध किया हो—जिसकी भर्त्सना उन्हें मिल रही है—और वह वैध-रूप से विवाहित लोगों से सचमुच ही हीन और नीचे है। लेकिन अब वह एक गर्वपूर्ण उल्लास से अपने को फूल-सा हल्का अनुभव कर रही थी—सचमुच उन लोगों ने कुछ ऐसा किया है जो मानवता को बँधी लीकों और सड़ी-रूढ़ियों से आगे ले जायेगा—कम से कम एक नयी राह है, और यदि कुछ के लिये द्वेष की वस्तु हो सकती है तो कुछ के लिये स्पृहा और आकांक्षा की भी। फिर द्वेष-वाले लोग कौन हैं और स्पृहावाले कौन हैं?—इस अन्तर को देखकर जया पुलक उठी। नहीं, उन लोगों ने कोई बुरा काम नहीं किया। आश्चर्य की बात तो यह है कि कैसे वह उस अशिक्षिता-स्त्री की बात सुनकर रो सकी—उसे तो तभी उपेक्षा से मुँह बिचका कर चल देना चाहिये था।

तीनों चुपचाप एक-एक कर के पुल पर आ गये। पुल के इधर-उधर लगे गार्डरों और लट्ठों से छन-छन कर आती चांदनी ने पुल की सड़क पर आड़ी-तिरछी लकीरें-खींच दीं थी—और सतह में धँसी दो सीधी रेलकी पटरियाँ दूर तक चली गई थीं। इधर-उधर नीचे खम्भों से उलझता पानी और काफ़ी घना पड़ता कोहरा। ठण्ढ काफ़ी पड़ने लगी थी। जया ने साड़ी चारों ओर लपेट ली और दोनों हाथ उरोजों सहारा देते हुए-से सामने कस लिये। शरद ने कुर्त्ते के नीचे पहने हुए स्वेटर को खींचा और कुर्त्ते की जेबों में दोनों हाथ ठूंस लिये। कमीज़ के कॉलर ऊपर उठाए सूरजजी टॉर्च झुलाते यों ही चले जारहे थे। लोहे के शान्त और निस्तब्ध पुल-पर चप्पल जूतों और सैण्डिलों की 'खट-खट' ध्वनित-प्रतिध्वनित हो रही थी। और लट्ठों की छायाएं पीछे गुज़रती जाने लगी थीं। दोनों जैसे सूरजजी की इस विचित्र कुण्ठामय कथा के धागों में आवेष्ठित और आच्छादित-से चल रहे थे। शरद सोच रहा था कि इस समय सूरजजी से बात करना ठीक होगा या नहीं। उन्हें अपनी आम-कथा के पुनरावलोकन में डूबने-उतराने दिया जाय, या उन्हें उस स्थिति से उबार लेना उनके लिये कल्याणकर होगा। उसने चलते-चलते जैसे अपने आपसे कहा—"एक चीज़ तो वाक़ई मुझे भी कभी-कभी बहुत उद्विग्न करती है—प्रेम को उतनी उत्कट और अनिवार्य तीव्रता से, या प्रेम के उस अन्धावेग को उतने आवेश से हम लोग क्यों नहीं अनुभव करते या ग्रहण कर पाते जैसा सुनते और पढ़ते हैं? वह जीवन में एक ऐच्छिक विषय बनकर क्यों रह गया है? वे सारे क़िस्से ही झूठे हैं या हम लोगोंकी मानसिक बनावट ही कुछ बदल गई है? मैंने एक उपन्यास पढ़ा 'गर्म राख', उसमें भी यह बात यों ही उठाकर छोड़ दी गयी थी—"

"इतनी फ़ुर्सत आजकल किसे है कि दिन-रात बस, प्रेम को बैठा ही गाया

करे ? जीवित रहने के संघर्ष ने सब उड़ा दिया है। यह तो फ़ुर्सत और मोटी शब्दावली लें तो, पेट-भरे लोगों के किस्से हैं।" जया ने सूरजजी की ओर देखकर उनकी चुप्पी को उकसाने के लिये कहा—"आज तो सुबह उठे, भागे ट्यूशन कर रहे हैं—फिर उलटा-सीधा निगल कर नौकरी या कॉलेज भाग रहे हैं। शाम को ही दो-एक घंटे की फ़ुर्सत मिली-मिली, नहीं तो वह भी नहीं। जिन्दगी में प्रेम की बात सोचने की फ़ुर्सत कहाँ रह गयी है ? अब तो पहली तारीख़ की राह ज़्यादा देखी जाती है।"

"हाँ, सूरजजी एक बात मैं भूल न जाऊँ इसलिये कहे देता हूँ।" शरद ने एकदम भौतिक-स्तर पर उतरते हुए कहा—"पैसे अपने पास बिल्कुल ख़त्म हो गये हैं, कुछ उधार दिलवायेंगे ?"

"नहीं।" सूरजजी ने बड़ी रुखाई से कहा—"आप माँगेंगे नहीं देशबन्धुजी से और मेरे पास हैं नहीं। होंगे, तब भी मैं देना नहीं पसन्द करूँगा। मेरी समझ में नहीं आता कि आप दुनियाँ-भर की बातें कर सकते हैं देशबन्धुजी से, बस पैसे नहीं माँग सकते।" थोड़ी देर सब चुपचाप चलते रहे। शरद ने मुस्कुराकर कहा—"अच्छा, आपकी इच्छा। चलिये, ज़रा जल्दी-जल्दी चलें—सुबह उठकर मुझे देशबन्धुजी का भाषण तैयार करके देना है। रूप-रेखा तो उन्होंने दे दी है।"

"अच्छा, आपको दे दिया गया !" सूरजजी एकदम पहलेवाले सूरजजी हो गये। उन्होंने इस तरह कहा जैसे इस बात को वे बहुत पहले से जानते हों—"लेकिन आपलोगों को क्या है—आप लोग तो अपने दिलों में उबलते उपदेशों के ग़ुबार को सूरजजी पर उलटिये। मैं चुप रहा तो यार मेरों ने, बुरी तरह उपदेशों के गठ्ठर ही लाद दिये। ख़ैर, और जो हुआ सो हुआ—वक़्त आज ख़ूब कट गया ! शायद एक बात आप लोगों को मैंने नहीं बताई···"

"क्या ?"

"सूरजजी बरसों ऐक्टर भी रहे हैं ! बम्बई में तो ऐक्सट्राओं में था, लेकिन नाटक-मण्डलियों में बहुत काम किया है।" और सूरजजी अपनी इस ट्रम्प-चाल पर ख़ूब ज़ोर से ठहाका लगा कर हँसे।—"और क़िस्से गढ़ना पत्रकारों का पेशा है।"

चकित होकर शरद और जया उन्हें आँखें फाड़े देखने लगे—क्या सचमुच यह व्यक्ति अपने ऊपर ऐसी उदासीन-निर्लिप्त और कटु-अनासक्ति से क़हक़हा लगा सकता है ?

तभी सामने का आकाश ज्वाला के क्षणिक-विभ्राट से प्रकाशित हो उठा—जैसे बिजली कौंध गयी हो ; और एक के बाद एक लगातार तीन-चार धमाकों की आवाज़ें हवा के पर्दों को चीरती चली गयीं। एक क्षण के अन्तराल के बाद फिर प्रकाश फैल गया और धमाके उछलकर आसमान में घुसे चले गये···

सूरजजी हँसना भूल गये। उनकी आँखें फैल गयी—हताश की तरह बड़-

बड़ा उठे—"शायद चल गयी···"

"क्या चल गयी···?" चिन्तित-स्वर में दोनों ने पूछा।

सूरजजी झुँझला उठे—"आप देख नहीं रहे ?—'सत्या-मिल्स' में गोली चल रही है—पिकेटिंग करते हड़ताली-मज़दूरों के ऊपर।" सूरजजी बेचैनी से आन्दोलित हो उठे।

शरद को समय-समय पर मिल की गड़बड़ी के सम्बन्ध में सुनी हुई बातें याद हो आईं। वहाँ कुछ खींचतान हो रही है—यह उसे पता था। लेकिन गोली तक नौबत पहुँच जायेगी—इसका आभास नहीं था।

"अच्छा मैं चल रहा हूँ—सुबह मिलूँगा।" सूरजजी ने बदहवासी से कहा —और बिना उत्तर की राह देखे वह तेज़-तेज़ लम्बे डग रखते चल दिये।

"चलिये हम भी चलें न ?" शरद ने ज़ोर से पूछा।

"नहीं,—सुबह मिलेंगे। टॉर्च उठा लीजिये।" बिना ज़रा भी रुके वे बोले और टॉर्च को जमीन पर रखकर पहले काफ़ी तेज़ और फिर छाती पर दोनों हाथ रखे भागते हुए कुहरे में खो गये।

आश्चर्य-चकित और हक्के-बक्के-से दोनों उन्हें देखते रहे और जब वे बिल्कुल ग़ायब हो गये तो गहरी साँस लेकर सिर लटका लिया। दोनों चलते रहे। मौत का सन्नाटा चारों ओर छाया था।

"गोली चल गयी !" शरद ने स्थिति की भयंकरता को अपनी वाणी से बाँधने की कोशिश करता हुए कहा। स्वर में कोई भाव नहीं था।

जया ने कहा—"आज सूरजजी का सोया हुआ व्यक्तित्व जाग पड़ा है—कुछ हो न जाय, कहीं कुछ कर करा न लें।" उसके स्वर में चिन्ता थी। पास पहुँचकर उसने झुककर टॉर्च उठा ली।

"अब यह भी तो पता नहीं है, कौन-सा व्यक्तित्व जागा है ? कहीं पागलपन न उमड़ आया हो।" गोली चलने का दृश्य और उसके परिणाम को विभीषिका शरद की कल्पना को मथ रही थी। बयालीस में जिस भीड़ में वह था उस पर गोली चली थी; और गोली का क्या अर्थ है वह जानता था। एक साल पहले जब लखनऊ में विद्यार्थियों पर गोली चली थी, उसके वर्णन भी उसकी आँखों के आगे घूम रहे थे·····

जब उन लोगों ने 'स्वदेश-महल' में प्रवेश किया तो मायादेवी की तरफ़ वाले कमरे के शीशो से रोशनी छन-छन कर बाहर आ रही थी। दोनों को आश्चर्य हुआ —क्या अभी तक ये लोग जगे हैं ?

✦

भूखे !

बड़ी अनिच्छा-पूर्वक खिन्न-हृदय और नक़ली स्निग्ध-मुस्कान से कार की खिड़की के पास जाकर शरद ने पूछा—"कहिये, आपकी तबियत कैसी है ?"

देशबन्धुजी कार की खिड़की से कुहनी टिकाए अपने चमकदार चिकने माथे को हाथ से पकड़े बड़े सोच में बैठे थे। सिर उठाकर बोले—"हाँऽऽ, कल से तो ठीक है। सिर में ज़रा भारीपन है। बेचारी माया बहन रात भर तेल लगाती रहीं।"

कल सूरजजी की इस सम्बन्ध में कही गयी बात ध्यान करके शरद मुस्करा उठा। उसने कुछ पूछने की इच्छा से उधर देखा।

"क्यों, कोई खास काम तो नहा कर रहे थे ?" देशबन्धुजीने बड़े कष्ट-पूर्ण लेकिन स्निग्ध-स्वर में पूछा—"मैंने सोचा, चलो मिनिस्टर साहब से मिलने जा रहे हैं, शरद बाबू को भी घुमाते लायें।"

"नहीं तो, कोई खास काम नहीं था।" शरद ने कहा।

"तो आओ फिर—या एक बार पूछने जाना होगा ?" बादल घिरे आसमान की ओर मुंह करके कनखियों से इधर-उधर देखते हुये वे मुस्कराये।

वैसे शरद जया को बता तो आया था, सुबह ही सुबह बुलाया है और केशवने बता दिया था कि ड्राइवर गाड़ी निकाले खड़ा है, तो साफ़ है, कहीं जाना है; फिर भी वह एक बार जया को बता आना चाहता था। उसने देशबन्धुजी के होठों में छिपे हल्के व्यंग्य को लक्ष्य किया, बोला—"नहीं जी, मुझे कहीं नहीं जाना।" वह जैसे इसी बात को साबित करने के लिये दरवाज़ा खोलने के लिये झुका।

"नहीं, मैंने यों ही कहा—नयी-नयी शादी है, ऐसा होता ही है।" देशबन्धुजी विनोद से हँस पड़े। उन्होंने बढ़कर दरवाज़ा खोल दिया। शरद उनकी बग़ल में आ बैठा, दोस्ती से उसके दोनों कन्धे पकड़ कर स्नेह-गद्गद्-स्वर में बोले—"और कहिये, मिस्टर शरद कुमारजी—कोई तकलीफ़ तो नहीं है। मन-वन लग रहा है न ? मैंने कथूरियाजी से कह दिया है।" स्टीयरिंग पर बैठे, पीछे मुड़कर देखते ख़ाकी कपड़े पहने ड्राइवर की ओर देशबन्धुजी ने कहा—"चलो।"

कार हिली और पानी पर तैरती-सी सर्प-गति से लाल बजरी पर सरक उठी।

"कथूरियाजी ज़िक्र तो कर रहे थे; जल्दी हो जाता तो अच्छा था। एकदम नयी-नयी गृहस्थी है, ख़र्चा सँभल जाता। वैसे अब भी कभी-कभी बड़ी दिक्क़त पड़ जाती है। आने-जाने और हर चीज़ जमा करने में काफ़ी ख़र्चा पड़ जाता है न।" शरद ने बड़ी कठिनाई से चिन्तित-स्वर में पीछे छूटती स्वदेश-महल की बाउण्ड्री को देखते हुए आख़िर कह ही डाला।

देशबन्धुजी ने ध्यान से सुना। शरद के कन्धों की पकड़ ज़रा ढीली हो गयी। सोचकर बोले—"ट्रेण्ड तो हैं न ?"

"जी हां, एक डेढ़-साल पढ़ाने का भी ऐक्सपीरिएन्स है।" शरद बोला। उसे ध्यान आया कि इस बात को पहले भी बता चुका है।

उल्लसित-स्वर में बोले—"तब क्या है ?—तब तो हो ही जायेगा। बस, कल की बात और है। कल ये लोग मिस्टर साहब को पार्टी कर रहे हैं न; बेचारे कथूरियाजी उसी में लगे हैं। कल मिल में फिर कुछ गड़बड़ी हो गयी है—सो उसमें....."

पैसों की बात को इस प्रकार उड़ा जाने और न सुनने पर शरद मन ही मन देशबन्धुजी पर झुँझला रहा था; लेकिन अब एकदम उत्सुकता से उसने पूछा—"हां, मिल में कल सुनते हैं काफ़ी गड़बड़ी हो गयी है—कोई कह रहा था....."

देशबन्धुजी के सलवटदार माथे और भौंहों पर चिन्ता के बादल घिर आये। बोले—"हाँ, शायद गोली भी चलानी पड़ी है।" फिर निराशा से दोनों पंजे अब क्या करें, की मुद्रा में फैलाकर बोले—"पता नहीं, क्या स्थिति आ गयी थी ? इन्हीं सब झंझटों की वजह से शरद बाबू, मैं ज़्यादा हस्तक्षेप नहीं करता; क्योंकि इस तरह की कोई बात आ जाती है तो फिर मुझे बड़ा कष्ट होता है। तुम विश्वास करो, कल रात भर छटपटाता रहा हूँ। अब हफ़्तों आत्मा में बड़ी ग्लानि और बेचैनी कोंचती रहेगी। उपवास से बड़ी शान्ति मिलती है; मिलती है थोड़ी-बहुत, लेकिन···।" उनका स्वर भर्राये-गले में डूब गया।

शरद ने चौंक कर उनकी ओर देखा, फिर सामने देखते हुए पूछा—"ऐसी ख़राब स्थिति आ कैसे गयी ?"

"मेरी तो समझ में नहीं आता कैसे लोग ऐसी स्थिति ले आते हैं ? हमारे साहबज़ादे ज़रा तेज़ तबियत के हैं। शरद बाबू, मेरा तो सिद्धान्त यह है—अब तुम समझदार हो गये, नहीं सुनते, तो सँभालो। अब कल से परेशान है। मैं कहता हूँ; आपस में ज़िद करने में क्या रखा है ? तुम झुको या वे झुकें, इसमें तो कोई छोटा-बड़ा होने का प्रश्न नहीं है। मज़दूर एक आगया मशीन में, चार-पाँच दिन पहले की बात है। मशीन तो मशीन है—आप लापरवाही से काम करेंगे तो वह बख्श थोड़े ही देगी ? उसमें तो मशीन की तरह ही जड़ और सक्रिय बन जाने की ज़रूरत पड़ती है—वहां मानवीय-कमज़ोरियों के लिये 'कन्सीडरेशन' की जगह थोड़े ही है ? और बापू इस मशीन के विरोधी क्यों बने ? इसीलिये कि वह जड़ बना देती है—और वह तो मानवता का मसीहा था—यह सब कैसे देखता ? मशीन के सम्पर्क में आप रहेंगे, तो मशीन ही होंगे। सो मज़दूर क्या आ गया, यारों को ले उड़ने का अवसर मिल गया। हम हरजाने या कम्पैन्सेशन को मना कब कर रहे हैं ? लेकिन यह तो नहीं होगा कि उसके नास पर एक खर्रा भर माँगें आप पेश करदें और दबाव

डाले कि मंजूर हो ही जाय—"

"माँगें अगर जायज़ हों तो उनपर विचार करने में क्या बुराई है ?" शरद ने ज़रा साहस-पूर्वक बात काट कर पूछा।

"भाई मेरे, यहाँ तक तो बुराई नहीं है; लेकिन सवाल तो असली जायज़-नाजायज़ का है ही नहीं। सवाल तो, जैसा मैंने एक बार तुमसे शायद कहा भी था, नेतागीरी का है। लोग दस मरें या बीस, बस, हमें नेता मान लिया जाय। अब बताइये, इस मनोवृत्ति को आप कैसे सहेंगे ?" देशबन्धुजी ने कार की अगली सीट की पीठ पर दोनों हाथ रखकर उधर मुँह करके कहा—"बड़ी मोटी-सी मिसाल लोग देते हैं न, इन नेताओं के बारे में—अगर रूस में पानी बरसने लगे तो यह लोग यहां छाता लगायें। अपनी परिस्थितियां, अपना देश तो कुछ नहीं, बस जो वहाँ होता हो सो यहाँ कर डालने की धुन ! मैं कहता हूँ, आप लाख कोशिश कीजिये, ज़िन्दगी भर कोशिश कीजिये, हिन्दुस्तान रूस नहीं होगा, नहीं होगा।"—फिर जैसे बिफर कर कहा—"रूस में होते तो अब तक गोली से उड़ा दिये जाते।"

शरद को लगा जैसे देशबन्धुजी का उफान कोई बहाना ढूँढ़ रहा था—जैसे वे अपने किसी ऐसे विरोधी से बातें कर चुके हों जिसके तर्कों या दलीलों का वे उस समय जबाब न दे पाये हों और अब वही सब 'भड़ास' निकाल कर उस अनुपस्थित प्रतिपक्षी को चुप कर रहे हों।

लेकिन यह सब बातें उसे बताने की ज़रूरत क्या है ? उसके मन में क्या सुबह से ही कम ऊब और खीझ है ? भेज दिया केशव को—जाओ बुला लाओ ! रात को वैसे ही देर से सोये थे, सुबह बार-बार जया कहती—'अब उठने दीजिये न, देखिये कितना दिन चढ़ गया है, इतनी-इतनी धूप चढ़े तक सोते हैं कहीं ?' तो वह नींद में ही बच्चे की की तरह कुनमुना कर उसे बाहों में बाँधकर, उसकी छाती पर सिर रखकर—उसके कुचों की मांसलता को कानों और कनपटी से भींचे हुए सो रहता—"सोने दो न, सुबह ही सुबह तंग मत करो—एक तो रात को वैसे ही दो बजे सोये थे, और अब तुम तंग कर रही हो। आफ़त है !" जया चुपचाप टकटकी लगाये सामने जामुन के पेड़ और उसके पार नीले आसमान में उड़ते हिम-खण्डों जैसे बादल के टुकड़ों को ताकती रही। जब भी वह मन में अनुभव करता कि जया आँखें खोले हुए देख रही है तो हाथ रखकर उसकी पलकें बन्द कर लेता। जया धीरे-से हाथ खिसका कर फिर देखने लगती। फिर जैसे अचानक ध्यान आने पर, अपने चारों ओर कसी उसकी बांहें हटाकर फड़फड़ाकर उठनेका प्रयास करती तो शरद और भी कस लेता—। तभी बाहर किवाड़ ज़ोर-से खड़के, केशव ने आवाज़ दी। शरद झुँझला उठा। दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा; दृष्टि से उठकर लजीली-मुस्कान गालों में झेंप कर रह गयी। जब तक शरद किवाड़ खोलने गया, तब तक जया ने बिस्तरा समेट-समाट कर एक ओर रख दिया और तेज़ी से गुसलखाने में घुस गयी।

सन्देश था कि—"कुछ कर न रहे हों तो नेताभैया ने बुलाया है।" जया ने जब यह सुना तो यह बड़बड़ा उठी कि यह ढर्रा डालना ठीक नहीं है। वक्त-बेवक्त हरवक्त जब मुँह उठा बुलवा रहे हैं। शरद ने भी स्वयं यही अनुभव किया था.....

देशबन्धुजी की अन्तिम बात पर वह स्वयं भी उफन पड़ने को आतुर हो उठा। फिर भी अत्यन्त संयत-स्वर में बोला—"यह तो खैर, सब फैलाई हुई बातें हैं—क्योंकि जितने भी लोग लौटकर आये हैं; किसी ने भी ऐसा नहीं बताया।"

"हुँ:ह;— यह तो सब राजनैतिक-शिष्टता या कहिये 'डिप्लोमैटिक-कर्टसी' है। वहाँ कौन देखने गया है ?" उपेक्षा से देशबन्धुजी ने कहा।

शरद की इच्छा हूई की कोई अत्यन्त ही कड़ी बात कहदे—"वे ही कौन देखने गये हैं ?" लेकिन चुप इसलिये हो जाना पड़ा कि कहीं व्यर्थ ही रूस की तरफ़दारी करने में देशबन्धुजी की आइडिया न बिगड़ जाय और उसके न चाहने पर भी 'रूसी-एजेण्ट' की मुहर न लग जाय। यह एक ऐसी ट्रम्प-चाल है, जिसे आपका विरोधी किस समय चल कर आपको चकित-विमूढ़ कर देगा, कोई नहीं जानता। उसने अत्यन्त अरुचि से कहा—"होगा !" वह फिर सुबह के मधुर-दृश्य में खो गया। भागती कार से बाहर गुज़रते मकानों, दुकानों और कोठियों पर वह निगाह जमाये रहा। उसकी चुप्पी का कहीं कोई ग़लत अर्थ न लगाया जाय, इसलिये उसने कहा —"मन्त्रीजी कहाँ ठहरे हैं ?"

"(नगर का नाम) के सरकिट हाउस में। अभी पहुँचे जाते हैं; डेढ़-घण्टे में। बस, ज़रा मिल तक होकर जाना है। मुश्किल से साठ-पैंसठ मील तो है ही।" देश-बन्धुजी ने उसकी ओर एक बार मुड़कर देखा, फिर बताया—"बस, कलकी आफ़त और समझो। साथ में गर्वनर भी तो हैं।"

शरद ने बनावटी आश्चर्य से कहा—"अच्छा !"

"भाई, बात असल में यह है कि यह सब अपने साथ रहे हुये लोग हैं। अब यह मन्त्री हैं न, मेरे साथ बरसों देवली-कैम्प में रहे, साथ सोये, साथ काम किया और साथ लड़े—फ़ोन पर बोले 'जितनी जल्दी हो चले आओ।' वह तो भाई मेरा, फ़ोन ही नहीं छोड़ रहा था। एक तरफ़ तो कह रहा था कि मैं हजामत बनाते हुए तुमसे बात कर रहा हूँ; साबुन मुँह पर लगा है—दूसरी ओर रिसीवरसे यों चिपक कर बैठ गया जैसे छोड़ेगा ही नहीं। मैंने लाख कहा कि यहां मिलमें गड़बड़ी है, बोला—'सब यहीं ठीक हो जायेगा।' मैंने भी सोचा, चलो मित्र है अपना, शायद कोई अच्छी सलाह सामने आजाय। सो तुम्हें सुबह ही सुबह इसलिये तकलीफ़ दी।" कनखियों से उधर देखकर देशबन्धुजी बोले।

"नहीं जी, तकलीफ़ मुझे क्या ऐसी।" शरद ने कहा, फिर उसके दिमाग़ में रुपये की बात आ गई।

"अभी वह भाषण तो तुमने लिखा नहीं होगा।" अत्यन्त स्वाभाविकता से

भरसक व्यंग्य या किसी भी प्रकार की ध्वनि को बचाते हुए देशबन्धुजी कह कर सामने भागती सड़क को देखते रहे।

यही एक आशंका थी जो शरद के हृदय में बड़ी देर से धड़क रही थी—वह हर-क्षण आशा कर रहा था कि देशबन्धुजी इसी बात को पूछनेवाले हैं; और यही काम उसने नहीं किया है। लाख सैद्धान्तिक या अन्य बातें सही; पर वह नौकरी करने आया है, और नौकरी उसे करनी चाहिये। शेष सारी बातें, इसके बाद की और फ़ुर्सत की हैं। देशबन्धुजी भी क्या सोचेंगे, एक ज़रा-सा काम दिया, वह भी नहीं किया गया। संकोच से अत्यन्त ही कटकर उसने कहा—"अभी तो उसका समय ही नहीं—" स्वर में आजिज़ी थी।

"नहीं-नहीं, कोई बात नहीं। उसे कर लेना। मुझे तो कल चाहिये। मैंने तो यों ही एक बात पूछी।" देशबन्धुजी उसी चिन्तन की मुद्रा में निर्विकार भाव से बाहर देखते रहे, फिर बोले—"कल आये भी तो आप लोग काफ़ी देर में थे।"

इस बार शरद मन ही मन चौंका। उसने गौर से एक क्षण उनके चेहरे को देखा। अभी तक इतने पास से उनके चेहरे को देखने का अवसर उसे नहीं मिला था। ताज़ी बनी हुई शेव से गालों पर ऊपर की ओर कुछ रोंएं छूट गये थे। भौंहें देशबन्धुजी की कुछ घनी थीं—और आंखें भी एक बेमालूम हल्का भूरापन लिए हुए। एकदम उसके मन में टकराया, कहीं पद्मा सचमुच इन्हीं की लड़की तो नहीं है? देशबन्धुजी की बात का जवाब देना ज़रूरी था, उसने कहा—"यों ही ज़रा घूमने निकल गये थे, देर हो गई।"

"भाई, और जो है सो है; मुझे तुम्हारी जया बहुत पसन्द है। बड़ी समझ-दार लड़की है। तुम सचमुच सौभाग्यशाली हो। हरेक को ऐसा साथी नहीं मिलता। वैसे तुम जैसे लापरवाह ऊँट को चाहिये भी ऐसी ही नकेल थी। धीरे-धीरे सब ठीक पर आ जाओगे।" और वे स्वयं ज़ोर से हँस पड़े। शरद झेंप गया।

जब कार पीतल के बड़-बड़े उभरे और दूर-दूर अक्षरों में हिन्दी, अंग्रेज़ी में 'सत्यामिल्स लि०' लिखे हुए विशाल फाटक में घुसी तो दोनों गेट-मैन गोलियों की पेटियाँ सँभालते 'सेल्यूट' मार कर उधर लपके। गाड़ी धीमी पड़ी और भीतर झाँकते चपरासी से देशबन्धुजी से पूछा—"कथूरिया जी हैं?"

"जी सा'ब!"

"सत्य बाबू?" देशबन्धुजी ने पुलिस के तीन बन्दूक-धारी सिपाहियों को देखते हुए फिर प्रश्न किया। ये संगीन-युक्त बन्दूकें लिये एक ओर खड़े थे।

"जी, वे भी हैं।"

गाड़ी बढ़ी और बढ़िया सीमेण्ट की सड़क पर चलने लगी, जिसके दोनों ओर मेंहदी थी। यह मिल थी। इधर-उधर लॉन, रास्ते क्यारियाँ पड़ रही थीं—एक ओर बड़ी विशाल हॉलनुमा बिल्डिंग थी, और इसमें ऊपर एक के ऊपर एक दुमंज़िले

रोशनदानों की लाइनें चली गई थीं; चौखट और शीशे धुंए से काले पड़ गये थे। टीन की शेडदार छतपर छोटी-छोटी चिमनियाँ—उससे ज़रा हटकर वैसी ही एक और बिल्डिंग, और आसमान छूती हुई लम्बी-लम्बी छोटी-ईंटोंसे बनी दो चिमनियाँ। सड़क के दूसरी ओर दफ़्तरों की सलेटी सफ़ेदीवाले चौकोर आधुनिक-ढंग की सपाट चौमंज़िला बिल्डिगें। बाहर की ओर खुले हुए बड़े-बड़े कांच के पल्लेवाली खिड़कियों की क़तारें, जो आधी-आधी पर्दों से ढँकी थी। थोड़ी-थोड़ी दूर पर साँप से चढ़ते पाइप। कैण्टीन। इन सबको देखते हुए शरद देशबन्धुजी के वैभव से आतंकित सोच रहा था—कम्बख्त अपनी सारी बात धीरे-धीरे मुस्कुरा-मुस्कुराकर कहता जायगा और दूसरे को ज़रा भी मौक़ा नहीं देगा। मिल बिल्कुल सुनसान पड़ी थी, जैसे महीनों से बन्द पड़ी हो। मज़दूरों के बैठने की बेंचे और शेड सुनसान थे। शरद को अपनी देखी हुई दो-एक मिलों का ध्यान हो आया—उन सबके मुक़ाबले में यह बहुत बड़ी अवश्य थी; लेकिन कैसा सन्नाटा था यहाँ। बस, ऊपर की मंज़िलों के पर्दे फड़फड़ा रहे थे और इक्का-दुक्का चपरासी इधर-उधर दिखाई दे जाता था। तभी शरद को ध्यान हो आया, बाहर मिल के आगे उसने बीड़ी पीते और गप्पें लड़ाते मज़दूरों के दो-झुण्ड देखे थे और शायद कुछ दूर पर दो पुलिस की ट्रकों के पिछले हिस्सों की झलक भी मिली थी। सामने तीन सिपाही तो खड़े ही थे। हुं:, तो मिल में हड़ताल चल रही है! कहीं यह मन्त्री और गवर्नर तक भागदौड़ इसी सिलसिले में तो नहीं हो रही? कल गोली चली थी, पता नहीं क्या हुआ? और शरद पूरी स्थिति जानने के लिये जैसे मन ही मन मचल पड़ा। दुष्ट को सब पता है, मैं किस समय गया था, किस समय लौटा। पूरी आंखें रखता है। मायादेवी भी जानती ही होंगी। यह भी तो शायद जाग रहे थे। ऊपर से कैसा भोला-भाला दीखता है—भीतर से बड़ा तेज़ है। और ऐसी सावधानी न बरते तो कैसे इतना सब कारबार, कारखाना चले? बातें कितनी मीठी करता है कि आदमी पिघल जाय!

बड़ी ऊँची सुन्दर-स्वच्छ बिल्डिंग के लहरदार छज्जे की तरह सामने निकले शेड के नीचे बिल्कुल बरामदे की सीढ़ियों के सहारे जब बेमालूम तरीक़े से कार खड़ी हुई, तब आकाशके श्वेत हिम-खण्ड सुरमई होकर एक जगह सिमट आये थे और छाया हो गयी थी। देशबन्धुजी गम्भीर थे—शायद मिल की सूरत देखकर सुस्त लगते थे। बरामदे में खड़े चपरासी ने दौड़कर दरवाज़ा खोला तो शरद को लगा सचमुच देशबन्धुजी कहीं गहरे डूबे हैं; वर्ना उसका अध्ययन तो यह है कि किसी भी खोलनेवाले से पहले वे स्वयं दरवाज़ा खोलकर बाहर निकल आते हैं।

"तुम यहीं बैठो, मैं अभी आता हूँ।" कहकर देशबन्धुजी बाहर निकल कर बरामदे से ऊपर जाती सीढ़ियों पर चढ़े चले गये। सीढ़ियों पर चढ़ते समय वे धोती की पटलियों को हाथ में उठा लेते थे। पीछे से उनकी खुली पिंडलियाँ और उन पर

घने बाल दीख रहे थे—दूसरी निगाह चमकते चन्द्राकार चांद के हिस्सेपर जाती थी। शरद उन्हें देखता रहा। वह पूरी तरह फैलकर उस गद्देदार सीट पर अध-लेटा हो गया। उसने देख लिया, ड्राइवर ध्यान से सामने के शीशे में उसकी गतिविधि देख रहा था। वह मुस्कुराया। हम लोगों की बातें सुनकर ये लोग क्या सोचते होंगे ? हमलोगों ने शायद यह सोचना ही बन्द कर दिया है कि स्टीयरिंग-व्हील सँभाले यह जो जीव बैठा है, वह भी हमारी बातों की कोई प्रतिक्रिया ग्रहण करता है ; तो क्या मशीन के सम्पर्क में आकर मनुष्य मशीन ही बनता जा रहा है ? लेकिन इस मशीन के दानव से डर कर गांधीजी की तरह अध्यात्म और अतीत की रेत में मुँह घुसा लेना ठीक है या उसमें प्राण-प्रतिष्ठा का प्रयत्न ? यह प्राण-प्रतिष्ठा कैसे होगी —कौन करेगा ? हम लोग तो हारे और टूटे हुए लोग हैं; विसर्जनवादी और पलायनशील; हर ऐसे किसी भी क्षण से कतराते और बचते हैं—भागते हैं ! तभी शरद को सूरजजी का ध्यान हो आया। सूरजजी कहां भाग गये ? जब वह सुबह तन्द्रिल सपनीली-अवस्था में लेटा था और कलके उस ऐन्द्रजालिक-वातावरण को मन में बांध कर साकार करने की कोशिश कर रहा था—तब उसे सूरजजी की कथा का ध्यान आया था; और सूरजजी कहाँ है, कैसे हैं, जाननेकी उत्सुकता उसे हुई थी। इसके बाद तो फिर सोचने का मौक़ा ही नही मिला। सूरजजी तथा मिल के विषय में जानने की उसके हृदय मे इतनी प्रबल उत्सुकता हुई कि वह एक झटके से उठ बैठा और खुले दरवाजे से बाहर आ गया।

बादल और अधिक सिमट कर एकाकार हो गये थे। वातावरण घना हो गया था। हवा में एक सीलन आगई थी। 'शेड' से बाहर निकल कर शरद ने आसमान की ओर देखा: शायद आज फिर बारिश होगी। अजब मौसम है ! जाड़ेके दिनों मे बारिश हो रही है। हवा में काफी ठण्ढ थी, शरदने जरसी को गले पर ज़रा ठीक किया और पतलून की जेब में हाथ डाले टहलता हुआ इधर-उधर चहलक़दमी करने लगा। थोड़ी देर अभी नहीं हुई नेता भैया की ! आदमी बड़ा धूर्त है ! 'बिगुल' को अपना व्यक्तिगत पेपर बना लिया है। लेकिन है तेज—ठाठ से मायादेवी के साथ मौज करता है, और कोई उँगुली उठानेवाला नही है। पैसे की माया है। शरद के पास पैसा होता तो वह भी जया को लेकर रौब से कही रहता—अब चोरों की तरह भाग रहा है। जाने क्या सलाह हो रही है ऊपर ? ऊपर नहीं ले गया साथ; हर काम को धीरे-धीरे मनोवैज्ञानिक-रूप में करता है—जल्दबाजी नहीं करता। शायद ऊपर कोई गम्भीर सलाह हो रही हो और एकदम मुझपर इतना विश्वास न कर सकता हो। उसे शायद शक़ है मैं कहीं 'लैफ़्टिस्ट' यानी कुछ कम्यूनिस्ट-विचारों का तो नही हूँ ! देशबन्धुजी को एक कला की प्रशंसा शरद ने भी की। जितनी बात चाहता है, बस उतनी ही जानने देता है। आगे आदमी प्रयत्न भी करे तो शायद कुछ अधिक न जान पाये। तभी फिर उसे कल की बात याद हो आई। वैसे पहले-

पहल मिलने में या दूर से ऐसा लगता है कि देशबन्धुजी इतने उदार-हृदय, उन्मुक्त स्वभाव के, तथा हरेक के इतने अपने हैं कि कभी किसी को भी उनसे मिलने में कोई दिक्क़त ही नहीं होगी; वे इतने निकट और स्पष्ट हैं कि कुछ भी छिपाकर नहीं रखते। लेकिन अब यह उसके सामने बिल्कुल स्पष्ट था कि यह कितना बड़ा भ्रम का जादू है जिसके प्रभाव में मनुष्य पहले-पहल आता है; फिर धीरे-धीरे उसे पता चलता कि है देशबन्धुजी एक विचित्र रहस्य के वातावरण में लिपटे हुए व्यक्ति हैं—जैसे हर समय वे रहस्य का नक़ाब ओढ़कर चलते हैं; जो अदृश्य है, पारदर्शी है; लेकिन इतना सत्य कि आप उसे छू सकें—अनुभव कर सकें। वे जब चाहेंगे और जितनी देर के लिये चाहेंगे तभी आप उनसे मिल सकेंगे—अपनी इच्छा से नहीं। आप उसके 'दर्शनों तक को तरस जायेंगे—सामने फ़ोन रखा रहेगा और आप बात नहीं कर सकेंगे।' शरद ने तो अनुभव किया है! विचित्र हैं व्यक्तित्व इस आदमी का!

शरद की निगाह एक अलग खड़े हुए सीमेण्ट के नोटिस-बोर्ड पर जा पड़ी और वह धीरे-धीरे टहलता हुआ उसके पास आगया। साइक्लोस्टाइल किया हुआ लम्बा-सा पर्चा चिपका था। ऊपर मोटे अक्षरों में लिखा था—"मज़दूर भाइयों को सूचना।" शरदकी निगाह नीचे गयी, हस्ताक्षर थे, कथूरिया—जनरल मैनेजर। उसने जल्दी-जल्दी पढ़ने की कोशिश की। आशय था कि चौबीस-घण्टे का समय मज़दूरों को दिया जा रहा है। जो इस बीच में बिना-शर्त लौट आयेंगे उन्हें पुनः ले लिया जायेगा और पिछले दिनों को काम के दिनो में शुमार कर लिया जायेगा, तथा उनका बोनस भी इसबार से बढ़े इस पर मैनेजिंग-कमेटी विचार कर रही है; लेकिन जो इस समय में नहीं आयेंगे वे अपने को मिल से बिल्कुल अलग समझें। भविष्य में किसी हालत में उनके केस पर विचार नहीं होगा और उनकी जगह दूसरे मज़दूर रख लिये जायेंगे। इसके अतिरिक्त और भी सुविधाओं और धमकियों की बातें थी। चौड़ा नोटिस-बोर्ड दो हिस्सों में बँटा था। एक ओर अकेला यह नोटिस था और दूसरी ओर 'मज़दूर भाइयो सावधान' के शीर्षक से एक और नोटिस लगा था। उसका स्पष्ट आशय था—'मज़दूरों को कम्यूनिस्टों के चक्कर से बचना चाहिये, ऐसे पेशेवर उत्पातियों को पहचनवाओ और जल्दी से पकड़वाओ। यह तुम्हारे बीच में कीड़े हैं जो ज़हर फैला रहे हैं। इन्हें इस ज़हर फैलानेका मिलता है। ये रूसी-एजेण्ट इस बात की तनुखा पाते हैं। तुम्हें भड़कायेंगे, लड़ायेंगे और मुसीबतों में डालेंगे—इनसे बचना हमारा फर्ज़ है। मज़दूर और मालिक का सम्बन्ध राजी और इच्छा का सम्बन्ध है, किसी से लड़कर आप कुछ नहीं ले सकते। उसके बन कर—उसके हृदय को जीतकर, उसके मन में घर करके आप जो चाहेंगे पायेंगे—यह सही रास्ता है। यही मार्ग हमारी भारतीय-संस्कृति का मार्ग है और बापूजी का बताया मार्ग है। तोड़-फोड़ करने वालोंको कुचल दो। परमा मर गया!—मालिकोंने तो उसे मारा नहीं—वह तो उलटा हरजाना देने को तैयार हैं। अब वह तो आने को नहीं है; लेकिन उसके

नाम पर निकल आने वाले इन बरसाती मेढ़कों की नेतागीरी हमें और आपको खत्म करनी है। हड़ताल होती है, गोली चलती है, लाठी चार्ज होता है—किस का नुकसान होगा ? कौन मरेगा ? मालिकों ने नोटिस दे दिया है, वे बाहर से मज़दूर मँगा लेंगे तब बेकार दर-दर कौन घूमेगा ?—आपके भूख से तड़पते बीबी-बच्चों को ये लोग खाना देंगे ? लड़कर किसी ने आज तक कुछ पाया है ? और जबर से लड़ोगे तो मार खाओगे। आज अपना देश स्वतन्त्र है, यह नुक़सान किसी बाहर वाले और विदेशी का नुकसान नहीं है। यह आपका अपना नुकसान है। इसलिये मज़दूर भाइयो, आओ, हम सब लोग इस अशान्ति को समाप्त कर दें।" नीचे बीस-पचीस मज़दूरों के नाम थे। पहले नाम के आगे ही लिखा था, "मन्त्री, भारतीय मज़दूर संघ।"

यह पर्चा जिस बोर्ड पर चिपका था उस पर बहुत पतले काग़ज में कार्बन करके लिखे हुए आठ-दस पर्चे और चिपके हुए थे; उन्हीं में से एक को ढँकता हुआ यह चिपका था। शेष को खुरच-खुरच कर छुड़ाने का भरसक प्रयत्न किया गया था। शरद उसकी भाषा को पढ़ने की इच्छा को नहीं रोक सका—उसने झुक कर ज़रा पास से एक-एक अक्षर उखाड़ कर पढा.....

"मज़दूर-एकता ज़िन्दाबाद ! दुनियाँ के मज़दूरो एक हो !" के बाद "साथियो" से वह शुरू होता था। "मालिकों की धमकी हमारे सामने है। अब दो ही रास्ते हमारे आगे हैं: या तो उनके आगे समर्पण करके हम अपने 'अपराध' के लिये क्षमा माँग लें या जिन अधिकारों की प्राप्ति के लिये हमने क़दम उठाया था उन्हें लेकर रहें, और उस शोषण का डटकर विरोध करें जो मालिक लोग तरह-तरह से करते हैं ! उनके हाथों में परमा और परमा जैसे हज़ारों निरीहों के खून के धब्बे हैं—पुलिस और फ़ौज उनकी है, हवाई जहाज और एटम-बम उनके है—सरकार उनकी है ! लेकिन हमें भरोसा अपनी एकता का है। इतिहास बतलाता है, ताकत से कभी जबानें बन्द नहीं हुई—दमन ने कभी एकता को नहीं तोड़ा। मालिकों के गुर्गे हमें तरह-तरह के प्रलोभन दे रहे हैं—फोड़ रहे हैं। लेकिन वे देख रहे हैं कि उनकी हर चाल बेकार जा रही है। ये किराये के टट्टू माफ़ी और बोनसके सब्ज़-बाग़ दिखाकर सामने आते हैं। हमें भीख नहीं चाहिये, जो कुछ हम माँग रहे हैं वह हमारा अधिकार है। मालिक लोग सामने आकर बतादें वे ऐसे सब्ज़-बाग और आश्वासन कितनी बार दे चुके हैं ? क्या उन्होंने कभी अपने वायदे पूरे किये ? पिछली बार जब बॉइलर फट जाने से आठ मौतें हुई थी तब मालिकों ने क्या किया था—क्या कहा था ? परमा की जान की क़ीमत बस पांच सौ रुपया ? एक आदमी जिसकी बीबी है, दो बच्चे हैं—पाँच सौ में आ जायेगा ? यह मज़ाक़ और खिलवाड़ आखिर कब तक चलता रहेगा ? मिल की डिस्पैन्सरी में दवायें नहीं हैं—पानी दिया जाता है। मरीज़ों को डाँट कर भगा दिया जाता है। रीडिंग-रूम में

प्रचार के मुफ़्ती पत्र पड़े रहते हैं—अमेरिकन-रिपोर्टर की बीस-बीस प्रतियाँ डाली जातीं हैं. 'कल्याण' के अंक पड़े रहते हैं—क्या हमारे ज्ञान और जिज्ञासा यहीं तक है ? लेबर-ऑफ़ीसर दिन-रात मालिकों के जूते चाटता है; क्योंकि उसे तनुखा मिलती है—उसे हमारे हितों से क्या मतलब ? हमें न्याय दो ! अपनी माँगों को समझने-समझाने का हमें मौक़ा दो ! हमारी माँगें—"

और एक-दो-तीन नम्बर डालकर लिखी हुई माँगों को पढ़ने का प्रयत्न शरद कर ही रहा था कि कार का तीखा हॉर्न बजा। उसने मुड़ कर देखा कथूरियाजी के साथ-साथ देशबन्धुजी नीचे उतर रहे थे। पीछे-पीछे दो सज्जन और थे। शरद धीरे-धीरे टहलता हुआ कार के दूसरी ओर आ खड़ा हुआ। चारों बरामदे में खड़े-खड़े बातें कर रहे थे। खुले दरवाज़े को हाथ से पकड़े, झुका हुआ ड्राइवर एक अन्तिम कश खींचकर सिगरेट को पाँवदान पर रगड़कर बुझा चुका था—और नाक से निकाला हुआ धुआँ उनकी कनपटी के पास से ऊपर उड़ रहा था। शरद चुपचाप खड़ा रहा और दरवाज़े में समाये शीशे पर उँगली फेरता रहा। जब ढीली-ढाली हल्की गुलाबी बुशशर्ट पहने मोटा-सा आदमी बात-चीत करते हुए घूमा तो शरद पहचान गया—इन्हें उस दिन सूरजजीने 'कोतवाल साहब' कहा था। साथ वाले आदमी को वह नहीं पहचानता था। यह सज्जन बार-बार अपनी पतलून को ऊपर खींचते थे, और उनकी टाँगें घोड़े की टापों की तरह स्थिर नहीं रह पाती थीं—एक उठाते, एक रखते रहते थे। गेहुँआ रंग—फूले गाल, भरा मुँह—मुस्कुराते होंठ। शरद ने दूर से ही अनुमान लगाया यह आदमी काफ़ी नम्र है—और वह जिस ढंग से कथूरियाजी तथा देशबंधुजी की ओर बार-बार कोई बात कहने के बाद देखता था उससे स्पष्ट था कि वह हर बार यह देख लेता है कि उसकी बात का क्या असर हुआ। ख़ुशामदी क़िस्म का है। उसने शोफ़र से पूछा—"क्यों भाई; यह कौन है ?"

"कौन वो ? कोतवाल साहब"

"नहीं—उनके पास जो चुपचाप नहीं खड़ा हो पा रहा ? हाथ में फ़ाइल लिये ?"

"ये सा'ब, लेबर-ऑफ़ीसर हैं यहाँ के—सोढी साहब।"

"अच्छा !" शरद ने फिर मन में कहा—'अच्छा तो यही हैं, वह लेबर-ऑफ़ीसर ! मालिकों और मजदूरों की बीच की कड़ी।' और वह रुचि-पूर्वक उन्हें देखने लगा। उनका टाँगे चलाना—जैसे गर्म-धरती पर खड़े हों; और बार-बार पतलून खिसकाना उसे बड़ा मनोरंजन लगा। तभी सीढ़ियों से एक अट्ठाइस-तीस वर्ष का युवक उतरता हुआ वहाँ आ गया। वह चूड़ीदार पाजामा, काली अचकन पहने हुए था; उसके हाथ की घड़ी और कोई मोटा-सा सफ़ेद नग ज़रा हाथ हिलने से झिलमिला उठते थे। भिचे हुए होंठ, भरे हुये गाल, सुन्दर मुँह—उसके चेहरे के रौब, चलने के ढंग तथा अन्य लोगों के उसके साथ के व्यवहार से शरद को समझते

देर न लगी मिल के असली मालिक यही सत्य बाबू है। वे लोग बड़ी देर तक बात करते रहे, शरद केवल भनभनाहट ही सुन सकता था—या मुख-मुद्राओं के उतार-चढ़ाव से बात के विषय को समझ और उसके हल्के, गम्भीर-स्तर का अनुमान लगा सकता था। वह कार की लम्बाई में टहलता रहा—सिर झुकाये। उसे अलग छोड़ दिया गया है, यह बात उसे कुछ अच्छी नहीं लग रही थी; लेकिन जब उसे वे अलग ही रखना चाहते हैं तो क्यों और कैसे जा मिले? सालों के दिमाग़ तो ठिकाने आ गये है। अब नहीं मुस्कराते नेताजी बात-बात में! अब तो ऐसी मुर्दनी बरस रही है जैसे अम्मा मर गयी हो—"

एकाध-बार जब उधर देखा तो कथूरियाजी से निगाह मिलते ही उसने हाथ जोड़े थे—जिसका उन्होंने उड़ता-सा उत्तर दिया था। बात शायद काफ़ी गम्भीर चल रही थी! "सत्या मिल्स लिमिटेड!" शरद ने मन-ही-मन दुहराया, बस चार आदमियों ने मिलकर काम रोक लिया और मिल में कुत्ते लोटने लगे! मज़ा तो आ जाय, अगर मज़दूर जमे रहें ज़रा। सारी नेतागीरी और उपदेश भूल जाये। जेब में पैसे नहीं, पेट में रोटी नहीं, इनके उपदेश सुनो बैठकर···' शरद को ध्यान आगया, बिना नाश्ता किये ही आज तो आना पड़ा है। चाय तो कम्बख़्त ने पी लेने दी होती—सुबह-ही-सुबह ऐसी क्या आफ़त मची थी, पता नहीं अब कब नसीब हो। पानी और बरसा आ रहा है, ऊपर से···

अचानक बात ख़त्म हो गई और देशबन्धुजी कार की ओर बढ़ आये। कोतवाल साहब ने दरवाज़ा खोला, तो झुककर कार में प्रवेश करते-करते जैसे उन्हें कुछ याद हो आया; निकल कर बोले—"हाँ, सत्य बाबू, ये हमारे नये साथी हैं; शरद कुमार!"

शरद ने हाथ जोड़े दोनों के बीच में शानदार कार थी, इसलिये हाथ नहीं मिलाये जा सकते थे। लेबर-ऑफ़िसर साहब ने भी हाथ जोड़े। तब तक देशबन्धुजी भीतर बैठ चुके थे—सत्य को छोड़कर शेष सब लोग झुके हुए उनसे बातें कर रहे थे। दूसरे दरवाज़े से शरद भीतर आ गया। कार स्टार्ट हो गयी, तब देशबन्धुजी ने उनसे कहा—"हाँ, आप लोग बिल्कुल निश्चिन्त रहें, मैं सब बातें कर लूंगा। हाँ कथूरियाजी, वो प्रबन्ध ज़रा ठीक कर लीजिये।"

"जी, बिल्कुल हो जायेगा।"

जब कार बाहर आई तो शरद ने फिर देखकर अनुमान लगाया, कहाँ गोली चली होगी: कल रात को। जहाँ मज़दूर थे, वहाँ आठ-दस जिज्ञासु-व्यक्तियों की भीड़ थी। मिल से निकल कर सिगनल देकर जैसे ही ड्राइवर ने कार मोड़ी, देशबन्धु-जीने कहा—"बड़े अस्पताल!"

शरद चौंका। उसने मुड़कर देशबन्धुजीकी ओर देखा। देशबन्धुजी पीठ टिकाये बड़े थके-से पड़े थे। एक हाथ से उन्होंने चश्मा उतार कर गोदी में रख

लिया था; और दूसरे हाथ से नाक के ऊपर और भँवों के बीच की जगह को चुटकी में पकड़कर वे चुपचाप बड़ी गम्भीरता से कुछ सोच रहे थे। चेहरा पीला था और मुख-मुद्रा बड़ी संजीदा। उस एक क्षण को सचमुच इस व्यक्ति के प्रति शरद को बड़ी दया हो आई। वाक़ई इस एक आदमी की जान को कितने बवाल हैं? कुछ न करता हो; पर इतना सब देखना-भालना क्या कम मुसीबत का काम है? न रातको आराम, न दिन को चैन। और इतना करने पर भी क्या इसे दो क्षण अपनी इच्छानुसार आराम करनेका अधिकार नहीं है? उस समय भी लोग इसे माफ़ नहो करना चाहते? जब मायादेवी को स्वयं कोई आपत्ति नहीं है तो क्यों लोगों के पेट में दर्द होता है? लाख बुरी सही—आपस में निभ रहे हैं और चल भी रहे ही हैं। लेकिन पद्मा? हाँ, पद्मा बेचारी की ज़िन्दगी ज़रूर इस घुटन में पिसी जा रही है। पता नहीं, जब-जब वह पद्मा की बात याद करता तो एक विचित्र तरह की हल्की टीस, एक गहरी साँस उसकी छाती के गहरे भाग से उठती-सी लगती···

उसने बड़े मुलायम स्वर में कहा—"नेता भैया, आपकी तबियत कुछ ख़राब है क्या?"

"मुझसे यह सब बरदाश्त नहीं होता, शरद! अभी दौरे से उठा हूँ और यह मानसिक-द्वन्द्व—इसीलिये सब झगड़े से दूर मैं अलग जा बसा था; लेकिन क्या किसी से कहा जाय···।" देशबन्धुजी ने एक गहरी साँस ली और आँखे मलकर चश्मा लगा लिया—"सच बात तो यह है कि मैं इस तरह के कामों के लायक़ अब रह नही गया हूँ। लेकिन मनुष्य के भीतर आत्मा नाम की जो चीज़ दी गयी है न, वह बड़ी बुरी है! यही तो उसे चैन से नहीं बैठने देती है। गोली चले, लाठी-चार्ज हो—और दुनियाँ भरके हंगामे हों, यह सब भी तो नहीं देखा जाता। हार कर मुझे हस्तक्षेप करना पड़ता है। लेकिन सत्यबाबू को यह पसन्द नही है—तुमने देखा नहीं? वो ज्यादा रुचि नहीं दिखा रहे थे।"

"नया ख़ून है—सब समझ जायेंगे।" शरद ने सान्त्वना दी, और अचानक उसके दिमाग़ में यह बिल्कुल साफ़ हो गया कि बाप-बेटे में अधिक बनती नहीं है।

"हाँऽऽ बस, यही समझ कर चुप हो रहता हूँ—सब ठिकाने आजायेंगे। वैसे बुरा तो लगता ही है जब···।" और कुछ कहते-कहते वे सहसा चुप हो गये। बहाव में आकर भी वे अगली बात न कहनेका संयम रखते थे, इसका कारण यह था, या यह कि कार अब मुख्य-बाज़ार से होकर गुज़र रही थी और देशबन्धुजी पर नमस्कारों की बौछारें हो रही थीं—यह, इस बात को शरद नहीं समझ सका। लेकिन करुणा उसके चेहरे पर सिमट आई थी। यह बिल्कुल स्वाभाविक था कि बाप-बेटे के रवैयों में थोड़ा-बहुत अन्तर और विरोध हो। फिर भी जिसके लिये सब कुछ किया, उससे इस प्रकार का व्यवहार कष्ट तो देता ही है।

शरद बाहर देखने लगा—साइन-बोर्ड, शो-केस आल्मारियाँ, भीड़-भाड़,

दूकान पर खड़े और बैठे हुए लोगों की ईर्ष्या-भरी निगाहों से इधर-उधर देखते हुए नमस्कार फेंकना, रंग-बिरंगे कपड़े; प्रदर्शित वस्तुएँ, टुनटुनाती-साइकिलें, रिक्शे, ताँगे। बाज़ार बहुत सँकरा था। कार रुक-रुक चल रही थी। शरद के मन में हुआ, काश, इस समम उसके परिचितों में से कोई उसके रोब को देखता ! मित्रों में से—या घरवालों में से। देशबन्धुजी बड़ी नम्रता से मुस्कुरानेकी कोशिश करते हुए नमस्कारों का उत्तर देते चल रहे थे। किसी-किसी से हाथ हिला कर उसकी तबियत ठीक है या नहीं, इस बात का प्रश्न-संकेत करते। एक ही क्षण बाद व्यथा से निढाल हो आने वाले और हँस-हँस कर सबके नमस्कारों के जवाब देनेवाले देशबन्धु में कोई तुलना नहीं थी।

चौराहे पर कार के मुड़ते ही बड़े अस्पताल की बाउण्ड्री के सहारे चौड़ा फ़ुट-पाथ चलने लगा था। 'एमर्जेन्सी' का बोर्ड लगे हुए फाटक के मुंह पर जैसे ही कार खड़ी हुई, भीतर भरे हुए सैकड़ों मज़दूरों की निगाहें उधर घूम गयीं। भीतर काफ़ी भीड़ थी, और सबके चेहरे सुस्त थे। मैले, गन्दे, फटे, काले कपड़े पहने हुए मज़दूर, बढ़ी हुई दाढ़ियाँ, संघर्षों और श्रम से जीर्ण-शीर्ण चेहरे, इकाइयों में अलग-अलग होते हुए भी सब जैसे मिलकर एक इकाई बनाते थे। पता नहीं, वहाँ क्या स्थिति थी कि देशबन्धुजी के आते ही जैसे किसी सोये पानी में ढेला फेंक दिया हो। एक भनभनाहट यहाँ से वहाँ तक गूँजती चली गई—मानों मक्खियों का छत्ता हिल गया हो।

"नेताजी आये हैं !"

"अपनी करतूत देखने ?"

"मन तो होता है, कार को चकनाचूर करदें—बड़े नेता बने हैं !"

"ऊपर से कैसे साधू-सन्त बने हैं।"

पता नहीं लज्जा से या ग्लानि से अपराधी की तरह सिर झुकाये जब देशबन्धु-जी 'एमर्जेंसी-वार्ड' की ओर बढ़ रहे थे—और भीड़ काई की तरह फटती, उनके लिये गली छोड़ती जा रही थी—तब साथ चलते शरद का हृदय भय से 'धक्-धक्' बज रहा था। कहीं इनमेंसे कोई जोशीला नौजवान आगे बढ़कर इनका गिरहबान पकड़ कर दो झटके न लगा दे—और व्यर्थ में कुछ अघटनीय न घट जाय ! बुड्ढा आदमी है, एक झापड़ के बाद इससे उठा भी नहीं जायगा। इस समय सचमुच उनके प्रति उसके हृदय में आदर और श्रद्धा उत्पन्न हुई—कितना निरीह आदमी है, अकेला, निर्बल; लेकिन कितना साहसी है। निर्द्वन्द्व चला जा रहा है ! वह स्वयं शायद ऐसी हिम्मत नही कर पाता। उसे तो साथ चलने में भी डर लग रहा था। गुज़रते हु कनखियों से या सामने से हटते हुए मज़दूरों की आँखों, मुँह और प्रत्येक भंगिमा से फुफकारती घृणा मन में आतंक उत्पन्न कर रही थी। बँधे शेर की भूखी निगाहों से वे उन्हें घूर रहे थे।

स्ट्रेचर उतरने-चढ़ने के लिये बिना सीढ़ियों की ढालू जगह से चढ़कर जैसे ही देशबन्धुजी भीतर जाने के लिये दरवाज़े के सामने आये, तभी भीतर से अस्पताल के नौकर ने निकलती हुई पहियेदार स्ट्रेचर के लिये दरवाज़ा खोला। आगे-पीछे तीन स्ट्रेचर थीं। मैले कपड़े ओढ़े हुए उस पर तीन शरीर पड़े थे। देशबन्धुजी जैसे हठात् धक्के से चलते-चलते रुक गये, ज़रा एक ओर हट आये—वे ग़ौर से सिर झुकाये देख रहे थे। जैसे ही दूसरी स्ट्रेचर उनके पास से गुज़री उन्होंने काँपती उँगलियोंसे बढ़कर जरा-सा कपड़ा उठाकर देखा—भीतर खून से लथपथ मुँह था। कपड़ा उनके हाथ सें छूटने को हो आया !

"नेता भैया, अपनी करतूत को यों देखिये !" तभी किसी ने एक झटके से पूरा कपड़ा हटा दिया। शरद ने देखा गन्दा कुर्ता और मैला पाजामा पहने, चश्मा लगाये बिखरे बालोंवाले कोई सज्जन थे।

एकदम जैसे सब सकते ही हालत में आगये। तब तक उस व्यक्ति ने तीनों स्ट्रेचरों के कपड़े उन्मत्त की तरह हटाकर अगल फेंक दिये थे—तीन लाशें सामने थीं। एक के दाँत टूट गये थे, एक की पसली खून से लथपथ थी और एक की कनपटी फूट गयी थी। एकाध जगह और पट्टियाँ बँधी थीं। भीड़ एकदम वहाँ सिमट आई ! सब झुक-झुककर देखते—और जहाँ से लाशें दीख जाती, वहीं इस तरह रुक-रुककर फटी-फटी आँखों से रह-रह कर कुछ निगलते हुए घूरते, जैसे उनका सिर किसी दीवार से टकरा गया हो ! शरद ने निगाहें उठाकर देखा—आँखें—आँखें—आखें ! लाशों से उठकर देशबन्धुजी पर पड़ती हुई आंखें, और वहां से गिरकर लाशो पर तैरती आँखें ! सैकड़ों दृष्टियों के तीखे-तेज स्पर्श शरद की अपनी खाल पर मह-सूस हो रहे थे। अनजाने वह भी उन निगाहों का केन्द्र बन गया था !—जैसे देशबन्धु जीके साथ वह भी इस अपराध में शामिल हो। उसकी आत्मा के बहुत भीतर जैसे कोई बोला—'उसे कहाँ खड़ा होना चाहिये था—और वह कहां खड़ा है ?' हर दर्शक कुछ क्षण बड़े ध्यान से लाशों को देखता और फिर एक गहरी सांस लेकर निर्जीव की तरह पीछे हट जाता—दूसरे के लिये जगह छोड़ देता। अचानक दो-तीन जगह से सिसकियाँ फूट पड़ीं—और कोई डकरा कर रो उठा—"भैया !"

"दादा !" फटे और गले से कोई भीड़ के पीछे से चिल्लाया, साफ लगा कोई भागता-हाँफता हुआ बेतहाशा दौड़ा चला आरहा हो !

और तब ज़बर्दस्ती रुलाई रोके हुए दो-तीन कण्ठ एक साथ फट पड़े। "वली कैसा लग रहा है, जैसे अभी सोया हो !" भीड़ में कोई लाश का साथी सिसक पड़ा। कुछ उमड़ती रुलाई को रोकने के लिये मुँह फाड़े साँसे ले रहे थे, और कुछ एकाध मिनट, भर आती आँखों पर नियन्त्रण पाने की कोशिश करते, फिर अचा-नक आंखो पर बांह रखकर फफक पड़ते।

"रोओ मत, रोओ मत !" बिखरे बालों और चश्मेवाले उसी व्यक्ति ने

झड़ककर ऊँची आवाज़ में कहा—भावावेश में उसकी आवाज़ काँप रही थी—"हमारी क़िस्मत में यही बदा है—यही लिखा है। ज़िन्दा रहोगे तो तुम्हारा खून मिलों में निचोड़ा जायेगा—तुम बॉइलरों में जल-जल कर मरोगे, और वैसे मरने से इनकार कर दोगे तो नतीजा सामने है ! जब तक यह खद्दर के दूध के धुले चोगे पहने राक्षस तुम्हारी-हमारी छातियों पर हैं—हमारी क़िस्मत यही है ! ये खड़े हैं नेताजी, मैं इनसे आज आपके सामने पूछता हूँ—यह अहिंसा है ? रामराज्य है ? क्या यही सब कुछ है वह, जिसके लिये ब्रिटिश-राज्य को गाली देने में यह अपने कोश की सारी गालियां खाली कर देते थे ? और अभी क्या है—बली, रामा और सोना आपके सामने हैं—हमारे पांच साथी भीतर मरने का इन्तज़ार कर रहे हैं। मैं कहता हूँ, दे दो इन लाशों को नेताजी को, शोकेसों में बद करके अपने 'स्वदेश-महल' में सजा लेंगे।" और आवेश के कारण वह हाँफने लगा, उसने कुछ देर सुस्ताने के लिये रुकने के बहाने लोगों को गौर से देखा। उनकी कातर व्याकुलता एक अवाक् स्तब्धता में बदल रही थी और उनकी दृष्टियाँ उस व्यक्ति के पास खड़े हुए शरद और नेताजी पर जम गयी थीं। उस व्यक्ति के होठों के कोनों में झाग आ गये थे, आगे कुछ कहने के लिये उसने छाती में सांस भर कर मुँह फाड़ा—

तभी स्प्रिंग के जालीदार किवाड़ खोलकर सफ़ेद फ्रॉक पहने, लाल पेटी बाँधे सिस्टर ने निकलकर कहा—"आप लोग शोर मचायेंगा तो पेशेण्ट का तबियत और बिगड़ जायेगा !"

और जैसे कोई उफनते हुए दूध पर पानी डाल दे, तना हाथ कटे पङ्ख की तरह नीचे गिर पड़ा, और एकबार हृदय की सारी घृणा, सारी नफ़रत को दृष्टि में भरकर उसने तीखी निगाह से देशबन्धुजी को देखा, फिर सिर नीचे लटका लिया। जैसे वह निगाह बिजली की तरह कोंधती चली गई। अचानक कुर्ते का आगे का हिस्सा आँखों से लगा कर वह फूट-फूटकर रो पड़ा !

तब देशबन्धुजी निर्जीव की तरह पांव घसीटते सिर झुकाये लौट आये। वे केवल सामने ज़मीन को देख रहे थे। जगह बनती रही और लोग उन्हें घूम-घूम कर देखते रहे। पीछे-पीछे शरद क़दम नापता चल रहा था। लोग उसे देशबन्धुजी का साथी समझ रहे हैं यह बात उसे खाये जा रही थी। वह कैसे बताये कि वह पूर्णतया उन्हीं के साथ है; सिर्फ़ देशबन्धुजी के साथ चल रहा है—यही उसका अपराध है; लेकिन ज़रा भी ज़रूरत होगी तो वह उन्हीं के साथ होगा।

"चली नहीं नेतागीरी !" किसी ने ज़बान में सारा ज़हर घोलकर कहा।

"अपनी करतूती देखली और दुम दबाकर निकल दिये।"

"इनका तो सिर साँप की तरह कुचला जायगा, तब इन्हें होश आयेगा।"

लेकिन इन सारे फ़िकरों के प्रति बिल्कुल निरपेक्ष देशबन्धुजी कार तक आ गये। ड्राइवर ने बिना बाहर निकले ही हाथ बढ़ा कर पिछला दरवाजा खोल

दिया। भीड़ कार के चारों ओर सिमट आई थी। उस समय एकदम शरद को लगा स्थिति बड़ी भयंकर हो उठी है। जिस समय वे वहाँ आये थे उस समय लोग एक आशा और उत्कण्ठा से उन्हें देख रहे थे—अब उनकी मुद्राओं में कुछ और था —कुछ और था ऐसा, कि डर लगता था। शरद को डर था कि कार के हिलते ही कहीं मुद्राओं की भाषा मुखर न हो जाय! उसे हर क्षण आशंका होती कि किसी दिशा से एक नुकीला पत्थर अब कार के पिछले शीशे पर बजा! उनके मन में हुआ, देशबन्धुजी इतने धीरे-धीरे क्यों चल रहे हैं? क्यों नहीं तेजी से चलकर कार में जा बैठते? या वह ही देशबन्धुजी को एक ओर हटा कर तेजी से कार में जा घुसे। कम से कम इन निगाहों से तो बचे। तभी अपनी कमजोरी पर उसे ग्लानि हुई—उसे याद आया, सन् ४२ में जब वह इसा तरह की भीड़ में होता था तब कभी उसके दिल को किसी भी तरह के डर ने नहीं छुआ, और अब क्या यह साथका प्रभाव है कि इस तरह घबड़ा रहा है।

जैसे ही ये लोग गाड़ी में बैठे और झटके के साथ दरवाज़ बन्द हुए, भीड़ का घेरा और सिमट आया!

"काँग्रेसी राज!" अचानक किसी ने आवाज लगाई।

"मुर्दाबाद।" भीड़ दुहरा उठी।

"लाठी गोली की सरकार।"

"नहीं चलेगी! नहीं चलेगी।" भीड़ से प्रति-ध्वनि हुई।

"खद्दरशाही का!"

"नाश हो!"

"हड़ताल के शहीद।"

"ज़िन्दाबाद!

"नेता भैया!"——किसी ने खूब ज़ोर लगा कर कहा।

"हाय! हाय!" अपेक्षाकृत कुछ कम कण्ठों से आवाज उठी।

कार की 'घूर्रघूँ' भीड़ में डूब गयी थी। अचानक देशबन्धुजी ने झटके से दरवाज़ा खोला और बाहर निकल आये। उनके मुख पर दृढ़-निश्चय था। पिछला दैन्य ग़ायब हो चुका था। उन्होंने दोनों हाथ ऊपर उठाकर अत्यन्त ही सधे स्वरमें निरुद्विग्न-भाव से कहा—"भाइयो, अगर आप सचमुच यही समझते हैं कि इस मामले में मेरा हाथ है, और मेरा अपराध है, तो मैं सामने खड़ा हूँ, आप जो चाहें दण्ड दीजिये। मैं चूं नहीं करूंगा। लेकिन आप विश्वास कीजिये, इस घटना का मुझे कितना दुख है, मैं ही जानता हूँ। मैं यहां अकेला आया हूँ—सिर्फ़ इसीलिये कि आप लोग किसी ग़लतफहमी में न पड़ जाँय। मैं पुलिस और गारद लेकर भी आ सकता था—कम से कम पाँच अपने आदमी अपनी सुरक्षा के लिये ला ही सकता था। लेकिन मैं क़सम खाता हूँ इस घटना का मुझे कोई ज्ञान नहीं है। मेरा इसमें

कोई हाथ नहीं है। मै भरसक इस कोशिश में हूँ कि मामला जल्दी और शान्ति-पूर्वक ही निपट जाय। मैं विश्वास दिलाता हूँ ; सत्य मेरा लड़का सही ; लेकिन मैं आज जो कुछ हूँ वह सत्य की बदौलत नहीं, आपके विश्वास की बदौलत हूँ। और इस विश्वास के लिये मैंने कभी किसी की चिन्ता नहीं की। आज भी अगर मेरे लड़के और आपके विश्वास का सवाल हो तो आप मानिये, मैं आपके साथ हूँ। कल मैं दौरे में बेहोश था—आज जब मुझे सुबह पता चला तो मैं अपने आप को रोक नहीं सका। मुझे एक अवसर दीजिये कि आप की बात को, आप के हित में तय करा सकूं। आप अपना नुमायन्दा भेजिये कि मैनेजिंग-कमेटी की बैठक में अपनी बात को रख सके, और उस वक़्त मैं आपकी बात के लिये जान न अड़ा दूं तो आप मुझे गोली से उड़ा दीजिये ! यों अब भी मैं खड़ा हूँ, आप तो चाहें सो कीजिये !" और उन्होंने खद्दर की जाकिट की जेब से तह किया हुआ रूमाल निकाल कर चश्मा माथे पर सरकाकर अपनी आंखें पोंछीं। फिर धीरे-से झुककर कार में आ बैठे !

लोग चुपथे। जैसे निर्णय नही कर पाये हों कि इस बात पर विश्वास किया जाय या नहीं। और जब अविश्वास की एक निश्चयात्मक-भावना उनके मुख पर आई तब धुएँ की पतली-सी लकीर, और अगणित कदमों से मिटते हुए चिन्हों को कुचलती, मुलायम भीगी धरती पर टायरों की जालीदार छाप छोड़ती हुई कार चौराहे से मुड़ रही थी। आसमानी बॉडी के पिछले मडगार्ड के दोनों ओर लाल चौकोर बत्तियों के शीशे हॉर्न बजने के साथ ही चमक उठते थे। मजदूरों ने एकसाथ हल्ला किया —"भागा!"

देशबन्धुजी ने पीछे अपने शरीर को डालकर चश्मा उतार लिया और रूमाल खोलकर कसकर अपने मुँह पर फेर कर एक बड़ी थकी गहरी साँस छोड़ी। शरद उत्सुकता से आशा कर रहा था कि वे कुछ न कुछ कहेंगे—मगर वे वैसे ही निढाल पड़े रहे। वह मानसिक रूप से इस समय इनके विरोध में था ; लेकिन उसने उनकी चमकदार चाँद—गैहुँएँ चेहरे से लेकर घुटनों तक बड़ी प्रशंसा-पूर्ण दृष्टि से देखा—परिस्थिति को सँभालेने की इस व्यक्ति में अजीब क्षमता है ! वर्ना अभी कार के सारे शीशे टूट गये होते और दोनों कहीं अस्पताल में पड़े होते। उसकी आँखों के सामने वह तीनों लाशें घूम गयीं और जैसे उसका दिल कहीं धसक उठा। वह समझ नहीं पा रहा था कि ऐसे समय उसका क्या कर्तव्य है—और इस बीचमें वह जैसा निर्लिप्त या तटस्थ रहा है, यह अच्छा हुआ या बुरा। देशबन्धुजी ने उसके विषय में क्या सोचा। लेकिन देशबन्धुजी के वाणी का प्रभाव और प्रत्युत्पन्न-मति को वह मान गया। स्नायुओं पर अस्वाभाविक उत्तेजना के पश्चात् एक मौन था—एक स्तब्धता थी जो दौड़ती कार में छाई थी। उसके दिमाग़ में 'जूलियस-सीज़र' का वह दृश्य नाच रहा था जब 'सीज़र' को छुरा मारकर 'ब्रूटस' बाहर जनता के

सामने आता है ; या जिस समय मार्क एण्टोनी अपने भाषण से रोमन जनता को प्रभावित करता है ! उसके दिमाग़ में लगातार गूँज रहा था—गिरती शक्ति का वकील 'एण्टोनी' फिर जीत गया !

"सीधे ?" ड्राइवर ने मुड़कर पूछा।

"हूँ।" देशबन्धुजी ने कहा। वे उसी तरह खोये रहे। चश्मा उन्होंने लगा लिया था और एकटक छत को ताक रहे थे। उनकी आँखें भर आई थीं—शरद ने देख लिया और चुप रहा। आंखें उसी तरह डबडबाई रहीं। फिर गला साफ़ करके थूकने के लिये वे सीधे बैठकर खिड़की की ओर झुक गये —झुके रहे !

सामने चूड़ीदार पाजामा और अचकन तथा सादा कमीज़ और पाजामा पहने दो छायायें दिखायी दीं—ड्राइवर ने हॉर्न दिया, तो दोनों व्यक्ति जैसे चौंक कर एक ओर उछले। उन्होंने मुड़कर कार की ओर उसी दृष्टि से देखा जिससे हर पैदल चलनेवाला ऐसे अवसर पर देखता है। देशबन्धुजी से निगाहें मिलीं—और अचकन वाले सज्जन ने एक ज़ोरदार नमस्कार फेंका। उनकी मुखमुद्रा एकदम बदल गयी। देशबन्धुजी ने फ़ौरन कहा—"रोकना।"

ब्रेक की रगड़ के साथ गाड़ी ज़रा आगे जाकर रुक गयी। अचकनवाले सज्जन अपने साथी को छोड़कर एकदम कार की ओर भागे। जब बग़ल में आ गये तो देशबन्धुजी ने ज़बर्दस्ती मुखपर मुस्कुराहट लाकर कहा—"कहिये चम्पकजी, आज तो आप सखमुच दूल्हा बने हुए जा रहे हैं—किधर ?"

शरद फिर चौंका। वह इस आदमी को देख-देखकर वह आश्चर्य करता था कि कैसे यह एक दम बदल लेता है अपने आपको ? कम्बख़्त ग़ज़ब का ऐक्टर है ! कहीं यह बात अपने साथ हो जाती—इससे छोटी-भी बात होती तो तीन दिन 'मूड' खराब रहता। इस पर कोई असर नहीं। जैसे वह एक चिकना पत्थर है, जिस पर इस तरह की घटनाओं की धार बहती जाती है और कोई असर ही नहीं पड़ता। उसकी आँखों के आगे तो एक-एक सेकेण्ड के बाद, जब उन लाशों का चित्र आता है, तो ऐसी अदमनीय फुरहरी उठती है कि सारा शरीर रोमांचित हो जाता है। मज़दूरों की आँखों में कैसा जड़भाव था ! मुख पर कैसे भाव आ-जा रहे थे ; जैसे युग-युग से तपते पत्थर पर पानी की बूंदें पड़ें और छनछनाकर उड़ जायें। उस बात की कल्पना करके डर लगता है। पता नहीं वे लोग क्या कर रहे होंगे अब ! देशबन्धुजी और उन चम्पकजी की बातों में उसे कोई रुचि नहीं थी—वह स्वयं बड़ा उदास और अन्य मनस्क-सा एक ओर निस्पन्द और चुपचाप बैठा रहा। उसका सिर भन्ना रहा था, भूख तो लग ही रही थी, पता नहीं यही कारण हो। चाय भी नहीं पी थी। अब पता नहीं कब नसीब हो। उसके दिमाग़ में स्ट्रेचर—मज़दूरों के सिर और झटके से कपड़े हटाते उस व्यक्ति की मुद्राएँ घूमती रहीं। कभी-कभी देशबन्धुजी की बात-चीत

सुनाई दे जाती थी। हवा में हल्की फुहार फैल रही थी, और सफ़ेद एक-रस छाये बादलों पर काले बादल धुएँ की तरह हवा में भागे जा रहे थे।

"कुछ नहीं जी, यों ही···।" इतने बड़े नेता उनके लिये कार रुकवा कर उनसे यों बातें कर रहे हैं, इस कृतज्ञता से गद्‌गद् 'हिः-हिः' की आवाज़ गले से निकालते हुए उन्होंने अचकन की गले की पट्टी को दो उँगलियों से ठीक किया और नम्र-स्वर में बोले—"आपके पास भी तो निमन्त्रण गया था—हाँ, आप तो उद्‌घाटन ही करनेवाले थे न ? वह भारतीय-हायर-सैकेण्डरी स्कूल की रजत-जयन्ती का कवि-सम्मेलन हो रहा है, उसे 'प्रिसाइड' करना है, बस, उसी के लिये स्टेशन जा रहा था···।" भावावेग के कारण वे अपनी बात ठीक से नहीं कह पा रहे थे। शरद को बड़ी घृणा हुई—आख़िर ऐसा भी क्या 'नर्वसनैस'।

"अच्छा···वह दलपतपुर का ? चलो तो, उधर तो हम भी चल रहे हैं,रास्ते में उतार देंगे—कुछ देर का सत्संग हो जायेगा।" पीछे कमीज़, पाजामा पहने उनका साथी भी तब तक पास आ गया था। हल्के-से हँसकर देशबन्धुजी बोले—"कॉमरेड बीरबल, तो हमसे बहुत नाराज़ हैं। भाई जब फांसी लगवाओ तो लगवा देना—यों एकदम दर्शनों तक को तो मत तरसाओ।"

कॉमरेड बीरबल ने दो दिन की बढ़ी दाढ़ीवाले केवल बाएँ गाल और बाएँ सिरे के होठों से ही मुस्कुराते हुए कहा—"आप लोग बहुत बड़े आदमी हैं, यहाँ पैदल चलने को जूते भी नसीब नहीं होते, हमारा आपका साथ क्या ?"

इस तीखी बात को पीकर देशबन्धु जो ज़ोर से गला फाड़कर हँस पड़े और उनके दोनों हाथ, अपने हाथ में लेकर बोले—"मन में तो कहते होगे; दो-चार दिन चला लो चमड़े का सिक्का।"

चम्पकजी कभी कॉमरेड की ओर देखते और कभी देशबन्धुजी को। शरद को उनके चेहरे से लगा जैसे उन्हें यह बात अधिक अच्छी नहीं लग रही कि उन्हें उचित महत्व नहीं मिल रहा। सहसा इस स्थिति को एकदम समाप्त करते हुए वे बोले,—"अच्छा बीरबल भाई, हमलोग उस विषय पर फिर कभी और बात करेंगे, घर पर ही मिलना—या हमारी तरफ़ आ जाना।" और बिना अधिक बात-चीतका अवसर दिये वे हैंण्डिल घुमाकर दरवाज़ा खोलते अचकन सँभालते भीतर आगये।

देशबन्धुजी ने बीरबल के हाथ छोड़ दिये और उन्हें जगह देने के लिये वे शरद से सटकर बैठ गये—शरद और सरक गया। बीरबल के चेहरे पर एकदम कठोर भाव आया। उसे लक्ष्य करके देशबन्धुजी बोले—"भई चम्पकजी, यह तो तुम्हारी ग़लत बात है। बेचारे कॉमरेड को न जाने कहाँ से घसीटे ला रहे हो और यहाँ लावारिस की तरह छोड़ कर चलते बने।"

कॉमरेड के मन की बात किसी ने कह दी। चेहरे की कठोरता ग़ायब हो गई। फिर भी व्यंग्य से मुस्कुराकर बोले—"अजी, यह कोई इनकी नयी आदत

है ? इनके साथ तो यह सोचकर चलना ही चाहिये कि जब कोई अधिक महत्व-पूर्ण आदमी मिल जायेगा तो आपको चाहे जहाँ से घसीटे ला रहे हों—लावारिस की तरह छोड़ कर उसके साथ लग लेंगे।"

"मुझे काहे को महत्वपूर्ण आदमी बनाते हो भाई ?" नेता-भैया ने शिकायत की—"तुम भी उधर चल रहे हो तो तुम भी आ जाओ।"

"उधर क्या, दलपतपुर तो मैं जा हीं रहा था—मेरा गाँव है। इन्हें वहाँ करना है 'प्रिसाइड' ; सो रास्ते में मिल गये। न जाने कहाँ-कहाँ तो शहर भर में घुमाते फिरे, इधर मेरी शिष्या है, उधर मेरा शिष्य है, सो सुबह से इनका साथ हुआ था। सुबह से साथ घसीटा और यह भी तो नहीं कि मेरे यार ने एक कप चाय पिलाई हो, बोले स्टेशन पर पिलायेंगे। सो अब यों छोड़कर चल दिये।" स्टार्ट होती हुई कार का अगला दरवाज़ा खोल कर कॉमरेड ड्राइवर के बगल वाली सीट पर आ जमे।

"अच्छा, छोड़ो भाई, इस बार इन्हें और माफ़ कर दो।" इस विचित्र और लज्जाजनक स्थिति से चम्पकजी को बचाने के लिये देशबन्धुजी फ़ौरन बोले—"तुम्हारा अपने इन नये मित्र से परिचय करायें—देखिये, यह शरद कुमार हैं, बहुत ही इण्टैलिजैण्ट आदमी हैं। हमें काम में मदद देंगे...।"

"यानी प्रोपेगण्डा इन्चार्ज ?" कॉमरेड बोले।

"तुम यार कॉमरेड, दूसरे को सदैव ग़लत समझोगे।" इतनी देर से चुप बैठे चम्पकजी ने कॉमरेड के बात को काटा और अत्यन्त ही शिष्टता से हाथ जोड़कर उन्हें देशबन्धुजी के पार बढ़ा कर शरद ने प्रत्युत्तर में जोड़े हुए हाथों को अपने दोनों हाथों में लेते हुए बोले—"आपके दर्शन करके अत्यधिक प्रसन्नता हुई, मुझे 'चम्पक' कहते हैं और यों ही ज़रा गुनगुनाने का शौक है।"

"नहीं शरद बाबू, मैं देता हूँ, इनका परिचय।" उन दोनों के हाथ पर हाथ रखते हुए देशबन्धुजी ने कहा—"यह हिन्दी की नयी-पीढ़ी के सबसे सजग कवि हैं—हमारे इस छोटे से प्रान्त के गौरव। आपको शायद देखने का मौक़ा मिला हो, मैंने इनके नये संग्रह पर 'बिगुल' में पाँच सम्पादकीय लिखे थे—बड़ी दम है भाई, इनके शब्दों में—आग फूँक देते हैं, आग !"

चम्पकजी अत्यन्त ही कृतज्ञता से रोमांचित कभी नम आँखों से नेता भैया की ओर देखते, और इसकी क्या प्रतिक्रिया हो रही है इसे देखने के लिये कभी शरद की ओर ! मुँह उनका खुला का खुला रह गया। देशबन्धुजी को अपनी बात कह लेने का पूरा अवसर देकर घिघियाते-से बोले—"शरदभैया, नेताभैया तो मेरे ऊपर इतना अधिक स्नेह है, और शुरू से ही इनकी ऐसी कृपा रही है कि मेरे विषय में कहने में आप सन्तुलन नहीं रख पाते हैं। मैं तो भैया, सरस्वती का एक तुच्छ उपासेवक हूँ—और क़लम घिसकर पेट भरता हूँ।"

"अपनी एक क्वालिफ़िकेशन आप भूले जा रहे हैं।" कॉमरेड जो बारी-बारी से अत्यंत व्यंग्यात्मक-दृष्टि से देख रहा था, बोला—"आप हर कवि-मम्मेलन के स्वयंभू सभापति हैं।"

"कॉमरेड, तुम तो आज बहुत काट रहे हो बेचारे कविजी को, क्या सचमुच बहुत नाराज़ हो ?" नेता भैया ने तरफ़दारी ली।

"काट नहीं रहा नेता भैया, हमारा-इनका यही रिश्ता है। झूठ कह रहा होऊँ तो पूछ लीजिये। क्यों सा'ब झूठ बोल रहा हूँ ?" कॉमरेड अगली सीट पर पीछे मुड़े, सीट की पीठ पर कुहनी और उस पर ठोढ़ी रखे बातोंमें हिस्सा ले रहे थे।

"स्टेलिन ने तो लैंग्वेज के नये थीसिस में इस तरह के किसी रिश्ते की बात लिखी नहीं है।" चम्पकजी हर बात को कहने से पहले एकबार शरद को और एक बार नेता भैया को देख लेते थे—उन्हें कॉमरेड के समय-असमय किये जानेवाले रिमार्क काफ़ी बुरे लग रहे थे ; क्योंकि वह उनके पहली बार के परिचय के प्रभाव को उतना गम्भीर नहीं बनने दे रहा था, जितना वे चाहते थे। इसीलिये उन्होंने जवाब में तीखा-व्यंग्य किया।

कॉमरेड ने बिना जरा भी अप्रतिभ हुए कहा—"लेकिन चम्पकजी, लैंग्वेजका नया थीसिस तो अभी सिर्फ़ अँग्रेजी में आया है, आपने कहाँ से पढ़ लिया ?" कॉमरेड मुस्कुराता रहा।

चम्पकजी तड़प कर रह गये—"आप क्या अपनी तरह मुझे भी बे-पढ़ा समझते हैं ?"

शरद ने थोड़ी देर तो दोनों की चों-चों का आनन्द लिया। अब जब देखा मज़ाक-मज़ाक नहीं रह गया है तो बोला—"आप दोनों की प्रेम-वार्ता में परिचय तो अधूरा ही रह गया।"

"परिचय में क्या है, मेरा नाम वीरबल है, कम्यूनिस्ट-पार्टी का एक छोटा-सा वर्कर हूँ। मज़ाक की बात नहीं, असली परिचय तो चम्पकजी का ही चाहिये था, —ये हमारे नगर के गौरव हैं।" कॉमरेड बोला।

"नहीं साहब, इसमें तो शक नहीं है।" देशबन्धुजी ने गम्भीरता से ताईद की।

"नहीं नेता-भैया। क्यों बना रहे हो सब लोग मिलकर ? किसका मुंह देखकर चला था आज ?" चम्पकजी बोले।

"इसी डर से तो आप शीशा देखकर चले थे।" कामरेड ने एक तरफ़ के मुँह से मुस्कुराकर कहा।

देशबन्धुजी ने मज़ाक पर ध्यान न देकर कहा—"और कहिये चम्पकजी, कैसी चल रही है आपकी साहित्य-गोष्ठियाँ ? कोई नई कविता नहीं दिखाई दी ! उधर कुछ कम कर दिया है क्या ?"

"नहीं जी, बात यह है कि आजकल एक खण्ड-काव्य लिखने में लग गया

हूँ। एक प्रकाशक से तय भी हो गया है—वह शायद किसी कोर्स में लगवायेगा। आजकल ज़रा मुसीबत में हूँ न।" कुछ गम्भीर-स्वर में चम्पकजी बोले।

"आप ऐसी दिल तोड़ने वाली बातें क्यों करते हैं चम्पकजी ? आखिर हम किस वक्त काम आयेंगे ? 'बिगुल' आपका है—उसमें तो आप लिखते ही नहीं हैं। रचनाओं पर वहां तो अच्छे पारिश्रमिक की भी व्यवस्था है, वैसे भी हम कह देंगे सूरजजी से।" स्नेह से उन्होंने कहा—फिर शरद की ओर मुड़ कर बोले—"शरद बाबू, चम्पकजी की एक बात का मैं बहुत क़ायल हूँ और शुरू से ही मेरे दिल में इस बात के लिये बड़ी इज्जत है। वास्तव में यह आदमी शंकर है। कितनी मुसीबतों और कष्टों में इसने अपनी जिन्दगी शुरू की है कि कोई सोच नहीं सकता; लेकिन यह डिगा नहीं। आप सोच सकते हैं कि घर-घर जाकर कपड़ों और अन्न के बदले में चीनी-मिट्टी और कांच के बर्तन बेचने वाला किसी दिन देश का गौरव बन जायेगा ? इस तरह इसने पढ़ाई जारी रखी, कविता करता रहा, और आज आप देख ही रहे हैं। लगभग शंकर की तरह संघर्षों के विष को पचा-कर आनन्द की वर्षा करना, गंगा-सी निर्मल धार से धरती को जीवित और शीतल करना हरेक के बस का नहीं है। भाई, सघर्षों में रहकर संघर्षों की बात करना, सुख में रह कर सुख की बात करना—कोई खास प्रतिभा और महत्व का काम नही है—महत्व का काम है संघर्षों में रहकर, नित्य-सत्य को अपनी वाणी में गाना। जो युद्ध में रहकर शान्ति के गीत गा सकता है, जो सुख में रहकर दुखियों की बात कह सकता है, वास्तव में महान् तो वह है। कीचड में रहकर कीचड़ बने तो क्या हुआ ?—कीचड़ में रहकर कमल बनो।"

शरद ने ध्यान दिया : देशबन्धुजी चाहे भाषण देते हों या साधारण बात-चीत करते हों, उनकी वाणी में एक ऐसा आत्मविश्वास, एक ऐसा घनत्व और भारी-पन है जैसे यह बात केवल उनकी अपनी है; उसे केवल वही कह सकते है, और यह सत्य उनकी आंखों के आगे बहुत स्पष्ट है। यह सारी बात उन्होंने इतनी आसानी और स्वाभाविकता से कह दी जैसे इसमें ज़रा भी कोई असाधारण बात नहीं है। जितनी देर वे बोलते रहे, चम्पकजी फटी आंखों से मुंह फाड़े उनके होठों का चलना देखते रहे थे। हर बार मुड़कर या कनखियों से देखते कि कम्बख्त कॉम-रेड के आग लग लग रही होगी। साला मुस्कुरा रहा है, कुछ-न-कुछ कहेगा ज़रूर; वे इतने गदगद् हो गये थे कि उनका गला रुँध गया। उन्हें शायद थोड़ा आश्वासन मिला कि कॉमरेड अत्यन्त उपेक्षा से सीधा बैठ गया था और सामने देख-ने लगा था—शायद मुस्कुराता हुआ। उन्होंने विह्वल होकर देशबन्धुजी की पिण्ड-लियाँ छूलीं। भरे गले से बोले, "शरद भाई, सब नेताभैया का प्रताप है। इन्होंने मुझे शुरू से ही प्रोत्साहन और प्रेरणा दी है; वर्ना मेरी क्या हिम्मत है ? इनका बल न होता तो अभी तक कहीं कांच और चीनी के बर्तन ही बेचता।" उन्हों-

ने फिर कॉमरेड को देखा।

नेताभैया ने उनके हाथ पकड़ लिये और नीचे झुकने से रोकते हुए कहा —"जिसमें अपना कुछ नहीं होता, उसे दुनियाँ में कोई नहीं बना सकता। सच पूछा जाय तो यह अपने आप ही बने हैं। इतनी साधना और तपस्या कम 'क्रैडिट' की बात नहीं है। इनकी कविताओं में जो एक शाश्वत-सत्य की खोज, और उसे प्राप्त करने की आकुलता है, और जिस आध्यात्मिक-क्रान्ति की मूल-चेतना है, वह उन्हें अमर बना देगी ; क्योंकि वह भारतीय-संस्कृति की असली चीज़ है। आप सोच सकते हैं, यह चीज़ें उसने लिखी हैं जिसे पता नहीं कि सन्ध्या को खायेगा क्या ? घर में एक दाना नाज का नहीं ; लेकिन पठ्ठा मस्त है और लिख रहा है—क्या मजाल जो ज़रा भी तलखी आ जाय ? यह हमारे ऋषियों की परम्परा है, यह एकनिष्ठ-एकाग्रता आज मिलती कहां है ?" फिर ज़रा मुस्कुराकर बोले—"वैसे, बीच में एक दफा यह बहक भी गये थे, इन कॉमरेड लोगों के चक्कर में आकर कुछ इधर-उधर की बाते लिखने लग थे—"

चम्पकजी इस तरह विस्फारित मुद्रा से देख रहे थे जैसे देशबन्धुजी की बाते किसी अज्ञात रहस्यमय लोक के पर्तपर पर्त खोलती चली जा रही हों, जिसे उन्होंने पहले कभी नहीं देखा हो, और अब विश्वास नहीं कर पा रहे हों कि क्या सचमुच यह सब उन्हींके विषय में कहा जा रहा है ? अन्तिम बात से उन्होंने अपराधी की तरह झेंपी मुस्कुराहट से नीचे देखते हुए इस तरह का भाव दिखाया जैसे वे कुछ कहना चाहते हैं, लेकिन कह नहीं पा रहे हैं। सिर्फ अपने दोनों पंजे फैलाकर एक पंजे की उँगलियों के सिरे को दूसरे पंजे की उँगलियों के सिरे से छुलाते उन्हें ग़ौर से देखते रहे।

कॉमरेड एक दम मुड़ा और शरद के मन की बात बोला—"और नेताभैया गोर्की के बारे में आपका क्या मत है ? वह भी तो चिथड़े बीनता था। डिकेन्स प्लेट धोता था।"

नेताभैया जानते थे कि अपनी जाति का ज़िक्र आने पर कॉमरेड चुप नहीं रह सकेगा। वे उसे समझाते हुए बोले—"भाई, गोर्की बहुत बड़ा लेखक हो सकता है, कौन मना कर सकता है उसके बड़प्पन को ?—लेकिन हर बात में यह रूस की तरफ़ दौड़ने की आदत ही, मैं सच कहता हूँ, तुम्हे ले डूबेगी। हर देश की संस्कृति अलग होती है, कुछ उसका भी तो ध्यान रखना चाहिये। दुनियाँ का हर आदमी जानता है कि सब प्रतिभावान नहीं हो सकते। धन हरेक के पास आ सकता है ; लेकिन प्रतिभा हरेक के पास नहीं होती, और चम्पकजी जैसी प्रतिभा मैं तो समझता हूँ, मामूली बात नहीं है। अब यदि ये इस अमूल्य चीज़ को किसी महत्वपूर्ण दिशा में न लगाकर इधर-उधर भटकाते हैं—तो मैं समझता हूँ, ग़लती करते हैं। इन्होंने आखिर ग़लती मानी भी। आज जो चम्पकजी लिखते हैं उसमें गहराई है, उफान

नहीं। और कॉमरेड, मानो या न मानो उफान में टिकाऊपन नहीं होता। आप कैसे कह सकते हैं गोर्की यदि अपनी प्रतिभा को शाश्वत-तत्वों की खोज में लगाता तो दुनियाँ को क्या दे जाता ?"

रस-विभोर और गद्‌गद् स्थिति में होते हुए भी चम्पकजी को लगा कि अब उनकी प्रशंसा बहुत ज्यादा हो गई है। नम्रता से बोले—"नेता भैया, कहाँ गोर्की और भारतीय-साधकोंकी तपस्या; और कहाँ मैं ? मैं तो एक तुच्छ—मैं तो उनके चरण छूने लायक़ भी नहीं हूँ।" वे हकला रहे थे। बोले—"आपकी कृपा रही तो कुछ बन जरूर जाऊँगा।" अपनी इस नम्रता की प्रतिक्रिया जानने के लिये उन्होंने चारों ओर देखा, कॉमरेड की ओर निगाह फेंकी। फिर जैसे अचानक कोई नयी बात याद आ गई हो, इस तरह चौंककर, विषय-परिवर्तन करने की इच्छा का भाव दिखाते हुए बोले—"हाँ, नेता भैया, एक सूचना मैंने आपको दी या नहीं ? मैं यही सोच रहा था कि जब भी मिलें तो सूचना तो कम से कम दे ही दी जाय। हमारी साहित्य-गोष्ठी में एक प्रपोज़ल आया है—पाँच-आदमियों की एक कमेटी बन गयी है। मैंने लाख मना किया कि मुझे मत फाँसो; लेकिन कम्बख्तों ने न-न करते हुए भी मुझे ही संयोजक बना दिया है।"

उत्सुकता से शरद और कॉमरेड, और देशबन्धुजी सब चम्पकजी के सुन्दर चेहरे को देखने लगे। गोरा रंग, भरा मुँह, भव्य-व्यक्तित्व, ढङ्ग से पीछे काढे हुए बाल, शेरवानी के ऊपर के तीन बटन खुले थे—सफ़ेद डोरी लगी हुई गले की काली पट्टी खूब खिल रही थी। भीतर सिल्क का कुर्त्ता और उसमें लगे हाथी-दाँत के बटन चमक रहे थे। उन्होंने सबकी उत्सुकता का आनन्द लिया और बोले—"आपको किसी अवसर पर अभिनन्दन-ग्रन्थ देना चाहते हैं।"

उनकी बात पूरी होने से पहले ही देशबन्धुजी पूरा गला फाड़कर जोरसे हँस पड़े—और यों ही हँसते रहे। हँसते हुए ही उन्होंने चम्पकजी के दोनो कन्धे पकड़ लिये। बड़ी कठिनाई से हँसी रोक कर बोले—"भैया मेरे, कहो तो मैं हाथ जोड़ लूं—पैर पकड़ लूं तुम्हारे, मुझे ज़िन्दा रहने दो दुनियाँ में—या कहो तो यों हो संन्यास ले लूं। यहाँ ज़िन्दगी मुहाल हुई जा रही है, और आपको 'अभिनन्दन-ग्रन्थ' देने की सूझ रही है। देखा कॉमरेड, किस तरह यह लोग आदमी को चढ़ाते हैं ? भैया चम्पकजी, यों खपच्चियाँ लगा-लगाकर मुझे रावण मत बनाओ, कोई यों ही 'भक्' से जला देगा। और मेरी मानो तो इन बेकार की बातों में वक्त बरबाद करने में कुछ नहीं रखा है। अपना काम देखो, तुम ठहरे मेहनत-मज़दूरी करनेवाले आदमी, इस चक्कर में पड़ोगे तो कैसे होगा ?....."

शरद की सारी उत्सुकता मर गई। उनकी हँसी उसके कानों में घण्टे की तरह बज उठी। कौन कहता है, यह वही आदमी बोल रहा है जो अभी तीन निरीह मजदूरों की लाश देख कर आ रहा है; जिनकी मृत्यु का कारण स्वयं उसे ठहराया जा

रहा है। मुश्किल से पन्द्रह-बीस मिनट पहले की बात है। यह आदमी सचमुच कितना बड़ा ऐक्टर हो सकता था—और कौन जानता है, अब वह ऐक्टर नहीं है ?

बड़े अन्दाज़ और बड़प्पन से चम्पकजी बोले—"नेता भैया, यह बात हमारे समझने और समझाने की है, आपका हस्तक्षेप इसमें शायद किसी को पसन्द आये। यह तो मेरी ग़लती है कि आपको बता दिया।"

"कॉमरेड, देख रहे हो ? हमें बोलने का अधिकार नही है ? अच्छा भाई, जैसी तुम्हारी मर्जी।" और अत्यन्त अफ़सोस की मुद्रा बनाकर लाचारी दिखाते, वे चुप हो गए, फिर सहसा बोले—"हाँ भाई, आज तुम हमारा हस्तक्षेप कैसे सहन करोगे ? आज तुम सभापति के रौब में हो न, झूठ नहीं कहता, चेहरे से रौब बरस रहा है।" और कुटिलता से मुस्कुराकर अत्यन्त आदर से हाथ जोडकर बोले—"तो हे सभापति जी !—आप कल हमारे यहाँ पार्टी में पधार रहे हैं न ?"

"पार्टी ? कैसी पार्टी ?" चम्पकजी चौंके –"सच, नेता भैया, मुझे कुछ नही मालूम।"

"भाई, कल मिनिस्टर साहब अपने यहाँ आ रहे हैं न। अपने बहुत पुराने दोस्त हैं—हमने कहा इस बहाने मिल भी लेंगे सब लोग एक दूसरे से, कुछ सत्संग हो जायगा आप लोगो से. वर्ना इस व्यस्त-जीवन में कहाँ मिल पाते हैं ? और साफ़ कहे देता हूँ, कल आपको वहाँ कविता सुनानी है। पुरानी नहीं, नयी से नयी, वर्ना समझ लो दरवाज़े पर ही रोक लूंगा, भीतर नहीं जाने दूँगा। यह नही कि कोई घिसी-पीटी ले आये पुरानी-सी। आज रात को ही नयी तैयार कीजिये। और कॉमरेड तुम भी आ जाना घूमते-घामते···।"

'मैं ?" कॉमरेड चौंका, वह अचानक कुछ सोचने लगा था। बोला—"मेरा क्या काम है नेता भैया ?—आप लोग कलाकार-साहित्यकार और बड़े लोग मिलेंगे, हमलोग फटीचर, जमीन-छाप आदमी, सभा-सोसाइटियों के तौर-तरीके भी तो नही मालूम।" वह बांई ओर के होठों से मुस्कुरा रहा था।

"क्या बात है, एकदम सुस्त कैसे पड़ गये कॉमरेड ? मेरी बात बुरी लग गयी क्या ?—भाई, मज़ाक में तो सब चलता ही है।" चम्पकजी देशबन्धुजी की बातों से बड़े सन्तुष्ट, गद्‌गद् और तृप्त थे।

"तुम्हारा यह सम्मान देखकर कुढ़ रहा हूँ।" कॉमरेड बोला। शरद को लगा, चम्पकजी के हृदय में कॉमरेड की सुस्ती को लेकर कहीं यह बात जरूरत थी।

"भई, एक बात माननी पड़ती है कॉमरेड, इसे चाहे तुम अपनी तारीफ़ समझना या जो भी कुछ—कम्यूनिस्टों की हर बात से मै असहमत हूँ; लेकिन एक चीज़ है जिसके सामन माथा झुकाता हूँ।" देशबन्धुजी ने प्रसन्न-भाव से अब कॉमरेड की ओर मुखातिब होकर कहा—"वर्षा हो, धूप हो, लू हो, रात हो, दिन हो—हर कॉमरेड धुनी आदमी होता है ; एक 'कप' चाय पिला लो और रात-दिन काम करा

लो ; न बालों में तेल है, न हजामत बनी है, कपड़े फटे हैं तो भी कोई चिन्ता की बात नहीं है। ऐसी लगन से तो भगवान का भी सिंहासन हिल उठता है।"

"लेकिन मैंने तो यह देखा है नेता भैया, बैल की तरह काम करो, फिर भी कुछ मिलता-मिलाता नहीं है। भीतर से सबमें पोल है। क्यों शरद भाई—आपका इस सम्बन्ध में क्या बिचार है ?" शरद का समर्थन लेने के लिये चम्पकजी बोले। असल में शरद की सुस्ती और अकेला-सा बैठा रहना रह-रह कर सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर ही रहा था।

किसी में पोल है या नहीं, तुम्हें इससे क्या है, तुम अपने मतलब की बात करो—शरद ने मन-ही-मन कहा। एक दूसरे के मक्खन लगाओ। क्या मजा आ रहा है: एक दूसरे को अभिनन्दन-ग्रन्थ दे रहा है—दूसरा उसे शाश्वत-सत्य को खोज निकालने वाला 'कोलम्बस' बताकर दुनियाँ का सबसे बड़ा कलाकार सिद्ध कर रहा है। धन्य हो ! यहाँ भूख के मारे दम निकली जा रही है। फुहार अब और गहरी हो गयी थी, इसीलिये शरद ने खिड़की का शीशा हैण्डिल घुमाकर चढ़ाते हुए कहा—"आपका जिस रूप में परिचय नेताभैया ने दिया है, उस हालत में आपकी बात को ग़लत मानने का कोई कारण मुझे तो दिखाई नहीं देता।"

"खैर, इस तरह का परिचय देना तो नेता भैया की आदत हो गयी है; लेकिन आप देखिये, इन्हीं कॉमरेड का—घर में बीबी-बच्चे बीमार हैं—उनकी दवा-दारू का प्रबन्ध नहीं है और कॉमरेड लगे हैं मज़दूरों का संगठन करने में, जुलूस निकालने में या पैम्फ़लेट तैयार करने में। कुछ नहीं तो 'लिटरेचर' बेच रहे हैं। वही आदमी अचानक पार्टी से ऐक्सपैल कर दिया जाता है। आप बताइये, कोई आदमी किस विश्वास पर कुछ करने की हिम्मत करे ?..." चम्पकजी बोले।

"एंऽऽ, ऐक्सपैल हो गये ?" देशबन्धुजी जैसे कही बिजली गिरने से चौंके—"तुम तो भाई, सबसे मशहूर और पुराने वर्कर्स में से थे। एक बार तो तुम शायद सेक्रेटरी भी थे···"

"हाँऽऽ, सब ऐसे ही है।" टालने के लिये कॉमरेड ने कहा। इस विषय के प्रति अनिच्छा ज़ाहिर करते हुए वह बोला—"यार कोई और विषय ले लो—क्या लेकर बैठो हो ?"

"नहीं, तब भी हम लोग जानना चाहते है।" चम्पकजीने जोश में कहा—"यह गैस्टापो लोगों के गुप्त-संगठन जैसा रहस्य कब तक चलता रहेगा ? आप लोग 'जनता की पार्टी' कहते हैं तो जनता को भी तो निर्णय करने का अधिकार दीजिये।"

शरद को लगा जैसे चम्पकजी के भीतर से देशबन्धुजी की आवाज़ बोलने लगी है—उसने घृणा से उनकी ओर देखा।

कॉमरेड को घनी भौंहों के नीचे एक हल्की छाया-सी एक क्षण को आई और

वह एकदम ज़रा-सी देर को सुस्त हो गया ! देशबन्धुजी की निगाह से वह छिपा नहीं। वे बोले—"कॉमरेड, तुम कह सकते हो, हमलोग तो जनता नहीं हैं—ठीक है। मैं मानता हूँ, हम ज़रा भी जनता नहीं है। लेकिन आपकी पार्टी क्या हमें इन्हीं रवैयों से आकर्षित करेगी ? कल तक जो आदमी खून-पसीना एक कर रहा था, अत्यन्त ही महत्वपूर्ण था—वह दूध की मक्खी की तरह निकाल कर फेंक दिया जाता है।"

"लेकिन नेता भैया—यह तो और इस बात का सबूत है कि हमारे यहाँ···"

"हमारे यहाँ मत कहो—अब तो उसे कम्यूनिस्ट-पार्टी कहो—" बात काटकर चम्पकजी बोले।

कॉमरेड मुस्कुराया, जैसे इस समय चम्पकजी ने क्यों उसकी बात काटी, इसका गूढ़-अर्थ वह जानता हो, फिर उसने अपनी बात पूरी की—"खैर, कम्यूनिस्ट-पार्टी में ही सही, किसी की बपौती नहीं है, कोई डिक्टेटर बन कर जमा नहीं रह सकता।"

"यार, यह बात तो मत कहो। स्टैलिन क्या है ? दुनियाँ में सारे परिवर्तन हो जायेंगे—लेकिन वह अपनी जगह जमा ही है—यह सब क्या है ?" चम्पकजी बोले।

"रूस की तरफ़ अब आप भाग रहे हैं।" कॉमरेड हँसा।

'अच्छा, उसे छोड़िये भी, आप कह सकते हैं कि पॉलिट-ब्यूरो का निर्णय है उसमें बेचारा स्टेलिन क्या करे ? जवाहर लाल नेहरू हर बार कांग्रेस के प्रेसिडेण्ट बन जाते हैं—यहाँ तक कि प्राइम-मिनिस्टर होते हुए भी प्रेसिडेण्ट बने रहते हैं—इसको वे बेचारे क्या करे ? लेकिन मैं तो एक सीधी-सी बात पूछ रहा था—" नेता भैया बोले—"रोज आपकी पार्टी की नीति बदलती है और कल की नीति न केवल जड़-मूल से ग़लत साबित कर दी जाती है ; बल्कि जो उस नीति को चला रहे थे—या समर्थक थे उन सबका 'कोर्ट-मार्शल' होता है, और मज़ा यह कि नीति के दौरान मे कोई कुछ बोल नहीं सकता—अनुशासन की कार्यवाई की जा सकती है। अजब मज़ाक है। एक मोटी-सी बात लीजिये, कल तक देश-विदेश के सारे पूँजीपति छोटे-बड़े आपके दुश्मन थे, जब चीन की क्रान्ति हो गई तो नीति निर्धारित की गई, नहीं ; देशी पूँजी-पतियों से हमारा कोई मतभेद नहीं है—और पिछली नीति को चलाने वाले सब बेवकूफ साबित किये गये···।"

शरद को ऐसा लगा जैसे एक हिरन के पीछे दो शिकारी कुत्ते लग गये हों, कोई इधर से काटता है ; कोई उधर से। अभी तक वह अपने भूत-भविष्य इत्यादि सबको सोचकर चुप था ; दूसरे भूख और घुटन के कारण उसका मन भी नहीं लग रहा था। वह पीछे छूटते हरियाले खेतों को देख रहा था—जगह-जगह हल चल रहे थे। उसने अत्यन्त ही विनम्र-स्वर मे कहा—"लेकिन नेता भैया, इस बात को तो आप मानेंगे कि पार्टी की नीति निर्धारित करने में, या बदलने में—दूसरे देशों के उदाहरण से सीख कर ही सही, कुछ पढ़े-लिखे समझदार आदमी बहस करते हैं,

उन निर्णयों पर फिर और बहसें इन्वाइट की जाती हैं, तब एक क़दम उठाया जाता है। इस निर्णय में और उस निर्णय में क्या सचमुच आपको कोई अन्तर नहीं दिखाई देता—"शरद हिचक गया, बात उसकी ज़बान पर आते-आते रुक गयी।

शरद भी इस बात के ऊपर कुछ कहेगा इसकी देशबन्धुजी ने कल्पना नहीं की थी, वे मुड़कर बोले—"अन्तर किससे ?"

हुँह, होगा सो देखा जायेगा ; शरद ने कह ही डाला—"इस निर्णय में कि एक व्यक्ति पचासों-लाख आदमियों का जीवन, शिक्षण और भविष्य नष्ट करके यह कहकर छुट्टी पा लेता है कि वह मेरी 'हिमालय' जैसी ग़लती है। गांधीजी ने जीवन भर और क्या किया ? सिर्फ़ अन्तरात्मा के नाम पर इतने बड़े-बड़े क़दम उठा लेना और हर ऐसे बड़े क़दम के बाद 'हिमालय जैसी भूल' कह कर आमरण-अनशन कर डालना, कहाँ तक जस्टीफाई किया जा सकता है, मेरी समझ में नहीं आता।" उसका स्वर बहुत नम्र था। शायद अपने देशबन्धुजी के साथ के दिनों में यह पहला सैद्धान्तिक-विरोध का वाक्य था। उसक हृदय धड़क उठा। वह जानता था कम्यूनिस्टों के ख़िलाफ़ जो आज देशबन्धुजी बोल रहे थे इसमें काफ़ी हाथ उस अपमान का भी है जिसे अभी वे पीकर चले आ रहे हैं।

तीनों ने ज़रा गौर से शरद को देखा। कॉमरेड का मुंह खिल उठा। चम्पकजी विस्मित हुए, उनकी दृष्टि कह रही थी : अच्छा तुम भी ! देशबन्धुजी के लिये यह बात अप्रत्याशित थी, उन्होंने माथेपर दो सलवटें लाकर शरद को ज़रा तेज़ देखा, और फिर एकदम हँसपड़े—"भाई शरद बाबू खूब ! जब मैंने तुम्हारे सार्टिफ़िकेट देखे थे तब यह विश्वास नहीं था कि सचमुच तुम इतने तेज हो। भई चम्पकजी, कॉलेज डिबेट में एक ही सब्जैक्ट पर दोनों तरफ़ से बोलकर फ़र्स्ट प्राइज़ मार चुके हैं ये। फिर एल-एल० बी० हैं। लेकिन भाई, बापू की बात छोड़ो, वे महान् थे। उन्हींकी बदौलत तो हमें यह स्वतन्त्रता मिली है—है कहीं अहिंसात्मक-क्रान्ति का ऐसा जोड़ दुनियाँ में दूसरी जगह ?"

नाराज़ी की ज़गह पर यह हँसता क्यों है ?—शरद इस बात से कुढ गया। उसे सचमुच बड़ी झुँझलाहट होती थी जब देखता कि अपनी नाराज़ी को यह दुष्ट हँसी में बदल देता है। हँसी में न सिर्फ बात उड़ जाती है ; बल्कि दूसरा आदमी व्यर्थ ही अप्रतिभ भी हो जाता है। भारत को अहिंसात्मक-क्रान्ति से स्वतंत्रता मिली और पाकिस्तान को, जिसने उसका मज़ाक उड़ाया ? इस अहिंसात्मक-क्रान्तिसे देश को स्वतन्त्रता मिली या बेड़ियों की धातु बदल गयी—इस बहसमें वह नहीं पड़ना चाहता था। उसने दबे-स्वरमें कहा—"गाँधीजी की व्यक्तिगत-साधना और सिद्धि में मुझे ज़रा भी शंका नहीं है—मैं सिर्फ़ राजनीति की बात कहता हूँ।"

"अगर यही बात है तो कम्यूनिज़्म के सैद्धन्तिक रूपसे किसे विरोध हो सकता है ?" देशबन्धुजी ने स्पष्ट ही विषय टाल दिया। शरद का बीच में

तर्क उन्हे पसन्द नहीं आया—यह मुद्रा से साफ़ ज़ाहिर था। बोले "खैर छोड़ो इस बहस को, मैं तो कॉमरेड से ऐक्सपैल होने का कारण यों ही जानना चाहता था।"

यह बात को टाल देने की दूसरी ऐसी आदत थी जिससे शरद जल उठता था। नाराज़ हो गये—? रानी रूठेगी अपना सुहाग ले लेगी, भाग तो नहीं लेगी। हो जाय नाराज़—दो रोटी ज़्यादा खा लेंगे। यहाँ तो आज करा दिया कबाड़ा; —दिन भर भूखे मरे। उसने अपना गाल कांच से टिका दिया—जिसके दूसरी ओर बूंदे सरक रही थीं। उसे याद आया—इसी तरह वह जब देशबन्धुजी से मिलने आ रहा था तो काँच के ऊपर बूँदे सरक रही थीं—उसे धीरे-धीरे उस लड़की और उस इसाई-परिवार की याद हो आई, और घूमती हुई स्मृति जया पर आकर टिक गयी।

कॉमरेड को शायद इस हल्के तनाव का आभास हुआ। इस बहस से वह ऊब भी गया था। उसने अपनी गले तक खुली केवल एक आलपीन से बटनों की जगह जुड़ी कमीज के दोनों कॉलर खड़े किये और कार की पिछली खिड़कीके काँच से छूटती पेड़ों की लाइन को ताकते हुए कहा—"पार्टी चाहती थी यहाँ 'लिटरेचर' बेचने के लिये एक सुव्यवस्थित केन्द्र हो जाय—लेकिन वह पैसा लगाने की स्थिति मे थी नहीं। एक 'सिम्पैथाइज़र' तैयार भी हो गये उसी का कुछ झगड़ा था—।"

"क्या ? उसका क्या झगड़ा था ?" देशबन्धुजी ने कुछ याद करते हुए पूछा—"हाँ इस तरह की कोई किताबों की दूकान किसी ने खोली है—ऐसा सुना था—?"

"अच्छा वो ?" चम्पकजी बात लपक कर बोले—"उसे मैं बताता हूँ, यह तो बताने में हिचकेंगे। मुझे पूरा क़िस्सा मालूम है। इनके पड़ौस में रहते हैं एक सज्जन। बेचारे कहीं नौकर हैं या कुछ करते हैं किसी के यहाँ। उनके छोटे भाई को यह कभी-कभी किताबें देने लगे। धीरे-धीरे वह 'सिम्पैथाइज़र' हो गया। वह कॉलेज में पढ़ता था। शायद कभी मौक़े-बेमौक़े रुपये-पैसे से भी उसने इनकी मदद की, क्योंकि इनकी रलवे से नौकरी छूट गयी थी दाने-दाने को मुहताज थे। अब यह उसके पीछे लगे कि हम और तुम किताबों की दूकान खोल लें, इस तरह की किताबों की कोई दूकान भी नहीं है। उसने कहा कि भाई मैं कॉलेज कैरियर खत्म कर लूं तो कुछ करूँगा।' तब इन्होंने उसे समझाया कि भाई के सिर खाने से क्या-क्या नुकसान है और इस किताबों की दूकान में उसे कुछ नहीं करना है। मँगा भर ले किताबें—यानी रुपया लगा दे और मजे से बैठा अपना बराबर का हिस्सा मारे। पढ़ाई का ज़रा भी नुसक़ान नहीं होगा। ग़रज़ यह कि उसे ऐसा फाँसा—ऐसे सब्ज़-बाग़ दिखाये कि बिना भैया को बताये भाभी को बहका-बहकू कर उसने उनके कुछ गहने-पत्ते बेचकर दो-हज़ार रुपये निकाल लिये। तय यह था कि

आठ-दस महीने में यह सब रुपया लौट जायगा और भाई साहब को पता भी नहीं लगेगा। उसने यह सब बाद में मुझे बताया था—क्यों कामरेड गलत तो नहीं कह रहा हूँ ?—झूठ कह रहा होऊँ तो टोक देना—।" चम्पकजी प्रसन्न-मुद्रा में बताये जा रहे थे।

"नहीं-नहीं तुम कहे जाओ।" कामरेड का चेहरा 'फ़क्' पड़ गया था। इस बार चम्पकजी का दांव था। उसने निरीह-सी दृष्टि मे उन्हें देखा। उसकी तेजी उड़ गयी थी।

"इधर उन्होंने पार्टी से आज्ञा ले ली इस नाम पर, कि लिटरेचर का एक सेण्टर बनवा रहे हैं। और जब किताबें आगईं—बोर्ड बन गया, दूकान ले ली गयी, अपने हिस्से में से एडवाण्स ले लिये, तब इन्होंने अपने हाथ-पाँव फैलाने शुरू किये। जानते थे कि वह खुद तो किताबें लेकर बेचेगा नहीं—उसे कॉलेज की पढ़ाई करनी है।तब इन्होंने अपनी माँगें रखीं कि मैं यह करूंगा, यह नहीं करूंगा, आपको यह करना होगा। पहले यह चौबीस-घण्टे कुत्ते की तरह उसके पीछे लगे रहते थे, अब वह बेचारा इनके घरके दस-दस चक्कर लगा रहा है और कॉमरेड बीरबल नहीं मिल रहे हैं। भीतर बैठे हैं, मना करवा रहे हैं। हमारी शर्तें मान लो और हमें इतना एडवान्स और दे दो—यह अड़े रहे। उस बेचारे ने लाख कहा कि यह सब बातें आपको पहले करनी चाहिये थीं—मैं काम ही नहीं करता। अब पूँजी तो है उतनी ही—उसमें आपका भी परिवार पले और काम भी चले, यह कैसे सम्भव है ? कुछ मध्यस्थ भी डाले गये; लेकिन कॉमरेड ने सबको यह कहकर कण्डैम् कर दिया कि आप लोग तो उसी वर्ग के हैं, उसे ही पचेंगे; क्योंकि जो भी भला आदमी निर्णय करता, वह इनके विरुद्ध जाता। नतीजा यह हुआ कि कॉमरेड सारा एडवान्स मार गये, और 'मैंने एक किताबों की दूकान चलाई है,' की क्वालिफ़िकेशन लगा कर दूसरी एक दूकान में ठाठ से नौकर हो गये। अब उस बेचारे के पास किताबें सड़ रही हैं—।"

"शाब्बास-शाब्बास ! बहुत अच्छे !" देशबन्धुजी उछल पड़े,—"वाह, कॉमरेड, मान गये तुम्हारी प्रतिभा को,तुमने कमाल कर दिया ! देखो, यह है कम्यूनिज़्म ! आपने अपने वक्त के लिये दो-ढ़ाई सौ सीधे किये—वह जाय जहन्नुम में।" देशबन्धु-जी ने कॉमरेड के उदास और अप्रतिभ चेहरे की ओर देखकर गम्भीर-स्वर में बड़े अनुरोध से कहा—"सच बताना कामरेड, इसमें और धोखे-बाज़ी में अन्तर क्या है ? इसकी सैद्धान्तिक व्याख्या क्या करते हैं आप ? साथ ही यह भी बतादें कि चीटिंग क्या है ?"

"तो मेरे यहाँ खेती तो होती नही थी—आखिर मैं जब उसका काम करता तो खाने को कहाँ से लाता ?" कॉमरेड ने बाँयें गाल की खिसियानी मुस्कुराहट से कहा।

"इस तरह का आपने उससे पहले तय किया था ? अगर आपको ऐसी ही स्थिति थी तो उससे साफ़ नौकरी तय करते—कहते, आपका काम करूँगा, इतने पैसे लूँगा। मंजूर हो तो करो···।" देशबन्धुजी ने उस अज्ञात-व्यक्ति के प्रति सहानुभूति से कहा।

"नहीं, यह कैसे हो सकता था ?" चम्पकजी ने कॉमरेड को बोलने न देकर उसकी ओर से ही कहा—"वह तो श्रम का शोषण यानी 'ऐक्सप्लॉइटेशन ऑफ़ लेबर' होता न—दूसरे जैसा उसने मुझे बताया : ऐसी स्थिति में ९९ प्रतिशत आशा थी कि वह काम ही न करता, कह देता जब पैसे होंगे तब करूँगा। फिर यह कैसे झटक पाते रुपये उससे ? अब इसमें इन्होंने दोनों साइड सेफ़ रखीं, अगर इनकी जा-बेजा शर्तों को मानकर भी वह काम करता है, तो इनका बराबर का हिस्सा है ही—नहीं करता तो 'एडवान्स' इनकी जेब में।"

"अच्छा, सिम्पैथाइज़र बना ! वह बेचारा तो मारा गया।" देशबन्धुजी चिन्तित-स्वर में बोले।

"इनकी बला से !" चम्पकजी ने बात बढ़ाई—"अब पार्टी में भी इनके कुछ ऐसे प्रतिपक्षी पहुँच गये हैं कि इसी सवाल को लेकर इन्हें ऐक्सपैल करा दिया। असल में बात यह है कि वर्ग-संस्कार उन बेचारों के भी नहीं छूटे···।"

"क्यों यार, बेकार में भिड़ा रहे हो।" आजिज़ी के स्वर में कहकर कॉमरेड ने अगली बात कहने के लिये मुँह खोला···

"कॉमरेड, मैं मानता हूँ, तुम अपनी तरफ़ से इस बात की सफ़ाई दे सकते हो। बता सकते हो कि तुमने कुछ नहीं किया, परिस्थितियाँ ही ऐसी ही थीं; लेकिन मैं एक सवाल पूछता हूँ। तुम इस काम को ज़रा भी बुरा नहीं समझते ; उलटे बड़े प्रसन्न और सन्तुष्ट हो कि एक 'पूँजीपति' से कुछ न कुछ झटक ही लिया। यही मेरा सवाल है।" देशबन्धुजी ने अकाट्य-तर्क देने की मुद्रा में चुनौती की दृष्टि से कॉमरेड को देखकर शरद को देखा—इस विरोध के बाद वह और भी निढाल होकर पड़ रहा था। वे जैसे कहना चाहते थे कि शरद बाबू, तुम बहुत समर्थक बनते हो तुम भी जवाब दो—"आपने एक बड़ी प्रसिद्ध बात सुनी होगी चम्पकजी, कहा जाता है कि दुनियाँ का हर आदमी आधा-कम्यूनिस्ट है, जहाँ तक दूसरे के धन में हिस्सा लगाने का सवाल है—हर आदमी कम्यूनिस्ट है, जहाँ अपने धनमें हिस्सेकी बात है, वह सबसे बड़ा 'कैपिटलिस्ट' है। 'गेस्टापो' मशीनरी का मूल-मन्त्र क्या था, पता है ? वह 'क्रिश्चियनियटी' से बिल्कुल उलटा था—अपने पड़ौसी, अपने परिचित, अपने मित्र और अपने अफ़सर या नीचेवाले पर शक करो—शक, सन्देह ! हर दूसरे आदमी पर सन्देह करो। हर आदमी एक दूसरे पर सन्देह करता था—यह वहाँ की रीढ़ थी। जाने या अनजाने हर कम्यूनिस्ट की रग-रग में यही बात समाई हुई है—हालांकि वे इसे मानते नहीं हैं, लेकिन व्यवहार में यह बिल्कुल साफ़ है—अपने अलावा

हर आदमी को कैपिटलिस्ट समझो ! और उससे जो कुछ झटक सको सो झटको, क्योंकि इस तरह तुम उसे 'सर्व-हारा' बनाने में मदद दोगे। मैं पूछता हूँ कॉमरेड, इसमें और एक डकैत में क्या अन्तर है ?—बस, बात सिर्फ़ इतनी है कि उसके पास यह लफ़्फ़ाजी, आल-जाल नहीं है। आप चाहते हैं क़ैद-खाना; एक जेल-खाने की तस्वीर आपके लिये आदर्श है—क्योंकि समानता की जिस ढङ्ग की बात आप सोचते हैं वह तो सिर्फ़ वहीं है। आप कुर्ता पहनते हैं, दूसरा आदमी कमीज़ पहनता है—आपके लिहाज़ से वह कैपिटलिस्ट है। आपके कमरे से उसका दो इञ्च बड़ा है, वह बुर्जुआ है। आपके कपड़ों से उसके साफ़ हैं, वह ज़रा ढङ्ग से है—आप इलज़ाम लगाते हैं, मध्यवर्गीय जहनियत का शिकार है ! सो भाई, बिल्कुल ढले-ढलाये—एक दूसरे के 'प्रोटो-टॉइप' क़ैदखाने में ज़रूर मिल जाते हैं : एक-सी ड्रेस है, एक-सी बैरक, एक-सा खाना और एक-सा काम। यह आदमी-आदमी के बीच दुश्मनी की बातें हैं या एके की ?—भाई, इतनी छूट आप नहीं रखेंगे तो आख़िर संगठन किसका करेंगे ? 'सिम्पैथाइज़र' बनने का नतीजा यह है कि आप अकेले में उसे धक्का दे दें और उसकी जेब से छीनकर भाग जाँय ? आप लोगों के दिमाग़ में यही साफ़ नहीं है कि आपका असली दुश्मन कौन-सा है ? यों आपस में एक-दूसरे को लूटने से क्या है ? इतना फ़र्क़ तो समाज में हमेशा ही बना ही रहेगा। और कोई अकल की बात भी तो हो ? एक की बीबी ज़्यादा ख़ूबसूरत है—अब यह कहाँ तक सही है कि उसे सारी पब्लिक के लिये सुलभ करने की बात की जाय ? उसका बड़ा भैया क्लर्क या छोटा-मोटा नौकर—न जाने कैसे जी-जान से पेट-काटकर किसी वक़्त के लिये उसने गहने बनवायें होंगे—उनकी उस कमाई को झटक कर आप समझ रहे हैं आपने बड़ी भारी 'क्रान्ति' करली। कुछ तो सोचो ! रुपया चाहते हो, हमसे लो, कितना चाहिये—हज़ार, दो हज़ार, तीन हज़ार—लेकिन कहो साफ़, मुझे इतना रुपया चाहिये...। यह मुझे नापसन्द है। उसके किताबों मे लगवा दिये, अब वह पड़े भाड़ में, आप अपना हिस्सा लेकर अलग हुए। हमारे यहां कांग्रेस में भी हज़ारों स्वयं-सेवक ऐसे आते हैं, कोई चन्दा खा जाता है, कुछ कर डालता है—मैं तो प्रेसिडेण्ट हूँ न, मुझे रोज़ भुगतना पड़ता है। रुपया ! रुपया हरेक की कमज़ोरी है बन्धु...। आप उसे गाली देते हुए लें, या लार टपकाते हुए—परिणाम यही चाहते हैं कि दूसरे का रुपया आपकी जेब में आजाय !" इतने लम्बे लेक्चर के बाद देश-बन्धुजी ने घृणा से मुँह बिचकाया—हुँह, देख लिया तुम्हारा कम्यूनिज़्म। कॉमरेड सीट की पीठ पर ढोड़ी रखे सिर झुकाये चुपचाप सुनता रहा अपराधी की तरह। शरदको अनुभव हुआ, यद्यपि यह विश्लेषण और बातें बहुत-कुछ ठीक हैं—यही सब बातें थी जो इसके दिमाग़में भी टकराती थीं; लेकिन यह माननेको उसका मन तैयार नहीं होता था कि यह सब कहने का अधिकार देशबन्धुजी को है। देशबंधुजीकी हर बातके पीछे एक घनीभूत-स्वार्थ, एक व्यक्तिगत-दृष्टिकोण—एक प्रतिक्रियाका प्रतिकार

है—यह वही और केवल वही समझ सक रहा था। और उसने देखा कि इतनी तेजी से उछलने वाले कॉमरेड ने यों आत्मसमर्पण कर दिया है तो उसे झुँझलाहट हुई; गुस्सा भी आया। यही तो वे लोग हैं जो कम्यूनिज़्म के नाम पर कलंक हैं। आज यह सहानुभूति रखने वालों को लूटते हैं—कल जब सारे 'सिम्पैथाइज़र्स' भाग जायेंगे तो यही दुश्मनों से मिलेंगे और अपने साथियों की पीठ में छुरा मारेंगे। मन में यह समझेंगे कि हम पूँजीपतियों से कुछ न कुछ झटक ही रहे हैं...

कुछ देर के सन्नाटे के बाद देशबन्धुजी ने कहा—"एक दूसरे स्तर पर बिल्कुल यही स्थिति हमारी मिल में चल रही है—।"

"हाँ नेता भैया, मिल में तो सुनते हैं बड़ी भारी गड़बड़ चल रही है—कल कहते हैं कि गोली भी चल गयी ! क्या हुआ ?—हम लोग तो बिल्कुल ही भूल गये।" एकदम सीधे तनकर बैठते हुए घबरा और बौखलाकर चम्पकजी बोले। विषय बदल गया था इसलिये वातावरण में एक नयी जाग्रति आ गई। कॉमरेड ने भी सिर उठाया।

और इस बार देशबन्धुजी के चेहरे की मुर्दनी लौट आई। तर्क और बहस के दौरान में उनकी आँखों में जो चमक आ गयी थी वह जैसे किसी ने 'स्विच' बन्द करके बुझा दी। अपनी चमकदार चिकनी खोपड़ी पर हाथ फ़िराते हुए वे पीछे टिक गये। एकदम उनकी आँखों के आगे पिछला दृश्य आगया। उन्होंने ऐसा भाव दिखाया जैसे उस दृश्य की कल्पना से उनका रोम-रोम काँप उठा हो। गला बैठ जाने पर जैसी आवाज़ निकलती है कुछ वैसे ही स्वर में उन्होंने कहा—"हम लोग वहीं से तो आ ही रहे हैं। ओफ़्फ़ोह, बड़ा भयानक दृश्य था, वह बेचारा परमा तो गया ही—अपने साथ पाँच को और ले गया..."

"एंऽऽ क्या मतलब ?—पाँच और मर गये ? कल रात को तो शायद दो मरे थे ?—तीन की मृत्यु क्या अभी हुई है ?" चम्पकजी अपनी जगह से उचक पड़े। फिर गहरी सांस लेकर बोले—"च्च्-च्च् नेता भैया, बड़ा बुरा हो रहा है..."

चम्पकजी की इस सहानुभूति से देशबन्धुजी अप्रत्याशित रूप से एकदम उत्तेजित होकर बैठ गये—"मैं खुद कहता हूँ, इस तरह कुत्ते की मौत मरने से क्या फ़ायदा ? यह उस क्रान्तिकारी-स्पिरिट का अपमान है। मैं इस व्यवस्था से खुश हूँ ? आयें कम्यूनिस्ट, मैं सबसे पहला आदमी हूँगा जो उनके स्वागतमें लाल-झण्डा लेकर निकलेगा ! लेकिन कोई काम योजना-बद्ध तो हो ! यह क्या, यहाँ दांव लगा तो यहाँ 'इन्क़लाब-ज़िन्दाबाद' करा दिया, कहीं और मिला तो वहां करा दिया। मैं तो खुद कहता हूँ; मज़दूर पांच ही क्यों मरे ?—पांच हज़ार क्यों नहीं मरे ? मरते पाँच हज़ार कि गवर्नमेण्ट का तख्ता हिल जाता—दुनियां जान जाती कि, 'हाँ हैं 'सत्यामिल्स' के मज़दूर हिंदुस्तान में, जिन्होंने हिंदुस्तान में मज़दूर-क्रान्ति के लिये

अपने को झोंक दिया।' सचमुच मैं खुश हो जाता अगर वे 'सत्यामिल्स' की सच्चे मायनों में ईंट से ईंट बजा देते। इतने बड़े लक्ष्य के लिये मरे कितने ?—सिर्फ़ पाँच आदमी...?"

शरद की इच्छा हुई की उछलकर इस कार के सारे शीशे तोड़ दे और इस दम-घोटू वातावरण से निकल कर बाहर जा खड़ा हो। हद् है नीचता की ! कितना खोखली बातें करता है ! पांच क्यों, पाँच हज़ार क्यों नहीं मरे ? हँह, उन्होंने तो सिर्फ़ बड़ी आसानी से दो बिंदियाँ बढ़ा दीं, पाँच की जगह पांच हज़ार बता दिये ! उन पाँच में खुद भी एक होते तो पता चलता—खुद तो ज़रा सिर में दर्द हुआ, जाकर मायादेवी की गोद में पड़ गये। दुनियाँ-भर में एक साथ क्रान्ति हो जाय ! ग़द्दार ! देशबन्धुजी जोश में आकर या ढीले पड़ कर चाहे जितनी भी ऐक्टिंग करते हुए उखड़ी-पुखड़ी बातें करें— सबके पीछे उनकी एक ही मनोवृत्ति की दृढ़ और निश्चित-धारा है, इसे वही समझता है। उसे अब नस-नसमें ऐसी झुँझलाहट चुनचुनाती लग रही थी कि इस व्यक्ति के चेहरे का एक-एक नक़ाब उतार कर फेंक दे ! वैसे तो शरद भैया, शरद भैया, और यहाँ भूखे-प्यासे कुकड़े जा रहे हैं। फुहारों के बावजूद उसने शीशा खोल लिया आर खिड़की पर मुँह रख दिया—हल्की-हल्की फुहार उसके मुँह पर पड़ती रहीं और शेष शरीर ठण्ड से रोमांचित होता रहा, मुँदी-सी दृष्टि कभी सामने शीशे पर पड़ जाती थी, जहाँ दोना 'वॉइपर' घूम रहे थे।

"स्थिति इस समय क्या है ?" चम्पकजी चिन्तित-स्वर में पूछ रहे थे...

"स्थिति तो इस समय बहुत ही अच्छी हो सकती है, अगर कॉमरेड लोग ज़रा अक्ल से काम लें ; क्योंकि उसे बिगाड़ना और बनाना इन्हीं के हाथ में है। लेकिन भैया, ये हमारी क्यों सुनेंगे ? वे सुनेंगे कॉमरेड बीरबल की, हम तो उनके दुश्मन हैं न।" देशबन्धुजी जाकेट की जेब से तह किया रूमाल निकाल कर सिर झुकाये चश्मे के काँच को साफ़ कर रहे थे—इसीलिये कॉमरेड उनके चेहरे का भाव नहीं देख सका। चश्मे को झटके से आँखों पर लगा कर, सिर उठा कर वे बोले—"बार-बार लेबर-कमिश्नर की शिकायत लेकर 'लेबर-मिनिस्टर' तक जा रहे है, केस को हाई-कोर्ट तक खींचने की धमकी देते हैं ; लेकिन बैठकर आपस में तय नही करते। मैं कहता हूँ, क्या रखा है इन झगड़ों में ? उधर हैं, 'खर-दिमाग़' हमारे सत्य बाबू—वे कहते हैं कि चलने दो प्ले-ऑफ़। देखें, कब तक चलता है। आज मैनेजिंग-एजेण्ट्स की बैठक हो रही है। मैं तो भाई, इन सब पचड़ों में हूँ नहीं—मैंने तो कह दिया, आग लगे इन सब में, मैं तो अपने दोस्त से मिलने जा रहा हूँ।"—देशबन्धुजी के चेहरे पर बेहद परेशानी थी—"अब मज़दूर कहते हैं ; एक हमारा प्रतिनिधि हो, एक अपना आदमी आप रख लीजिये और एक लेबर-कमिश्नर हो—यह तो कल तक की ज़िद थी, पता नहीं अब नई क्या स्थिति बढ़ गई है। इस

सब ज़िदा-ज़िदी में ग़रीब आदमी पिसता है। पाँच-छः बेचारे यह बेक़सूर मारे गये, आठ-दस घायल होंगे, रोज दो-एक ऐसे होंगे जिन्हें पुलिस आत्म-हत्या का प्रयत्न करते पकड़ लेती है। तुम सच मानो चम्पकजी, मेरा मन नहीं मानता ! जानता हूँ, हमलोगों से ही झगड़ा है ; फिर भी कल दो जीप भर कर अन्न बँटवाया—बात यह है कि वे जानते नहीं हैं न, कि इस सब का क्या होगा। उनकी आँखों के आगे तो सब्ज-बाग़ हैं, लेकिन उनके छोटे-छोटे दुध-मुँहें बच्चों ने क्या किया है ? मेरे मन में जैसे हर समय कोई ईसामसीह का वह वाक्य दुहराया करता है—हे प्रभु, तू इन्हें क्षमा कर, ये खुद नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं..."

उनकी बात पूरी भी नही हुई थी कि कॉमरेड चौंक कर सिर उठाते हुए बोला—"अरे...अरे रोकना भाई, मैं तो इधर से ही चला जाऊँगा..."

देशबन्धुजी की वाग्धारा टूट गयी। झटक कर बाहर देखा, गाँव प्रारम्भ हो गया था, कुएं-पुर इत्यादि चरते हुए पशु, किसान दिखाई दे रहे थे—पेड़ों की आड़ से ही छप्परवाले मकान शुरू हो गये थे—पास ही एक बड़ा-सा पोखर था। सामने ऊँचे-ऊँचे पहाड़ सिर उठाये खड़े थे। यहीं से चढ़ाई शुरू होती थी, तलहटी पर ही दलपतपुर था।

कार रुक गयी। दो-एक बार झटका देकर कॉमरेड ने दरवाज़ा खोला तब चम्पकजी बोले—"अच्छा नेताभैया, हम और कॉमरेड दोनों इधर से ही निकल जायेंगे साथ-साथ। वर्ना कॉमरेड फिर कहीं कस देंगे कि बड़े आदमियों में छोटों को भूल जाते हैं। पास ही है।"

"अच्छी बात है—भई, मेरी तरफ से उन संयोजकजी से बहुत-बहुत माफी मांग लेना। दिमाग़ में बड़ी अशान्ति है, वर्ना मैं ज़रूर आता। कल तो मिनिस्टर साहब के साथ ज़रूर ही आऊँगा। और भाई, तुम ही कर देना उद्घाटन, कम से कम मुझसे तो ज्यादा ही इम्पॉरटैण्ट हो...

"हाँ, इसमें तो कोई शक नहीं है।" चम्पकजी ने बनावटी गम्भीरता से कहा—"अच्छी बात है, मैं कह दूँगा।"

"अच्छा तो आप दोनों कल आ रहे हैं न ?" देशबन्धुजी ने कहा, "और भैया कॉमरेड, कोई ऐसी-वैसी बात कह गया होऊँ तो माफ़ कर देना। यही समझ लेना, बुड्ढा आदमी है, सठिया गया है।"

"अरे नेता भैया, आप क्या कह रहे हैं ? आप ऐसा कहेंगे तो हम कहा रहेंगे।" कॉमरेड बोला।

"लौटोगे किस वक्त ?"

"मैं ? मैं तो सन्ध्या तक लौटूँगा, कहिये कोई काम है क्या ?" कॉमरेड ने पूछा।

"नहीं, काम-वाम कुछ तो नहीं है। मैंने यों ही पूछा।" देशबन्धुजी अन्य-

मनस्क से कॉमरेड के पीछे देखते रहे—"सन्ध्या या रात को कोई टाइम मिले तो आना उधर, हमारी तरफ़। ज़रा एक ज़रूरी काम है।"

"अच्छी बात है—देखिये समय मिला तो ज़रूर आऊँगा।"

"नहीं, वैसे समय न मिले तो कोई बात नहीं।" देशबन्धुजी ने अब चम्पकजी से कहा—"तो चम्पकजी, आपको याद है न, कल आप कोई नयी कविता ला रहे हैं।"

"आपकी आज्ञा से बाहर कैसे जाऊँगा।" हाथ जोड़ कर खीसें निपोरे हुए चम्पकजी बोले और चलते-चलते मुड़कर कहा—"अच्छा, शरद भैया नमस्कार!" शरद अन्यमनस्क-सा बैठा था—उसने एकदम चिहुक कर कहा—"नमस्कार! नमस्कार, भाई चम्पकजी!"

दोनों ने देशबन्धुजी को बड़ी नम्रता से झुक-झुक कर नमस्कार किया।

फिर काफ़ी देर तक कार में चुप्पी छाई रही। चढ़ाई शुरू ही हुई थी, इसलिये मोड़ थोड़ी-थोड़ी दूर पर आ रहे थे।

"क्यों शरद बाबू आज तुम्हारी तबियत कुछ खराब है क्या? जब से बहुत उदास और सुस्त हो।" नेताभैया ने बड़े स्नेह से तबियत खराब है या नहीं, यह देखने के लिये शरद का हाथ पकड़ लिया।

"मेरी तबियत? नहीं बिल्कुल ठीक हूँ, मैं तो।" शरद को लगा उसने अभी कुछ देर पहले उनकी तबियत पूछी थी—उसी का प्रतिकार है।

"तो क्या बात है। लड़ाई-वड़ाई तो नहीं हो गई?" देशबन्धुजी गम्भीरता से मुस्कुराकर बोले—"अभी से लड़ोगे तो कैसे होगा? अभी तो बहुत ज़िन्दगी पड़ी है। शायद उसी चक्कर में तुम उस भाषण की आउट-लाइन नहीं बना सके।"

"नहीं नेताभैया, ऐसी तो कोई भी बात नहीं है। भाषण की यह वजह नहीं—।"

"अरे भैया, मैं कोई सफ़ाई थोड़े ही मांग रहा हूँ? आदमी की व्यस्तता क्या होती है मैं जानता हूँ? अब तुम मुझे नहीं देखते हो। डाकें मेरी तुमने देखी ही होंगी, कोई कुछ लिखता है, कोई कुछ। किस-किस को क्या-क्या करूं? वे सबके सब निश्चित-रूप से मुझे ही गालियाँ देते होंगे। कभी-कभी सचमुच बड़ा मुश्किल में पड़ जाता हूँ। अगले-पिछले सम्बन्धों को निभाना, फिर उसमें भी बड़े-बड़े दिमाग़ मिलते हैं। तुमने कॉमरेड को ही देखा। शुरू में कैसा उछल रहा था—बाद में सारी चौकड़ी भूल गया—।" देशबन्धुजी ने अपनी बात अधूरी छोड़कर कहा—"तो बन्धु, ज़िन्दा रहने का एक मूल मन्त्र है, प्रसन्न रहो।"

नेताभैया के अचानक प्रसन्न हो जाने के रहस्य को शरद जानता था। उन्होंने अपने सबसे बड़े विपक्षी, एक कॉमरेड को फोड़ लिया था!

"यार, चम्पकजी भी एक ही मस्त कवि है।" अचानक कुछ सोचकर प्रसन्न होते हुए नेताभैया बोले—"तुम विश्वास मानो, यह अचकन-वचकन किसी की

माँग कर लाया होगा। लेकिन रहता खूब निश्चित है। बोलो, कुछ नहीं तो अभिनन्दन-ग्रन्थ ही भेंट किये दे रहे हैं। यही बात इन्होंने एक दफ़ा पहले भी उठाई थी। अच्छा इसके बारे में तुम क्या समझते हो शरद बाबू ?"

"मैं तो समझता हूँ कि अभिनन्दन-ग्रन्थ दिया जाना चाहिये।" शरद ने बिना किसी विशेष उत्साह का प्रदर्शन किये ही कहा। असल में वह सोच रहा था कि यह इस समय अपनी विजय पर प्रसन्न हैं, इसी समय कोई विषय आ जाय तो वह रुपयों की बात कर दे। उसे ही दिमाग़ में रखकर बोला—"मैं तो यह समझता हूँ जो जिसका अधिकारी है, उसे वह मिलना ही चाहिये। समाज का यह कर्तव्य है कि यह उसे दे। आख़िर आपने देश के लिये कुछ कम कष्ट सहे ? जिस आदमी ने जीवन का सर्वश्रेष्ठ समय देश की अर्पित कर दिया हो—।" कहता-कहता शरद कुछ सोचने लगा। यह शब्द जैसे ऊपर ही ऊपर से फिसले आरहे थे—जैसे होंठो से आगे यह नहीं जा रहे हों।

"हम ही क्या, और भी बहुत से हैं।" देशबन्धुजी पिछली स्मृतियों में खो गये। एक गहरी साँस लेकर बोले—"वह भी क्या तूफ़ानी दिन थे। दिन को दिन और रात को रात नहीं समझा हमने कभी ! कुछ कहो साहब, बुड्ढे के भीतर थी कुछ चमत्कारी शक्ति। कितने लोग एक आवाज पर मरने को तैयार हो जाते थे, मामूली बात है ? सत्याग्रहियों में मैं ही सबसे ज्यादा शान्त था। अब तब भी ज़रा तेज़ हो जाता हूँ कभी-कभी; पर उन दिनों तो मुझे कभी गुस्सा ही नहीं आया। हमेशा हँसता रहता था. बाप अक्सर सुबह घूमने जाते समय कहा करते थे—देशबन्धु, तुम मेरे सच्चे बेटे हो, तुम्हारा यही प्रसन्न रहने का गुण ही तुम्हारी दृढ़ इच्छा-शक्ति का कारण है।' और भी वे घण्टों गीता पर बोला करते थे। गीता पर जो मैंने चिन्तन किया—सब उन्हींके प्रदर्शन के आधार पर। कभी-कभी जब में अपनी पिछली जिन्दगी देखता हूँ, तो ऐसा लगता है शरद बाबू, जैसे कोई पहाड़ को चोटी पर खड़ा होकर पगडण्डी को देखे—कहीं तो वह दरारों से चली आ रही है, कहीं कगारों पर, और कहीं अधर···" फिर जैसे अचानक कुछ याद आगया हो—"अच्छा एक काम करो शरद बाबू, मैं तुम्हें अपने पिछले जीवन की विस्तृत कथा कभी सुनाऊँगा। तुम आवश्यक नोट्स ले लेना। फिर फ़र्स्ट-पर्सन में ही उन्हें डेवलप कर देना। मुझे ज़रा भी टाइम होता तो मैं ज़रूर ही कर देता—जब भी जहां भी दिक्कत हो, मुझसे सलाह ले लेना। किताब ऐसी चटखदार-शैली में आये कि लोग भी दंग रह जायें और समझें कि हाँ, आत्मकथाओं में कोई नयी किताब आई है। मैं समझता हूँ उसके तीन भाग हो सकेंगे: पहला चढ़ाव..."

चढ़ाव था। कार कभी पहले और कभी दूसरे गेयर पर चल रही थी। दर्द के मारे शरद का सिर भन्ना रहा था।

'आह से उपजा होगा गान'

"वाह, यह क्या गत बना लाये ?" जया साड़ी का पल्ला मुंह पर रखकर खिलखिला पड़ी—"देखिये, पद्मा जीजी, ज़रा देखिये मुड़कर !"

शरद के सिर में वैसे ही हवाई जहाज़ भन्ना रहा था, जया की हँसी से जैसे वह भड़क उठा। सिर से पाँव तक वह पानी में शराबोर था। बालों को सख्त हाथ से—ताकि पानी निचुड़ जाय—उसने पीछे कर लिया था, तब भी कनपटियों से धार बही आ रही थी। पलकें और भवें भींगी थीं। जरसी का ऊन तो खूब पानी पीकर शरीर से चिपक गया था, और चौड़ी पतलून टाँगों से इस तरह लिपट गयी थी, जैसे साइकिल पर चढ़ने से पहले खूब मोड़कर क्लिप लगा लिये हों। ठण्ड से वह कांप रहा था और उसके होंठ नीले पड़ गये थे। जया शॉल ओढ़कर खिड़की में बैठी थी, और पद्मा एक मेढ़क-चेयर खींचकर—उसी के पास। दोनों बुनने में व्यस्त थीं। 'पद्मा जीजी' वाला सम्बोधन अगर वह न सुन लेता तो भीतर-आते-आते पता नहीं किस रूप में अपने क्रोध की अभिव्यक्ति करता; लेकिन द्वार में प्रवेश करते-करते जैसे ही उसे पद्मा दिखाई दी उसने अपनी तनी भौंहों और झुंझलाई आकृति को भरसक साधारण बनाने की कोशिश की। वह सीमेण्ट के फर्श पर जूतों की छाप और टपकते पानी की लाइन बनाता भीतर आ खड़ा हुआ। जया अब भी हँस रही थी।

पद्मा ने सिर उठाकर देखा—"अरे सचमुच, लीजिये शरदजी, आप तो ऐसे आ रहे हैं जैसे किसी ने गोता लगा दिया हो। पानी तो ऐसा नहीं पड़ रहा, यह आप भींग कहां से आये ? बैठें न, खड़े क्यों हैं ? अच्छा हो, आप कपड़े बदल लें पहले।" फिर जया से बड़े चिन्तित स्वर में कहा—"जया कपड़े दो न, हँस क्यों रही हो ?"

शरद को आश्चर्य हुआ, अभी उस दिन तो 'आप' और 'भाभी' का सम्बोधन था, अब इतना व्यवहार उन्मुक्त हो गया।

"हँसने की तो बात ही है जीजी, जाने कहां से भींग आये हैं, और अब कैसे शैतान बच्चे की तरह सीधे-सादे खड़े हैं।" जया हँसती रही।

"अच्छा हांऽ, अब बहुत काफी हँस लीं। जल्दी से मुझे तौलिया-वौलिया दो; वर्ना मैं तो बिल्कुल बेहोश होकर गिर जाऊँगा।" शरद बोला।

"गुसलखाने की तरफ तो आप जाही रहे हैं, वहीं आपके कपड़े टँगे हैं। वहीं बरामदे में खूंटी पर तौलिया है।" जया ने बड़ी खुशामद और निहोरे के स्वर में कहा—"प्लीज !"

"प्लीज-व्लीज कुछ नहीं,—आप उठिये और चलकर दीजिये। मैं सुबह से

भूखा-प्यासा भींगा खड़ा हूँ और आप यहां मस्ती से बैठी 'प्लीज़' कर रही हैं।" शरद ने बड़ी रुखाई और कड़े स्वर में कहा। वह जाने क उद्यत हो गया।

"चली जाओ न।" पद्मा ने बुनते हुए कहा।

"हमें ही तंग करते रहते हैं!" नाक के स्वर में भुनभुनाती जया बुनने की सलाइयाँ और ऊन झटके से खिड़की के पत्थर पर रखकर भीतर चली गई। शरद भी पीछे-पीछे चला गया—बोला—"पद्माजी, इन्हें समझाइये और किसे तंग करूँ? यहाँ बैठकर मक्खियां-सी मारने के सिवा और कोई काम तो इसे है नहीं।"

जैसे ही वह भीतर बरामदे में पहुँचा, जया ने न जाने कहां से तौलिया और अन्य कपड़े लाकर उसके कन्धों पर लाद दिये—"लीजिये!"

बलात् रोका गया गुस्सा शरद को नियन्त्रण से बाहर होता लगा—गुर्रा कर बोला—"दिमाग़ तो नहीं खराब हो गया?"

"अभी तक तो ठीक था, अब और रही आपके साथ तो हो जायेगा।" जया ने भी धृष्टता से उतर दिया।

"अच्छा, अब बहुत ज्यादा बक-बक मत करो।" सख्त स्वर में वह बोला—और जब उसी क्षण उसे लगा कि वह ज़रूरत से ज्यादा उत्तेजित हो उठा है तो ज़रा नरम पड़कर कहा—"गुस्सा आ ही रहा है तो दौड़कर चाय बनादो। खाने-पीने को है कुछ? दम निकली जा रही है। साले ने सुबह से भूखा मार डाला।"

लेकिन जया को शरद के इस व्यवहार से गुस्सा आ ही गया था। शरद ने बिना उसकी बड़बड़ाइट सुने ही ज़ोर से गुसलखाने के किवाड़ बन्द कर लिये। भीतर उसे अपनी इस उत्तेजना पर दुख हुआ। कपड़े बदलते हुए उसने सोचा उसे इतनी जल्दी असन्तुलित नहीं हो जाना चाहिये। लेकिन क्या जया का यह बिल्कुल भी सोचने का कर्तव्य नहीं है? भूखा-प्यासा सुबह से आया हूँ और आप बैठी आनन्द ले रही हैं। ऐसे आखिर कैसे चलेगा? अभी से अगर ऐसी बातें आ जायेंगी तो यह तो केवल जीवन का प्रारम्भ ही है।

जब वह बाहर निकला तो जया बैठी हीटर पर चाय बना रही थी। चाय क्या बना रही थी, ज़मीन पर रखे हीटर पर पानी रखा था, और वह घुटनों पर सिर लटकाये धरती की तरफ़ देखती चुपचाप पाँव के नाखून पर खुट-खुट कर रही थी। किवाड़ खोल कर शरद बिल्कुल पास आ खड़ा हुआ, यह वह जान गयी; लेकिन सिर नहीं उठाया। शरद थोड़ा देर खड़ा रहा। देखता रहा फिर यह सोचकर कि पद्मा अकेली बैठी होगी कमरे में आगया। चलते-चलते जया शॉल को कुर्सी पर डाल गयी थी, उसे उठाकर उसने ओढ़ लिया, और कुर्सी पर चुपचाप बैठ गया। कोफ़्त और थकान के कारण सिर भारी था और बार-बार आँखों के आगे अंधेरा छा जाता था। सूखे हुए उत्साह-हीन मुख पर स्पष्ट ही एक चिड़चिड़ाहट लक्षित होती थी। वह आँखें बन्द किये चुपचाप बैठा रहा। क्या

जया जरा भी सोचने की जरूरत नहीं समझती कि थका-माँदा आया हूँ, एक बात कह ही दी तो इस तरह बुरा मान कर नाराज होने की क्या जरूरत है ?

पद्मा बुनती रही। वह ऊनी कपड़े का सलवार कुर्ता पहने थी, आसमानी रंग का 'समर' था। दुपट्टा लापरवाही से गले में पड़ा हुआ था। सिर झुकाये रोंएदार अंगोरा ऊन से वह तेज़ी से बुनती रही। मशीन-सी तीव्र-गति से उंगली के साथ ऊन उछलता और सलाई फन्दे बदलती। 'सेन्टर-टेबिल' के चारों ओर जो चार कुर्सियाँ थीं, उन्हीं को एक ओर खिड़की के पास खींचकर पद्मा बैठी थी, और बीच में बह था। पद्मा उससे जरा तिरछी और पड़ती थी। जब भी शरद ने मुड़कर देखा पद्मा का सिर झुकाए एक कनपटीवाला हिस्सा ही वह देख सका। चिकने चमकदार सँवाकर बनाये हुए बालों की दो चोटियाँ मोड़कर मेढे के घुमावदार सीगों की तरह गरदन पर कुण्डलाकार पड़ी थीं। कान में हीरे का गोल टॉप झलमला रहा था।

"कहाँ-कहाँ घूम आये ? आप तो बिल्कुल विरक्त साधु की तरह बैठे हैं।" आखिर पद्मा ने ही सिर उठाकर गर्दन सीधी करने के बहाने पूछा।

"घूम कहाँ आये ? बस यही समझ लीजिये, दम नहीं निकली।" शरद जैसे इसी की राह देख रहा था। कुर्सी को मोड़कर मुँह उसकी ओर करते हुए बोला—"वैसे तो आज आप प्रसन्न दिखाई दे रही हैं।"

"आज से क्या मतलब ?" फिर कुछ मुस्कुराई—"यह मेरी बात का बदला है ?"

शरद सोचता रहा : मुँह पर आई बात को कहे या न कहे; लेकिन बात मन में इतने दिनों से घुमड़ रही थी, कि वह रह नहीं सक रहा था। बोला—"मेरी आँखों का ही दोष है या क्या; लेकिन मैंने अक्सर आपको बड़ा सुस्त और उदास ही देखा है।"

पद्मा की उदासी जैसे फिर उसके खिले चेहरे पर छा गयी। कोशिश करने पर भी उठती हुई साँस दबी नहीं, वह बोली—"नहीं तो ! मैं तो अक्सर जैसी हूँ वैसी ही रहती हूँ। शायद चेहरा सी मनहूस हो।" वह फिर मुस्कुराई।

"ख़ैर, चेहरे को तो देखनेवाले ही अच्छा जान सकते हैं।" परिहास से वह कह उठा, फिर सहानुभूति से कहा—"सचमुच पद्माजी, यह आपका हमेशा निर्लिप्त और उदासीन रहना ही तो अच्छा नहीं लगता। अगर आप ग़लत न समझें तो कहूँ कि सुन्दरता भगवान काफ़ी ग़लत लोगों को दे देता है, जो उसका महत्व नहीं जानते। कभी-कभी तो आपकी उदासी या उदासीन-व्यवहार यह मानने को विवश कर देता है जैसे आप किसी से भी, जरा भी परिचित नहीं हैं। तब यह विश्वास करना कठिन हो जाता है कि हम लोग एक ही कमरों में दो वर्ष बैठे भी हैं। क्या इसका मेरी ओर से विशेष कारण है ?"

पद्मा चुप रही, पर फिर बलात् हँस पड़ी—"उँह, आप भी क्या विषय लेकर बैठ गये हैं। कोई और बात करें न!"

"नहीं, आप मज़ाक़में मत उड़ाइये। अगर सचमुच कोई इस तरह का कारण हो तो मैं उसे जानने का आग्रह करूँगा।" शरद ने गम्भीर होकर कहा।

पद्मा ने अपनी लम्बी-लम्बी बरौनियाँ उठाकर एक क्षण के लिये उधर देखा। उसकी जुड़ी भौंहों के बीच में, कुछ ऊपर उठकर एक काली बिन्दी चमक रही थी। दृष्टि फिर फन्दों पर झुक आई—"आप माने, ऐसी कोई बात नहीं है। आपसे कोई ऐसी बात भी तो नहीं हुई कि नाराज़ हुआ जाय। वैसे ही..." पुनः स्वर में आ-जमती उदासी को उसने एक बार फिर उतार फेंकने की चेष्टा की..."सचमुच कोई बात नहीं, शरदजी।"

"अच्छा खैर, मान लेते हैं।" शरद ने गहरी साँस लेकर कहा। गुमसुम दो-तीन प्लेटें लेकर उधर आती जया को देखकर बोला—"आप पर तो इस कम्बख्त जया ने जादू किया है।"

"किस पर जादू किया है, यह तो मुझे खुद दिखाई दे रहा न।" पद्मा ने जया को देखा—"जादू की तरह सारा काम हो गया, यहाँ दावत को भी तरसते रह गये।"

पुलक कर प्रशंसा-पूर्ण नेत्रों से उसने जया को देखा। उसका चेहरा यों ही दृढ़ था, उसमें ज़रा भी परिवर्तन नहीं हुआ था—"आप दावत की बातें कर रही हैं, यहाँ रूखा-खाना मिल जाय यही बहुत है। आप देख लीजिये, जो तेज के मारे एक मिनट भी आँखें टिकती हों। सात दिन हुए हैं; हम लोगों को साथ आये—या ठीक से सात दिन भी नहीं हुए; कल होंगे, और व्यवहार देखिये, रौब देखिये, दबदबा देखिये। मुझे तो यह डर है कहीं जल्दी ही टिपीकल अँग्रेजी-मज़ाक़ यहाँ सच्चे होकर न दुहराये जाने लगें।"

पत्नियों द्वारा पतियों पर किये गये कई अत्याचारों के मज़ाक़ जया और पद्मा के दिमाग़ में साथ आये। मुस्कुरा दोनों पड़ीं; लेकिन जया जल्दी से दूसरी चीज़ें लेने भीतर चली गई।

"दुहरा ही दिये जायेंगे तो कौन आफ़त हो जायेगी।" पद्मा ने ज़रा ज़ोरसे ताकि जया सुनले—कहा।

"हाँ, हो तो कुछ नहीं जायेगा।" शरद बोला—"लेकिन एक दिन मेरे हाथमें सूरजजी ने एक्सीडेण्टनुमा चीज़ बताई है इन दिनों, कहीं उसीके लिये तो भगवान यह सब बहाने नहीं तैयार कर रहा?"

खाने के अन्य सामान लाती जया उमड़ती धृष्ट-मुस्कुराहट को दबाये ही बोली—"पद्मा जीजी जो जिस माजने का होता है, वह उसी में खुश रहता है।"

"सुन लिया?" पद्मा की ओर देखा—"अब आप 'बीमा' कराइये।"

शरद ने इस मज़ाक़ का कोई जवाब नहीं दिया। काई सब्ज़ी जया रख गई थी, एक-एक चम्मच जब-तब मुँह में डालकर वह अपनी बेसब्र-भूख को दुलराता हुआ बोला—"आपके हाथ में सूरजजी ने क्या बताया है—यह आप क्यों नहीं बताना चाहतीं ?"

"इस बात को आप कितनी बार पूछ चुके हैं ? इस वक़्त अपना 'मूड' ऐसी बातें करने का नहीं है।" पद्मा ने फिर सलाइयाँ उठा लीं। फिर उसे शायद यह ध्यान आगया कि पहले भी इस बात के लिये वह इनकार कर चुकी है, शरद नाराज़ न हो जाय। टालने के लिये कहा—"बात तो उन्होने कुछ बताई नहीं थी। हाथ देखकर वह चौक गये थे। 'बोले, तुम्हारे हाथ में हैड-लाइन के ऊपर, जुपोटर और सैटर्न के बीच में क्रॉस है, हैड-लाइन, लाइफ़-लाइन से बहुत ऊँची उठी हुई है, झुकाव उसका बहुत नीचे है और क्रॉस पर खत्म हो गई है, शायद ल्यूना तक चली गयी है', और पता नहीं क्या-क्या बता रहे थे। सारी खराबियाँ उन्होंने हैड-लाइन में ही बताईं...।" जल्दी-जल्दी उसने बात खत्म कर दी।

"हैड-लाइन में चाहे खराबियाँ हों या न हों ; लेकिन हैड में तो है ही।" शरद की यह बात सुनकर पद्मा मुस्कुराकर रह गयी, लेकिन उसकी यह मुस्कुराहट मिटती-मिटती जैसे किसी कोहरे में खो गयी। अपलक-दृष्टि ऊन की डोरी पर लगाये वह बुनती रही। बाहर बारिश समाप्त हो रही थी। बाहर कहीं-कहीं ठहर गये पानी में दो-तीन चिड़ियाँ नहा रही थीं। चारों तरफ की हरियाली निखर आई थी। दो-तीन बजे होंगे। दिमाग़ मे एक क़ैद-खाना था, जिसमें से एक-एक करके बादलों के दल के दल निकल-निकल कर फैलने लगे थे। शरद की आवाज़ से फिर उसका ध्यान टूटा।

"आइये, पद्माजी, थोड़ा साथ दीजिये !" शरद कह रहा था।

पद्मा ने सचेत होकर उत्तर दिया—"नहीं-नहीं जी, आप खायें, मैं बिल्कुल खाकर ही आ रही हूँ।"

"जो कुछ आप खाकर आ रहीं होंगी—उसकी तो यहाँ धूल भी नहीं मिलेगी, लेकिन फिर भी अगर साथ दें सकें तो आइये। अच्छा नहीं लगता, आप यों ही बैठी रहेंगो।"

शरद के स्वर में एक आग्रह के अतिरिक्त और भी कुछ ऐसा था कि पद्मा ने एकबार उधर देखा और फिर कहती हुई उठी—"कहते ही हैं तो साथ बैठ जाऊँगी, लेकिन सच मानें, मुझे भूख नहीं है।"

बीच में चाय की केतली तथा अन्य खाने का सामान देखकर, एक कुर्सी पर बैठती हुई पदमा बोली—"यह तो आप लोग शायद खाना खा रहे हैं। मैंने समझा खाली चाय होगी। खाना शायद जया ने भी नहीं खाया है। मुझसे तो कहती थी कि सुबह ही खा चुकी।"

दोनों बैठे राह देख रहे थे कि जया आये तो खाना शुरू किया जाय; लेकिन जया नहीं आ रही थी। शरद जानता था कि वह नहीं आयेगी। खाना सामने रख कर प्रतीक्षा करना असह्य लग रहा था।

काफ़ी देर बाद पदमा ने कहा—"आपने बेचारी को नाराज़ कर दिया है. आते ही आते। लाइये मैं लाऊं।" वह उठने लगी।

"ठहरिये, देखिये मै अभी बुलाता हूँ।" उसने आवाज़ दी—"ज़या, यहाँ पानी तो रख ही नही गयी।" वह समझता था कि यदि वह भीतर चला गया तो नाटक लम्बा हो जायेगा।

जया उसी तरह चुपचाप पानी लेकर आई—दो गिलासों में। जैसे ही झुक कर वह मेज पर पानी रख कर, सीधी होकर लौटने लगी तो शरद ने उसका हाथ पकड लिया—"जयाजी, बठिये न, यो ज़रा-ज़रा-सी बात पर नाराज़ नहीं होते हैं।" उसने दूसरे हाथ से कुर्सी उसके पाँव के पास सरका कर, ज़बर्दस्ती नीचे खींचकर उसे बैठा दिया। जया की नाराज़ी और अपने इस व्यवहार से उसे बड़ी झेंप इसलिये लग रही थी कि सामने बैठी पद्मा इस सब को देखकर क्या सोचेगी। बचपने का यह अभिनय जितनी जल्दी समाप्त हो जाय, अच्छा है। उसने बच्चों की तरह उसे मनाते हुए कहा—"अच्छा आप ही बताइये पद्माजी, मैंने कुछ कहा है? लाख यह मास्टरनी रही सही, लेकिन इसमें एक खराबी है। आने-जाने वाले किसी का ध्यान नहीं रखती।" और उसका एक हाथ पकड़े ही उसने ग्रास अपने हाथ से उसके मुंह मे देने की कोशिश करते हुए कहा।

अपने हाथ से उसकी ग्रास-वाली कलाई पकड़ कर रोकते हुए जया बोली—"नही, हमें नही खाना—आप ही बहुत ध्यान रखते हैं आने-जाने वालों का—मानिये न...।"

शरद ने एक बार पद्मा को देखा। पद्मा शायद यह सोच कर कि यह उन लोगों की व्यक्तिगत बाते हैं, और उसका हस्तक्षेप या देखना पता नहीं कैसा माना जाये, सिर झुकाये सलवार की सिलाई के किसी छूटे हुए डोरे को तोड़ने लगी थी। शरद ने ठोढ़ी घुमा कर उधर इशारा किया—'देखो, क्या कहेगी मन में?' और अपना प्रयत्न जारी रखा। जया ने शरद का इशारा देखकर भी अनदेखा कर दिया और पिघलती आवाज़ में नाक के स्वर में बोली—"जब देखो, तब लड़ते रहते है। हरेक के सामने डाँट देते हैं। इस वक्त मैंने आपसे क्या कहा था?" उसकी आँखें डबडबा आईं। मुँह फेर कर बोली—"यहाँ सुबह से भूखे राह देख रहे हैं।"

शरद प्रतिक्षण अनुभव कर रहा था, यदि उनके बीच का यह खिलवाड़ और चला तो शायद पद्मा उठकर चली जाय। वह ज़रूर इस समय अपने आप को बड़ा अनावश्यक और गैर-सा अनुभव कर रही होगी। उसने कहा—"अच्छा बाबा,

जो हुआ सो माफ़ करो, देखो पद्मा जी क्या सोचेंगो मन में ? कभी तो समझा करो, या रीति-काल के नायक-नायिकाओं की तरह पैरों पर सर पटकवा कर ही मानोगी ?"

'झन्न' से जया के दोनों कपोल लाल हो आये। रीतिकाल का नायक किस अवसर पर नायिका के चरणों में सिर रखता था, इस बात का ध्यान आते ही वह लज्जा से कट गयी। किस वक्त क्या कहना चाहिये, इसकी तो ज़रा भी तमीज़ नहीं है। जब जो मुँह में आया सो बक दिया। बरबस कसे हुए होंठ ढीले हो गये और चमकदार सफ़ेद दाँतों की पंक्तियां खुल पड़ी। शरद ने तभी उसके मुँह में ग्रास ठूँस दिया। पद्मा सिर मोड़कर पीछे कुछ देख रही थी। जया ने शरद के पाँव के अंगूठे को अपनी चप्पल से भरपूर ज़ोर से दबाते हुए सिर झुकाये कस कर मुँह पोंछा और मुस्कुराकर बड़ी झेंपी-झेंपी-सी कौर चबाते हुए पद्मा को देखकर शरद के प्रति नाराज़ी के स्वर में बोली—"देखा पद्मा जीजी, यह है आजकल का ढंग। सुबह से हम तो यहां बैठे हैं भूखे-प्यासे; लेकिन वहाँ चिन्ता किसे है ? आये भी तो फाड़ते-खाते, फिर क्या इन्हें पूजा जाय ?"

"यहाँ कौन-सा मोहनभोग खाकर आ रहे हैं ? तुमने चाय तब भी पी ली होगी, यहाँ चाय की सूरत अब देखी है।" शरद ने अपने अंगूठे के दर्द से होंठ सिकोड़कर हँसती आँखों से दाँत भींचकर एक हथेली पर दूसरी से हलाल करने का संकेत किया—'चली जाने दे पद्मा को, तुझे यों हलाल करूँगा !' उसे मन ही मन सन्तोष और आनन्द हुआ कि जया ने उसके लिये प्रतीक्षा की।

जया ने होंठ मटका दिये, और पद्मा से बोली—"पद्मा जीजी, आप खा नहीं रही हैं।"

"हां, आपने बताया नहीं, यह गत कहाँ बनवा आये थे ? आजकल तो होली भी नहीं है ?" पद्मा को शायद प्रसन्नता हुई कि विषय बदला।

इसी बात पर लड़ाई शुरू हुई थी—जया और शरद की निगाहें मिलीं, मुस्कुराईं—और शरद बोला—"आपके नेताभैया का प्रसाद था—वही ले गये थे मन्त्रीजी से मिलाने।"

"मेरे नेताभैया क्यों होने लगे ?" पद्मा के मुँह में कोई कड़ी बात आई; लेकिन उसने जैसे उसे होंठों पर ही, रोक लिया, बोली—"आप तो गाड़ी में ही गये थे न, उनके साथ—।"

खाना चलता रहा।

"पद्मा जी, अगर आप बुरा न मानें तो एक कहावत कहने का लोभ मुझसे नहीं रोका जा रहा..." शरद ने ग़ौर से उससे देखा।

"तो एक बात मेरी भी सुनलें, पद्मा ने दृढ़-स्वर में कहा— "आप इस विश्वास को बिल्कुल अपने मन से निकाल दीजिये, कि मैं किसी की भी बुराई सुनकर

बुरा मानूंगी। यहां कोई भी मेरे लिये ऐसा नहीं है जिसका पक्षपात करने की बात मैं सोच भी सकूं। मैं खुद यहाँ बुरी तरह ऊब रही हूँ।"

"यह तो खैर मैं जानता था।" शरद आश्वस्त होकर बोला—"तो सुनिये, बड़ी गंवारू कहावत है कि 'मालिक के अगाड़ी और घोड़े के पिछाड़ी कभी नहीं आना चाहिये' यह चाहे सच हो या न हो; लेकिन यह ज़रूर सच है कि जब भी आप बड़े आदमी के साथ चलेंगे या तो घिसटेंगे, या लटकेंगे, क्योंकि न तो आप उतने ऊँचे है और न उतना तेज चल सकते हैं।"

"आज तो आप कुछ-कुछ सूरजजी जैसी तलखी मे बोल रहे हैं।" पद्मा मुस्कुराई।

"जैसे-जैसे आदमी अनुभव करता जाता है, लोगों का उससे यह शिकायत होती ही जाती है..."

बात काटकर जया बोली—"पदमा जीजी, इनकी इसी बात पर मुझे झुंझलाहट आ-जाती है। भींग कैसे, यह बात आप पूछ रही हैं और दुनियाँ भर की बातें बघार रहें हैं, बस यही नहीं बता रहे...।"

पदमा और शरद मुस्कुराये।

आसमान की ओर देखकर शरद ने कहा—"कल्पना कीजिये, उस समय की जब मैं तो भूख और क्रोध से भुन रहा हूँ और नेताभैया मुझे यह समझा रहे हैं कि उनकी जीवनमें दो साधनायें रही हैं;या कहिये साधना तो एक ही है; लेकिन उपलब्धियाँ दो है; एक आर्थिक—वह जैसी भी है—उसकी उन्होंने कभी चिन्ता नहीं की; और दूसरी यह देशभक्ति की तथा आध्यात्मिक। वे मुझे समझाते रहे कि इन भौतिक-सुख और समृद्धि के बन्धनों में किस तरह उनका मन रमा नहीं, और हर समय उन्हें ऐसा लगता रहा जैसे वे एक यात्री हैं जो केवल किसी अगली ट्रेन की प्रतीक्षा में प्लेटफ़ॉर्म पर बैठा है—एक ऐसा वीतराग-संन्यासी, जो रम तो ज़रूर गया है; किन्तु उसकी आत्मा निरन्तर इन बन्धनों को तोड़कर भागने के लिये विद्रोह करती और तड़फड़ाती रही है।" फिर शरद हँसा और उसने बजरी पर पड़े पत्थर के एक छोटे-से टुकड़ेको झुक कर उठा लिया और यों ही निरुद्देश्य उसे झटके से फेंकता हुआ बोला—"उनकी भौतिक-प्राप्तियों को सँवारने वाला तो उनका पुत्र उन्हें मिल ही गया है—और उन्हें सन्तोष है कि वह इतना कुशल है कि बिना दिक्कत के इस उत्तरदायित्व को निबाहे चला जा सकता है; लेकिन उनकी इस आध्यात्मिक-प्राप्ति के लिये ठीक उत्तरधिकारी उन्हें नहीं मिल रहा। वे चाहते हैं कि मैं यदि इसे संभालने का ज़िम्मा ले लूं तो वे

मुक्ति की साँस ले सकेंगे—और सचमुच उनकी आत्मा को बड़ी शान्ति मिलेगी, तब वे चैन से वास्तविक संन्यास ग्रहण कर सकेंगे। आप विश्वास मानिये पद्माजी, अनुरोध से उन्होंने मेरे दोनों हाथ पकड़ लिये और देर तक मेरी आँखों में झाँकते रहे। कुछ क्षण तो मुझे ऐसा लगा जैसे वे हिप्नोटाइज कर रहे हों। पता नहीं क्यों, मैं उनकी उपस्थिति में उनके व्यक्तित्व से बड़ा, ढँका और दबा-सा रहता हूँ।"

पद्मा मुस्कुराई और उसने एक पाँव 'स्वदेश-महल' की लाल ईंटों से बनी डेढ़-फ़ुट ऊँची बाउण्ड्री तक उठी सीढ़ियों में से एक पर रख लिया। इसी दीवार पर थोड़ी-थोड़ी दूर लोहे के डण्डे गढ़े थे। जहाँ यह लोग खड़े थे, पीछे के लिये दो एक सीढ़ियों के बाद छोटा-सा रास्ता था, उसमें लोहे का एक निकोना-चक्कर था जिसे घुमा कर आना-जाना होता था। जया एक ओर, छाती पर हाथ कसे दोनों पाँव ज़रा दूर-दूर रखकर 'आराम' की मुद्रा में खड़ी थी। पद्मा ने उधर देखकर कहा—"एक बात तो आप मानेंगे ही, हिप्नोटाइज करने की बात चाहे ठीक न भी हो; लेकिन प्रभावित करने की उनमें विचित्र शक्ति है।"

"मैं तो खुद ही कह रहा हूँ..."

शरद की बात काट कर जया बोली—"तो भिक्षा और खानाबदोश-वृत्ति की विरासत वे आपके नाम कर रहे हैं? उँह, आप भी क्या हैं? मैं होती तो कह देती, इतनी महत्वपूर्ण चीज आप मुझे क्यों दिये रहे हैं...अच्छा हो, अपने पुत्र की विरासत मुझे दे दें...और यह उन्हें सौंप दें—।"

तीनों हँस पड़े।

पद्मा ने कँटीले तार के काँटे को बचाकर उसे मुट्ठी भरकर पकड़ा और फिर लोहे के खम्भे से पीठ टिकाकर खड़ी होती हुई बोली—"पता नहीं क्यों, इतने दिन हो गये, उनकी कम्पनी में मैंने कभी 'एट-होम' फ़ील नहीं किया। बात-बात में 'पद्मा बेटी'—'पद्मा बेटी' मुझे तो इस सम्बोधन में हमेशा ऐसा लगा..." पद्मा सहसा चुप हो गयी।

शरद ने चौंक कर इधर-उधर देखा—शायद कोई आया हो; लेकिन दाँतों में तिनका कुतरती जया यों ही खड़ी थी। शरद ने पूछा—"क्यों, आप चुप क्यों गयीं? कहिये न।"

"अच्छा, इस सब्जैक्ट को छोड़ें—कोई और बात करें।" पदमा बोली।

"आपत्ति तो मुझे कोई भी बात करने में नहीं है; लेकिन आप के साथ यह 'मूड्स' की बात बड़ी विचित्र है।" शरद ने उसकी ओर ग़ौर से देखकर कहा।

"नहीं, 'मूड' नहीं—अब मैं क्या कहूँ...?" पद्मा अनमनी होकर सोचती रही। आखिर उसने कहा—"मुझे तो हमेशा ऐसा लगा; जैसे अपने भीतर की किसी बात को छिपाने के लिये यह बात-बात में 'बेटी' का सम्बोधन है। मुझे वहाँ हमेशा बड़ा घुटा-घुटा और बना-बना-सा लगता है।" पद्मा ने बड़ा साहस करके अपने

स्वर को हर उतार-चढ़ाव से बचाने का प्रयत्न करते हुए कहा—"अब माताजी का तो जो भी कुछ है, आप खुद जानते हैं। वे यहाँ बहुत काफ़ी रही हैं, और इस वातावरण में अपने को 'फ़िट' पाती हैं, लेकिन मेरी तो दूसरे ही घण्टे यहां से तबियत बड़ी उकताने और उखड़ने लगी थी। मैं खुद सोचती थी कि आप भी न जाने क्या सोचते होंगे। लेकिन क्या करती, कुछ ऐसी मनहूसियत इस बिल्डिंग की दीवारों मे है, जैसे किसी को घुटे कमरे में कोई बन्द करदे। बड़ा उदास-उदास...सुस्त, सिर भारी-सा—मैं समझ नही पाती मुझे क्या हो जाता है। हमेशा रोने-रोने को मन करता रहता है। कल परसों से ज़रूर इन जया-भाभी के साथ तबियत बहलने लगी है; वर्ना हर-क्षण मुझे तो ऐसा लगने लगा था कि या तो मैं भाग जाऊँगी कहीं या मर जाऊँगी।" बात समाप्त करके पद्मा अपलक उदास एक ओर एकटक देखती रही, बोली—"सचमुच शरदजी, आप सोच नहीं सकते, हर पल कितनी तीव्रतासे मैं अनुभव करती, लड़ती रहती हूँ कि मुझे कहीं भाग जाना चाहिये।"

शरद सोचता रहा, जब अपनी मां जैसे निकट व्यक्ति के बारे में आदमी बोलता है, तो क्या सोचता होगा—पद्मा जिस समय बोल रही थी, उस समय क्या सोच रही होगी ? एक व्यथा थी, एक उदासी जो पदमा के शब्द-शब्द से झलक रही थी। शरद और जया उसे हृदयंगम करने का प्रयत्न करते रहे। पदमा चुप हो गयी थी, लेकिन लगता था जैसे वह अपने से लड़ती-लड़ती चुप हो गयी है कि उसके भीतर जो कुछ भी दुर्निवार उमड़ रहा है, उस सबको कह डाले या पचा जाय। और वह चुप्पी जैसे एक प्रतीक्षा की फैलती हुई घड़ी थी।

"सचमुच, यही मैं सोचता था। पता नहीं पद्माजी को क्या हो गया है, बस, उस दिन खाना खाते समय ज़रा खुश देखा था, फिर तो हमेशा बड़ा खोया-खोया, और बड़ी गहन-गम्भीर दार्शनिक समस्याओं में डूबा सा पाया। जब दूसरी बार आप रिक्शे में मिली थीं या...गम्भीर आप पहले भी थीं, लेकिन यह गम्भीरता जैसे किसी ने ज़बर्दस्ती मुँह बन्द कर दिया हो...।" शरद ने कहा।

"दार्शनिक-समस्यायें !" पदमा पीड़ा से हँसी—"मेरी मानसिक-स्थिति तो आप सोच ही नहीं सकते शरदजी ! खैर, यह तो अपनी-अपनी क़िस्मत और तक़दीर का खेल है—और क्या कहूँ।" एक गहरी साँस लेकर पदमा चुप हो गयी। उसकी खुली आँखें धीरे-धीरे आर्द्र होती आईं—और नीचे वाली कोर पर पानी की हल्की-सी लकीर झलक उठी।

इतने दिनों में शरद क़िस्मत और तक़दीर की बातको इस तरह भूल चुका था, या सुनकर भी महत्व देना छोड़ चुका था कि उसे बहुत अधिक अजब-अजब लगा—पद्मा ज़िन्दगी में तक़दीर को इतना महत्व देती है। और कोई समय होता तो वह बिना इस विषय पर एकाध बात किये नहीं रहता। लेकिन अब पद्मा का मुँह देख कर चुप हो गया। सुन्दर मुख बादलों से ढँक गया था।

"मैं तो जब से पैदा हुई हूँ, शायद ही कभी निश्चिन्तता और सुख जाना हो, हमेशा-हमेशा एक घुटन, प्रतारणा ! जैसे भीतर कहीं एक लाश के पास बैठा कोई दिन-रात बिसूरा करता हो। बड़ा अकेला-अकेला लगता रहता है जैसे किसी अनजान लोक में पकड़ कर छोड़ दिया हो। शरदजी, आप इसे मेरा पागलपन मानेंगे —कभी-कभी तो मैं आँखें फाड़-फाड़ कर इन लोगों की बातें सुनती हूँ—आप लोगों को देखती हूँ, और मुझे ऐसा लगता है जैसे न तो मैं किसी को देख पाती हूँ, और न किसी की बातें समझ पाती हूँ। मुझे लगता है जैसे मैं मनुष्य-लोक से बाहर की की कोई हूँ कि हर आदमी मुझे ऐसे देखता है जैसे सफ़ेद रीछ को देखता हो !" पद्मा ने पिण्डलियों तक नीचे कुर्ते का छोर उठाकर उसके सिरे से धीरे-धीरे आँखें पोंछी। उसके ओंठ काँपते रहे—"दिन-रात मन में यही आवाज़ गूँजती है, कहीं भाग चल, कहीं चल।"

"लेकिन इस मानसिक-स्थिति का आपने विश्लेषण तो किया होगा कभी।" शरद ने बहुत कोमल, सहानुभूति के स्वर में पूछा।

"जो 'सफ़र' करता है, या सहता है, वह विश्लेषण नहीं करता। विश्लेषण तो वह ही कर पाता है जो या तो सह चुका हो या इस सहने का तटस्थ-दर्शक हो।" पद्मा ने कहा—"पिछले दिनों यहां आकर मैंने 'टैस' खत्म किया है हार्डी का, उफ़, कैसी एक पीड़ा है, दर्द है जो उसके हर पन्ने में बोलता है ! कितना बेचारी ने सहा। मुझे हमेशा ऐसा लगता रहा जैसे मैं ही वह हूँ, और सब कुछ सह रही हूँ।" पद्मा जैसे अपने पढ़े हुए में खो गयी।

"हार्डी आपको पसन्द है ?" शरद ने पूछा। बात व्यक्तिगत से उठकर सामान्य-स्तर पर आ रही है, यह देखकर उसे सन्तोष हुआ—यद्यपि पद्मा के विषयमें अधिक से अधिक जानना चाहता था, लेकिन पद्मा ऐसी भरी पड़ी थी कि उसकी पीड़ा को किधर से भी छूना कम खतरनाक़ नहीं था। मायादेवी को लेकर यह अधिक ख़तरनाक़ हो उठी थी। वे पद्मा की मां हैं, पता नहीं क्या शब्द उसके मुंह से ऐसा निकल जाय कि औचित्य की सीमा को लांघ जाय। वैसे मायादेवी के हर व्यवहार का एक-एक चित्र, उनका एक-एक शब्द उसकी आँखों के आगे आ-आकर झलमलाने लगा था। वह पद्मा की मानसिक-स्थिति को समझ रहा था। उसे कपिल का उस दिन वाला 'रिमार्क' याद हो आया।

"हार्डी...? हां, हार्डी ही क्या···?" पद्मा कहीं गहराई से बोल रही थी—"मुझे हर वह लेखक पसन्द है, जिसके पात्रों ने खूब कष्ट सहे हैं। पता नहीं क्यों, मेरे दिमाग़ में हर समय वैसे ही पात्र घूमते रहते हैं—जैसे मैं उन्हीं के बीचमें रहती होऊँ। टॉलस्टॉय की 'अन्ना' के साथ तो मैं वर्षों रही हूँ, और जब मैंने उसके रेल से कटने का वर्णन पढ़ा तो मैं इस तरह रो उठी जैसे मेरे परिवार का ही आदमी मर गया हो। आन्द्र ज़ीद के 'स्ट्रेट इज़ द गेट' की लीसा की डायरियों को

को तो आज भी जब मैं याद करती हूँ, तो रोने लगती हूँ। और तो और,' चैखव' की कहानी 'डार्लिंग' मेरे वर्षों दिमाग़ को छाये रही। 'ओल्गा' का अभाव मन को बहुत दिनों कचोटता रहा। जेन आयर की जेन ने बहुत रुलाया। दोस्तायव्स्की के बाद तो मुझे बहुत कम लेखक पसन्द आये..."

"वही जिसके हर पात्र का सिद्धान्त है—'सफ़रिंग प्यूरिफाईज़ द सोल' दुख आत्मा को माँजता है ?" शरद ने अनजान बनकर पूछा।

"खैर, आप जो भी कहें—मुझे वह बहुत ही पसन्द है।" पद्मा निर्बोध-रूप से सधे-स्वर में कहती रही—"मीरा मुझे इसी लिये बहुत-बहुत पसन्द है। उसकी वाणी में एक ऐसा विचित्र-दर्द बोलता है कि आत्मा का तार-तार झनझना जाय। पीड़ा की कितनी तल्लीन अनुभूति है उसमें। उसके उस अपार्थिव और अदृश्य-लक्ष्य को छोड़ भी दें तो मानवीय-भावनाओं की संवेदन-शीलता मीरा में जितनी है, उसकी सतही झलक कभी-कभी सूरदास की गोपियों में भले ही मिल जाय।" पद्मा गम्भीर पीड़ा में हल्की-सी मुस्कुराती जैसे बड़ी दूर कहीं क्षितिज में खो गयी—'कभी मन जब बड़ा अकेला और असहाय अनुभव करता है तो वास्तव में इन पात्रों के साथ बड़ी सान्त्वना मिलती है। मुझे जब कभी ऐसा लगा कि कहीं मैं धीरे-धीरे पागल तो तो नहीं होती जा रही, और मन इतना ऊब जाता है, इतना ऊब जाता है कि रुलाई किसी तरह भी नहीं रुकती और मैं तकिये पर सिर रखकर रोने लगती हूँ—तो आप लोग शायद विश्वास नहीं करेंगे—मुझे अक्सर ऐसा लगा है जैसे मेरे एक ओर भवभूति की सीता बैठी रो रही है और एक ओर कालिदास की शकुन्तला।"

"शरत् ने कभी आपको नहीं छुआ ?" शरद ने एकबार जया को देखकर कि वह इन बातों में रुचि ले रही है या नहीं, पद्मा से पूछा। जया बड़े ध्यान से सुन रही थी। हरी घास का एक तिनका उसके हाथ में था, जिसे कभी वह उँगलियों में घुमाती और कभी दाँतों से कुतर लेती।

"शरत्...हाँ इस क्षेत्र में वह तो असल में मेरा गुरू ही है।" पद्मा से उसी स्वर में कहा—"पिताजी उस समय थे, माँ भी साथ थीं, लेकिन पता नहीं क्यों मुझे शुरू से ही ऐसा लगता रहा है जैसे मैं अनाथ हूँ—अकेली हूँ। कोई मेरे मन की बात नहीं जानता। और बच्चे खेलते रहते थे; मैं अकेली गुम-सुम बैठी रहती थी—उनकी हँसी, किलकारी किसी में भी साथ देने को न ही नहीं करता था। कह नहीं सकती इसका कोई भौतिक कारण था या नहीं—लेकिन जैसे-जैसे मैं समझदार होती गयी, यह भावना और भी अधिक जड़ जमाती रही—यहां तक कि शायद मेरी प्रकृति बन गयी। पिताजी से माँ की कभी नहीं बनी। इसके मूल में शायद नेता भैया ही थे। क्योंकि जब मुँह उठता, या लड़-भिड़ कर जब भी इच्छा होती तभी वे यहां आ जातीं और तीन-तीन चार-चार महीनों में जातीं। उन दोनों की इस लड़ाई में मेरी उपेक्षा होती थी, इसीलिये मैं अधिकांश होस्टलों में रही। वहाँ भी साथकी

लड़कियों, खेल-कूद-ऊधम-दङ्गा किसी में भी मन नहीं लगता था। तब मेरा परिचय शरत्चन्द्र से हुआ—फिर तो ऐसा लगा जैसे यही एक ऐसा साथी है जिसके साथ उठते-बैठते खाते-पीते हर समय अपने को रख सकती हूँ। दिमाग़ से पारो, किरणमयी, चन्दा, राजलक्ष्मी, विजया, सुमित्रा और पल्ली-समाज की रमा निकल ही नहीं पाती थी, मैं उन्हीं के साथ सोती, उन्हीं के साथ खेलती।..."

शरद बड़े झिझकते हुए बोला—"यदि आप अन्यथा न समझें तो, एक बात मैं पूछना चाहता हूँ। आपकी माता जी मुझे कुछ बहुत ही विचित्र महिला लगीं..."

उसे बीच में ही रोककर पदमा ने कहा—"जाने दीजिये, यह प्रसंग मुझे कुछ खास अच्छा नहीं लगता। वे जैसी हैं, अब मैं क्या कहूँ? छोड़िये।" फिर वह बड़े विचित्र-ढङ्ग से हँसी—"किसी शरत् जैसे कलाकार की निगाह उन पर पड़ी होती तो संसार की सर्वश्रेष्ठ महिला होतीं। कौन जानता है, जिन स्त्रियोंके नाम ले रही हूँ, उसके भौतिक-प्रतिरूप—जिनसे इनके रचयिता प्रेरित हुए होंगे—दुनियाँ की निगाहों में क्या समझे जाते होंगे?" और बहुत देर से तार को पकड़ कर, पीछे खम्भे से पीठ टिकाये खड़ी-खड़ी पद्मा थक गयी थी—उसने बड़े सँभालकर तार छोड़ा और सीधी खड़ी हो गयी। फिर नीचे सिर झुकाए एक-एक क़दम रखती हुई टहलती रही। तीनों चुपचाप बजरी पर चहलकदमी करते रहे। बजरी सीझ रही थी और इधर-उधर क्यारियों में चिड़ी-पान इत्यादि के आकारमें लगी छोटे-छोटे सुंदर रग-बिरंगे फूलों की डिज़ाइनें धुलकर निखर आई थीं।

शरद ने एक गहरी सांस ली। व्यथा से जिस समय रो उठने की स्थिति हो उस समय पद्मा का विचित्र ढंग से लुटा-लुटा-सा मुस्कुराना हमेशा से शरद के हृदयमें चुभ जाता था। हमेशा एक कसक से उसका दिल काँप उठता। वह पद्मा की बनावट को धीरे-धीरे भली-प्रकार हृदयंगम कर रहा था। सहानुभूति से उसका हृदय उछ्वासित हो आया था। जिस स्थितिमें पद्मा रही है उसमें सचमुच आदमी सोच ही क्या सकता है—बन ही कैसा सकता है? पता नहीं, यह मौन कब तक रहता कि जया की एक बचपने की हरकत से उसका ध्यान टूटा।

जया ने फूल पर बैठी एक बड़े-बड़े पंखों वाली तितली को दोनों परों से झुक कर पकड़ लिया और उल्लास से चमकती आँखों से दूसरे हाथ की हथेली खोलकर उस पर बैठा कर उसे देखती हुई बोली—"कुछ हो, इन बंगाली लेखकों की भावुकता जबरन आँखों से आंसू निकाल लेती है।"

"कभी-कभी तो भई, मैं 'बोर' हो जाता हूँ—ज़रा-सी बात हुई और बैठ कर रुला दिया।" शरद ने उसके हाथ की तितली को देखते हुए कहा।

"बाद में आप चाहें जो कहें—लेकिन उस वक्त बिना प्रभावित हुए नहीं रहा जाता।" पद्मा इस समय तक अपनी भावनाओं और मानसिक उद्विग्नता पर अधिकार पा चुकी थी—इसलिये अपेक्षाकृत स्वस्थ-स्वर में कहा—"अब रवीन्द्रनाथ की

सुभाषिणी, देखिये हमेशा दिमाग़ पर छाई रहती है...।"

"पद्मा जीजी, एक बात मैं देख रही हूँ···।"

जया की बात काट कर शरद ने झिड़का—"बात देखते-देखते उसके पंख क्यों उखाड़े ले रही है ?"

"बीच में टोकना ? मैं कुछ बोलूंगी तभी बीच में टोकेंगे। नहीं छोड़ते, हम अपनी तितली।" बच्चों की तरह भड़क उठी।

पदमा समझदारी से मुस्कुराई। इतनी देर से उसने कुछ नहीं बोला इसलिये स्नेह से मुस्कुराकर पूछा—"हां कहो, शरदजी थोड़ी देर चुप रहें।"

"इतने नाम आपने लिये, सभी में एक बात ध्यान देने की है।" जया ने दूसरे हाथ से भौंपड़ी-सी बनाकर तितली को बन्द करके कहा—"पहले मैं यह पूछना चाहती हूँ कि आपने अपनी पसन्द की पात्रियों में 'शेषप्रश्न' की कमल का नाम भूल से छोड़ दिया है या जान बूझकर ?"

"टिपीकल मास्टरनियों की तरह पूछती है।" शरद ने कसा।

उसकी बात पर ध्यान न देकर पद्मा ने उत्तर दिया—"जहाँ तक उस चरित्र का सम्बन्ध है—वह मुझे बहुत ही पसन्द है, लेकिन उसमें जो एक तेजी या है कहना चाहिये एक प्रखरता और तेज है वह मेरी समझ में नही आता। या गले से नहीं उतरता।"

"हाँऽऽ यही बात।" जया जैसे इसी उत्तर की आशा करती थी। बोली—"तो दूसरे शब्दों में आपको केवल वही चरित्र पसन्द है जो कष्ट, दुख, दर्द में रहे अवश्य—लेकिन उससे कुछ सीख नहीं सके। यों ही पराजित होकर उन्होंने अपने आप को दुख को समर्पित कर दिया और अन्त में ख़त्म हो गये। न तो वे इस स्थिति से कुछ सीख पाये और न शक्ति सँजो पाये, और अगर कुछ सीखा भी हो तो उसका उपयोग नहीं कर पाये। कहना चाहिये, जिन्होंने कष्ट सहे और उनसे कभी उबरे ही नही ऐसे चरित्र आपको पसन्द हैं।" वह इतनी देर में बोली है लेकिन उसने अत्यन्त ही महत्वपूर्ण बात कही है, इस भावना से उसने शरद की और देखा।

पद्मा कुछ देर सोचती रही, फिर बोली—"तुम जो सोचो, मैंने कहा न, विश्लेषण करने की स्थिति में मै नहीं हूँ। लेकिन मान लो ऐसी बात है भी, तो मै पूछती हूँ कितने उबरते हैं—कितने उबर पाते हैं ?"

"नहीं पद्मा जी, देखिये बात इसने महत्वपूर्ण कही हैं, लेकिन इसमें कहना नहीं आया। इसे यों समझिये—" शरद ने जया को प्रशंसा-पूर्ण नेत्रों से देखकर कहा..."दुख कितना असहनीय है—अगर सचमुच विवशता में किसी ने उसे उतनी ही तीव्रता से सहा है तो शायद वह कभी नहीं चाहेगा कि वैसा दुख कभी उसके ऊपर आये—या कभी किसी पर भी आये। जहाँ तक, दुख से न उबरने वाले लोगों का, दुख से पराजित समर्पित या कुचले हुए 'क्रश्ड' लोगों का सवाल है हमें

उनसे सहानुभूति है—हमदर्दी है। हम उनके साथ रोने को तैयार हैं; लेकिन उस दुख के विरुद्ध उन लोगों ने क्या किया ?"

पद्मा ने लापरवाही ने कहा—"यही तो मैं भी कहती हूँ शरदजी, सभी तो जॉनआफ़ आर्क या महारानी लक्ष्मीबाई नहीं होतीं।"

"यह मै मानता हूँ; लेकिन नतीजा उसका क्या हुआ ?" शरद ने तार्किक के उत्साह से कहा—"आपने ये सब चरित्र पढ़े, पसन्द किये और आप के भीतर भी एक भावना—अपने आपको कष्ट में रखकर आनन्द लेने की भावना बद्धमूल हो गयी। मनोविज्ञान की भाषा में इसे 'आत्मपीड़न रति' कहिये। स्वस्थ-मस्तिष्क की उपज तो यह है नहीं।"

"खैर यह आपका मन है। आप उसे मनोविज्ञान की कोई परिभाषा दीजिये। लेकिन मै यह पूछती हूँ कि क्या इस प्रकार की रुचि बिना व्यक्तिगत परिस्थितियों के ही हो जाती है ?" प्रश्न करने के पश्चात् सीधी दृष्टि से शरद को देखती पद्मा के पतले-पतले ओट खूले रहे।

"नहीं, बिना व्यक्तिगत परिस्थितियों के नही होती।" शरद को बराबर ध्यान था कि उसका उत्साह कहीं पद्मा की कोमल भावनाओं को ठेस न पहुँचाये, इसलिये उसने बहुत नम्र-स्वर में कहा—"और मैं उन कलाकारों की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता जो इतने सशक्त-पात्रो का निर्माण कर डालते हैं कि हर पाठक उन्हें अपनी व्यक्तिगत-परिस्थितियों की सृष्टि-प्रोडक्ट—जैसा ही समझ लेता है। लेकिन यह जो उन्हीं में सुख लेने की बात है, उन्हीं परिस्थितियों को भाग्य मानकर धीरे-धीरे गलना है—यह पाठक को भी उधर ही धकेलता है—और वह उस गलने को भी अपना लक्ष्य और सुख मानता है ! यह निष्क्रिय बनानेवाला दर्शन, पता नही कैसे लोगों को आकर्षित कर लेता है।"

"खैर, बहस में पड़ना नहीं चाहती—और शायद जीत भी नहीं सकती। आपको बाक़ायदा बहस करना सिखाया जाता है।" पद्मा ने जया की ओर देख कर कहा—"आपको जीवन में शुरू से सफलता ही सफलता मिली है, शायद असफलता और निराशा से आपका सामना हुआ नहीं है—और भगवान करे कभी न हो। तभी आप ऐसा और इतनी आसानी से कह पाते हैं। यहाँ तो...।" उछ्वासित-स्वर में कह कर पद्मा चुप हो गयी। उसका गला भर्रा आया और अगली बात घुट गयी।

शरद उधर नहीं देख रहा था—उसने दूर आहूजा की कोठी में देखते हुए कहा—"आपकी बात न भी लें, तो भी मैं कुछ लोगों को जानता हूँ, जो अगर चाहें तो अपने आपको प्रसन्न रख सकते हैं—लेकिन नहीं रखते। वैसे हिन्दी में इधर 'प्रोफ़ेशनल-सफ़रर्स' या शौकिया दुख उठाकर उस दुख को महमान्वित करने, उसके गीत गानेवाले लेखकों की संख्या काफ़ी बढ़ रही है···।"

लेकिन उसकी बात बीच में ही टूट गयी, जया ने उसकी बाँह में नोचकर

उसका ध्यान पद्मा की ओर आकृष्ट कर दिया। पद्मा आँखों पर सफ़ेद रूमाल लगा कर सुबक उठी थी।

यहाँ एक ओर की रविश ने ज़रा-सा खुल कर एक छोटे गोल-मटोल आमके वृक्ष को अपने घेरे में ले लिया था, आधी रविश पर यह पेड़ छाया किये था। जब शरद ठिठक कर रुक गया तो तीनों इसी के नीचे आ चुके थे।

"अरेऽऽ, पद्माजी, यह क्या ? यह क्या, आप तो···।" उसकी समझ में नहीं आया कि क्या कहकर सान्त्वना दे। उसके बढ़े हुए हाथ रुक गये, पद्मा का शरीर स्पर्श करने की हिम्मत नहीं पड़ी।

पद्मा ने पेड़ के तने पर हाथ टिका लिया और बाँह पर आँखें रखकर और भी जोर से सिसक उठी।

दोनों एक दूसरे को अपराधी की तरह देखते, हत्-बुद्धि और बुद्धुओं की तरह खड़े थे। शरद के मन में बड़ा प्रबल ज्वार उठा कि निकट पहुँच कर, प्यार से पद्मा की पीठ थपथपा कर उसे सान्त्वना दे। लेकिन वह यों ही खड़ा रहा।

तभी सचेत होकर जयाने आगे बढ़ कर पद्माका हाथ पकड़ लिया—"चलिये पद्मा जीजी, आप तो इनकी बातों का बुरा मान गयीं ! इनकी तो ऐसी ही आदत है, मुझे भी ऐसे ही तंग करते रहते हैं···।" फिर भर्त्सना से शरद को देखकर बोली —"रुला दिया न ? अब कैसे खड़े हैं ? हाँऽऽ, तो नहीं ! चलिये जीजी, चलें।"

और जिस तरह जया पद्मा को गोद में भरकर ले चली उसे देखकर शरद को लड़की का सुसराल के लिये विदाई का दृश्य याद आ गया। उसने बड़ी मुश्किल से मुस्कुराहट को रोका— वह पीछे-पीछे चला ; सिर लटकाये...

जैसे झंकार की गूंज अभी तक वातावरण में साँस लेती इधर-से-उधर थर-थरा रही हो और उसके स्वर की प्रत्येक तरंग उसके तन-मन और आत्मा को छू रही हो, अंधेरे में शरद चुपचाप बैठा रहा। बाहर हवा तेज होती जा रही थी। सीले मौसम में ठण्ड की तेज हवा बड़ी चुभनी हो जाती है—जैसे अणु-अणु को भेद जाएगी। अभी जया यह कहकर कि 'आइये पद्मा जीजी, हम आपको छोड़ आयें थोड़ी दूर तक' पद्मा के साथ उसे पहुँचाने चली गयी है। अभी लौटती होगी। अंधेरे में उठकर बत्ती जला लेने की ज़रूरत है। हुँ, होगी। मन नहीं कर रहा। पद्मा का आज दिनभर का व्यवहार; रो पड़ना और फिर गीत—सभी कुछ जैसे आत्मा में समा गया है, उसे गलाये दे रहा है। उफ़् ! बेचारी कितनी सुन्दर है और किस तरह धीरे-धीरे गली जा रही है। काश !—खैर छोड़ो।

पद्मा को रुला देने के अपने अपराध के प्रक्षालन के लिये ही जैसे कृत्रिम रूप

से हँस-हँसकर शरद उन दोनों को बड़ी देर तक अपने भींगने की कथा सुनाता रहा था।

"तो सा'ब, इस तरह विरासत की बातें, क्यों नही सब मज़दूर एक साथ मर गये इत्यादि क्रान्ति की बातें बताते हुए जब देशबन्धुजी सरकिट-हाउस में पहुँचे तो पानी मूसलाधार बरस रहा था।" शरद बताने लगा—"सरकिट हाउस के बाहर फाटक के भीतर की ओर दो-चार पेड़ों के पास के नीचे एक कैम्प लग रहा था। वहीं गाड़ी रुकवा कर वे बोले 'ऐसा करो शरद बाबू, तुम यहाँ उतर जाओ—भीतर पास-वास की ज़रूरत पड़ेगी—बस मैं अभी आता हूँ। दस मिनट में जाते हुए ले लूँगा।' खैर, हमें उतरना पड़ा। उस वक्त नेताभैया यह बिल्कुल भूल गये कि यह कह कर लाये थे कि 'चलो मन्त्रीजी से मिला लाये'। कार का दरवाज़ा खालकर दौड़कर हम कैम्प में आ गये। कैम्प क्या, छोलदारियाँ थी जिन्हें कुछ अजब ढंग से एक दूसरेमें मिला कर बीस-पचीस आदमियोके बैठने लायक़ जगह बना ली गई थी। पुरानी लम्बी-लम्बी दो-तीन मेज़ें पड़ी थी। उन्ही के पास पड़ी कुर्सियों पर या वैसे ही मेजों पर आठ-दस बे-पढ़े लिखे-से आदमी बैठे थे। बीच में मेज पर एक अत्यन्त पुराने फैशन का टेलीफ़ोन लिये अधेड़-सा व्यक्ति बैठा था, वही समझिये कुछ भला आदमी-सा लगता था। टेलीफ़ोन के रिसीवर और माइक अलग-अलग थे और पीतल के बने थे। जैसे ही मैं उस कैम्प में खड़ा हुआ सब एकदम चुप हो गये—पहले मेरी ओर देखा और फिर बीड़ियाँ पीने, क़हक़हे लगाने और भद्दी से भद्दी गाली मे एक दूसरे को 'प्यार' का सम्बोधन करने में लग गये। एक कुछ भींग हुए-से आदमी ने जो एक नेकर और बाहर निकली मैली-सी कमीज पहने था दियासलाई की सींक से दाँत कुरेदते हुए पूछा—'आप किधर से आ रहे हैं?' उसके पूछने का ढंग ऐसा था जैसे उनमें से हर कोई किधर न किधर से आही रहा हो। मैने बहुत लापरवाही मे कहा—'मैं बाहर से आ रहा हूँ।' पता नही उसने कहाँ से सुन लिया 'सेण्ट्रल'। और एकबार यह 'सण्ट्रल' शब्द सभी लोगों में गूँज उठा—सेण्ट्रल से आये हैं। मैं तब भी नहीं समझा। फिर जो आदमी मुझसे बातें कर रहा था उसका ध्यान अपनी ओर करने के लिये कन्धा पकड़कर खींचते हुए उसका साथी जोश से बताने लगा—'यार, अपनी तो दम निकल गयी, सुबह से वहाँ छिपकली की तरह रोशनदान के नीचे लगे खड़े थे। मैं सोच रहा था कोई रिलीव करने आये—वहां कोई साला पहुँचा ही नही।' यह बात कहते समय वह हरबार मेरी ओर देख लेता कि क्या असर पड़ रहा है। धीरे-धीरे मेरी समझ में आ गया—सब इन्टैलिजेन्स-विभाग के लोग हैं। और मन्त्रीजी की रखवाली कर रहे हैं। उनमें से कोई कहीं बाहर पेड़ के नीचे भींग रहा था कोई पंखे की डण्डी में सीलिंग के ऊपर लटका था और कोई खुरपी लेकर बोरा ओढ़कर क्यारियां निरा रहा था। मुझे सब इसलिये आदर और सम्मान से देख रहे थे ही उनकी समझ में मैं सेण्ट्रल से

पहुँचा था। ज़रा भी कहीं कोई ऐसा-वैसा सवाल आ जाता तो अपने राम को निकाल कर बाहर खड़ा कर दिया जाता और पता नहीं, बाहर खड़े कब तक भीगते, इसलिये गम्भीरतापूर्वक चुपचाप खड़े रहे। अचानक उन लोगों में भगदड़ मच गयी—।" शरद ने ज़रा रुक कर देखा कि पद्मा और जया पर क्या प्रतिक्रिया हो रही है और वे उसकी बातों मे रुचि ले रही है या नहीं।

पद्मा ज़रूर खोई-खोई थी। उसकी गुलाबी आँखों का सूनापन अब सिमटता आ रहा था। जया खूब ध्यान से सुन रही थी। दोनों घुटनों पर कुहनियाँ रख कर हथेलियों पर कनपटियों टिकाये ज़रा आगे झुकी वह एक-टक उसे देख रही थी। कभी-कभी उसके इस देखने की याद आते ही वह सचेत हो जाता था, तब उसकी ज़बान पर शब्द आते-आते रुक जाते—'ऐसे क्यों देख रही हो। पर फिर वह सँभल कर कहने लगा—"अचानक पता चला कि मन्त्री जी चल दिये। सब लोग एकदम शैतान बन्दरों की तरह, कोई इधर भाग गया, कोई उधर। वहीं पाँच-छः आदमी रह गये। मै भी घबराया-सा इधर-उधर देखने लगा। पानी कम हो गया था। मोटर को आवाज़ सुनाई दी और सामने से सिपाहियों से भरी एक 'स्टेशन-वैगन' गुजरी—फिर बरसाती वाली पिक-अप। उसमें भी सिपाही भरे थे। फिर बहुत बढ़िया लम्बी-सी कार जिसमे पीछे नेताभैया के साथ कोई दो और बैठे थे। आगे ड्राइवर की बगल मे कोई और साहब डटे हुए थे। कार एक सेकेण्ड को रुकी और नेता भैया ने मुझे इशारे से बुलाया। मै पहुँचा तो, बस उनका यह वाक्य ही सुन सका—'पीछे बैठ आना, मैने कह दिया है।' तभी गाड़ी 'सर्र' से चल पड़ी। पीछे अपनी गाड़ी थी, लेकिन उसमें पन्द्रह-बीस, पता नहीं कौन-कौन लोग भरे थे, और उसमें तिल रखने की जगह नही थी। वह भी निकल गयी। फिर एक पिक-अप' आयो। उसमे पीछे केवल दो ही व्यक्ति बैठे थे। वह मेरे सामने रुक गयी। मेरे साथ इस इस कैम्प के एक और सज्जन आ चढे। हमारे ऊपर पाँव रखते ही एक ज़ोरदार झोक लेकर 'पिक-अप' दौड़ पड़ी। सब कुछ ऐसी भाग-दौड़ में हो रहा था जैसे कही हल्ला करने जाना हो। इस' पिक-अप' मे पीछे कोई बरसाती नहीं थी और पानी सीधा पड़ रहा था। अब इसके बाद पद्माजी, आप समझ लीजिये वहां से और यहां तक क्या हालत हुई होगी।

"पहाड़ी सड़क, उतार का मौक़ा, और अन्धाधुन्ध भागती गाड़ियाँ—जैसे 'रेस' हो रही हो! पहाड़ पर पल मे तो ऐसी बारिश लगती कि तड़ातड़ खोपड़ी पर गोलियाँ पड़ रही हो, और पल में सूखा आ जाता। मैने कसकर दोनों तरफ से पकड़ लिया था। कदम-कदम पर मोड़ थे और वे पठ्ठे ड्राइवर एकदम ऐसे सपाटे से मोड़ लेते थे कि एक साथ ब्रेक चीख उठते—उस समय एक ओर नीचे सैकड़ों फीट पहाड़ को ऊँचाई-तह पर तह चली जाती तल्लहटियाँ—घास-फूस से दिखाई देने वाले बड़े-बड़े पेड़ दरारें—पतली लकीर-सी

नदी और फिर दूर-दूर तक चला जाता हुआ फ़ैला खुलाव—जब उधर देखते तो डरके मारे प्राण सूख जाते। दूसरी ओर सड़क से सटी ऊँची पहाड़ी दीवार, जिसपर से बह-बह कर आती पानी की धाराएँ चिकनी सड़क पर बाढ़ ला रही थीं। सुन रखा था ऐसी हालत में सावधान से सावधान गाड़ी का फिसल जाना ज़रा भी मुश्किल नहीं है। यहाँ तो सारी घाटियाँ मोटरों की जन्न्-जन्न् से गूँज रही थी—और ऐसा लगता था जैसे किसी तोप में से छूटे रॉकेट हों। विश्वास हो गया कि आज किसी हालत में बचना नहीं है। पहाड़ पर जब कि गाड़याँ पच्चीस-तीस से ज़्यादा नहीं चलतीं, उस समय हम लोग पैंतालिस-पचास पर चल रहे थे। आगे वाली गाड़ी जितनी तेज़ चलती उतनी यह भी। मेरे साथ मन्त्रीजी का अर्दली लाल बर्दी में था—बॉडीगार्ड था और पता नहीं कौन था—वे लोग अपनी-अपनी डींगें हांक रहे थे। एक बता रहा था कैसे उसने पिस्तौल छिपा रखी है कि चाहे जितना पानी बरसे उसपर असर नहीं पड़ेगा। जब भी गाड़ी मोड़ लेती—तो एक दूसरे से टकराने के बाद इधर उधर टकरा कर वे सब लापरवाही से कराह उठते। उनमें से कोई कह उठा—आज यह मार कर छोड़ेगा। दूसरा कहता आज साहब की गाड़ी "तसमई" (एक दूसरे मिनिस्टर का नाम) के ड्राइवर के साथ में है न, वह साला धरती पर तो चलता ही नहीं है। मजाल जो पचास से नीचे कभी उतरे।" मुझे रह-रह कर झुँझलाहट आ रही थी—कहाँ आ फँसे।" शरद फिर रुका, पद्मा उस दुर्दशा की और उस समय की मानसिक-स्थिति की कल्पना करके मुस्कुराने लगी और सुखके उतार-चढ़ाव देखकर जया हँस रही थी।

उन लोगों को और भ प्रसन्न करने के लिये उसने कहा था—"मेरे बाल उड़-उड़कर आंखों पर थपेड़े मार रहे थे, और हवा इतनी तेज़ थी कि पलकें खुलती ही नहीं थी—फिर बूंदों की मार। हर बार लगता था, गाड़ी इस बार गई। बस अब के नहीं बचेगी—कभी-कभी तो नीचे के ढाल से बस आधा-आधा फुट रह जाती थी। मिन्टों में गाड़ियाँ नीचे आ गईं—पहाड़ पीछे छूटने लगे। अब तो सीधी सड़क थी। मेरा ख्याल है मुई कम-से-कम सत्तर से आगे ही होगी। पेड़, तार के खम्भे किसी पर निगाह रुकती नहीं थी—जगह-जगह सैल्यूट करते सिपाहियों को जब तक देखो तब तक वहां से दो फर्लांङ्ग दूर निकल आते थे। खुदा न ख्वास्ता, अगर कहीं सामने की गाड़ी किसी वजह से रुक जाती तो पिछली किसी भी गाड़ी के बचने की कोई उम्मीद नहीं थी। मैं तो भाई, आज तक ज़िन्दगी में इतनी तेज़ रफ़्तार से किसी भी चीज़ पर बैठा नहीं हूँ। मेरे तो होश गुम हो गये थे। बस बार-बार यही लगता अब गये—अब गये। बेचारी जया खाना परोसे बैठी राह देखेगी—यहाँ कहीं चकनाचूर हुए रखे होंगे। बात की बात में यहां ला रखा। जब मोटर रुक गयी तो भी बड़ी

देर तक दिमाग़ में वही पेड़ और खेत भागते रहे। जैसे दिन और रात भाग रहे हों —अँधेरा नाच रहा हो, धरती हिल रही हो। बड़ी देर में तो मैं सीधा खड़ा हो पाया। फिर जैसे-तैसे झूमता-झामता यहाँ आया तो यह कम्बख्त मज़ाक उड़ाने लगी।"

जया हँसते-हँसते दुहरी हो गयी थी। वह पेट पर हाथ रखकर कुर्सी के एक हत्थे पर औंधी लदकर हँसे चली जा रही थी। बड़ी मुश्किल से अपने पर नियन्त्रण करके बोली—"देखा, पद्मा जीजी, बन्दर की बला तबेले के सिर। यहां आकर हमारे ऊपर दांत और पंजे निकाल कर पड़े और यह नही कहेंगे कि वहां मिनिस्टर-साहब से मिलने गये थे—सोचा होगा मिनिस्टर-साहब बगल में बैठा कर लायेंगे।"

"अरे मर गये, मिनिस्टर-साहब।" शरद ने मुँह बना दिया। असल मे वह अनुपस्थित मिनिस्टर साहब के प्रति अवज्ञा प्रदर्शित करके जया को बताना चाहता था कि उसकी पहली झुंझलाहट का कारण वह स्वयं नहीं था, इसलिये जया को ऐसी गम्भीरता से उसे लेना भी नही चाहिये।

"अब कहां गये ?" पद्मा ने फिर सुस्त पड़कर पूछा।

"सरकारी 'गेस्ट-हाउस' में ठहरेंगे शायद। मुझे तो उस वक्त होश ही नहीं था, क्या हो रहा है। और गये होंगे भाड़ में, हमें क्या करना है।" शरद ने पिछला आक्रोश व्यक्त किया—"कहीं सभापतित्व करेंगे, कहीं नीव रखेंगे, कहीं उद्घाटन करेंगे·····।"

"आपको न करना सही, हमें तो करना है।" पद्मा ने एकटक शरद के कुर्सी के हत्थे को देखकर कहा।

"क्यों, आपको क्या करना है ?" दोनो चौंके।

"कल पार्टी है न, हमे तो उनके सम्मान मे परफॉर्मेन्स देना है।" बड़े कष्ट से वह बोली।

"अच्छा तो।" शरद को ध्यान आगया—"तो इसमे ऐसे सोच की क्या बात है। आप तो ऐसी सुस्त हो गयी जैसे कोई बहुत बुरी बात होने जा रही हो। अरे, इसमें क्या है—यह तो कला का प्रदर्शन है।"

"सुस्त ?—सुस्त कहाँ ?" पद्मा चौककर खिसियानी-सी हँस पडी—"सच-मुच मैं भी बड़ी बेवकूफ़ हूँ।" वह झेंप गयी।

विचित्र लड़की है। ज़रा-सी देर मे ऐसी सुस्त होकर बैठ जाती है जैसे वर्षों से हँसना नहीं सीखा हो। थोड़ी देर चुप रहने के बाद उसने बड़े अनुरोध से कहा था—"पद्मा जी, आप कहाँ क्या सीख कर आई हैं इससे हमलोग ही क्यों वंचित रह जायेंगे ?"

"वंचित क्यों ?—आप भी सुनिये, देखिये कल।" बड़ी निरीह-दृष्टि से पद्मा ने देख कर कहा।

"कल तो देखेंगे ही—और वहाँ हम ही अकेले क्यों होंगे, सभी होंगे ? कल

रहे, न रहे, कौन जाने।" और उसने समर्थन प्राप्त करने के लिये जया की ओर देखा ।

और थोड़ी ही देर बाद जया और शरद, पद्मा की ओर जब उत्सुकता से गीत सुनने की प्रतीक्षा करते देख रहे थे, तब लाल-लाल बादलों के किसी कोने से लुक-छिप कर डूबते सूरज को दो-चार किरणें तिरछी होकर जंगले से आ रही थीं। आखिरी किरणों की तेजहीन लकीरें—बढ़ते चले आते अँधेरे में बड़ी करुणोत्पादक उदासी बिखेर रही थीं। पश्चिम का आसमान फूल रहा था—और बादलों के हाथी-घोड़े मन्दिर अँधेरे पर्दे के पीछे क्षितिज के नेपथ्य में खो चले थे। चिड़ियों की चूँ-चूँ शान्त पड़ रही थी, और बड़ा विचित्र सीला-सीला सन्नाटा उमड़ता चला आरहा था।

पद्मा चुप होकर धीरे-धीरे गुनगुनाती रही थी, और शरद कुर्सी के हत्थे पर दोनों पांव लटका कर तिरछा बैठा ध्यान से उसे देख रहा था। जया हल्के-हल्के निचला ओठ नोंचती हुई एक टक ऊपर छतकी ओर ताकती प्रतीक्षा करती रही थी। गुनगुनाहट मुखर हुई, ओंठों से स्वर फूटे—

'हेरी मै तो दरद दिवाणी, मेरा दरद न जाणें कोय'...

चलती हुई हवा ठिठक गयी थी, बढ़ता हुआ अँधियारा रुक गया था, और होंठों पर उँगली रखे वातावरण स्तब्ध खड़ा सुनता रहा था।

'घायल की गति घायल जाने, की जिन लाई होय'...

साँस लेने में भय लगता था कि कहीं गीत की पीड़ा भंग न हो जाय, कहीं इतनी देर में कुछ छूट न जाय, और कहीं साँस से बिखर कर दर्द का पराग छिन्न-भिन्न न हो उठे···

पद्मा के फड़कते नथुने, शरद की दृष्टि में पैठे चले गये। केवल एक तन-मन को भुला देने वाली तन्द्रा की सम्मोहिनी अपना चौड़ा फन फैला कर वातावरण में झूमती रही थी। शरद को आँखों में आंसू भर आये थे, उसका कलेजा पिघलने लगा था। अवचेतन मन में वह सोचता रहा था, कौन-सा दर्द है जो इस लड़की की आत्मा में इतना गहरा उतर गया है—इसके मन में इतना व्याप्त हो गया है कि इस खिले फूल की मुस्कान छीन ली है।

और जब पद्मा 'दरद दिवाणी' को धीरे-धीरे क्रमशः मन्दतर दुहराती हुई, चुप हो गयी तो उसे ऐसा लगा जैसे उसकी वाणी का अन्तिम सिरा घुटकर उसके रुँधे-गले की भर्राहट में खो गया है। अँधेरा उस समय काफ़ी उतर आया था और एक दूसरे की केवल छायाकृतियाँ ही दिखाई देती थीं। गीत खत्म हो चुका था लेकिन सब लोग चुप बैठे थे।

पता नहीं कब तक वे लोग इसी तरह बैठे रहे। अँधेरा काफ़ी घना हो गया था।

तब पद्मा ने एक गहरी साँस लेकर उठते हुए कहा था—'अच्छा, शरदजी, जया, अब चलें। देखो, कब से बैठी हूँ। आज तो सच, पूरा दिन यहीं कटा है।" फिर बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये वह उठ खड़ी हुई थी।

"चलिये जीजी, आपको मैं वहां तक छोड़ आऊँ।" जया भी चौंककर उठी।

"नहीं, रहने दो न, तुम बैठो।"

"नहीं—बात क्या है इसमें...।" और वह भी साथ ही चल दी थी।

"अच्छा, शरदजी, कोई ऐसी-वैसी बात हो तो माफ़ कीजिये।" द्वार पर ठिठक कर पद्मा ने कहा, और दोनों अँधेरे में खो गयी।

"कैसी बात कर रही है, पद्माजी?" शरद ने वैसे ही कहा।

पद्मा का स्वर बाहर सुनाई दिया। वह जया से कह रही थी—"सलाई और ऊन सुबह ले जाऊँगी।"

वह यों ही अंधेरे में बैठा सोचता रहा—या कहो, शून्य, विचार-शून्य-सा बैठा रहा। पाँव उसके अब भी कुर्सी के हत्थे पर लटके थे—पद्मा बेचारी बड़ी दुखी है। अब उसकी समझ में पद्मा की उपेक्षा, उदासीनता और मौन का मनोविज्ञान आ रहा था। काश! —वह—पद्मा उसे बहुत शुरू से पसन्द है, लेकिन हमेशा उसे देखकर ऐसा लगता रहा है जैसे वह कोई ऊँचा फूल हो—जिसे लेने की कोशिश बेकार हो। जिस तक हाथ पहुँचाना एक स्वप्न हो, दुस्साहस हो। वह हमेशा इतनी चुप आत्मलीन और 'रिज़र्व'-सी रही है कि इस तरह की कोई बात सोचने में मन स्वयं ही धिक्कार उठा है। कुछ बोलने की कभी हिम्मत ही जैसे न पड़ती हो। लेकिन ईमानदारी की बात तो यह है कि उसके मन में जमी बैठी उदासी को जादू के मन्त्र से उड़ा देने की उसके पास भी तो कोई तरकीब नहीं है। मानलो पद्मा तब भी इतनी ही दुखी रहती तो—जया बहुत जल्दी ही उससे ऐसी घुल मिल गयी है जैसे वर्षों साथ रही हो। बुरी तो जया भी नहीं है। न सही उतनी सुन्दर लेकिन जया में जो एक तेज़ है, एक साहस-पर्ण प्रखरता है, वह अपने सम्पर्क से वास्तव में बड़ा बल देता है। बेचारी ने कम त्याग किया है? —घर-बार सब छोड़ कर चली आई है। जैसे कभी कहीं रही ही न हो और केवल मेरे साथ रहना ही उसके जीवन का चरम उद्देश्य हो। अब कह सकता है कोई कि वह कहीं और भी रही है? मुझे भी इतना ज़रा-ज़रा-सी बात में भड़कना नहीं चाहिये। इसमें उसका क्या कसूर है? मेरा तो खैर कुछ नहीं है—ज़रा बेशर्म हुए और सारी दुनियाँ को जूते की नोंक उड़ा दिया—लेकिन एक लड़की के लिये इससे ज्यादा बदनामी और क्या होगी? 'भाग गयी'—'भाग गयी!' —वह जया के प्रति सहानुभूति से विभोर हो आया था—"

"दादा—आपसे ज़रा-सी बत्ती नहीं जलाई गई, अँधेरे में बैठे हैं।" आते ही जया अनुमान से स्विच की ओर बढ़ी।

"जया।" तन्द्रा से चौंककर शरद ने प्यार भरे स्वर में कहा—"यों ही रहने दो न। पहुँचा आई ?" घुटनों के नीचे के पाँव सुन्न हो आये थे—वह सीधा बैठ गया।

"हाँऽऽ, बाहर हवा बड़ी ठण्डी है, अंधेरा भी तो देखो कितना घना है न।"

शरद ने खिड़की से बाहर झाँका, बैठे-बैठे ही। क्वार्टर से थोड़ी दूर सीमेंट के लट्ठे पर लगा ग्लोब कोहरे के वृत्त में जैसे मुँह झुकाये चुपचाप खड़ा था। बड़ी हल्की एक रोशनी की छाया-सी खिड़की के बाहर आकर ही समाप्त हो गयी थी। काले तख्ते पर चौक के बिन्दुओं जैसे रोशनी के धब्बे इधर-उधर कहीं-कहीं पत्तियों की गोदी में दिखाई दे रहे थे।

"जया,"

"जी,"

जया धीरे से आकर कुर्सी के हत्थे पर पीछे टेक का आधार लेकर बैठ गयी—शरद के कन्धे पर जैसे प्यार का बादल लद आया। उसने पीछे—जया के वक्ष पर सिर टिका लिया। एक मांसल दबाव से उसकी गर्दन का पिछला भाग सजीव-सचेत हो आया। जया ने दोनों हाथ उसके सिर पर रख दिये और धीरे-धीरे माथे पर फिराती रही। जब उसकी कोमल गुद-गुदी हथेली और उँगलियाँ माथे पर घूमती हुई बालों को पीछे करतीं तो बालों की जड़ों में महसूस होने वाला हल्का सा खिंचाव—बड़ी दूर तक दिल की गहराइयों में तैरता चला जाता।

"तू मुझे दादा क्यों कहती है...ऐं ?"

"फिर क्या कहूँ ?" नाक के स्वर में उसने कहा, और अपना गाल उसके सिर पर टिका लिया।

"जानती है दादा माने 'बड़े भैया' है।"

"जो भी हो, मुझसे नहीं कहा जाता कुछ और।" फिर कुछ देर चुप रह कर—"मेरे लिये तो एक सम्बोधन है—मतलब चाहे जो हो।"

"हाँ—यह बात भी ठीक है।" शरद ने कहा, रुक-रुक कर धीरे-धीरे—"तुम दादा नहीं कहती तो हमें और तुम्हें मिलने ही कौन देता ? सचमुच हमारे समाज में यह स्थिति कहाँ आई है कि हम लोग साहस-पूर्वक कह सकें कि हमारा तुम्हारा सम्बन्ध मित्रता का है, भाई-बहन का नहीं। प्रकृति लेकिन थोड़े ही रुक जायेगी। वह धीरे-धीरे उन शब्दों को बेकार कर देती है जो उसकी स्वाभाविक -गति और प्रवाह को रोकते हैं। देखो, एक हिन्दुस्थानी मध्यवर्गीय-परिवार में पुरुष के कितने गिने-चुने रास्ते हैं, भाई-बहन बन गये, मास्टर-शिष्या बन गये, देवर-भाभी या फिर जीजा-साली—कोई और रास्ता ही नहीं है। आखिर प्रकृति को भी तो इन्हीं में अपना रास्ता खोजना है—और शब्द पके फल के छिलके की तरह व्यर्थ हो जाते हैं..."

"कोई और बात कीजिये न, क्या लेकर बैठ गये हैं ?" हाथ वैसे ही माथे को सहलाता रहा।

"क्या बात करें।" शरद ने हल्की साँस लेकर कहा—"मन नहीं करता। आज बहुत थक गया हूँ। तुम्हारा हाथ बड़ा अच्छा लग रहा है। सचमुच तू अगर थोड़ी बेवकूफ़ न होती तो बड़ी अच्छी थी।" उसने दोनों हाथ पीछे उठा, जया के गले में मण्डलाकार डाल लिये।

और एक विभोर-आलस्य में खोये दोनों बड़ी देर तक यों ही बैठे रहे।

फिर जैसे कहीं बड़ी दूर से बोल रही हो, इस तरह जया ने कहा—"पद्मा जीजी, बिचारी बड़ी दुःखी है।"

शरद कुछ नहीं बोला। कुछ देर बाद पूछा—"कुछ कह रही थी क्या ?"

"कहती क्या !" उसने एक गहरी साँस ली।

"भावुक भी तो है बहुत।" शरद ने कहा—फिर अपनी मां की हरकतें देख कर करे क्या...एक गहरी सांस लेकर—पढ़ी-लिखी, सुन्दर कलामयी और किस तरह बिचारी की ज़िन्दगी खराब हुई जा रही है।"

"मायादेवी भी तो गज़ब करती हैं—पता है वह मन-ही-मन क्या चाहती हैं ? फिर कुछ रुककर उसने स्वयं जवाब दिया—"वे चाहती है पद्मा सत्य बाबू को फाँसे।

"अच्छा ?" शरद को विस्मय हुआ—"तुमसे कह रही होगी ? लेकिन नहीं, पद्मा ऐसी नहीं है...।"

"और पद्मा जीजी, चाहती है, एक उनके मौसी के या दूर की चाची के लड़के हैं—उन्हें। बहुत दिनों से चाहती है..." जया कहे जा रही थी।

"करता क्या है ?"

"पी-एच० डी० है शायद, कहीं प्रोफ़ेसर है।"

"अच्छा ! तूने तो दो ही दिन में सब खोद-खाद कर निकाल लिया। प्रशंसा से शरद ने कहा, फिर पूछा—"वह चाहता है ?"

"बहुत ?" उसने 'हु' अक्षर को खींचकर बोलते हुए कहा—"मैंने तो एक-एक पत्र पढ़ा था, सच, मेरी आँखों से तो आँसू निकल आये...।"

"तो फिर दिक़्क़त क्या है?" शरद बोला—"क्यों गला रही है अपने आपको ?"

"पता नहीं...कुछ रिश्ते का भी चक्कर है, और कुछ और बातें हैं। वो खुद तो जाने क्या-क्या बता रही थी..."

"क्या ?"

"असल में उन्हें कुछ इस तरह का विश्वास हो गया है कि उनके आस-पास दुर्भाग्य का एक घेरा रहता है, जो भी उनके सम्पर्क में आता है, उसे वह ग्रस लेता है। कुछ अजीब-अजीब धारणायें उन्हें अपने बारे में हो गयी हैं। कहती हैं कि 'मैं उन्हें चाहती हूँ और ज़िन्दगी भर यों ही चाहती चली जाऊँगी। हमारा यह

आत्मा-आत्मा का प्यार; शरीर और भौतिकता की उपेक्षा क्यों करे ?' वह उसे अपनी अस्तित्व की गहराई से प्यार करती है कि उनकी क्षेम-कामना अपने दुर्भाग्य-पूर्ण मण्डल से उन्हें दूर ही रखना चाहती है—कुछ विचित्र-विचित्र बातें हैं। अपनी समझ में तो आई नहीं।"

"मुझे भी कुछ झमेला ही लगा..."

'और सच बात तो मेरी समझ में यह आई कि... वह चुप हो गयी।"

"कि क्या ?" थोड़ी देर राह देखकर शरद ने पूछा।

"...कि सभी अपनी तरह बेशर्म थोड़े ही है।" अँधरे में जया के मुस्कुराने गालों को; शरद ने अपने बालों पर महसूस किया।

"बेशर्म !" शरद धीरे से हँसा और चुप हो गया। कुछ क्षण बाद बोला —"जया, पता नहीं तुम्हें लगता है या नहीं, मुझे तो ऐसा लगता है कि सूरजजी की तरह इसे भी हम लोगों ने ही बहुत डिस्टर्ब्ड कर दिया है..."

शरद रुका कि जया कुछ कहे—इसके समर्थन में या विरोध में, लेकिन जया ने कुछ नहीं कहा, तो वह बोला—"लोग घुटते हैं, गलते हैं, छटपटाते हैं लेकिन ज़रा-सी हिम्मत नहीं कर पाते ! अपनी निष्क्रियता और कमज़ोरी को तरह-तरह का नाम देते हैं, अलग-अलग रूपों में व्यक्त करते हैं और आखिरकार उस पर अध्यात्म की चिप्पी लगाकर सन्तोष की साँस ले लेते हैं। ये दुनियाँ भर की मनोवैज्ञानिक विकृतियाँ, ये सारे निराशावादी-दर्शन—सब बस; ज़रा-सी कायरता और कमज़ोरी को 'सब्लाइम' करने, सुन्दर बनाकर प्रस्तुत करने के तरीके हैं—और जब हम जैसा बेशर्म कुछ साहसका काम कर डालता है तो वे चकित होकर आँखें फाड़-फाड़ देखते हैं, लांछित करते हैं लेकिन खुद 'डिस्टर्ब्ड' हो जाते हैं। क्योंकि सपने, जिनकी गर्दनें मरोड़-मरोड़ कर उन्होंने अवचेतना की कोठरियों में फेंक दिया था; भावनाएँ और आकांक्षाएँ; निराशा और आत्म-दमन की धूल डाल-डालकर जिन्हें दफ़न कर दिया था—वही सब सपने फिर सिर निकाल-निकाल कर झांकने लगते हैं—उनकी सुन्न पड़ी हुई मस्तिष्क की शिराओं में रेंगने लगते हैं, और फिर उनकी पिछली कायरता पश्चाताप की लपट बन कर उन्हें भूनने लगती है—उस दर्द और असमर्थता को वे अपनी गालियों में छिपाते हैं—जो स्वयं नहीं कर पाये उन्हें दूसरों को करता देखकर गाली देते हैं—और स्वयं शहीद बनने का ढोंग करते हैं।" जया अपने परिहास को रोक नहीं सकी। हँसकर बोली—"तो यों कहिये, हम लोग मसीहा बन कर आये हैं।"—लेकिन तभी उसे कपिल की पत्नी तथा इसी तरह के और लोगों की निगाहें ध्यान हो आईं। वह सुस्त हो गयी।

"अब जो समझो।"

मौन···एक प्रिय मौन···थकावट के बाद एक संजीवन-मौन...

"पद्मा बेचारी शुरू से ही उपेक्षित रही है न, उसे कभी निश्छल-स्नेह नहीं

मिला—जो भी ज़रा सहानुभूति दिखा देता है, वहीं उसकी आंखें छलछला आती हैं...।" शरद पद्मा के बारे में सोच ही रहा था।

"तुम्हें बहुत अच्छी लगती है ?"

शरद ने बहुत ध्यान से सुना, उस स्वर में कोई व्यंग्य नहीं था—एक हल्की सहानुभूति में हर अक्षर डूबा हुआ था। उसने कहा—"मुझे उससे बड़ी सम्वेदना है। लेकिन तू यह क्यों पूछ रही है ?"

"कुछ नहीं...यों ही..."

और फिर एक चुप्पी। शरद उसकी गर्दन को बालों पर धीरे-धीरे थपथपाता रहा। उसे उस दिन का जया का बर्राना याद आगया।

"तुझे याद नहीं आती...घर की..."

"उँह, छोड़ो।" जया ने एक जँभाई ली, फिर बोली—"पैसे नहीं लिये ?"

पैसे की बात से शरद को कार की पूरी बातें पुनः याद हो आई।

"पैसे ? हां पैसे की बात मैंने कही थी, लेकिन कल तक वे बहुत अधिक परेशान हैं। मैं भी सोचता हूँ यह मिनिस्टर-विनिस्टर का झंझट समाप्त हो जाने दूं तो खुल कर सारी बातें तय कर डालूँ—मुझे ऐसा लगता है अगर हमने सारी बातें तय नहीं की तो बड़ा धोखा हो जायेगा—। "बोलते-बोलते शरद के दिमाग में अस्पताल का चित्र सजीव होकर कौंध गया—"जया, आज मैंने बड़ा भयंकर दृश्य देखा, उफ़ ! अब भी दिल काँप जाता है ! तुमने कभी गोली खाया आदमी देखा है— ?"

"हाँ, एक दफा। एक डाकू लाया गया था हमारे यहाँ स्टेशन पर रात भर लाश रही, तब हम सब लोग बहुत छोटे थे, रात भर डर लगा था—"

बात काटकर शरद बीच में ही बताने लगा—"मैंने तो आज तीन लाशें देखीं, बेहोश होते-होते बच गया, और वहां एक कोई और था जिसने लाशों से कपड़ा उठा दिया—उफ, कैसी कड़क थी आवाज़ में। जब हज़ारों लोगों की आवाज़ समो कर आदमी बोलता है तो कैसी भाले-सी नुकीली और फ़ौलाद सी ठोस आवाज़ हो जाती है—लेकिन यह कम्बख्त बड़ा क्रूर है—"

'कौन ?"

"यही देशबन्धुजी, बड़ा चालाक है। बातें बनाकर वहाँ से चला आया और फिर ऐसे बातें करने लगा जैसे कुछ हुआ ही न हो—मेरी आँखों में तो अभी तक वह दृश्य नाच रहा है। ये लोग बड़े निर्दयी होते—"

शरद का वाक्य पूरा भी नहीं हुआ था कि बाहरसे आवाज़ आई—"भैया जी ! भैया जी !"

शरद ने पहचाना केशव की आवाज़ थी। वह बड़ा घबराया-सा लगता था। जया छिटक कर अलग खड़ी हो गयी और शरद सीधा बैठ गया।

"क्यों, केशव ? —क्या बात है।" वह बाहर को ओर चला। किवाड़ अभी तक खुले थे। जया पता नहीं क्यों किवाड़ की आड़ में खड़ी हो गयी। शरद ने बिजली जला दी।

"भैया जी, —ये सूरजजी कहाँ हैं ?"

"सूरजजी ?—सूरजजी का हमें क्या पता ?" वह स्वयं भी घबरा गया "—कल रात से ही पता नहीं है।"

'कब आयेंगे—कुछ पता नहीं है ?" उसने सूरजजी के कमरे के ताले को देखते हुए कहा।

"मैं केसे बता सकता हूँ ? आखिर बात क्या है, कुछ पता तो लगे ?"

"एक ऑर्डर है।" केशव ने हिन्दी में टाइप की हुई एक चिट जेब से निकाल कर शरद की और बढ़ाते हुए कहा—"यह उन्हें अभी मिलना है, वैसे तो डाल भी जाता।"

कांपते उत्सुक हाथों से लेकर शरद ने पढ़ा—"आपकी सेवाओं की 'बिगुल' को अब आवश्यकता नहीं है। कृपया सुबह सात बजे से पहले 'क्वार्टर' खाली कर दें।" नीचे हस्ताक्षर—'देशबन्धु

शरद के पांवों के नीचे से धरती खिसक गयी। आर्डर सूरजजी के लिये था। उसके मुँह से निकल पड़ा—"क्यों ? क्या बात हो गयी ?

"हमें तो पता नहीं है, भैयाजी ? अखबार में उन्होंने कुछ उल्टा-सीधा छाप दिया सुनते हैं, मिल के बारे में।

"अच्छा !" शरद ने जैसे सब समझकर भरे से स्वर में कहा, और चिट लौटाने को हा. दी। परसों सूरजजी का उन्मत्त-रूप, दिन भर की अनुपस्थिति सब जैसे उसके सामने स्पष्ट हो उठी।

"फिर ?" केशव ने बड़ी गहरी दृष्टि से भीतर—शायद जया को खोजनेवाली दृष्टि से—देखते हुए पूछा।

"फिर क्या, जो समझो सो करो।" बड़ी मुश्किल से स्वर निकला।

"बड़ी मुश्किल है। उनके मिलने का भी तो कुछ ठीक नहीं है।"

बिना विशेष सुने ही शरद मुड़ गया और उसने हाथ से चौखट पकड़ ली। उसकी आँखों में अन्धकार हहर रहा था...

बातें ! बातें ! बातें !....

दिन—सातवाँ। समय—संध्या के लगभग साढ़े चार। स्थान—'स्वदेश महल' के ऊपर की मंज़िल का लाउंज़।

तारों में लटकते छोटे-छोटे ख़ूबसूरत गमलों के पास बाहर पीतल की रेलिंग से टिका शरद अपने क्वार्टरों को देख रहा था, जो ज़रा तिरछे पड़ते थे। पीछे ख़ूब चौड़ा लाउन्ज, लाल चिकना, चमकदार, साफ़-सुथरा फ़र्श, उस पर एक ओर पड़ी बेंत की पीली-पीली चार सुन्दर कुर्सियाँ—बीच में बेंत का ही मेज़। कुर्सियों और मेज़ पर सुन्दर कढ़ावदार गद्दियाँ और मेज़पोश। कुर्सियों के पीछे—जिधर यह लाउन्ज भी घूम कर पीछे की ओर गया था—एक चमकदार-पॉलिश किये हुए तख़्ते और जंज़ीरों वाला झूला हवा में हिल रहा था। लाउन्ज में खुलने वाले इस कमरे के तीन दरवाज़ों में से सिर्फ़ एक इस समय खुला था।

कुछ देर झूले पर बैठकर वहाँ पड़े हुए पत्रों—कॉलियर्स, ईव्ज़-वीकली और 'सरिता'—के चित्रों में बनी स्त्रियों के कानों में कुण्डल, माथे पर किसी के गोल, किसी के लम्बा टीका, और किसी को भौंहें और मूंछें बनाकर वह वहाँ आ खड़ा हुआ था —और गले में पड़े कैमरे का 'केस' खोल कर छाती के ज़रा नीचे साधकर इधर-उधर मुड़कर अपने क्वार्टरों को फोकस में लेने की कोशिश कर रहा था। तस्वीर खींचने का क़तई इरादा नहीं था, इसलिये कभी आँखसे लगाकर व्यू-फ़ाइण्डर से फोकस करता, कभी—स्क्रीन पर झुककर देखने में उलटी दिखाई देती, कटी-छँटी हरी-हरी कतारें, रविशें, क्यारियाँ और क्वार्टर इत्यादि बड़े सुन्दर दिखाई देते थे। उसके कन्धे पर बड़ा सुन्दर छोटा-सा थैला लटका था और उसमें पड़े फ़्लैश-बल्बों के दो डिब्बे अटैचमेण्ट, फ़िल्टर और फ़्लैश-होल्डर का रिफ़्लैक्टर साफ़ दिखाई दे रहे थे।

उसने कैमरा आँख से लगाया ही था कि पीछे से आवाज़ आई, 'प्रेस-फ़ोटोग्राफ़र साहब को नमस्कार।"

शरद चौंककर यों ही पीछे मुड़ गया। पद्मा बड़े नाटकीय-अन्दाज़ से दोनों हाथ जोड़कर ज़रा आगे को झुकी नमस्कार कर रही थी। 'क्लिक' की आवाज़ हुई और शरद ने भी कुशल फ़ोटोग्राफ़र की तरह झटके से कैमरा आँखों के आगे से हटाकर सलाम मारा—"थैंक् यू !"

दोनों ज़ोर से खिलखिला कर हँस पड़े। पद्मा भौ तरेर कर बोली—"यह क्या किया आपने ?"

"वैल बिगन इज़ हाफ़ डन !" शरद बोला—"आज नेताभैया ने पूछा

'फ़ोटो खींचनी आती है ?' मैंने कहा, 'हाँ, दोस्तों के कमरे स्तेमाल किये ही हैं' तो उन्होंने अपने यह कैमरे दे दिये। लाइका और रॉलीफ़्लेक्स हैं। उनका कहना यह है कि कुछ अच्छे अवसरों पर मन्त्रीजी के फ़ोटो ले लेना, और अच्छे अवसरों से उनका मतलब शायद था जब वे भी साथ हों, लेकिन मैंने सोचा किसी अच्छी चीज से ही शुरू किया जाय। इसीलिये उधर देख रहा था कि क्वार्टर से जया निकलेगी तो....."

"होश से बात करें, शरदजी।" बनावटी क्रोध से माथे पर दो बल डाल कर वह बोली—"यानी कि जया और मैं आपकी निगाह में बराबर ही हैं ?" शरद ने देखा, बल डालने पर उसके माथे पर क्रॉस जैसा चिन्ह बन जाता था।

शरद थोड़ा सकपकाने को हुआ, फिर उसके मुँह की ओर देख कर धृष्टता से हँस कर बोला—"न सही मेरे लिये बराबर, कैमरे के लिये तो बराबर ही हैं।"

पद्मा ने एक क्षण को अपनी कंजी-आँखें शरद के मुँह पर गड़ा दी और फिर हँस पड़ी—"दुष्ट !"

सफ़ेद दूधिया जॉर्जेट की साड़ी, सफ़ेद ब्लाउज जिसकी चुस्त बाँहों पर केवल एक-एक एम्ब्रॉइडरी 'मिरर' लगा कर पतली रेखाओं में सीधा-साधा एक ही बूटा कढ़ा था—सिर के पीछे सफेद मोतिये के फूलों का बड़ा चौड़ा-सा जूड़ा—जो उसके सिर के चारों तरफ ज्योतिर्मण्डल की फूटती किरणों-सा खिल रहा था। दो बड़ी घनी मालाएँ उसने अपनी कलाइयों में लपेट ली थीं।—शरद को ऐसा लगा जैसे आकाश से गिरती गङ्गा की श्वेत-शुभ्र धार में कुन्दन-सा चाँद का प्रतिबिम्ब चमक रहा हो। उसकी पलकें कई बार चौंधिया कर झपकीं। जया में इतनी 'रिफ़ाइण्ड' सुरुचि नहीं है। उसने हँस कर कहा—"खैर, वह तो कोई नयी बात नहीं है।" वह पद्मा की इस बात से पुलक उठा था। कुछ देर डूबा रहा, लेकिन फिर सहसा सचेत होकर कहा—"तो कहने में आपसे यह आया था कि नेताभैया का फ़ोन आया है ! अभी वे लोग चलने वाले हैं। आपकी सिखाई हुई लड़कियाँ 'राष्ट्रीय-गान' गायेंगी—वे तैयार हैं न...?"

"तैयार हैं या नहीं से मुझे क्या मतलब ?" पद्मा इस अयाचित और अप्रत्याशित नीरस बात से भौं तानकर बोली—"मुझे तो सिर्फ़ उन्हें गाने का ढङ्ग बता देना था। अब उनकी 'टीचर' जाने या प्रिंसिपल।"

"जी नहीं मादाम, राष्ट्रीय-गान ठीक से हो इसकी पूरी ज़िम्मेदारी आपकी ही है।" शरद ने उसकी झुँझलाहट का आनन्द लेकर ऐसे अदब से कहा जैसे या तो वह नूरजहाँ या क्लियोपेट्रा के सामने बोल रहा हो।...

"भाड़ में जाय राष्ट्रीय-गान, मैं तो सच शरदजी, कल यहाँ से भागती हूँ। अच्छी इल्लत लगी जान को ! अब दो रिहर्सल तो ले लिये, मैं खुद तो स्टेज पर खड़ी होकर बेंत लेकर कसरत करने से रही कि यहाँ उतार है, यहाँ चढ़ाव है।

आखिर म्यूज़िक-टीचर किस मर्ज़ की दवा है ?" पद्मा उफ़नते क्रोध से रुआँसी हो आई।

"अच्छा छोड़िये—चलिये अब। आप उस समय रहेंगी तो आँखों का इशारा भी काम देगा। वैसे सुना यही है कि म्यूज़िक-टीचर नेताभैया के स्कूल की दवा नहीं, बल्कि खुद मर्ज़ हैं।" शरद ने उसे खुश करने को कहा।

पद्मा ने गुस्से में गर्दन झटक कर होठ सिकोड़े, "सुबह से जान निकल गयी। तमाम बदन थक कर चूर-चूर हो गया है। खुद नाचो-गाओ, फिर ऊपर से यह।" उसकी आँखें छलछला आईं—"मैं तो यहाँ आकर पछतायी।"

"आप तो हर चीज़ को बड़ी विचित्र-लाइट में लेने लगी हैं पद्माजी, कभी-कभी ऐसा हो ही जाता है। इसमें नेताभैया का उद्देश्य आपसे बेगार कराना थोड़े ही है। वे तो गर्व से लोगों को बताते हैं, 'देखो हमारी पद्मा बेटी कितनी होशियार है।" खुशामद से वह बोला।

"यह तारीफ़ उन्हें ही मुबारक रहे। जब मैं नहीं थी तब भी तो यह सब होता ही था न। ऐसा ही है तो मुझे पिंजरे में बन्द करके टिकट लगादें। सच, इन बेकार की बातों से बड़ा गुस्सा आ जाता है।"

"अच्छा, यह गुस्सा आज और बाँधकर रखिये। कल फिर हम और आप इकट्ठे ही बातें करेंगे उनसे। आइये, चलें फिर देर हो रही है।"

"सचमुच, उधर अगर वे लोग आ रहे हों तब तो चलें—नहीं तो थोड़ी देर यहीं बैठ जाँय। उधर तो तबियत बड़ी उकताती है—दुनियाँ भर की भाग-दौड़, चिल्लपों, चीख-पुकार। जैसे कहीं या तो चढ़ाई हो रही हो या किसी की बरात आरही हो।—न हुए मिनिस्टर-साहब, कोई आफ़त हो गयी ! मुझे तो अच्छा भी नहीं लगा—सूखा-सा मुंह, धुंधले चश्मे के पीछे से झाँकती घुग्घू-सी आँखें। सुबह परिचय हुआ था।" पद्मा ने कन्धे पर पड़े पल्ले की सलवटें निकालते हुए कहा, फिर जैसे खुद ही बोली—"पता नहीं कैसा आया होगा—यों ही बिना कहे-सुने ले लिया। मुझे क्या पता था आपके हाथ में कैमरा है। नहीं जी, हमारी फ़ोटो लौटा दें।..."

"वह तो फ़ोटो बन जाने के बाद की बात है।" फिर पहली बात के जवाब में दोनों हाथ पहलवानों की तरह छाती पर बाँध कर रेलिंग से टिककर वह बोला—"तो आपको न तो मिनिस्टर-साहब पसन्द आये, न यह पार्टी ?" फिर उसने अपने होठ कस लिये।

"पार्टी का कुछ सिर-पैर ही समझ में नहीं आ रहा। बस मिनिस्टर-साहब आ रहे हैं इसलिये सौ दो-सौ आदमियों को बुलाकर चाय पिला दी जाय ! इसमें तो कुछ तुक नहीं लगती।" उसने पंजों की उँगलियाँ एक दूसरे में फँसा कर हाथ सामने लटका लिये।

शरद ने एक गहरी साँस ली और बाँहों में बँधी उसकी छाती एक बार उठी

और बैठ गयी। गम्भीर-स्वर में बोला—"आप नहीं समझ सकतीं, इसमें बहुत बड़ी तुक है। इस चाय में दस आदमियों की मौत का खून धुलेगा, इस चाय में औरतों और बच्चों के सिसकते आँसू धुलेंगे, इस चाय में 'बिगुल' की क्रान्तिकारी-परम्परा धुलेगी—सूरजजी की जवानी के सपने धुलेंगे। मन्त्रीजी जो आज कहीं शिलान्यास कर रहे हैं—कहीं उद्घाटन, कहीं उनका अभिनन्दन हो रहा है, कहीं यह पार्टी हो रही है—इस सबका आपको कोई अर्थ ही नहीं दिखाई देता ?"

पद्मा सुदूर क्षितिज में देखती रही और यों ही अपलक देखते हुए बोली—"यह सब बातें देख-देखकर कभी तो ऐसा लगने लगता है, यह दुनियाँ हम जैसे लोगों के रहने लायक़ नहीं है। आह कल्पना का यह सुन्दर-जगत मधुर कितना होता।"

"बहुत घिसी-पिटी बातें है पद्माजी,—'कनफ़्यूशियस' से लेकर शंकर तक, सब अपने-अपने ढङ्ग से यही बातें कहते रहे हैं। चूंकि यह दुनियाँ पाप, झूठ, मक्कारी और फ़रेब से भरी है—इसलिये इससे आँख मूंद कर ब्रह्म में लीन हो जाओ, मोक्ष प्राप्त करलो। इसीलिये तो मार्क्स ने बड़े गर्व से कहा था कि 'अभी तक तो दार्शनिकों ने केवल जगत की व्याख्या में ही सारी शक्ति लगाई कि दुनियाँ ऐसी है वैसी है, यह हमारा दर्शन दुनियाँ को बदलने की दिशा में पहला प्रयत्न है।" मार्क्स के शब्दों में प्रतिध्वनित आत्म-विश्वास से उसका मुख दीप्त हो उठा। लेकिन तभी उसके मन में उठा—वही टिपीकल-मध्यवर्गीय-मनोवृत्ति—वही ऊँचे-ऊँचे ड्राइङ्ग-रूम के फ़िल्मी संवाद और फिर कुछ नहीं।—जैसे कोई दियासलाई जलाकर पानी भरे गिलास में डुबादे—उसका मन बुझ गया। उसने सचेत होकर कहा—"अच्छा चलिये, आपको आजका दिन जैसे-तैसे निकालना है, और मुझे अपनी नौकरी बजानी है।"

दोनों चुपचाप चल दिये। चौड़ा लाउन्ज जहाँ मोड़ लेता था—वहीं आगे चलकर एक कटघरा लगा था और नीचे सीढ़ियाँ चली गयी थी। सीढ़ियाँ काफ़ी चौड़ी थीं और बीच में जाकर एक मोड़ लेती थीं। एक-एक क़दम उतरते हुए शरद ने कहा—"बचपन में एक कहानी पढ़ी थी, फूलों की राजकुमारी...।"

पद्मा का नीचे की सीढ़ी पर पड़ता क़दम ठिठक कर रुक गया, उसने गर्दन मोड़ कर शरद की ओर देखा और उसे ऐसा लगा जैसे वह दृष्टि उसकी दिल की तहों का बेधती चली गयी। उस दृष्टि में बड़ी आर्द्र-करुणा, मूक और घुटी-याचना, असहाय-वर्जना थी। एक बार शरद का फिर ऐसा लगा जैसे उसने पद्मा की दृष्टि नहीं, कैमरे के 'व्यूफ़ाइण्डर' में आँख लगाकर बरसते पानी में सहम-ठिठुर कर एक डाल पर बैठी आठ-दस चिड़ियों के झुण्ड देख लिये हैं। वह निगाह और ओंठों के कोनों पर तड़पती घायल-मुस्कान ! एक-एक सीढ़ी उतरता हुआ पद्मा की पीठ से उसकी पिण्डलियों तक झूलते पल्ले को देखकर वह सोच रहा था काश, वह मध्य-युग में हुआ होता, और पद्मा किसी देश की राजकुमारी होती तो उसके पीछे फैले भारी-भरकम वस्त्र को उठा कर चलनेवालों में से एक शायद वह भी होता—जैसे स्कॉट का

वॉल्टर रेले चलता था। लेकिन उस दृष्टि ने जैसे सब कुछ 'भक्' से उड़ा दिया। उसने चुप होकर सिर झुका लिया। दोनों सीढ़ियाँ उतरते रहे।

नीचे बिल्कुल ऊपर की तरह बरामदे में यह सीढ़ियाँ समाप्त होती थीं। अन्तिम सीढ़ी पर पाँव रखते हुए पद्मा ने इस तरह हँस कर कहा जैसे कोई बात ही न हो। "हाँ, आपने बात पूरी नहीं की बचपन की कहानीवाली। कहानी का पूरा नाम था 'फूलों की राजकुमारी और भयंकर राक्षस'।" दोनों खूब ज़ोर से खिलखिला कर हँस पड़े। एकदम बात बदल कर पद्मा फिर बोली—"आज कितनी फ़ोटो खींच डालीं ?"

"मैंने ? बस अभी फ़िल्म लगाई ही है समझिये। सुबह से तो घनचक्करकी की तरह घूम रहे थे और रिपोर्ट ले रहे थे। सुबह उठकर ही नेताभैया के लिये भाषण लिखा और फिर जीप में इधर-उधर घूमे। अब कैमरे गले पड़ गये। आप तो एक डान्स भी देंगी शायद ?" उसके मुखको देखकर शरद ने पूछा—"दिन भर रिहर्सल किया होगा।"

फिर थकान चेहरे पर और उभर आई—"थकी नहीं दिखाई देती ? पता नहीं क्यों शरदजो, भीड़ से मेरी तबियत बहुत ही उखड़ती है, उस भूले पर लाउंज में पड़ जाना और अँधमुदी-आँखों से आसमान की तरफ देखते जाना—देखते जाना ! —मुझे इसमें बड़ा ही अच्छा लगता है। कोई बोले नहीं—कोई डिस्टर्ब न करे..."

चलते हुए एक मोड़ जैसे ही लिया शरदकी निगाह काले चश्मेकी कमानी, कान को ढंकते हुए बालोंकी पट्टी और वहाँ झूलते हुए इयरिंग पर पड़ी तो वह चुप होगया।

वातावरण मे गूँजते हॉर्न, बजरी पर सरसराते पहिये, इधर से उधर सपाटे से गुज़रती जीपें, कारें और क़िस्मत की लकीरों की तरह आड़ी-तिरछी छापें...

'स्वदेश-महल' के बाहर-भीतर जिधर देखो कारें ही कारें दिखाई देती थीं, नयी, पुरानी, हरी-नीली, आसमानी-चाकलेटी, लम्बी चमचमाती कारें चींटियों की क़तार की तरह एक दूसरे की पूँछ से मुंह मिलाये। जिनमें किसी में ड्रायवर पड़े सो रहे थे और किसी-किसी के बाहर मडगार्ड से टिके ठोड़ी सहलाते इस लम्बी-चौड़ी शानदार बिल्डिंग, हरे-पीले और सफ़ेद झण्डे की लहराहट—ऊंचे एरियल, फिर लाउंज को देखते, देशबन्धुजीको गालियाँ देते और ईर्ष्या करते दार्शनिक मुद्रा में कुछ सोच रहे थे। एकाध जगह दो-तीन इकठ्ठे मिलकर घास पर उकड़ूं बैठे, बीड़ी के गुल को अनामिका से झाड़ते, नाक से धुंआ निकालते, कनखियों से इधर-उधर ताकते इस विषय पर क्षोभ प्रकट कर रहे कि उनकी कोई पूछ नहीं हो रही है। जब मिल का कोई नौकर या 'स्वदेश-महल' का कोई कर्मचारी खद्दर की सफ़ेद साफ़ धुली वर्दी में किसी बड़े होटल के बैरे-से अन्दाज़ से आस-पास से गुज़रता तो या तो उसकी इस अकड़ को यह कोई भारी-भरकम गाली सुनाते या उसीको सुना कर कोई

रिमार्क...! एक ओर एक दल अपने-अपने साहब और मेम लोगोंके स्वभावका वर्णनकर रहा था कि अमुक साहब कैसा कबाड़ी और अमुक साहब कैसा शानदार है कि दस रुपये का नोट देकर यह भी नहीं पूछता कि कितना पेट्रोल डाला और कितने पैसे बचे। वह तो फ़लाने साहब की बीबी ही हैं जो सब्ज़ी तक का भाव नौकर द्वारा बाज़ार में में पुछवाकर पूरा हिसाब ले लेती हैं। लेकिन इन सारी शिकवे-शिकायतों का रुख एकदम बदल गया जब एक-दो दिन की दाढ़ी बढ़े हुए ड्राइवर महोदय ने बड़े चटख़ारे ले-लेकर यह बताना शुरू कर दिया कि कैसे उसके उसके मालिक की, कॉलेज में पढ़ने वाली लड़की का 'इश्क' उससे चल रहा है। फिर तो हरेक के पास अपना एक क़िस्सा था जो बाहर निकलने के लिये फड़फड़ा रहा था...

एक अधिक सचेत या अधिक ऊंचे अफसरों की गाड़ी के ड्राइवरों के दल का विषय था—कैसे मिल में भूख-हड़ताल चल रही है, लाठियाँ-गोलियाँ चल रही हैं और यहाँ जश्न मनाए जा रहे हैं...

पतलून—पतलून—पतलून, पाजामें, चूड़ीदार, चौड़ी-मुहरी के, धोतियाँ! निगाह ज़रा और ऊपर उठी, कोट-अचकन, स्वेटर, जवाहर-जाकट, और कुर्ते पर लापरवाही से पड़ा शॉल—मिल कर सब आपस में गड़बड़ हो गये। पतलून-पाजामें और साथ में ज़नानो धोती—फिर एक झुण्ड साड़ियाँ, शलवारें और टखनों को छूते कुर्ते-सैण्डिल, ख़ुशबू, और विभिन्न-कटों के चैस्टर, एक मुखर-भनभनाहट, दबी-दबी हँसियाँ, ज़बर्दस्ती गम्भीरता के छद्म-मुँह—और एक बारगी जैसे ज़ोर-ज़ोर से गूँजते-क़हक़हे, गप्पें, परिचय के जोश-ख़रोश और सिगरेटों के छल्लेदार-धुँए थम गये, ज़रा सिर-दर्द हल्का हुआ...

जया ने पद्मा के कन्धे पर हाथ रखकर पूछा—"क्या बात है जीजी? यह हमेशा मुहर्रमी-सूरत हमें पसन्द नहीं है!"

"क्या पसन्द है तुम्हें?" लम्बे-सोफ़े के सिरे पर पद्मा कुहनी टेके अध-मुँदी आँखों से नीचे देख रही थी—उसने शराबियों की तरह बोझिल पलकें उठाकर कहा। ओंठों पर धूमिल-मुस्कान झलक कर खो गयी।

"आज तो आपका प्रोग्राम है। ऐसे 'मूड-ऑफ़' होगा तो क्या करेंगी? ख़ुश रहिये।" जया पद्मा की उँगलीमें पड़ी मिज़राबको उतारती और पहनाती रही।

"ओः मिस पुरी, आज तो आप ऐसी लग रही हैं जैसे 'ब्यूटी-कन्टैस्ट' में खड़ी हों।" मिसेज़ सिंह को छोड़कर, मि० सिंह पुरुषों में ही रुक गये थे, अतः वे इधर चली आईं। आते ही बोलीं, और ख़ुद ही सधे-गले से हंस पड़ीं।

जया से हाथ छुड़ाकर उनके हाथ की ओर बढ़ाकर नव-वधू की तरह लजाती-सी पद्मा बोली—"कहिये मिसेज़ सिंह, छोड़ दिया आपको सिंह साहब ने?"

गुलाबी क्रेप की साड़ी पर आसमानी-चैस्टर पहने रक्त की अधिकता या पाउडर के शेड से लाल पड़ी मिसेज सिंह जया और पद्मा के बीच में धंस गयीं—जया को एक ओर सरकना पड़ा। हल्की-हल्की विलायती-खुशबू से वातावरण बस उठा। जया ने पास से उनकी लिपिस्टिक देखी।

'वहाँ उनका मन थोड़े ही लग रहा है आदमियों में ?" पीछे से झुक कर मृद मुंह से रूमाल लगाये बोलीं—असल में वह पोज दे रही थीं माथुर को। उन्हें विश्वास था कि बात-चीत करने के बीच में एक ओर मुंह करके सिगरेट से धुंआ छोड़ने के बहाने वह इधर जरूर देख लेता है—एकाध-बार निगाह टकराई भी थी। उधर देख कर बोली—

"देखिये न, हर बार इधर देख लेते हैं।"

"आप तो बीच में बैठी हैं न, यहाँ तक निगाहें आ कहाँ पाती हैं ?" मिसेज सिंह ने जरा गर्व अनुभव करते हुए कहा।

"काफ़ी लेट आईं आप।" पद्मा ने उनकी कुशल-क्षेम के नाते पूछा।

"क्या बताएं मिस पुरी, सच बिल्कुल निकलना नहीं हो पाता—अब भी आई तो बेबी रो रहा था।" परेशानी के लहजे में सिंह बोली।

"हाय, ठीक तो है—अकेला कैसे रहेगा इत्ता-सा, ले आतीं न। बेचारा रोएगा, नहीं तो क्या करेगा ?" तुली बेबी की सहानुभूति से रुआँसी-सी हो आई, अगले सोफ़े से पीछे मुड़कर बोली—

"यहाँ तो रो-रोकर तंग कर मारता, अब भी आया को दे आई हूँ। वैसेभी यहाँ बच्चे मना थे..."

"देखो है न ग़जब।" तुली ने गाल फुला कर कहा—"बोलो, बच्चे कहाँ छोड आये ?"

इस प्रकार उनके बीच मे आ धँसने से जया को बुरा लगा था। वह चुपचाप उधर देखने लगी थी जिधर मायादेवी, कथूरिया की पत्नी और मिल के छोटे-बड़े अधिकारियों की गहनों में लदी बनारसी बूटोंवाली महीन साड़ियों में ढंकी बहुत-सी महिलायें थी। हाल के बीच में काफ़ी चौड़ी-गैलरी छोड़कर इधर-उधर दो-दो सोफों की लाइनें थीं—सामने स्टेज का चौड़ी तीन-राष्ट्रीय-रंगों की पट्टियों में बना पर्दा लहरा रहा था। स्टेज के इधर-उधर जरा पीछे जाकर पर्दे तानकर 'विंग' बना लिये थे। हॉल में दोनों ओर दरवाजों की पंक्तियां थी—जो इधर-उधर के कमरों में खुलते थे। हर दरवाजे पर रेशमी रंग-बिरंग पर्दे झूल रहे थे। जगह-जगह चौकोर साइज के ग्राउण्ड-ग्लास दीवार में जड़े थे और उनसे छन-छन कर रोशनी आ रही थी किन्तु हॉल में मुख्य रोशनी का आधार छत में काफ़ी बड़े आकार में जड़े कांच थे—जिनमें मर्करी ट्यूब जल रहे थे और रोशनी बड़ी भीनी-भीनी एक-सी पड़ रही थी। बाहर हवा निकालने वाले पंखे जिस अनुपात से धुंआ बाहर निकाल रहे थे सिगरेटें

कुछ उससे अधिक ही पैदा कर रही थीं। आगे की सिर्फ़ दो पंक्तियों को छोड़ कर पीछे महिलाएं थीं। उन्होंने तीन पंक्तियाँ घेर ली थीं—फिर 'भद्र-लोक'। हर सोफ़े की पंक्ति के आगे काले कांच जड़ी पतली-पतली मेजें थीं—जहाँ पार्टी की चीजें 'सर्व' की जाने वाली थीं। मिसेज सिंह सामने की मेज पर ठाठ से कुहनी टिका कर पद्मा के ऊपर एकाधिकार-सा जताती उधर मुड़ कर—जया की ओर चैस्टर की पीठ पर उभरे अंगूरों का गुच्छा किये—उस पर लदी-सी बैठी थीं। जया अलग-सी पड़ गयी और दोनों बाहें मेज पर फैलाकर एक हाथ से दूसरे हाथ की चूड़ियाँ घुमाने लगी। कभी-कभी बीच में बैठी सिंह को देखती—हालाँकि उन्होंने जाल बाँध कर बालों पर नियन्त्रण किया था और उनका जूड़ा बर्र के धड़ की तरह पीछे लटक रहा था लेकिन पीठ पर गर्दन के पास चैस्टर गन्दगी से काला पड़ गया था। पीछे कानों के पास पाउडर पोंछा नहीं गया था। तभी मिसेज सिंह के पास हाथ बढ़ाकर पद्मा ने अपनी कलाई के फूल बचाते हुए जया का कन्धा पकड़ा।

"आइये मिसेज सिंह, आपका परिचय कराएं...।" पद्मा उनकी किसी बात का सिलसिला तोड़कर बोली।

कुहनी हट गयी और सिंह पीछे टिक गयीं। उनकी आँखों से इधर-उधर बढ़ी हुई सुरमे की लकीर को जया ने कनखियों से देखा।

"जया सिनहा, नेताभैया के नये 'पर्सनल-सेक्रेटरी' शरद कुमार की पत्नी और आप मिसेज कृष्णा सिंह—'कन्ट्रैक्टर्स एण्ड कमीशन एजेण्ट्स'।" पद्मा मुस्कुराई।

जया ने हाथ जोड़े, जवाब में सिंह ने हाथ जोड़े ही थ कि उन्हें बीच की गैलरी के पार की लाइन में, कोई दीख गया और वे चौंक गयीं—"मिस पुरी, आज तो वे भी आई हैं।"

"कौन ?" पद्मा चौंकी।

"अरे वे ही—कैप्टन मलिक की साहबज़ादी, पिछली बार अर्दली के साथ निकल गयी थीं न, घूमने !" व्यंग्य से सिंह एक बार उधर देखकर बताने लगीं। आँखों में हंसी तैर आयी।

"क्यों ?" जया पूछ बैठी।

"अरे 'लव' हो गया और क्यों ?" हाथ मटका कर वे बोली—"सो ख़ूब सैर-सपाटे कराके बनारस पटना घुमाकर लौटा लाया।"

"ये लीजिये फ़िल्मस्टार आरही है।" पीछे से मिसेज भल्ला ने कहा।

पीछे पुरुषों में से कई खँखारने की आवाजें आईं, हल्के रिमार्कों की भनक हुई और एक-एक क़दम तोल-तोलकर रखती हुई शेफाली रॉय राजसी-शान से निगाहों से ही परिचितों को तोलतीं, अपरिचितों को हिक़ारत से दरगुज़र करती, पास आगईं। आगे और पीछे दोनों ओर माँग निकली थी और आड़ी गुंथी हुई लाइन के रूप में चोटी ऊपर इस कान से उस कान तक चली गई थी। बहुत नीचा कुर्ता-

शलवार, सफ़ेद सुनहरी काम की जूतियाँ और पीछे लगभग ज़मीन छूता दुपट्टा—आंखों का काला चश्मा निहायत निश्चिंतता से कमानी पकड़ कर हाथ में लिये हुए, वे जैसे अपनी कोठी के लॉन पर निकल आई थीं— ! एक बालिश्त भर की बुनी हुई ऊनी जाकेट केवल कुचों के उभार को स्पष्ट कर रही थी। पीछे किसी ने मुखर फ़िक़रा कसा—"हाय, यह अदा ?"

"कौन है ?" जया ने पूछा।

"फ़िल्मस्टार हैं, बाप यहाँ का डी० एम० है, बेटी ने सोचा शायद कलक्टरी बम्बई में भी चल जाएगी—अपने किसी क्लास-फ़ेलो के साथ पाँच हज़ार कैश लेकर बम्बई चली गई—"

"फिर ?"

"फिर क्या ? बाप ने दुनियाँ भर में फ़ोन खटखटाये, भाग-दौड़ की। तब जाकर पता चला। तीन महीने बाद होटल में किसी फ़ाइनेन्सर को शराब पिलाकर हीरोइन बनने का वायदा लेती हुई मिलीं। शान देखो—एक-एक क़दम कैसी रख रही है जैसे ग़लीचे पर रख रही हो। बाप ने हाथ पाँव जोड़े तब तो बड़ी मुश्किल से आने को राज़ी हुई।"

"ज़रा खूबसूरत होती तो न जाने क्या करती।" किसी ने कहा। मन्द-मन्द मुस्काती शेफाली रॉय बिना किसी की चिन्ता किये आगे निकल गईं। तभी उनकी किसी और परिचयवाली ने बुला लिया—और जहाँ वे बैठीं, कुछ इस तरह मुड़ कर बैठी कि हॉल के अन्तिम सिरे का व्यक्ति भी उन्हें देख सके। उनके हर हाव-भाव से लगता था वे इस बात के प्रति काफ़ी सचेत हैं कि हॉल में हरेक की निगाह उन्हीं पर टिक है।

"ओ हो, मिसेज़ सिंह वहाँ बैठी हैं—भई, कभी हम गरीबों को भी याद कर लिया करो—।" अगले सोफे के एक सिरे से कोई सुनहली-कमानी चहकी।

"ओऽ निगम बहन जी, मिस पुरी मैं अभी आई।" झमक कर मिसेज़ सिंह उत्साह से जया के घुटनों और मेज़ के बीच से लड़ती हुई-सी निकल गयी।

"मिसेज़ सिंह के नीचे तो स्प्रिंग लगी है—वे एक जगह बैठेंगी थोड़े ही, अभी उन्हें हॉल के दूसरे सिरे पर देखिये।" पीछे से मिस सूद ने कहा—और माथुर की निगाह को गाल पर स्पर्श करके मुस्कुरा पड़ी। वेनिटी-पर्स से छोटा सा रूमाल निकाल कर उन्होंने गालों और माथे पर फेरा।

"हुँ:" पद्मा ने इस तरह जैसे बला टली, माथे की ओर दो उँगली उठाई—"जया भैया, तुम इधर आ जाओ, नहीं तो अभी वह फिर आ जायेगी तो सारा दिमाग चाट लेगी।"

जया की उदासी बड़प्पन की मुस्कुराहट में बदल गयी। वह उसके पास आ गई। बोली—"यहाँ तो सचमच ब्यटी कन्टैस्ट-सा ही हो रहा है। लेकिन

अभी तक तो इनाम पद्मा जीजी, आपके ही पास है।"

"इस काँय-काँय में पाँच मिनट और बैठी तो मेरी तो दम निकल जायगी।" पद्मा ने कहा। उसने जया का परिहास अनसुना कर दिया।

"आप भी पद्मा जीजी यों ही हैं—वे तो सुबह से ही ड्रेसिंग-टेबिल के सामने से बैठी-बैठी आई हैं और आपके मन ही नहीं आ रहा।"

तभी जया ने पीछे मुड़कर देखा—दो तीन लड़कियां एक दूसरी पर लदी-एक दूसरी के कन्धों पर ठोढ़ियां रखे आड़ करके पुरुषों की तरफ इशारा करती कह रही थी—"वो है न, लाल-सी 'बो' लगा रखी है जिसने, मुझे उसके बाल बहुत अच्छे लगते हैं—बड़े स्टाइल से काढ़ता है।"

"अच्छे हैं? तुम्हारा भी टेस्ट क्या है मन्नी? घास-सी उगी है, 'बो' बाँधने की तमीज़ नहीं है—चल दिये वहाँ से—।" दूसरी ने होठ टेढ़े करके काटा।

"देखो जी शैल—किसी के 'उनके' बारे में कुछ कहोगी तो हमारी तुम्हारी लड़ाई हो जाएगी।"

"हट्ट, क्या बकती है, मैं तो खाली बालों की बात कह रही थी।"

"जी हां—बालों की बात तो आप कह ही रही थीं, इलेक्शन में उनकी कन्वेंसिंग मैं करती फिरी थी? प्रेसीडेण्ट होने पर बधाई मैंने दी थी, जाकर सबसे पहले? और बताऊँ?"

"नहीं-नहीं, यहाँ खुले में सब कुछ बता देने की थोड़े ही है? कुछ फिर कभी के लिये बचा कर रखो—"

"नहीं, इन्हें कह लेने दो, जी भरकर!" वह लड़की बुरा मान गयी—"हाँ, सा'ब और क्या किया हमने?" फिर लापरवाही बोली—"लोग सब अपनी ही तरह समझते हैं, खुद वर्मा से इश्क लड़ाती थीं न बैठकर...।"

"कौन कहता है?" आवाज़ भारी हुई।

"अरे कहेगा कौन, देखने वाले अन्धे थे? क्लास में उसे देख-देखकर मुस्कुराना, आपस में नोचना—यह सब क्या था?"

"भई लड़ना हो तो वैसे ही कह दो, उठकर चले जाँय, यों क्यों बदनाम करती हो?"

"बदनाम करती हूँ—लो. और सुनो। उस दिन गेट पर तुमने उससे लैटर नहीं लिया? हमने पूछा, क्या बात है—नहीं, कुछ नहीं, नोट्स ले रहे थे। पूछो, नोट्स ब्लाउज़ में छुपाये जाते होंगे—!"

"तुम तो हँसी में रो जाती हो।" वह लड़की स्वयं रुँआँसी हो आई थी।

"अरे छोड़ो, कोई देखेगा तो क्या कहेगा...अरे, सब लोग इधर ही देख रहे हैं...देखो, 'वो' भी इधर देख चुके हैं।"

और सब खिलखिला पड़ीं। पद्मा और जया सुनकर जैसे समझदारी से

मुस्कुरा दीं, 'बचपन है !'

अनजान-रूप से महिलाएं जैसे दो भागों में बँट गयी थीं, एक गैलरी के एक ओर प्रायः युवतियाँ...दूसरी ओर अधेड़-प्रायः, और उनके बीच में एकाध कहीं फंसी बड़ी चुप और उदास कोई।

"आज तनेजा देखो कैसी बैठी है, जैसे दुलहन हो।" जया का ध्यान फिर सामने के वार्तालाप पर आकर्षित हुआ।

"कौन तनेजा ?"

"अरे वही न, शेफालीके पास बठी है, सर्जन चौधरीकी लड़की के बग़लमें..."

"क्यों, वैसे क्या करती है ?"

"अरे वोऽ ? ऐट ए टाइम चार मजनूं रखती हैं कम से कम। कोई कुछ प्रजेण्ट ला रहा है...कोई कुछ..."

"हैं क्या...?"

"लेडी-डॉक्टर !"

"हूँऽऽ।" गम्भीर-आवाज़ निकली—"हाँ भई, तब तो ठाठ हैं ही, चार मजनूं रखेंगी, चार-सौ बीमार रखेंगी, और चार-हज़ार घायल करेंगी..."

"हर रोज़ नए कट के कपड़े पहने देख लीजिये और एक से एक अच्छे क़ीमती भी।"

"ब्लाउज़ तो यह भी बड़ा फ़िट है। मुझे तो कट बड़ा अच्छा लगा। कहाँ सिलाती हैं ?"

"सुनते हैं 'वीनस-टेलर्स' उनका पेटेण्ट है।"

"हमारा तो भई, उसने इतना बढ़िया कपड़ा बिगाड़ दिया कि..."

"बाल बड़े लम्बे हैं इनके, और य'म्मोटी चोटी पड़ती है कि पिण्डलियों तक जाती है...नागिन-सी लहराती रहती है।"

"मुझे तो चौधरी की लड़की के टॉप्स का डिज़ाइन बहुत पसन्द आया..."

"कहाँ...बड़ा पुराना फ़ैशन हो चुका—टॉप्स तो उधर देखो, यहाँ नेताभैया के स्कूल की टीचर है न कान्तालाल...उसके..."

"अच्छा हाँऽऽ ! जब शेफाली इस सूट का कपड़ा खरीद रही थी, तभी हमलोग भी पहुँचे थे..."

"वैसे एक बात है, कुछ हो तनेजा दीखती 'सोबर' है..."

"अरे 'सोब्राइटी' देखनी हो तो पीछे देखो, पद्मा पुरी को। क्या सफ़ेद ही सफ़ेद पहने बैठी हैं..."

जया पद्मा को धक्का देकर खिलखिला कर हँस पड़ी। कुछ महिलायें माया देवी की तरफ़ इशारे कर करके बातें कर रही थी—पद्मा ने उधर से मुंह फेर लिया था। जया की बात से वह ज़बर्दस्ती मुस्कुराई।

"इतना मत हँसो, नहीं तो सारे दाँत झड़ पड़ेंगे।" कहता हुआ शरद पास से गुज़र गया। जया ने देखा, कैमरा लटकाये वह एक महत्वपूर्ण-व्यक्ति लगता था। वह चक्कर लगा कर उधर चला गया जिधर अपनी पाँच-छः एक-सी ड्रेसवाली लड़कियों को लिये स्कूल की प्रिंसिपल बैठी थी, वहाँ झुककर उसने कुछ कहा। फिर उसी तेज़ी से लौट आया—दृष्टि मिली और दोनों मुस्कुराये—देखो कितना व्यस्त हूँ! पास आकर उसने कहा—"बस, अब मन्त्रीजी आ ही रहे हैं..." और वह फिर पीछे की ओर चला गया।

"देखो, वो बैठीं है न, वह मोटी-सी, वे यहाँके 'गर्ल्स-कॉलेज'की प्रिंसिपल हैं।"

"शरीर तो खूब पाया है। किस चक्की का खाती हैं?"

"जिसका अभी आपने खाना शुरू किया है।" पीछे से किसीने मज़ाक किया। सूद के पास मिसेज सिंह पहुँच गयी थीं। जया के दोनों गाल लज्जा से भन्ना उठे। आस-पास कई कण्ठों से एक साथ हँसी गूंजी।

माथुर की हँसती दृष्टि से शरीर में हल्की पुलक की फुरहरी महसूस करते हुए मिस सूद ने कहा—"मिस्टर शरद कुमार आपको बड़ा 'लव' करते हैं।"

"आपको क्या मालूम?" इस बार पद्मा ने पूछा।

"निगाहें नहीं देखी—और हाँ भाई, ठीक भी है—लव-मैरेज है, कोई मज़ाक है।" जया सकपका उठी।

"ये हरेक की निगाह देखने की आदत छोड़िये, जब से माथुर साहबकी निगाह से लटकी हुई हैं सो हमें भी दीखता है—अरे हाँ...तो जब तक कोई कुछ कहे नहीं तो लोग-बाग सिर पर ही चढ़े जाते हैं, किसी को कुछ बदते ही नहीं।" मिसेज सिंह ने हँसकर ऐसे कहा कि सूद हतप्रभ होकर कट गयीं, लेकिन छिपी निगाहों से एक क्षण को माथुर की तरफ़ देखने से अपने को रोक नहीं सकी, कहीं यह सुन तो नहीं लिया—देख तो नहीं लिया।

एक बार फिर सब हँस पड़ी। सूद की सहेली जोशी ने कहा—"पकड़ी गयीं न, जबसे मैं रोक रही थी कि धीरे-धीरे...

...'बोल बलम कोई सुन लेगा...।' तपाक से सिंह ने एक सिनेमा गीत की कड़ी से वाक्य पूरा किया—और क़हक़हा जैसे फूट पड़ा। सब मेज पर झुक-झुक हँसने लगीं।

हँसी बन्द हुई, इसी पंक्ति के अन्तिम सिरे पर बैठी, अपेक्षाकृत शान्त गम्भीर और अधेड़ मिसेज नागर के कमर से निकाल कर झटक कर झन्नाटे से चाबियों का गुच्छा मेज पर रख देने से। सभी ने गर्दन घुमाकर देखा डरा-सहमा-सा उनका चपरासी पास खड़ा है।

"क्या बात हो गयी?" कई कण्ठों ने एक साथ पूछा।

"हो गयी पत्थर! यहां भी चैन नहीं लेने देते!" रुँआसी-सी वे रस-भंग

होने से बीच में भुनभुनाकर बोलीं।

"तो भी..."

"अरे क्या तो भी, जब मैं वहां थी तो 'टब' में बैठे रहे, अब वहाँ से पुछवा रहे हैं—वह चॉकलेट रंग की टाई कहाँ रखी है ? मैं लाई हूँ साथ बांध कर ? जाओ, दे देना चाबी, खुद निकाल लेंगे— ।"

चपरासी चला गया तो सिंह ने फिर कहा—" 'टब' में बैठे थे तो क्या है ? चली जातीं, शरम काहे की, कोई बाहर के आदमी तो थे नहीं— ।"

"अरे सब तुम्हारी तरह थोड़े ही हैं कि—"

बाद में रूमालों और साड़ियों के पल्लों मे दबी-दबी हँसी के बीच जो घुस-पुस बातें शुरू हुईं तो जया और पद्मा उधर से कान-बन्द करके सामने देखने लगीं। तभी वातावरण में इस सिरे से उस सिरे तक फैल गया— "मन्त्री जी आ रहे हैं—"

सारे क़हक़हे—गप्पें, धुंए के छल्ले, शोर-गुल जैसे एकदम थम गये— । उस समय पद्मा सोच रही थी कि इन्हीं स्त्रियों के सामने यह सब प्रदर्शन उसे करना होगा। वे समझेंगी ? इनके लिये इस सबका क्या महत्व है ?

बीच की गैलरी में लोगों का आना-जाना तेज़ सावधान लेकिन निश्शब्द हो गया।

"पद्माजी, सामने आ जाइये।" शरद, फुसफुसाता हुआ कहता, निकल गया—"आपको राष्ट्रीयगान 'कण्डक्ट' करना है।"

बड़ी भुनभुनाई-सी पद्मा उठी। बड़ी अनिच्छा-पूर्वक, तनी भौंहों से उधर देखा और जया को उठाती बोली—"उठो।"

"मैं क्या करूंगी ? आप जाइये।"

"उठो न, नहीं तो लो मैं भी नहीं जाती।" पद्मा फिर बैठने को हुई तो जया को उठना पड़ा।

"अब अपनी असली जगह जाओ, यहाँ कहाँ कॉमन लोगों में बैठ गयी थीं ?" मिसेज़ सिंह का स्वर सुनाई दिया।

पद्मा ने बड़ी निरीह-दृष्टि से देखा। उसके वश में होता तो वह नहीं जाती ! फिर पीछे-से कई दबी-दबी फुसफुसाहटें आई—जया बड़ी कट रही थी। वे लोग बिल्कुल सामने वाले सोफे पर आकर बैठ गयीं—यहाँ प.स के सोफ़े पर दो महिलाएँ पहले से और बैठी थी—शेफाली पीछे के सोफ़े पर थी। उसने बड़ी नफ़रत से मुँह टेढ़ा करके पद्मा को देखा और फिर 'हुँ' करके गर्दन झटक कर उपेक्षा प्रदर्शित करती अपनी साथवाली से अपनी नयी-नयी सीखी जाने वाली हॉर्स-राईडिंग के मज़े और कष्टों का वर्णन करने लगी, कि किस तरह आज उसका सारा शरीर दुख रहा है—लेकिन जिस समय घोड़ा दुलकी चलता है, कैसी हवा छाती में भर जाती है। इसी सिलसिले में वह यह भी बताने लगी कि जिस समय वह 'बॉल'

के स्टेप्स सीखने जाती थी—उन्हीं दिनों ड्राइविंग भी सीखी थी—और दोनों कितनी जल्दी आ गये थे। और बात एकदम 'क्लब' के डान्स तथा कॉकटेल पार्टियों पर आगयी। जया समझ रही थी वे लोग उन्हें नेता और सेठ वर्ग में से समझ रही हैं और स्वयं को ऑफ़िसर्स लोगों में।

सोफ़े पर बैठने वालियों से परिचय हुआ तो जया ने और ग़ौर से उन्हें देखा— "आप श्रीमती राका सत्यकुमार, और आभा बड़जात्या, नेताभैया की भतीजी—"

सत्य कुमार की पत्नी असुन्दर नहीं थी—बड़े हल्के-हल्के, लेकिन कीमती हीरे के गहने और हाथ में 'प्लेटीनम' की अंगूठी। नम्र और सलीकेदार। आभा के कपड़ों में राजस्थानी पुट था और जया को समझते देर नहीं लगी कि यह किसी मारवाड़ी परिवार की शोभा बढ़ा रही हैं—क्योंकि उन्होंने परिचय के बाद ही कहा—"आप तो कोठी में ही आगये हो न ?"

"जी।" जया ने सिर हिलाया।

"आने को जी तो भौत-भौत किया, लेकिन कँवर साहब आगये थे।" फिर पद्मा को देखकर पूछा—"आप तो तन्दुरुस्त हो ?"

फूलों के मणि-बन्ध वाले हाथ जोड़कर पद्मा मुस्कुराई। जया ने उनके अपेक्षाकृत भारी गहनों का निरीक्षण किया। वे बिल्कुल नये फ़ैशन से ओढ़नी और लहँगा पहने थीं। ओढ़नी की पारदर्शी गुलाबी झाँई के पार उनके मोटे बनाव के चेहरे का 'सिलुएट' भला लगता था। बोलीं—"थारी माँजी तो उधर बैठी हैं—बड़ी बूढ़ियों में।"

उधर देशबन्धुजी के परिवार की भी कुछ या तो बहुत छोटी या काफ़ी उम्र की कई महिलाएँ थीं। अपने काले चश्मे को इधर घुमाकर कभी-कभी मायादेवी इधर भी देखकर जया की दृष्टि के या किसी और परिचित की मुस्कान के जवाब में मुस्कुरा उठतीं थीं—और उनके कान के इयरिंग झमक उठते। प्राय: कभी इनमें और कभी उससे धीरे-धीरे ही बातें कर रही थीं।

एकबार शान्त होकर भनभनाहट के रूप में जाग उठने वाला कोलाहल तभी एकदम सहसा फिर शान्त हो गया। बीच का गलियारा भी एकदम रुक गया—तभी दो सहकारी फ़ोटोग्राफ़र अपने बड़े-बड़े कमरे और काफ़ी बड़े फ़्लैश-होल्डर लगाये उलटे-उलटे भागते, रास्ता देखने के लिये जगह-जगह मुड़कर पीछे देखते स्टेज के सहारे जा खड़े हुए। आँखों से लगे कैमरों का फ़्लैश कई बार कौंधा। आगे पूरी वर्दी में कन्धों पर रंग-बिरंगी पट्टी लगाये पुलिस के कोई बड़े अफ़सर फिर सादा वेश में दो बॉडी-गार्ड और तब पतले-दुबले 'संक्षिप्त' से मुख्य मन्त्रीजी बार-बार हाथ जोड़ते हुए कोमल और सौम्य। काली अचकन, चड़ीदार पाजामा और हल्के काले शेड का चश्मा। उभरी पतली नाक, लम्बा चेहरा। उनके एक

ओर मुस्कुराता प्रसन्न चेहरा और चश्मे के पीछे से चमकती उल्लास पूर्ण आँखें लिये श्री देशबन्धु और दूसरी ओर मोटा तगड़ा भारी भरकम शरीर धारण किये एक और सज्जन। पीछे राष्ट्रीय वेश में ही डी० एम०, सी० एम० तथा अन्य नेताओं का जुलूस, कोई एम० एल० ए०, कोई एम०एल०सी०। पीछे लाल-वर्दी में वही अर्दली।

"बीच वाले हैं।"

"बगल में होम एण्ड लेबर-मिनिस्टर श्री रामलोटन सिंह हैं।"

"अरे ये तो मिटी कांग्रेस कमेटी के भूतपूर्व प्रधान हैं। क्या नाम है इनका भला-सा —आचार्य जीवन लाल जी।"

"यह सत्य प्रकाश हैं ! आहा, चम्पकजी भी साथ हैं।"

सब लोग खड़े हो गये—कुछ जिद्दी अब भी बैठे ही रहे। उसमें शहर का स्वतंत्र-चेता साहित्यिक-वर्ग था—और उसका विश्वास था साहित्यिक किसी भी हालत में राजनैतिक से नीचा नहीं होता। मंत्रीजी मुस्कुरा-मुस्कुरा कर हाथ जोड़ते रहे। यह उनकी प्रकृति में आ गया था। काफ़िला सामने आ गया। शरद के अलावा इधर-उधर नगर के दो-एक और सरकारी फ़ोटोग्राफ़र भी जमे थे। पद्मा और जया खड़ी हो गई थी। एक क्षण में ही परिचय कराया गया।

"माया बहन की सुपुत्री पद्मा एम० ए०।"

"ओः ? आपकी कला का तो आज प्रदर्शन है।" मंत्रीजी मुस्कुराये। शायद उनका आपस में परिचय पहले हो चुका था। जया लजाकर नीचे देखने लगी।

"मिसेज़ राका सत्यकुमार।"

"आवर होस्टेस।" सब हँस पड़े। लोग बातपर नहीं, मन्त्रीजी की हँसी के अनुसार हँसते थे।

"मिस शेफाली रॉय।"

"मिस 'टाउन'।"

पास खड़े डी० एम० फूलकर कुप्पा हो गये। शरद ने माना कि आदमी निरभिमानी, सज्जन और परिहास-प्रिय है। उसे अपने ऊपर गर्व हुआ।

"रोहिनी गोयल, प्रिंसिपल गर्ल्स कालेज।"

"हैल्थमिनिस्टर।"

क़हक़हा और भी ज़ोर का पड़ा। पीछे से उठ-उठकर लोगों का झुण्ड और भी घना हो गया। तभी भीड़ को चीरते कथूरियाजी के साथ पीली बुश्शर्ट और काली पैण्ट पहिने एक विदेशी और पैण्ट तथा ब्लाउज़ में ही एक विदेशी महिला ने प्रवेश किया। वातावरण में गूंज उठा—'अमेरिकन टूरिस्ट' मन्त्रीजी उन्हें देखकर मुस्कुराए—"हैलो, आप लोग साइड-सीन और हिस्टॉरिकल बिल्डिंग्स देख आये—"

"बहुत-बहुत सुन्दर।"

"मि० जेकब स्मिथ और मिस जेनी रॉबिन्सन—जर्नलिस्ट्स औन वर्ल्ड टूर।"

सब लोग कृतार्थ हुए ! मिस जेनी रॉबिन्सन अपने हरे मछली के आकार के शीशों वाले चश्मे में से छत और दीवार की सजावट को मुँह उठा-उठाकर देखती रही। उसे यहाँ के उपस्थित लोगों में ज़रा भी रुचि नहीं थी। उसके साफ़ गुलाबी रंग, सुनहले रेशम-से मुर्गे की पूंछ-सी सजावट में कढ़े बाल, पतले-पतले ओठ और पुरुषों की उपस्थिति से बिल्कुल ही अस्पृश्य, निस्पृह, प्रत्येक भंगिमा—और लापरवाही से पतलून की जेबों में पड़े हाथ, पतली-पतली डोरियों में पीछे लटकता पर्स और मन ही मन गुनगुनाती किसी गीत की पंक्ति पर धीरे-धीरे थपकती पाँव की उंगलियाँ—इस सबको देखकर ऐसा लगता था वह मनुष्यों में नहीं, किसी सुनसान ऐतिहासिक हॉल में खड़ी हैं ? और यही सब कुछ था जिसे देखकर शेष प्रायः सभी महिलाएँ अपने को हत-प्रभ मान रही थी—सभी का ध्यान उधर आकर्षित था। पुरुष हँस-हँसकर परिचय प्राप्त कर रहे थे। उसके हाथ में अमेरिकन 'पैन' हवाई-यात्रा कम्पनी का नीला-सफ़ेद थैला। बगल में एक झोला लटक रहा था—उसमें उसका कैमरा और डायरी जैसी चीज़ें थी। शरद ने अपने कन्धे पर हल्के हाथ का स्पर्श महसूस किया। उस समय राका सत्यकुमार एक मोटी-सी फूलों की माला मन्त्री जी को पहना रही थीं—और इस तरह लजाकर मुस्कुरा रही थीं जैसे वे सीता का पार्ट अदा कर रही हों। कुछ लोगों ने हस्ताक्षर करने की कॉपियाँ उनके आगे बढ़ा दी थीं।

"एकाध ली भी है, या यों ही लटकाए हो ?" देशबन्धुजी ने धीमे से गर्दन झुका कर कैमरे को संकेत करके पूछा। प्रसन्नता से उनकी वाणी पुलक रही थी।

"कुछ ली हैं।" शरद झेंपा, और उसे लगा—यह फ़ोटो लेनेका आदेश है। ठीक तो है, उसे ऐसे अवसरों पर स्वयं घुलने-मिलने की बजाय, तटस्थ फ़ोटोग्राफ़र की दृष्टि से दूर जा खड़ा होना चाहिये और फ़ोटो लेने चाहियें। आर इसी ग़लती के प्रक्षालन स्वरूप उसने दो-तीन फ़ोटो लिये। उसका क्या जाता है, फ़्लैश-बल्ब, फ़िल्म कुछ भी तो उसकी जेब से नहीं है।

परिचय-क्रिया समाप्त हो गयी और नेताभैया, मन्त्रीजी, गृह-श्रम मंत्री तथा दोनों अमेरिकन यात्री एक बड़े सोफ़े पर बैठ गये—दूसरे पर सत्यकुमार तथा अन्य लोग। बाकी पिछली लाइनों में भर गये।

तब पर्दा बीच से खुला और 'राष्ट्रीय-गान' जनमनगण अधिनायक के सम्मान में सब लोग उठ खड़े हुए। उस समय शरद पद्मा के पास खड़ा था। स्कूल की खद्दर की पोशाक में खड़ी छः लड़कियों ने गान शुरू किया। 'जय हे' की पुनरावृत्ति पर सबके गले जवाब दे जाते थे और आवाज़ें बिखर जाती थीं। उस समय एक ओर खड़ी प्रिंसिपल का चेहरा देखने लायक हो जाता था और वह इस तरह असहाय दृष्टि से कनखियों से देखती थी जैसे कोई बड़ा भारी अपराध हो रहा हो।

पद्मा जान-बूझकर आँखें चुरा लेती, वह जया की ओर देखती होठ के कोनों से मुस्कुराती। जैसे-तैसे गीत समाप्त हुआ, और सब लोग बैठ गये। कुछ देर सन्नाटा रहा। तब सहसा नेताभैया धोती सँभालते स्टेज की बढ़े। हॉल में भनभनाहट गूंज रही थी।

"बैठ जाइये न," जया ने पद्मा की ओर सरक कर शरद को जगह बनाते हुए कहा। बिना मुड़कर उधर देखे पीछे हाथ बढ़ाकर रोकते हुए शरद बोला—"बोलो मत, इस वक्त ड्यूटी पर हूँ"

"जी हाँ, पता है...बड़े ड्यूटीवाले आये, सुबह से घूम रहे हैं, बैठिये।" जया ने उसके बढ़े हाथ की उँगलियाँ पकड़ ली। धीरे-से आग्रह किया, हाथ खींचा।

"नहीं भाई, तुम बैठी रहो।" दूसरे हाथ में थमा कैमरा छाती से लगाये ही वह मुड़ा। उसके पास कुछ और भी लोग खड़े थे। महिलाओं की लाइन के सामने दीवार-सी बन गयी थी, वे झुँझला रही थीं...।

"ज़रा-सी देर बैठ जो जायें।" पद्माने बहुत धीरे-से आदेशात्मक-स्वरमें कहा।

महिलाओं के सामने से अन्य व्यक्तियों को हटाकर शरद नीचे बैठ गया, और जैसे ही नेताभैया ने बोलना शुरू किया, उसने एक पोज़ लिया। फिर बड़े बेमालूम तरीके-से फ़िल्म का नम्बर बदलता जया और पद्मा के बीच में बैठ गया। एक साथ कई दृष्टियाँ उधर खिचीं—मन्त्रीजी ने भी एक उड़ती-सी निगाह डाली, और देश-बन्धुजी भी बोलते-बोलते रुक गये।

"देवियो और बन्धुओ, मेरा विचार ज़रा भी भाषण देने का नहीं है। आज दिन भर बहुत बोलना पड़ा है। माननीय मन्त्रीजी बहुत थक भी गये हैं, आज दो जगह शिलान्यास किया, निरीक्षण किया और उद्घाटन-भाषण दिये। कल हम लोग आस-पास के गाँवों में गये थे। यों मन्त्रीजी के लिये यह स्थान नया नहीं है, न वे यहाँ पहली बार ही आये हैं, लेकिन जनता ने जिस उत्साह से स्वागत किया है, वह वर्णनातीत है। मुझे याद है जब हम लोग सील और बदबूदार कोठरियों में साथ साथ रहते थे। मैं समझता हूँ मन्त्रीजी उस दिन को भी भूले नहीं होंगे जब सेवा-ग्राम में मेरा और उनका चर्खा-कॅम्पिटीशन चला था और वह दो दिन दो रात तक चलता रहा था। कोई भी हार मानने को तैयार नहीं था। और मुझे यह कह देने में भी कोई संकोच नहीं है कि मन्त्रीजी इतने निढाल हो चुके थे कि यदि बापू स्वयं आकर हमारे पागलपन को समाप्त न कर देते तो मैं लगभग इन्हें हरा चुका था —हमारे श्रम-गृह मन्त्री श्री रामलोटन सिंहजी प्रान्त के उन रत्नों..."

मंत्रीजी पुरानी बातों का आनन्द लेते हुए मुस्कुरा रहे थे, और कभी-कभी उस सबका अंग्रेज़ी अनुवाद करके विदेशी मित्र को बता देते थे। शेष व्यक्ति मत्रीजी के मुख पर आनेवाले भावों के अनुसार ही हँसते-गम्भीर होते थे।

"आपने कपड़े इत्यादि तो कुछ पहने नहीं।" शरद ने पद्मा से पूछा।

"सब पहन लूंगी।" अनिच्छा से जंभाई लेकर पद्मा बोली। उसने क्यूटेक्स रंगे नाखूनोंवाली मेंहदी से लाल हथेली मुँह के आगे रख ली।

वह ध्यान से नेताभैया की बातें सुन रहा है—ऐसा भाव दिखाता धीरे-से बोला—"यह तो भाषण न देने की क़सम खाकर उठे थे—अब तो आत्म-कथा सुनाने लगे।"

"ध्यान से सुन लीजिये, यह सब बातें आपको ही लिखनी हैं।" पद्मा बोली।

जब देशबन्धुजी मन्त्रीजी को हराने की बात कह रहे थे तो शरद ने परिहास पूर्वक धीरे-से पद्मा और जया को सुना कर कहा—"शेम! शेम!"

एकदम देशबन्धुजी का भाषण रुक गया—पता नहीं उन्होंने शब्द सुन लिये या शरद के स्वर को अपने भाषण में विघ्न समझा; उन्होंने घूम कर बड़ी तीखी नज़रों से शरद को देखा—उस दृष्टि में झिड़की थी। सहमकर शरद चुप हो गया। भाषण बीच में क्यों रुका, पीछे बातें करने वाले भी सहसा अपनी बातें रोक कर इधर देखने लगे। देशबन्धुजी यद्यपि भाषण फिर शुरू कर चुके थे लेकिन शरद ने नहीं सुना उन्होंने क्या कहा। कहा क्या होगा? मन्त्रीजी की तारीफ़ की होगी फिर उनका स्वागत किया होगा। उसे पता था ऐसे मौकों पर क्या-क्या कहा जाता है।

"और अब मैं नगर के प्रसिद्ध कवि श्री चम्पकजी से प्रार्थना करूंगा कि वे इस अवसर पर विशेषरूप से तैयार की गयी अपनी सुन्दर रचना का पाठ करें..." अपने इस वाक्य से भाषण समाप्त करके जब देशबन्धुजी वहाँ से धोती सँभालते उतरे तो तालियों की गड़गड़ाहट से शरद की मानसिक-घुटन भङ्ग हुई।

दो-एक बार पलकें झपकाते—इधर देखते जब वे सबसे उधर वाले सिरे पर मन्त्रीजी की बगल में जा बैठे, तब इस सम्मान-प्रदान किये जाने से अत्यन्त ही कृतज्ञ—गद्गद्-भाव से मुस्कुराते खींसे निपोरते चम्पकजी स्टेज की तरफ जा रहे थे। वे भी इस समय राष्ट्रीय-पोशाक में थे और उनके सिर पर झकझकाती टोपी से सामने की तरफ़ बालों के दो छल्ले सींगों की तरह ऊपर निकले हुए थे। उनकी सधी हुई उंगलियाँ बार-बार अचकन की पट्टी की ओर जाती थीं—जिसे ढीलो करके वे अपने टँटुए को कई बार मुक्त कर चुके थे, ताकि आवाज़ सधी और सुन्दर निकले। उनकी अचकनके कोने पर चौड़ा बटननुमा सुन्दर छोटा-सा तिरंगा बैज भी अटका था।

"पूज्य माननीय मुख्य मन्त्रीजी, माननीय गृह-मन्त्रीजी, श्रद्धेय श्री देशबन्धुजी, देवियो और सज्जनो, माननीय मन्त्रीजी की उपस्थिति में मुझे अपनी तुच्छ कविता का पाठ करने का सम्मान मिल रहा है—इससे अधिक सौभाग्यकी बात मेरे लिये और क्या होगी? और मैं इसे अपने जीवन का अत्यन्त ही गौरव-पूर्ण अवसर समझता हूँ। सचमुच अपने नगर के इस साहित्यानुरागी, निस्पृह, निराभिमानी व्यक्ति को पाकर हमें गर्व है। मैं श्रद्धेय देशबन्धुजी में सरस्वती और लक्ष्मी का अपूर्व समन्वय समझता हूँ। वे जितने त्यागी हैं उतने ही कर्मठ। प्रस्तुत कविता मैंने उन्हीं की प्रेरणा

और आज्ञा से लिखी है..." चम्पकजी कविता का कागज़ हाथ में लेकर भाषण दे रहे थ। कागज़ काँप रहा था।

शरद को बड़ी बेचैनी महसूस हो रही थी, उसे हर क्षण लगता जैसे उसकी त्वचा को किसी की तीखी-दृष्टि स्पर्श कर रही हो—और वह हर बार देशबन्धुजी की ओर देखता। उससे ग़लती हो गयी है यह बात मानी, लेकिन उन्हें भाषण बीच में रोक कर लोगों का ध्यान इधर केन्द्रित नहीं करा देना चाहिये था। बाद में समझा देते—डाँट देते। जब भी वह उधर देखता उसे लगता इतने लोगों के पार कनखियोंसे देशबन्धुजी घूर रहे हैं। एकाध बार तो निगाह टकराई भी; पर देशबन्धुजी ने फ़ौरन दृष्टि फेर ली।

"यह भाषण दे रहे हैं या कविता पढ़ रहे हैं...?" पद्मा ऊब गयी।

"ऐसे ही लोगों के लिये तो कहा है तुलसीदासजी ने—'सिर धुनि गिरा लागि पछिताना।" जया धीरे से बोली।

"मेरा ख्याल यह है पद्माजी, कि आप 'कास्ट्यूम्स' पहनिये..." शरद बोला। उसे लगा जैसे देशबन्धुजी ने जल्दी-जल्दी इधर देखना शुरू कर दिया है। यह तो उनकी भाव-भंगी से लगा कि पद्मा के पास बैठना उन्हें काफ़ी अखर रहा है। जब भी वह उधर देखता तो कनखियों से देखने के कारण चश्मे के पीछे से केवल उनकी आँखों का सफ़ेद हिस्सा दिखाई देता—और शरद को लगता जैसे वह काफ़ी क्रुद्ध हैं।

"आप क्यों घबरा रहे हैं—इस सबका नम्बर जलपान के बाद है।" पद्माने कहा, फिर चम्पकजी की ओर इशारा करके बोली—"देखिये, बेचारे बार-बार आपके कैमरे को देख रहे हैं—कम से कम एक फोटो तो ले लीजिये..."

शरद ने वास्तव में उनकी दृष्टिमें ऐसी ही भूख देखी; लेकिन उसके कान और दृष्टियाँ—बीच की गैलरी, एक सोफा और दूसरे पर बैठे इतने आदमी पार करके देशबन्धुजी के पास लगी थी।

"मैं संघर्षों में पला हूँ—और जीवनमें अब भी संघर्ष कम नहीं है। मैं जानता हूँ संघर्ष के बाद प्राप्ति का सुख क्या है। इसीलिये स्वतन्त्रता के बाद स्वतन्त्रता का क्या महत्व है। उसके सुख को हम झुठला नहीं सकते। प्रस्तुत कविता इसी से सम्बन्धित है। कविता का शीर्षक है 'रामराज्य'। इसमें मैंने बताने की चेष्टा की है कि पूज्य बापू का 'रामराज्य' कैसे राम के वास्तविक राज्य से श्रेष्ठ है—उसमें सीता को बनबास दिया गया, हम किसी सीता को बनवास नहीं होने देंगे। हम अपनी शोभा-श्री और सीता के विरुद्ध असम्माननीय बातें फैलाने वाले धोबियों—ग़द्दारों और देशद्रोहियों को, चाणक्य की तरह समूल उखाड़कर उनकी जड़ो को मट्ठे में जला देंगे..."

"कुछ कविता में भी कहेंगे या सब कुछ ज़बानी ही बता देंगे—।" पद्मा झुंझला उठी। मन्त्री जी ने शायद सुन लिया, वे उधर देखकर मुस्कुराये। शरद

को देशबन्धुजी के सफेद कोये दीखे।

"धन्य हो—धन्य हो।" पीछे से किसी ने ज़रा ज़ोर से कह दिया, साथ ही कई हँसी की आवाज़ें सुनाई दीं। लेकिन बीच में गैलरी में इधर से उधर टहलते व्यक्तियों ने हाथ उठाकर शान्ति स्थापित कर दी।

शरद के कान देशबन्धुजी के पास लगे थे—उससे सचमुच ग़लती हो गयी, उसे कहना नहीं चाहिये था। खैर, बाद में क्षमा मांग लेगा। उसे ऐसा लगा जैसे देशबन्धुजी के पास वाले दरवाजे में भीतर टेलीफ़ोन की घण्टी बजी—आवाज़ अस्पष्ट थी। दूसरी बार बजी—आवाज़ अस्पष्ट थी। उस समय गृह-मन्त्रीजी अमेरिकन से बातें कर रहे थे, और नेताभैया ऊपर मुँह किये ऊब और झुँझला रहे थे कि जल्दी भाषण नहीं समाप्त कर रहा। शरद ने उधर देखा, टेलीफ़ोन की घण्टी पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। वह कविता सुनने लगा, तभी जया ने उसका ध्यान देशबन्धुजी की ओर खींचा, वे हाथ और उँगली के इशारे से मन्त्रीजी के पीछे मुँह करके बता रहे थे कि उठ आओ और टेलिफ़ोन अटैण्ड करो। शरद झटके से उठकर उधर लपका। कैमरा, झोला इत्यादि वह वहीं रखे छोड़ गया। यह देशबन्धुजी की नाराज़ी दूर करने का अच्छा अवसर था। इस बीच में यह बात उसके दिमाग़ में आये बिना न रही कि पद्मा के पास बैठना उन्हें ज़रूर बहुत ही खल रहा था—तभी तो मुझे इतनी दूर से बुलाया। इतने लोग हैं उनसे किसी से कह नहीं सकते थे? खुद जरा-सा नही उठ सकते थे? वैसे तो बड़े फ़ुर्तीले और चुस्त बनते हैं—है कितनी दूर? निश्चित रूप से प द्मा के पास से हटाना उनका उद्देश्य था! तभी शरद को वह दिन याद आ गया जब उसने पद्मा और मायादेवी के साथ पहले-पहल खाना-खाया था। देशबन्धुजी भी थे। टेलीफ़ोन की घण्टी बजी थी तो उसके उठने पर भी उसे रोक कर खुद चले गये थे। वह पद्मा से बातें करने में व्यस्त था उस समय भी। कितना उलटा दृश्य है।

कमरे में आड़ में मेज़ पर टेलीफ़ोन रखा था। उसने रिसावर उठाकर झटके से कान से लगाया—"हलो...ऽ"

'हाँ, मैं पी० टी० आई० के स्थानीय द तर से बोल रहा हूँ..." आवाज़ घबराई हुई थी।

"हाँ जी—कहिये..."

"आचार्य जीवन लालजी या देशबन्धुजी में से कोई हों तो सूचित कर दीजिये, ज़रा जल्दी कि—उपप्रधान-मन्त्रीजी का अचानक हृदय-गति रुक जाने से स्वर्गवास हो गया..."

"किसका ?" शरद ने घबराकर आश्वस्त होने के लिये दुबारा पूछा।

"सरदार पटेल का !"

"ऐंऽऽ।" शरद हक्का-बक्का रह गया।

"हाँऽऽ, ज़रा जल्दी सूचना दे दीजिये।"

शरद घबराया हुआ-सा दरवाज़े पर आ गया और पर्दे की आड़ करके उसने जल्दी से हाथ से देशबन्धुजी को बुलाया।

देशबन्धुजी भीतर पहुँच तो उसने बताया—"पी० टी० आई० के लोकल-ऑफ़िस का फ़ोन है कि सरदार पटेल की मृत्यु हो गयी।"

"ऐं ऽ ऽ।" उन्हें भी जैसे धक्का लगा, वे उछल पड़े—"देना फोन, मैं ज़रा बैरीफ़ाई करलूं—ऐसा कैसे हो सकता है ? कोई सूचना ऐसी तो नहीं है।"

दो-एक जगह फ़ोन करके जब उन्होंने निढाल हाथों से फ़ोन रख दिया और निर्जीव की तरह ढीले पड़कर मेज़ से टिक गये—तब उनके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। शरद देखकर और भी घबरा गया। उनको दोनों हाथों से सँभाल कर वह इधर-उधर किसी को सहायता के लिये देख कर आवाज़ देने ही वाला था कि हाँफते हुए नेताभैया ने अपना हाथ उसके कन्धे पर रख दिया, सूखे गले से बड़ी कठिनाई से बोले—"ठहरो...।" शरद को डर था कहीं उन्हें 'फ़िट' न आ जाय। वह किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गया था।

देशबन्धुजी लम्बी-लम्बी साँस लेते हुए अपने मानसिक-उद्वेग, अप्रत्याशित-धक्के और इस स्नायविक-चक्रवात पर अधिकार पाने का यत्न करते अपनी अधमुँदी आँखों को कभी खोलते और बन्द करते रहे। शरद उन्हें यों ही बाँहों में बाँधे रहा...

उधर-उधर देखकर शरद जाने लगा तो वे ज़रा स्वस्थ होकर बोले—"ठहरो, रहने दो..." सचेत होकर उन्होंने शरद के दोनों हाथ इधर-उधर धीरे से हटा दिए और सिर झुका लिया।

"सब चले जाएँगे !...सब चले जा...एँगे।" निराशा से हाथ झटक कर उद्विग्नता-पूर्वक वे बोले। हताश होकर उन्होंने झुका हुआ सिर हिला दिया।

शरद चुप रहा, उसकी समझ में नहीं आया वह क्या कहे।

"साथ-साथ लड़े-सोये, बैठे-खेले, हँसे और यों छोड़-छोड़ कर चले जा रहे हैं।" वे फिर अथाह-दुःख से बोले। उनकी झुकी लम्बी गंजी चाँद शरद की आँखोंके आगे हिली। चश्मा हटाकर उन्होंने रूमाल आँखों से लगा लिया।

शरद को ऐसा लगा जैसे उनका दुख उसके दिल को पिघलाने लगा है। कुछ देर शान्ति रही। हॉल में चम्पकजी काँपती, थरथरानी आवाज़ में बड़े लयपूर्ण-ढंग से अपनी मुक्त-छन्द कविता सुनाये जा रहे थे।

बड़ी गहरी साँस लेकर देशबन्धुजी ने सिर उठाया। वे मेज़ पर बैठे थे, शरद के कन्धे पर हाथ रख कर लाल आँखों और भर्राये गले से बोले—"पता नहीं क्या मर्ज़ी है अन्तर्यामी की !" फिर ठण्डा उच्छ्वास भर कर कहा—"होगा, सो देखा जायेगा—अब क्या करें...।" उन्होंने बड़ी बेबसी से सिर हिलाया।

"अब इस सबका क्या होगा ?" शरद ने बड़े संकुचित बुझे स्वर में इस

पार्टी के सम्बन्ध में पूछा।

फिर एक गहरी सांस, चुप्पी और तब दुखपूर्ण शब्द—"जाने वाला चला गया। अब तो हम लोग सिर्फ़ लकीर पीटेंगे। पीटेंगे भैया—क्या करें—? जैसे तू रखेगा वैसे रहेंगे—" उन्होंने छत की ओर देखा। मुँह खोलकर उमड़ते आँसुओं को रोकते रहे।

"बन्द करने को कह दूँ?" उसने पूछा।

"शरद बाबू!" बड़ी करुण और हृदय-द्रावक मुद्रा से निरीह-स्वर में देशबन्धुजी बोले—"जो होना था वह तो हो चुका, अब होते हुए को क्यों बिगाड़ते हो? कुछ लौट तो सकता नहीं है। रंग में भंग ज़रूर पड़ जायेगा।" फिर एक बड़ी ठण्डी साँस लेकर बोले— "वह तो अमर हो गया! यह बना बनाया खेल ज़रा देर बाद ही उखाड़ देंगे। वर्ना ये सारी तैयारियाँ यों ही जायेंगी—"

फिर शरद को याद नहीं वह हँसा या रोया—या क्या प्रतिक्रिया दिखाई। कोकीन का इंजेक्शन लग जाने के बाद की तरह उसका मस्तिष्क सुन्न हो गया। उसके दिमाग़ में बस एक ही बात थी कि इस जगह इतनी घुटन, थकान और ऊब है कि जल्दी से जल्दी अगर वह क्वार्टर में जाकर नहीं लेटा तो उसे ज़ोर की 'क़ै' हो जायेगी—उसका सिर भन्ना उठा!

कुछ देर बाद जब बिल्कुल ही स्वाभाविक मुद्रासे देशबन्धुजी अपनी जगह आकर बैठे तो वह लड़खड़ाता झूमता-सा सीधा जया के सामने जा खड़ा हुआ—"चाबी देना ज़रा।"

"क्यों?" आश्चर्य-उत्सुकता से उसने आँखें उठाईं।

"काम है!" तेज़ आवाज़ में वह बोला।

जया ने चुपचाप ज़ोर से चाबी उसके फैले हुए हाथ में रख दी। पद्मा और वह दोनों चकित थी।

उसके कान कुछ नहीं सुन रहे थे—उसकी आँखें कुछ नहीं देख रही थीं। उसे पता नहीं था वह कहाँ है! वह गलियारे से होता हुआ बाहर की ओर चला। बीच में ही पहुँचा था कि किसी ने हाथ बढ़ाकर उसे बाँह से पकड़ लिया।

"अरे हुज़ूर, ज़रा गरीबों को भी देख लिया कीजिये—"

शरद रुक गया। मुड़कर देखा, कपिल था।

बिना शरद को कहने का कुछ अवसर दिये कपिल ने उसे अपने पास बैठा लिया, और कन्धे पर बाँह डालकर ज़ोरसे भींचकर बोला—"यहाँ आपको बुलाने के लिये इशारे करते करते दम निकल गयी। और आप थे कि स्वर्ग में बैठे थे!"

"देखा नहीं होगा।" शरद ने बड़े अव्यवस्थित और फटे कण्ठ से कहा।

"और मुझे टाइम देकर कल कहाँ चले गये थे महाराज?" कपिल ने उसे और भी स्नेह से भींच लिया।

"यों ही, ज़रा नेताभैया के साथ एक जगह जाना पड़ा था।" बड़ा अन्य-मनस्क-सा वह बोला। फिर शिष्टता के नाते पूछा—"आप आये थे क्या ?"

"यार, यहाँ लाकर तूने हमें मरवा दिया।" कपिल के पास बैठे, आसमानी सूट पहने पतले से चेहरे वाले युवक ने कहा।

"क्यों ?"—कपिल ने पूछा। शरद ने आश्चर्य से उधर देखा।

"अरे, एक आफ़त हो तो साली से निपटा जाय। किधर-किधर आदमी मोर्चा सँभाले ? इधर से वो एटम-बम चला आ रहा है, उधर से वह हाइड्रोजन-बम निकला आ रहा है। आखिर हम क्या करें ? कहाँ जा मरें ?" बड़ी गम्भीरता से वह महिलाओं के दल की ओर देख कर बोला। उसका सूट शायद नया था—उसके कॉलर को बार-बार खींच कर वह आगे करता था और काहिया टाई की नॉट को बार-बार समय निकाल कर एक बार देख लेता था कि उस नॉट से कौन-कौन प्रभावित हुआ।

"पार्टनर, बात तुम्हारी बिल्कुल ठीक है, बिना कुछ कण्ट्रोल हुए काम चलेगा नहीं। जब तुम बालिश्त-बालिश्त भर तो कमर खुली रखोगी—नीचे तक गला खुला रहेगा और फिर ब्लाउज़ ऐसा चुस्त पहनोगी कि अङ्ग का हर उभार दीखे, तो आप खुद बताइये, साले आदमी की हालत क्या होगी ? हम तो भाई, साफ बात है, इस तरह की परीक्षा देने के लिये बिल्कुल भी तैयार नहीं है।" महीन बढ़िया वॉयल की धोती और रेशमी कुर्ता—ऊनी जाकेट पहने आगे के सोफ़े से पीछे मुड़कर एक सज्जन बोले। चूँकि मुड़कर बात करते समय उनका मुँह शरद और कपिल की ओर हो गया था और पीठ महिलाओं की ओर, इसलिये अँगूठे से कन्धे के ऊपर पीछे की ओर इशारा करके बोले—"अब बालानी की लौंडिया को देख लो, कलेजे को रौंदे डाल रही है—बाल बॉब्ड करा लिये हैं, सो कभी झटके से इधर किये, कभी उधर; साड़ी कभी कन्धे पर टिकती नहीं है—आरकण्डी का ब्लाउज़—मक्खन-सी कमर...भाई, साफ़ बात है, अपने तो हाथ मचल-मचल कर रह जाते हैं। चली आई लिपिस्टिक लगाके—यह तो सोचती नहीं है कि किसी पर क्या गुज़रेगी ? तोप, तीर, तलवार, तमंचे सब रोंएँ—ऐसी तो भौहें बनाकर आई है, कम्बख़त ?" और उन्होंने ज़ोर की सिसकारी भरी। फिर बोले—"कमर खुली रखने के लिये तो शायद आप तर्क दे सकते हैं कि जब नेताओं ने अधिक अन्न पैदा करने का नारा लगाया तो इन बेचारियों ने 'भूमि-दान' के लिये इतना हिस्सा खुला छोड़ दिया है कि 'ग्रो मोर फ़ूड कैम्पेन' के लिये तो इतनी भूमि हमारी भी है !"

शायद कपिल थोड़ी परेशानी महसूस कर रहा था, लेकिन शरद से मुस्कुराये बिना नहीं रहा गया, तो कपिल ने भी थोड़ा गम्भीरता का बाना धारण करके पहली बात के जवाब में कहा—"इसका मतलब तो यह है कि दुनियाँ में 'डिसअरमिण्ट' हो ही नहीं सकता।"

"डिसआर्मामेण्ट ?" टाईवाला युवक विद्वत्ता से हँसा—"क्या बच्चों जैसी बात करते हो...? किसी फ़ौज के सामने इन्हें ले जाकर खड़ा कर दो, न सब एक साथ ढेर हो जाँय तो गर्दन हमारी कटा देना।"

"तब हमारी एक सलाह है।" बगल वाले सोफ़े के चश्मे वाले सज्जन ने भी गर्दन झुकाकर हिस्सा लिया—"गवर्नमेण्ट को कानून निकाल देना चाहिये कि ऐसे खतरनाक लोगों के पीछे एक 'एम्बुलैन्स' गाड़ी चला करे, स्वाभाविक बात है कि लोग घायल होंगे और गिरेंगे—वह गाड़ी उन्हें उठा-उठाकर ठिकाने लगाती चले।"

"आइडिया ! बहुत खूब !" सबने उनकी सूझ पर दाद दी, और वह जो बात खत्म करते ही मुह फाड़कर बिना गले मे स्वर निकाले निहायत काइयाँपन से हँस पड़े थे, अपनी प्रशंसा सुनकर सबसे हाथ मिला रहे थे। शरद अभी तक अपरिचित है और बड़ा विचित्र-सा अपने को अनुभव कर रहा होगा, यह सोच कर इस अवसर पर कपिल ने कहा—"दोस्तो, आपका परिचय अपने नये मित्र से करायें—आप हैं शरद कुमार...और आप बी० आर० रावत, हमारे कॉलेजमें हिस्ट्री के प्रोफ़ेसर" टाईवाले सज्जन से हाथ मिला।

"आप मनोहर लाल निगम, 'प्राची इन्श्योरेन्स कम्पनी' के प्रतिनिधि...!" चश्मेवाले सज्जन ने हाथ जोड़े।

"आप रत्न कुमार सेठ, 'कौमी-संगठन' के संयोजक और 'राधेलाल-माधोलाल बैंकर्स' के सुपुत्र।" इस बार शरद का हाथ बहुत कोमल गुदगुदे हाथ मे मिला। कुर्ते वाले अगली सीट के सज्जन का ही यह परिचय था।

"और आप श्रीरामजी लाल गुप्त—हरदयाल कॉलेज में हिन्दी और संस्कृत के प्रोफ़ेसर !" कोने में सिकुड़े-सिकुड़ाए, बिना इस्त्री-क्रीज़ का कुर्ता-धोती पहने एक साँवले से सज्जन ने अपने सूखे-से मुँह पर खुशी की लकीरें बनाकर दाँत निपोरते हुए हाथ जोड़ दिये। निस्तेज आँखें, मुरझाया मुँह, मशीन फिरे बालों में सूअर की पूँछ-सी मरोड़ लेकर गाँठ खाई चुटिया—शरद को देखकर मन मे हुआ—बेचारे यह भी पढ़ाते होंगे ! वे हर बात पर दाँत निकाल देते थे और दुनियाँ की हर चीज़ को इस तरह देखते थे जैसे 'फ्राइड' न्यूयॉर्क में आगया हो। इस सब वातावरण में उन बेचारों की आत्मा के पंछो की दम घुट रही है यह समझते, शरद को देर नहीं लगी।

"शरद बाबू, मैं समझता हूँ कि आप भी इस बात से सहमत होंगे कि आफ़त पुरुष की ही है।" रावत ने परिचय होने ही शरद से ऐसे कहा जैसे बहुत दिनों का परिचित है—"वह अगर औरत की तरफ नहीं देखता है तो औरत समझती है—हिश्ट, हिजड़ा है—और अगर देखता है तो गुण्डा है। हो सकता है आपको हमारी बातें पसन्द न आयें, आपकी नैतिकता और 'मौरेलिटी' की दम निकले कि हम कैसी बातें करते हैं लेकिन दोस्त मैं तो बहुत ही 'ब्लण्ट' आदमी हूँ—यह दुनियाँ भर का प्रदर्शन, यह इठला-इठला कर, मटक-मटक कर चलना; बात-बिना बात हसना—

अधिक से अधिक शरीर को दिखाना यह सब किसलिये है ? हलवाई अपनी मिठाई पर वर्क लगाता है, सुन्दर रंग डालता है, ख़ुशबू डालता है कि ग्राहक की सोई भूख जागे और ऐसी तीव्रता से जागे कि वह किसी न किसी तरह उसे प्राप्त करे—वह निमन्त्रण है जिसे चाहें तो भी आप नहीं झुठला सकते। शेफाली रॉय यहाँ से निकली—अभी तक ख़ुशबू यहाँ भन्ना रही है—वह देखिये तनेजा के नकली पैड्स लगाकर बनाए गये कुच, सिह के रँगे हुए होंट—एक नुमायश लगी हुई है साली—इधर से उधर तक ! तरह-तरह के जूड़े, चोटियाँ, चुटीले और फूलों के गुच्छे—हर डिज़ाइन के गहने, कपड़े, पचास तरह के पर्स, हर रंग की साड़ी, पोशाक, शलवार, दुपट्टा, ग़रारा, फ्रॉक, साड़ियों के पहनने के ढंग, जैसे 'ह्वाइट वे' की दूकान में चले आए हों कि स्त्री का हर मॉडल यहाँ मिल जायेगा—मुई से लेकर हवाई जहाज़ तक ! आप मुझे बताइये, बालानी के कपड़े पहनने से कुछ फायदा है ? भई, साफ बात है—हमसे सब्र नहीं होता। जिसकी नैतिकता और मौरेलिटी मरती हो वह आँख बन्द कर ले—काने में औंधा होकर मर जाय !" रावत बिफर उठा। यह संकेत शायद हिन्दी-प्रोफेसर की ओर था, क्योंकि उसने उधर ही कनखी से देखा।

"अच्छा, कविता सुन, लैक्चर मत दे।" मेठ सामने देखकर उसके लैक्चर से ऊबकर बोला।

"अबे क्या 'बोर' बात करता है ? कोई कविता है जो सुनी जाय ?" हाथ के झटके से उसकी बात उड़ाकर शरद को प्रभावित करने के लिये रावत ने फिर कहा—"सच मानिये शरद बाबू, इनमें से हर औरत चाहती है कि पुरुष की वासना-भरी दृष्टियाँ उसके शरीर को सहला-सहला कर गुदगुदाती और रोमांचित करती रहें। कितना वह 'इन्वाइट' और आकर्षित कर पाती है, यही उसकी सफलता है।"

"बुरा क्या है ?" शरद ने जंभाई ली।

"मैं तो खुद कहता हूँ कुछ बुरा नहीं है ! तुम्हारी यही इच्छा है, तो यही सही।"

"यार, इस कपूर ने मेरी आफ़त कर रखी है।" मेठ मुड़कर गालों में मुस्कुराता बोला—"जब से बार-बार दुपट्टा गिरा देती है, और पीठ में जोर-ज़ोर से निगाहें घुमा-घुमा कर मार रही है। अपनी तो तबियत मालिश करने लगी है। यहाँ बैठा रहा तो या तो आर पार छेद हो जायेंगे—या धड़ दो हिस्सों में कट जायेगा। बन्धुओ, मुझे बचाओ।"

सब धीरे-धीरे हँस पड़े।

"संयोजक जी, क्यों न इस विषय पर आप एक भाषण झाड़ आयें।" कपिल ने सिगरेट पीने से मुँह को आ गये तम्बाकू के एकाध-कण को जीभ से बाहर निकालते हुए कहा—"यार, इस गधे का महाकाव्य ही खत्म नहीं हो रहा !"

"पूरी जन्म-पत्री लिखकर लाया है। अब तो यह 'बोरियत' खत्म होनी

चाहिये।" रावत ने कहा—"कहो तो 'हूट' करूं ?"

"नहीं-नहीं, यह कोई कॉलेज हॉल है ? मन्त्रीजी बैठे हैं दो-दो, साले, दीवाल में चुनवा देंगे !"

"मन्त्रियों की—" कपिल के कान के पास मुँह लाकर उसने ऐसी भारी—भरकम गाली मन्त्री के नाम चढ़ाई कि शरद ने शरमा कर दूसरी ओर मुँह फेर लिया।

"क्यों, शरद बाबू, दाण्डेकर नहीं बोलेंगे कुछ ?" कपिल ने एकदम विषय बदल कर कहा—

"अभी तो हमारे कॉलेज में बोलकर आये हैं।" झट शरद के पीछे वाले सोफ़े से एक सांवले लड़के-नुमा 'क्लीन-शेव्ड' सज्जन बोले। इन्होंने जिप लगी बढ़िया ऊनी कपड़े की जाकेट पहन रखी थी जिसकी बाँहों, किनारों पर नफ़ीस गोट लगी थी। गले में एकदम सुर्ख टाई। 'होल्डर' में लगी सिगरेट दाँतों में दबाए उन्होंने अपने रूखे बालों को पीछे हटाते हुए कहा।

कपिल ने परिचय कराया, आप हमारे कॉलेज में अंग्रेजी के नये लैक्चरार हैं। नाम है एम० सी० ओझा।' उन्होंने अपनी जगह से थोड़ा उठकर शरद से हाथ मिलाया और बताया कि उससे मिलकर उन्हें कितनी प्रसन्नता हुई है। फिर एकदम विभोर होकर कपिल से बोले—"यार, एक बात है—तुम्हारा ये दाण्डेकर बढ़िया इंगलिश बोलता है ! स्पीक्स वैरी फाइन एण्ड फ़्लावरी इंगलिश" उन्होंने इंगलिश उच्चारण में कहा।

"हाँ, आज दिन में मेरी एकाध बार बातचीत हुई। अपने विषय का अधिकारी विद्वान है।" शरद ने बताया।

"मैं इङ्गलिश की कह रहा था। सब इतनी अच्छी थोड़े ही बोल पाते हैं। हमारे जो हैड हैं. कभी उनकी इङ्गलिश आप सुनें तो चकित रह जाँय।" ओझा ने आँखें ज़रा सिकोड़ कर कश खींचते हुए कहा—"मैंने तो तब से उनकी धाक मान ली जब इण्टरव्यू हुआ। मैं इण्टरव्यू देना तो भूल गया बस उनकी अँग्रेजी सुनने लगा। मुझसे बोले आखिर में—'वैल मि० ओझा, यू स्पीक इङ्गलीश, जस्ट विद द एक्सेण्ट ऑफ़ एन इङ्गलिशमैन।" उन्होंने बिल्कुल उनकी नक़ल उतार कर कहा।

रावत इत्यादि इस समय शारीरिक अनुपातों का अध्ययन कर रहे थे, कपिल को ओझा का यह विषयान्तर अधिक पसन्द नहीं आया, बोला—'पार्टी ख़त्म करते समय हमें दाण्डेकर से मिलवाइये, शरद बाबू।"

"ज़रूर।" शरद ने कहा, और परसों का पूरा चित्र उसके दिमाग में आगया। शायद यही कुछ ध्यान कपिल को भी आया—एकदम झटके से उठकर बोला—"अरे हाँ, हमने सुना है कि सूरजजी चक-ऑफ़ कर दिये गये..."

"जी हाँ, हैं कहाँ ? कुछ पता है ?" शरद ने सुस्त पड़कर चिन्तित-स्वर में पूछा। उसकी उदासी पुनः लौट आई।

"मिल तो नहीं पाया—लेकिन सुनते हैं 'मज़दूर-संघ' के दफ़्तर में हैं। पार्टी के बाद मुझे भी बहुत ज़रूरी मिलना है।" कपिल ने चिन्ता-पूर्वक पूछा—"असल बात क्या थी, कुछ पता नहीं चल रहा। कोई कुछ कहता है, कोई कुछ। बात क्या थी, आपको तो पता होगी न ?"

"कुछ यों ही मिल के सम्बन्ध में उन्होंने ऐसी बातें लिखदी थीं जो मालिकों के हितों में नहीं थीं, दूसरे इस समय तो वे उन्हें किसी भी हालत में प्रकाश में नहीं आने देना चाहते थे। फिर ग़लती उन्होंने की कि यह सारी बातें उन्होंने उस विशेषांक में दे मारीं जो मन्त्रीजी के सम्मान में निकल रहा था।" शरद ने बड़ी जल्दी-जल्दी बता दिया और पूछा—"मि० कपिल, यह मज़दूर-संघ का दफ़्तर कहाँ है ?"

"क्यों ? मिलेंगे क्या ? साथ ही मैं भी चला चलूँगा। तभी ले जाऊँगा।" कपिल ने कहा।

"अब क्या पता हमें कब फ़ुर्सत मिले ? बाद में पहुँच जाऊँगा।" शरद उन्हें टालना चाहता था।

"तो आप किसी से भी सब्ज़ी-मार्केट पूछ लीजिये। वहाँ जाकर अपने आप पता लग जायेगा।" और यह देखकर कि रावत काफी ज़ोर-ज़ोर से बोल रहा है, कपिल ने उससे कहा—"अरे भाई ज़रा धीरे...वह सामने प्रिंसिपल साहब बैठे हैं कुछ तो ध्यान करो।"

शरद उठ खड़ा हुआ—"अच्छा, अब मैं ज़रा बाहर जा रहा हूँ।"

"बाहर तो जा रहे हैं, लेकिन वह पार्टी कहाँ है, जिसके लिये बुलाया था ? यह तो कवि-सम्मेलन हो गया—इसका पुराण ही ख़त्म नहीं हुआ।"

शरद ने कहा—"चिन्ता मत कीजिये, जल्दी ही प्लेटें लग रही हैं।"

"हाँ; जल्दी करवाइये, चाहे जितना फ्रॉयडियन-थ्योरी में विश्वास करे—रहना मार्क्स के घर में ही है।" कपिल ने कहा।

'क्या मतलब ?'

"मतलब यही कि लड़कियाँ देखने से पेट थोड़े ही भरता है।"

"अरे पेट तो तब भरे जब यह महाकाव्य ख़त्म हो।" रावत ने कहा।

"यार, अब नहीं रहा जाता—अब तो सीटी बजाता हूँ। और साली कोई कविता भी तो हो ?" सेठ बोला।

"नहीं भाई, सीटी वगैरा नहीं, अपने क्लास की कुछ बच्चियाँ बैठी हैं, कल आफ़त कर देंगी।" कपिल डर गया।

"अम्मियाँ कह—बच्चियों को क्यों बदनाम करता है ?"

"हिन्दी में आप और कैसी कविता की आशा करते हैं ?" ओझा ने पीछे से अंग्रेजी में कहा—"कविता तो इङ्गलिश में देखिये, क्या एक्सप्रेशन है, क्या डिक्शन और इमेजरी है कि मज़ा आ जाय ! कपिल साहब, आपने स्टीफ़ेन स्पैण्डर की

कविता 'द गॉड देट फ़ेल्ड' पढ़ी है ? मास्टर-पीस । सिम्पली मार्वलस् । ऑडेन की 'शील्ड ऑफ़ एचलीज़' देखिये—पौराणिक कथाओं को नया मोड़, नई व्याख्या कैसे दी जाती है—अब हिन्दुस्तानियों को एक हज़ार साल लगेंगे कम से कम ।"

"कविता ?" शरद के मुँह से निकल गया ।

"अबे हट्ट, किसी के सामने कह भी मत दीजो, कविता है !" आँखों के आगे हाथ झटककर कपिल ने कहा—"नाम सुन लिया और चल दिये रौब झाड़ने । वह छः आदमियों की लिखी गद्य की किताब है—कम्यूनिज़्म के ख़िलाफ़ ! और शील्ड ऑफ़ एचलीज़ का अभी सिर्फ़ विज्ञापन निकल रहा है—किताब छप रही है । अभी नहीं छपी ।"

ओझा झेंपा लेकिन फौरन ही बोला—"इस नाम की उसकी एक कविता भी है । ऑडेन की किताब के कुछ हिस्से एक पत्रिका में देखे थे ।"

"कोई कविता नहीं है । और ऑडेन ने अपने एक लेख में उसका ज़िक्र भर किया है ।"

"अच्छा अब चलें..." शरद मन ही मन हँसता हुआ गैलरीमें बिछे मुलायम नमदे के फ़र्श की रँगीली पट्टी पर एक सीध में चला आया । चलते-चलते उसने मेठ की आवाज़ सुनी जो अपने एक साथी से कह रहा था—"कहो तो एक 'फ़्लाइङ्ग-किस' फेंकूँ ?" मुस्कुराहट होठों पर आगयी—बेचारे पण्डितजी !

"यह आख़िर चलता कब तक रहेगा ? एक कीड़ा सूरजजी के कन्धे पर रेंग रहा था उसे कैरम के स्ट्राइकर मारने की तरह झाड़ते हुए परेशानी से शरद ने पूछा ।

"कह तो दिया, अब नहीं चलेगा ! बहुत चल लिया । अब सूरज के भीतर का वह भीम जागा है जिसका कोई परिवार नहीं है, घर नहीं है, माँ-बाप नहीं है—जो ख़ाना-बदोश है । और ख़ाना-बदोश शब्द भी मूलतः ग़लत इसलिये है कि ख़ाना का अर्थ है घर और दोश का कन्धे—अर्थात् जो अपना घर कन्धे पर लिये फिरता है । यहाँ कोई घर ही नहीं है—कन्धे पर क्या लिये फिरेंगे ? जहाँ पहुँच गये वह घर हो गया—सबका घर अपना है ।" सूरजजी फ़र्श पर दीवार के सहारे अध-बैठे लेटे थे और उँगलियाँ एक दूसरे में फंसा कर उन्होने सिर के पीछे रख ली थीं, कुहनियां इधर-उधर निकल आई थीं ।

"आज तो आप बिल्कुल भारतीय अनासक्त योगी की तरह बात कर रहे है ।" शरद उनके पास ही पैर एक ओर फैला कर बैठा था ।

"क्या करूँ फिर ?" जोश में आकर सूरजजी एकदम सीधे बैठ गये—"यानी आप सोचिये शरद बाबू, हद हो गयी ! मुझे अब ताज्जुब होता है कैसे मैं

यह सब सहता चुपचाप पड़ा रहा इतने दिनों ? यानी कि आप पहले मौक़े-बेमौक़े अखबार की हैल्प या सहायता नहीं कर रहे थे, बल्कि अपनी देश-भक्ति और क्रांति के प्रति सहानुभूति के नाम पर आप रुपया इन्वैस्ट कर रहे थे !—कि समय पर पूरा 'बिगुल' हथियाया जा सके ! मैंने एक बार आपसे कहा भी था, बिज़नेसमैन देता कुछ नहीं—हमेशा इन्वैस्ट करता है। सो धीरे-धीरे बिगुल इनकी चहार-दीवारी में आगया, और फिर आपने देखा कि मैटर तक पास होने लगा।" सूरजजी की आँखें चमकने लगी थीं—या चश्मे के शीशों पर बिजली का बल्ब प्रतिबिम्बित हो रहा था शरद ने पहचानने की कोशिश नहीं की—वह चुपचाप सुनता रहा... "आवाज़ें ख़रीदी जाती हैं, कलमें ख़रीदी जाती हैं, आत्माएं ख़रीदी जा सकती हैं, दुनियाँ की सारी चीजें ख़रीदी जा सकती हैं—लेकिन सब कुछ थोड़े समय के लिये; आप हमेशाके लिये हर आवाज़ को नहीं ख़रीद सकते—हर व्यक्ति की आत्मा कुचली नहीं जा सकती ! आप व्यक्ति की आवाज़, कलम और आत्मा ख़रीद सकते हैं; लेकिन वह व्यक्ति जिस परम्परा और समूह की कड़ी है उसे आप नहीं ख़रीद सकते—नहीं कुचल सकते। अंग्रेजों ने बहादुरशाहको कुचल दिया—पीस दिया; लेकिन उसकी आवाज़—'गाज़ियों में बू रहेगी जब तलक ईमान की, तख़्ते लन्दन तक चलेगी, तेग़ हिन्दुस्तान की—' आनेवाले हर क्रान्तिकारी के लिये एक तलवार बन गयी।" सूरजजी विद्रूप से हंसे —"हुंह, अच्छा मज़ाक था। आप गोलियाँ चलवायें, लाठियाँ चलवायें और फिर मिनिस्टरों की दावत-स्वागत में लाखों रुपया खर्च कर दें—और सूरजजी आपकी प्रशस्ति गाते रहें। सूरजजी न हो गये—चारण-भाट हो गये ! आपकी लच्छेदार बातों, मुस्कानों और ढोंगोंमें ज्यादा देर कोई नहीं उलझा रहेगा।"

'सूरजजी, आप कल्पना नहीं कर सकते—आदमी दूर से क्या सोच सकता है —क्या समझता है। मैं जानता था कि राजनैतिक और सामाजिक-दृष्टि से अपने विचार मिलने का कोई मौका यहाँ नहीं है; लेकिन इनके मिलने-जुलने, खत-किताबत से मैं समझता था आदमी उदार-विचारों का है—उतना रूढ़िवादी क़िस्म का नहीं है —अपना काम शायद चला—चल सकता है। न सही उग्रता, थोड़े समझौते और नम्रता से काम ले लेंगे, लेकिन सात दिन में यहाँ तो सारा चौखटा ही उलटा निकला..." शरद ने समझ लिया कि सूरजजी भरे बैठे हैं, वह अपने मन की बात कहे बिना नहीं रह सका—"और मैंने बताया—अभी मुझे तो हर क़दम पर चौंकना पड़ा। इन सब बातों की हम लोग दूर से कल्पना भी नहीं कर सकते थे।"

सूरजजी शरद को बोलने का अवसर देकर अपनी अगली बात सोच रहे थे— उसके चुप होते ही बोले—"आप कल देखिये, किस तरह हम लोग इकठ्ठे हो-होकर जाते हैं, झोलियाँ बनाकर हड़तालियों के लिये भीख माँगते हैं। मैं कहता हूँ शरद बाबू, आपकी आँखों में आँसू आ जायेंगे जब आप चार-चार पाँच-पाँच साल के दुध-मुँहों को भूख से बिलबिलाते देखेंगे। औरतों की आँखें गड्ढोंमें घुस गई हैं—आदमियों

की आवाज़ें गलों से नहीं निकलती हैं, लेकिन इनको ज़रा भी दया नहीं है...।"

"वे तो मुझे यह समझा रहे थे कि बेकार झगड़ने में कुछ नहीं रखा, झुकने में कौन बड़ा—कौन छोटा ! मज़दूर ही ज़रा झुक जाँय तो क्या बुराई हो जाय।" शरद को कार की बातचीत याद आ गई।

"जी हाँ, कुछ बुराई नहीं है तो आप ही क्यों नहीं झुक जाते ?" मेज पर बैठे चिटणीस ने जीभ से लिफाफे के गोंद को तर करते हुए कहा।

"अच्छा, मजा है यह कि अपने को सत्य बाबू से अलग दिखाते हैं। खुद अपनी तरफ़ से मज़दूर-हड़तालियों को चने भेजते हैं जीप में भर-भरकर; लेकिन शरद बाबू, मैं जानता हूँ कोई दिन ऐसा नहीं जाता जब रात को दो-घण्टे बैठकर सत्य बाबू और यह पूरी स्थिति पर विचार-विनिमय न करते हों। यों ही नेता नहीं बन गया। बड़ी सधी हुई चाल चलता है।" सूरजजी का चेहरा लाल हो गया था। उन्होंने सिर हिलाकर कहा।

"कहते थे कि पाँच ही क्यों मरे, पाँच हजार क्यों नहीं मरे कि दुनियाँ जान जाती कि हैं 'सत्यामिल्स' के मज़दूर जो, अपने अधिकारों के लिये जान तक लड़ा देना जानते हैं—खून की नदियाँ बहा देना जानते है।" शरद ने बताया।

"न खुलवाओ—न खुलवाओ शरद बाबू, अब यह ज़बान बन्द ही रहने दो।" तड़प कर सूरजजी बोले—"उन्होंने तो बड़ी आसानी से पाँच के बाद छठे नम्बर पर तीन बिन्दियाँ बढ़ा दीं। ज़बान है, पाँच हजार की जगह पाँच लाख भी कर सकते थे, लेकिन अगर छठा नम्बर भी इनका या इनके बेटे का होता तो देखते कैसे इतने नम्बर बढ़ा देते ? मरने की गिनती को लोग कितनी आसानी से कह देते हैं कि एक ऐटमबम डाला था सो नागासाकी और हिरोशिमा में दो लाख आदमी मर गये ! कम्बख्तो, उनमें तुम्हारा भी एक घर होता तो देखते कैसे तुम 'ऐटमबम' प्रयोग करने-वाले हो ! आदमी की ज़िन्दगी को सिर्फ़ एक जड़ गिनती बना डाला है। ट्रॉटस्की भी तो कहता था कि सारी दुनियाँ में क्रांति एक साथ हो जाय।" सूरजजी ने चिढ़ा कर कहा—"पाँच की जगह पाँच हजार क्यों नहीं मरे ? जो आदमी बयालीस में माफ़ी माँग कर छूटा हो—वह कहता है पाँच की जगह पाँच हजार क्यों नही मरे !"

"यह माफ़ी माँगकर छूटे हैं ?" शरद बुरी तरह चौंका।

"जी हाँ, अभी तो जेल में 'रिकॉर्ड' रखा होगा, लिखित माफ़ी माँग कर छूटा है।" सूरजजी ने गहरी साँस लेकर कहा—"क्या सुनोगे, शरद बाबू, भरा बैठा हूँ, भरा ! जब गले तक पानी आ गया तब यह सब किया है। और सूरज इस बात को खूब अच्छी तरह जानता था कि एक न एक दिन यह सब होना है, लेकिन पता नहीं कैसी एक जड़ता थी कि दबाये बैठी थी—"

शरद की आँखों के आगे जैसे एक और पर्दा खुल गया। वह सोचता रहा। उसे देशबन्धुजी की दूसरी बात याद आगई, बोला—"और मुझसे कहता था एकबार,

गीता मेरी सबसे प्यारी किताब है। शान्ति का सन्देश दुनियाँ में अगर कोई किताब देती है तो बस गीता—"

"गीता और शान्ति का सन्देश ?" चिटणीस इस तरह उठकर खड़ा हो गया जैसे उसके पाँव के नीचे अंगारा आ गया हो—"वॉट नान्सेन्स ! गीताका उद्देश्य ही यह था कि युद्ध हो। आप बताइये, गीता किसलिये कही गयी— ? और जिस उद्देश्य के लिये कही गयी—वह सफल हुआ, अर्थात् युद्ध हुआ—अन्याय के विरुद्ध—युद्ध हुआ। बदमाश ! अर्थ को खराब करते हैं।" चिटणीस ने झटके से नाक से हवा निकाल कर घृणा व्यक्त की—"तिलक गीता क्या लिख गये, हर नेताको गीता पर कुछ न कुछ उगलने का मर्ज हो गया। और मजा यह कि आदमी को बहका कर, उसका अर्थ उलट कर बीच में उलझाकर आत्मा को शान्ति देते है। और मैं मानता हूँ कि गीता है भी ऐसी ही किताब कि जहाँ जरा भी आप उसके सृजन का उद्देश्य भूले कि फिर भटके और महत्मा बने। वर्ना मुझे बताइये, गीता एक ऐसे आदमी के मानसिक द्वन्द्व के सिवा और क्या है, जो लड़ने में हिचकिचाता था और उसे सुनकर लड़ पड़ा ?"

सूरजजी शून्य में आँखे फाड़े देखते रहे। यों ही कुछ सोचते-सोचते रुक-रुक कर बोले—"सूरजजी की आँखों के सामने बिल्कुल साफ़ होता जा रहा है। होगा और जरूर होगा। फिर एक महाभारत होगा. कौरवों और पाण्डवों के दावे का अन्तिम निर्णय होने को है। पाप का घड़ा गले तक भर चुका है, और एक सौ एकवीं गाली पर जनता का सुदर्शन-चक्र इन शिशुपालों की गर्दन पर होगा—"

यह सूरजजी की भावुकता के उफान हैं, यह सोचकर शरद उसके बीत जाने की राह देखता चुप रहा। जब वे फिर अपने चिन्तन में खो गये तो उसने पूछा—"अब क्या हो रहा है ?"

"होता क्या ? लड़ाई हाईकोर्ट तक जायेगी। प्रीमियर और होम-मिनिस्टर को तुम दावतें खिलाकर, उद्घाटन कराके, अभिनन्दन करके और शिला-न्यास के नाटक करके बहका लें, लेबर कमिश्नर तुम्हारा भतीजा लगता है, वह अलग कैसे जायेगा—लेकिन कानून तुम्हारे सर पर चिल्लाकर तुम्हारी हत्यायें बतायेगा—"

"नहीं सूरजजी, कानून को आप ग़लत समझ रहे हैं।" शरद ने बात काट कर कहा—"मैं जानता हूँ कानून क्या है ? इससे बड़ा मज़ाक दुनियाँ में कुछ नहीं है। जिस किताब से एक वकील आपको अपराधी सिद्ध करेगा, दूसरा वकील उसी किताब से आपको छुड़ा देगा। बाजीगरी है पूरी यह। शब्दों के अर्थ करने का कमाल है—कानून, कचहरी, पुलिस, फौज, नेता सभी कुछ तो उनके हैं..."

"जब तोप मुक़ाबिल हो तो अखबार निकालो।" सूरजजी बोले—"आप देखिये शरद बाबू—'बिगुल' निकलता है..."

"दुबारा...?"

"हाँ—अब उसकी कड़क देखिये और चमक देखिये..."

"लेकिन, 'बिगुल' तो उनके पास है, फिर निकालेगा कौन ?" चिन्तित-स्वर में उसने पूछा।

"अरे उनकी ऐसी-तैसी ! हमने फ़रारी और पाबन्दी के दिनों में 'बिगुल-बुलैटिन' निकाले थे—अब क्या वे हाथ बदल गये हैं ? 'बिगुल' क्रान्ति की आवाज़ थी और रहेगी। 'बिगुल' हम निकालेंगे हम।" सूरजजी ने छाती ठोकी।

शरद की याद में सूरजजी ने प्रथम पुरुष सर्वनाम का पहली बार इतने शक्ति-शाली-ढङ्ग से प्रयोग किया और वह विभोर देखता रहा।

"भाई, पार्टी का ढङ्ग हमें ज़रा भी पसन्द नहीं आया।" बड़े-से सैण्डविच मुँह में भर कर वहाँ से घोड़े के नाल के आकार का टुकड़ा काटते हुए सिंह साहब ने कहा—"यहाँ कहते हैं—हिन्दुस्तानी बिना अपना कैरेक्टर दिखाये नहीं रह सकता, यानी इतना खर्च किया है सब किया है। न होता, बाहर एक शामियाना तनवा देते या 'ओपन-एयर' ही रहने देते, बड़ी-बड़ी चार-छः मेज़ें हो जातीं, उन्हीं के आस-पास कुर्सियाँ डाल कर या बिना कुर्सियों के ही ठाठ से 'बूफ़े' होता ! यहाँ तो जैसे नाटक में ला बैठाया हो, एक वैरायटी प्रोग्राम रख दिया, अब भाषण होंगे, अब कविता, अब खाना और अब डांस और अब म्यूज़िक..." उन्होंने दूसरा मुँह मारा।

"वैसे तो सिंह साहब, तुम्हारा तो मन भी नहीं लगरहा होगा।" जस्टिस मल-होत्रा ने चाकलेट-मिल्क का भारी-सा घूंट निगल कर अपने अठ-पहलू बिना फ्रेम के बहुत हल्के नीले काँचों वाले चश्मे को पीछे सरका कर कहा—"यह हिंदुस्तान-पाकि-स्तान-सा बँटवारा भी तुम्हें अच्छा नहीं लग रहा होगा।" वे हँस पड़े।

"उन्हें तो कभी-कभी जाने की आदत होगी ऐसी जगह, लेकिन जस्टिस साहब, दिक़्क़त उन लोगों की है जिन्हें रोज़ क्लब में साक़ी से पीने की आदत पड़ी हो।" अजन्ता-प्लास्टिक के प्रोप्राइटर प्रभूदयाल गर्ग ने अपनी चाँद पर कढ़ी हुई दुपल्ली टोपी को ठीक एंगिल देते हुए कहा और ख़ुद ही हँस पड़ने से उनका भारी शरीर इस तरह उछलने लगा जैसे स्प्रिंग पर रखकर उछाला जा रहा हो।

"हुँह, पार्टी कुछ जम नहीं रही, अपने सारे दोस्त साले इधर-उधर चिपके हैं।" राय बहादुर जंगजीत सिंह—रिटायर्ड एस० पी० अत्यन्त तटस्थ-भाव से एक-एक घूँट शराब के अन्दाज़ में पीते हुए अपनी छोटी-छोटी आँखों की सीध में उठी हुई मूंछों को मरोड़े जा रहे थे। काली अचकन का अन्तिम बटन तक उन्होंने बन्द कर दिया था। घड़ी को सोने की बढ़िया जन्ज़ीर बटन से जेब में गई थी जो उनके रौबीले शरीर की भव्यता को और भी बढ़ा रही थी। आँखें लाल, छोटे-छोटे पीछे काढ़े

गये बाल, जिनमें स्पष्ट ही खिजाब लगा था, और गालों के उभरे हुए कल्ले अधिक शराब पीने से काले पड़ गये थे—लेकिन शरीर अधिक हट्टा-कट्टा था। मूँछों को मरोड़ते हुए हाथ में चौड़ी चमकदार हीरे की चकली वाली चाँदी की अँगूठी—शायद नक्षत्रों या व्यक्तित्व का प्रभाव ठीक रखने के लिये थी—"एस० पी० दुबारा सिंह अपना यार होता है। बड़ा यार-बाश आदमी है—सो साला बाहर कहीं खड़ा है। चौधरी साहब कभी हमने सोचा भी था इन दो-दो टकों के आदमियोंकी गुलामी करनी पड़ेगी ? सालों में वो मार पड़वाई थी कि हड्डियाँ तो इनकी अब भी दुखती होंगी —याद तो होगा। बड़े-बड़े नेता जो आज ये मिनिस्टर, वो मिनिस्टर हैं, गधे की तरह डकरा-डकरा कर रोते थे जब बीचमें खड़ा कर दिया और लगा दिये दो सिपाही, सिरके सारे बाल उड़ा दो मार-मारके जूते, अब लग रहे हैं सिपाही धड़ाधड़-धड़ाधड़ ! सारी कोतवाली गूँज जाती थी...।" अपनी पुरानी बातें याद करके रायबहादुर की आँखें चमकने लगी थीं। हाथ उनका दूसरी तरफ़ की मूंछें मरोड़ने में लगा था। वे खुद-ही हँसे।

पतलून, कमीज और ऊँचा-सा कुल्लेदार साफा बाँधे लम्बी नाक वाले चौधरी बजारा सिंह ने सिर हिलाया—'इंग्रेज हुकूमत् करणा जानता था—उसका रौब और दबदबा था, तब होती थी हुकूमत। अब ये लोग ····· (एक भारी-सी गाली) क्या खाकर हुकूमत करेंगे ? ज़िन्दगी भर मूंग की दाल और बकरी का दूध पिया—गुड़ तक नसीब नहीं हुआ, बाप-दादे घास खोदते रहे—और आज मिनिस्टर बन गये। क्या दिल होगा इनका जो उसका दिल था ?"

"और उसी का नतीजा है देख लीजिये, ज़रा-सा डाकू है खजान सिंह दस साल हो गये—दुनियाँ भर की पुलिस और फ़ौज लगी हुई है—हाथ नहीं आ रहा है। कभी इस सूबे में चला जाता है, कभी उस सूबे में, ठाठ से राजा मशहूर हो रहा है..." रिटायर्ड ऐस० पी० साहब बोले—"सुना बाटा साहब।"

"अच्छा !" बाटा की सबसे बड़ी स्थानीय ब्रांच के मैनेजर सरदार विलायत सिंह नरूला ने चौंक कर अँगूठे और तर्जनी को चुटकी की तरह होठों पर रखा और फैला कर मूंछें इत्यादि मुँह पर से हटाते हुए पूछा। खूबसरत पट्टी बाँध कर उन्होंने दाढ़ी को साफ़े से मिला रखा था और फ़िक्सर से मूँछें जमी हुई थीं।

"हाँ जी, राजा खजान सिंह कहलाता है, और शेर की तरह सीना तान कर जहाँ चाहता है जाता है—और इन सालों ने एड़ी-चोटी तक का दम लगा रखा है लेकिन छाँह तक नहीं छू पाते हैं।" यह देख कर कि इस रोचक विषय से आस-पास के लोग आकर्षित हो रहे हैं एस० पी० साहब ने और भी अधिक भाव-भंगिमा सहित उसका वर्णन किया।

"बाटा साहब, यक़ीन कीजिये. जहाँ-जहाँ भी मोर्चे लगे, मुठभेड़ें हुईं और कमान उसके हाथ में हुई उसने इनको छठ्ठी का दूध याद करा दिया है, छठ्ठी का !

ये सात-सात-सौ आदमियों के दल हैं और उधर से सिर्फ़ पचास आदमी हैं और इनकी सालों की हिम्मत नहीं है कि एक को भी ज़रब लगा जाँय..."

चौधरी साहब भी विभोर हो गये, सिर हिलाकर बोले—"वाह, कमाल है।" लोग वास्तव में इस बात का कमाल मान रहे हैं या नहीं यह देखने के लिये उन्होंने 'बाटा साहब' को देखा, सिंह, गर्ग और मलहोत्रा की ओर देखा जो अपनी बातें छोड़ कर यह बातें सुनने लगे थे।

"हथियार है उसके पास ?" ऐस० पी० ने हाथ बढ़ा कर प्रशंसा-पूर्ण ढङ्ग से प्रश्न किया, फिर खुद ही जबाब दिया—"स्टेनगन, ब्रेनगन, हथगोले—बढ़िया से बढ़िया रायफ़िलें, रिवॉल्वर—नये से नया। क्या नहीं है उसके पास ? और निशाना ? अहः हाथ चूम लेने को मन करता है, आज भी सड़सठ साल की उम्र में, चाहें तो आपकी टोपी गिरा दे, राइफ़िल गिरा दे—मजाल क्या जो एक भी गोली बेकार फेंकता हो।"

"अच्छा ?" बाटा साहब मुँह फाड़े सुन रहे थे, गद्‌गद् होकर बोले—

"क्यों साहब, आता कहाँ से है जी, यह सब ?"

जैसे किसी बच्चे की बात पर हँस रहे हों इस तरह हँस कर बोले—"उसका सी० आई० डी० डिपार्टमेण्ट कुछ ऐसा वैसा है ? अरे, उसके पास ट्रांसमीटर वायरलेस सब हैं।" फिर ज़रा धीरे-से रहस्य खोलने की मुद्रा में झुककर बोले—"तुम्हारे यही सब अफ़सर-मिनिस्टर अन्धाधुन्ध रिश्वत खाते हैं और देते हैं।"

"हूँ !" गम्भीरता से होंठ बाहर निकाल कर चौधरी साहब ने कुल्लेदार साफ़े वाला बड़ा-सा खोपड़ा हिलाया। और एक आँख से मिनिस्टर साहब की ओर देखा।

"उसको जगह का भी तो बहुत फ़ायदा है।" सिंह ने बीच में कहा—"वह रहता ही उन ऊबड़-खाबड़ खादरों में और ऐसी जगह है कि ये लोग पहुँच ही नहीं पाते हैं। ऐसी-ऐसी दरारें और खाइयाँ हैं कि चार-चार सौ आदमी महीनों पड़े रहें, इनके बाप पता नहीं लगा सकते।" उन्हें वहाँ की चप्पा-चप्पा ज़मीन का हाल मालूम है। इन लोगों के लिये यह सब बिल्कुल नया है। और खैर बरसात में जब नदी चढ़ आती है तो यह लोग कुछ कर ही नहीं सकते..."

"खुले में ही क्या कर पाते हैं ?" ऐस० पी० साहब अब उसके पूरी तरह प्रशंसक बन चुके थे—"अभी पिछले दिनों की ही बात है। इन्हें पता लग गया, फ़लाने गाँव में डाका पड़ रहा है और उसमें खजान सिंह है—सा'ब, चढ़ दौड़े। तीन सब इन्सपैक्टर थे, पचास-साठ सिपाही थे, दोनों तरफ़ से डटकर गोलियाँ चलीं—फिर वो लोग भाग गये। शायद उनका कोई आदमी घायल हो गया था—उसे उठा ले गये थे। खून की बूँदों के सहारे यह भी पीछे चलते गये थे। इनके साथ दो मुखबिर थे, वही इन्हें ले जा रहे थे। नदी पर जाकर सब निशान खत्म हो गये

—वहाँ मल्लाहों के आठ-दस झोंपड़े थे—उनसे पूछा-ताछा, मार-पीट की तो पता लगा कि पार चले गये, नावें वे लोग खुद ले गये हैं। पार जाने का कोई रास्ता नहीं है। अब ये साले सब भूखे-प्यासे थे। वहीं दो-चार बाड़ियाँ थीं। ये खीरे-ककड़ियाँ खाने उसमें घुस गये। तभी अचानक पहाड़ी नदी के पार से गोली आई और एक मुखबिर की खोपड़ी में लगी। वह तो वहीं ठण्डा हो गया। भगदड़ मच गयी—गड्ढों में और पेड़ों के पीछे से इन लोगों ने भी जवाब दिये, लेकिन वे लोग बड़े पत्थरों के पीछे काफ़ी ऊँचे पर मोर्चा लगाये बैठे थे। दो सब-इन्सपैक्टर एक छप्पर-से के नीचे एक ही खाट पर लेटे थे। मुखबिर पास बैठा था—अचानक एक के बाद एक, कई गोलियों की बौछार उधर आई—एक सब-इन्सपैक्टर तो उछल कर पुर के लिये बैल जाने का गड्ढा था, उसमें कूद पड़ा—दूसरे को तीन गोलियाँ लगीं। दूसरे मुखबिर को भी उन्होंने उड़ा दिया...।" अपनी बात का निष्कर्ष निकालते हुए हँसकर बोले—"अभी दुधारा सिंह परसों आया था कि वह सब-इन्सपैक्टर जो गड्ढे में गिर कर बच गया···रात को खाट से उछल-उछल पड़ता है। चीखता है।"

"मुखबिर को नहीं छोड़ता···?" गर्ग ने भीत-स्वर में पूछा।

"अजी किसी क़ीमत पर नहीं।" ऐस० पी० बोले—"और वो कोई पेशे से डाकू थोड़े ही है ? उसे तो डाकू बना दिया है लोगों ने। अब तो वह भले आदमियों की ज़िन्दगी बिताना चाहता है—दो एक बार शर्त भी रख चुका है, लेकिन यह हैं कि मानते ही नहीं हैं। चाहते हैं डाकू ही बना रहे..."

"इनके दिमाग़ों में तो गोबर है।" विलायत सिंह बोले।

मलहोत्रा ने गहरी साँस लेकर अपने शरीर को पीछे डाल दिया और बोले—"कितनी-कितनी विकट शक्तियाँ हैं और कैसे-कैसे ग़लत रास्तों पर लगी हुई हैं—अब हमारे यहाँ ही एक साहब लाये गये, पतले-दुबले नाटे-से, देखें आप तो समझें कॉलेज के स्टूडेण्ट हैं। और सिपाहियों के बीच में ऐसे चले आ रहे थे जैसे दामाद आ रहे हों, सूरत देखते तो लगता कि यह बेचारे इन कामों को कभी नहीं कर सकते, लेकिन तीन-बार के सज़ायाफ्ता, स्मगलिङ्ग उनका पेशा और रौब ऐसे जैसे कहीं के राजकुमार हों। बढ़िया सूट, टाई, चश्मा एक स्टूडीबेकर होटल के दरवाज़े पर खड़ी रहती..."

"अच्छा-अच्छा वही तो नहीं, दिल्लीके कई वारण्ट जिनके नाम थे। यहाँ होटल चला रहे थे..." सिंह ने बीच में बात काट कर कहा।

"हाँ-हाँ, वही....।"

"अरे साहब, वे तो जीनियस थे, जीनियस। उनकी हिस्ट्री तो बहुत ही विचित्र है।" सिंह ने सिगरेट का पैकेट निकालते हुए कहा—"वे साहब प्राइम-मिनिस्टर के सेक्रेटरी के असिस्टैण्ट बन कर लाखों रुपया सेठों, राजाओं और नवाबों से झटक आये, आज इस राणा के साथ जा रहे हैं, कल उसके, और जब पोल

खुलती दीखी तो यहाँ भाग आये, होटल ले लिया 'कैफ़े डी पैरिस'—अब उनके नाम वारण्ट निकले, और वे यहाँ शान से मर्करी-ग्लासेज़ चढ़ाये हुए होटल चला रहे थे..."

"हाँ-हाँ मैं जानता हूँ, वह स्टेशन के पास था न।" सिंह द्वारा ऑफ़र की हुई सिगरेट मुँह में लगाये हुए ही मलहोत्राजी ने ज़रा धीरे से कहा—"लेकिन वह तो इन नेताभैया का था...और..."

"और क्या...ठीक बात है। दुनियाँ जानती है उसमें सब कुछ सप्लाई होता था।" सिंह ने सिगरेट मुँह में लगाये हुए ही लाइटर जला कर हाथों से आड़ करके सबकी ओर बढ़ा कर कहा—"सब तरह का माल। हमारे गर्ग साहब तो ग्राहक रहे हैं..."

गर्ग हँसे—"क्यों बदनाम करते हो ? उस दिन उस कम्बख़त गांगुली के चक्कर में चला गया था।" गले तक का—जयपुरी कोट उनके डैनों की तरह इधर-उधर फैला था।

"तो सचमुच उसमें सब कुछ मिलता था ?" मलहोत्रा ने रस लेकर पूछा।

"और लो, जस्टिस साहब की बातें ? अरे मैं झूठ थोड़ ही कहता हूँ। बंदा परवर, उसमें हर उम्र और और हर जाति की मिलती थी। और यही देश और धर्म के उद्धारक उसे चलाते थे..." सिंह ने तंज पड़कर कहा।

"हो सकता है उसने उसे खरीद लिया हो इनसे..." जस्टिस साहब ने दलील पेश की।

"जी नहीं...वह आख़िरी वक्त तक सिर्फ़ मैनेजर था !" अत्यधिक आत्म-विश्वास से सिंह बोला।

"ताज्जुब है !" बाटा साहब सिर हिला कर बोले—"तभी यह मिनिस्टर-मन्त्री रोज़ आते थे, भाग-भाग कर...।"

"साले ने डाल भी तो रखी है—यह मायादेवी...।" चौधरी साहब ने घृणा व्यक्त की।

"एक मायादेवी है उसकी...? उसके स्कूल की प्रिंसिपल—यहाँ वहाँ बीसियों हैं...।" ऐस० पी० जो अत्यन्त तटस्थता से सुन भर रहे थे मूँछों में मुस्कुराते पुलिस की भाषा में बोले—"और मायादेवी में क्या रखा है ? साली, चुसी-चुसाई। लड़की हो रही है पठिया। फूल-वूल लगाकर आज बहार आ रही है, जोबन आ रहा है ?" ऐस० पी० की आँखों में वासना की चमक कौंध गयी।

"वाह ! यह बात कही है ऐस० पी० साहब, इतनी देर बाद।" सिंह ने हँस कर हाथ मिलाया—"क़सम खुदा की, बिल्कुल परी-सी लगती है—सफ़ेद।"

उनके हाथ को पकड़ कर अपनी ओर खींचते हुए सिंह के कान में ऐस० पी० ने कहा—"अबे, तुम इधर-उधर क्यों देखते हो ? तुम तो जस्टिस साहब को कर्ज़ा

दिये जाओ, और मज़े में उनकी लौंडियों पर हाथ फेरे जाओ...।"

"ओः ऐस० पी० साहब।" और दोनों खूब ज़ोर से ऊपर-नीचे हिलते हुए हँस पड़े।...

"हम सब जानते है...पुलिस की नौकरी में रहे हैं, मिया।"

"जी हां, उसने ज़िन्दगी भर पुलिस में नौकरी करते अपने बाप का नमक खाया सही, लेकिन आज तो हमारे साथ है..." पूरा पंजा फैला कर बतरा ने कहा।

"कौन ?" सूरजजी ने बाहर निकलते हुए पूछा।

'वही, मैं देवकुमार की बात कह रहा हूँ।" बतरा ने बीच में ही बताया।

"हाँ ऽ ऽ।" दोनों बाँहों को फैले पंखों की तरह फड़फड़ा कर पहनते हुए कोट को ठीक करते हुए सूरजजी ने कहा।

"लेकिन कॉमरेड, गलती हम यह करते हैं सबसे बड़ी कि लोगों को बिल्कुल अपरिवर्तनीय और जड़ समझ लेते हैं।" 'बिल्कुल' शब्दपर ज़ोर देकर बतराके सामने बैठे, चाय के कप में स्लाइस डुबा-डुबा कर खाते हुए, बिखरे बालों वाले हनीफ़ से कहा, और मेज़ पर रखे कप में झुक कर मुँह मारा।

"एक बात, बतरा तुम भूल जाते हो—आखिर उसकी वह मिडिल क्लास की ज़हनियत—जो उसके रग-रेशे में जज़्ब हो गई है, एक फूंक मारते ही तो उड़ नहीं जायेगी ? वह कहीं न कहीं तो अपना गुल खिलायेगी ही।" उसने एक स्लाइस उठा कर बतरा की प्लेट में कप के बगल में रख दी।

"तुम्हारे हिसाब से तो फिर यह ज़हनियत अलग हो ही नहीं सकती ! और सिर्फ एक इलाज रह जाता है कि मजदूर तबक़े का काम मज़दूर लोग करें और किसानों का किसान। ऐसे वॉटर-टाइट पॉकेट्स बन जाँय कि एक को दूसरे में क़दम रखने की इजाज़त ही न हो।" वह हनीफ़ के पीछे दीवाल में ठुकी बड़ी-सी लेनिन की तस्वीर को देखता रहा।

"नहीं, मेरे कहने का मक़सद कभी यह नहीं है। पर साथ ही इस बात से भी आखिर इन्कार कैसे किया जा सकता है कि एक दूसरे के मसायल और प्रॉब्लम्स को वे ही लोग अच्छी तरह समझ सकेंगे जिनकी ज़िन्दगियाँ उन हालात और सरकम्सटांसेज में गुज़र गयी हैं।" स्लाइस खा चुकने के बाद उसने प्लेट में चाय उंड़ेल कर उसे मुँह की ओर बढ़ाया।

"और तब तक लोग हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहें—यही न ?" हँस कर बतरा ने कहा—"कॉमरेड, किसी लॉन में थोड़ी घास चरने जाया करो ! यह ठीक है कि मिडिल क्लास की ज़हनियत बड़ी बुरी चीज़ है और उससे पीछा छुड़ाना बड़ा

मुश्किल है लेकिन जब तक प्रोलितैरियेत क्लास से खुद लोग न आयें, तब तक अफ़ीम खाकर पड़ रहो यह कहाँ की दलील है ? मार्क्स और एँगिल्स खुद किन क्लासों के थे ? लेनिन ने तुम्हीं जैसे लोगों को तो लुम्पिन प्रोलितारियेत बताया है—"

सूरजजी दरवाज़े में खड़े-खड़े मुड़कर देखते और मुस्कुराते रहे—बतरा की अन्तिम बात पर हँस पड़े—"शाबास !" और तेज़ी से सीढ़ियाँ उतर आये।

"बड़ी देर लगा दी।" शरद पहले नीचे आ चुका था।

"यों ही, बड़ी मज़ेदार बहस ऊपर दो कॉमरेडों में हो रही थी—ज़रा सुनने लगा था।" सूरजजी ने चलते-चलते दोनों पंजों को फैलाकर कहा—"लोगों में बड़ी बेचैनी है, बड़ी अकुलाहट है, समस्याएँ हैं कि उन्हें नोंचती खसोटती हैं, और हर आदमी अपने-अपने ढंग से उन्हें सुलझाने की कोशिश करता है।"

"लेकिन सूरजजी, क्या आप ऐसा फ़ील नहीं करते कि बातें बहुत हैं—काम नहीं है ?"

"बात यह है कि हर समस्या और हर प्रश्न के प्रति हम लोगों के दिमाग़ साफ़ नहीं हैं। इसलिये काम में लग जाने से पहले हर आदमी अपना दिमाग़ साफ़ करना चाहता है। मान लीजिये मैंने छःसाल रात-दिन एक करके एक लाइन में काम किया ओर एक दिन पाया कि मैं तो बिल्कुल गलत लाइनों पर काम करता आया हूँ। तो आज इन तेज़ी से बदलती हुई परिस्थितियों में कोई भी आदमी आश्वस्त नहीं है कि वह जो भी कुछ करेगा, कल उसे स्वयं उसका मस्तिष्क ठीक भी मानेगा—इसलिये काम में हिचक और झिझक है...यों सब मिलाकर एक गतिरोध है और घुमड़न है। ख़ैर।" सूरजजी शरद के कन्धे पर हाथ रखकर बाज़ार में निकल आई गली के मुहाने पर खड़े शायद एक क्षण को यह सोचते रहे कि किस ओर चला जाय...फिर चलते हुए बोले..."हाँ, तो हम लोग पहली बात पर आ जाँय, आप पद्मा के बारे में कुछ कह रहे थे ?"

"हाँ, मेरा खयाल कुछ ऐसा है—खयाल क्या मुझे कुछ लगता है जैसे जया के दिल में कहीं थोड़ी-सी कचोट है। वह शायद पद्मा और मेरे सम्बन्धको या पद्मा के प्रति मेरी सहानुभूति को थोड़ा ग़लत अर्थ देकर समझती है। मैं यह नहीं कहता कि वह बुरा ही समझती है या यह कि स्त्रियों में चली आई ईर्ष्या उसमें भी है। लेकिन फिर भी इस तरह की समझ का मौक़ा क्यों दिया जाय ?" शरद पार्टी के बारे में सोचता-सोचता बोला—"और क्लास में तो सिवा कुछ फ़ॉर्मल बातों के और कभी हमारी बातें ही नहीं हुईं; यों मुझे वह अच्छी लगती थी—"

"इसमें तो शक ही नहीं कि वह सुन्दर है और सुन्दरता को सँवारना जानती है।" सूरजजी ने जेबों में से तलाश करके एक छोटी-सी डिबिया निकाल ली, जिसमें दाँतें कुरेदने की सींकें भरी थी।

"जा भी हो, मुझे वह अच्छी लगती थी और है भी।" शरद ने ध्यान से

एक निगाह फेंक कर देखा सूरजजी की बातों में व्यंग्य कितना है। फिर अपनी बात साफ़ की—"और इसका कभी यह अर्थ नहीं है कि उसका उद्देश्य एक ही हो। मुझे बहुत-सी चीजें अच्छी लगती हैं, ताजमहल अच्छा लगता है, फूल अच्छे लगते हैं। सबसे बड़ी बात है कि मुझे उससे बहुत ही अधिक सहानुभूति है। वह बेचारी कहाँ आकर फँस गयी है, उसका यह धीरे-धीरे गलना और घुटना मुझे बहुत ही बैचैन कर देता है। पहले मैं बहुत कम सोच पाता था कि इतने साधन-सम्पन्न और ऐश के वातावरण में रह कर भी कोई इतना दुखी अस्तव्यस्त और 'टॉरमेंटेड' रह सकता है..." स्वर शरद का पिघलने लगा था।

कुछ देर दोनों चुपचाप चलते रहे। बाजार कहीं अधिक रौनकदार था और कहीं कम। सन्ध्या को घूमने वाले एकाध दो ही दिखाई देते थे।

"सूरजजी, मेरे साथ एक बड़ी विचित्र ट्रेजेडी रही है।" शरद ने फिर धीरे-धीरे कहा—"आप मेरी बात को गलत मत समझिये। कुछ ऐसा अजब चांस रहा है कि जो कुछ मुझे पसन्द था या अच्छा लगा वह हमेशा मुझसे कटता रहा और जो कुछ मैंने...मैंने कभी नहीं सोचा वह मेरे आस-पास अदबदा कर मँडराता रहा। एक पंजाबिन लड़की थी, शकुन, वह मुझे बहुत, या कहिये, काफ़ी हद तक पसन्द थी। जया के बारे में मैंने सोचा भी नहीं था; यह मेरे साथ आई। पद्मा मुझे अच्छी लगती थी इससे कभी खुल कर—पिछले एकाध-दिन को छोड़कर, बातें ही नहीं हुईं। मायादेवी को देखकर मेरी रूह कूच करती है—और उनका वात्सल्य मेरे ऊपर टपका पड़ता है! कोशिश वकालत में जाने की की—आ फँसे यहाँ। आपसे मिलकर मैंने निश्चय कर लिया था कि इस आदमी से नहीं पटेगी—और अब आपके बिना ज़िन्दगी सूनी लगती है— ?" शरद मुस्कुराया।

"सात दिन में ही ?" सूरजजी ने अट्टहास करते हुए शरद को बाँहों में भींच लिया। फिर क्रमशः गम्भीर होकर बोले—"यह सात दिन—यह सात दिन शरद बाबू, बड़े विकट रहे हैं। इसमें मैं क्या से क्या बन गया हूँ, और इसका श्रेय बस तुम्हीं लोगों को है—नहीं तो बड़ी-बड़ी बातें यहाँ हुई हैं और मैं अप्रभावित ही रहा हूँ।"

"आइये, एक दूसरे की प्रशंसा छोड़कर हम लोग किसी और विषय पर बातें करें।" शरद ने धीरे से उनके बाहु-पाश से अपने को मुक्त किया। दोनों फिर ज़ोर से हँस पड़े। शरद बोला—"और चाहे कुछ हुआ हो, एक बात तो मैं देख ही रहा हूँ कि अब आप अत्यन्त ही आत्मविश्वास पूर्वक 'मैं' और 'हम' का प्रयोग करने लगे हैं। वर्ना अपने को अन्यपुरुष की तरह सम्बोधित सुनना वास्तव में बड़ा अजब लगता था। बाद में कई बार यह बात मेरे दिमाग़ में आई कि इसमें इसके सिवा और क्या मनोविज्ञान हो सकता है कि यह आदमी अपने से बड़ा विरक्त, जैसे अपने आप से घृणा करता हो—आत्मविश्वास न हो, जैसे अपने व्यक्तित्व और अस्तित्व

में संगति न बैठा पा रहा हो—कुछ इसी तरह की बातें दिमाग़ में आती थीं। आप नाम भी तो अपना ऐसी तटस्थता से लेते थे जैसे 'हुँह, कोई होगा सूरज हमें क्या है।' नाम आप अब भी लेते हैं शायद वह पहला अभ्यास है।"

"और अब मुझ हनुमान में नल-नील ने आत्म-विश्वास जो जगा दिया है।"

इस बार दोनों सड़क पर रुक कर इतने ज़ोर से हँसे कि एकाध राहगीर रुक कर देखने लगे।

इतनी देर की थकावट और उदासी दोनों की ही दूर हो गई। शरद ने कहा —"लीजिये, दो क़हक़हे लगाये—ज़रा खुल कर बात-चीत की, सारी उदासी और मानसिक गिरावट दूर हो गई—वर्ना वहाँ तो सचमुच ऐसा लगता था जैसे दिमाग़ फटा जा रहा हो, दम घुटा जा रहा हो। कम्बख्त गंजे की वही सख्त चालाकी से भरी निगाहें आस-पास मँडराती रहती थीं। मेरी फ़ोटो खींचो, मेरी आत्म-कथा लिखो, मुझे भाषण लिखकर दो, फिर मेरी प्रशंसा करो—फिर उस मन्त्री के पीछे लगे फिरो—मुझे तो झुंझलाहट चढ़ती है।"

"अभी आपने उसे देखा कहाँ है शरद बाबू ?" सूरजजी चलते-चलते एक पान वाले की दूकान पर रुक गये। लैम्प जल रही थी, इधर-उधर खूबसूरत औरतों की तस्वीरें सिगरेटों के विज्ञापनों पर लगी चिपकी थी।—उन्होंने पैसे फेंककर कहा—"दो पान।"

"दूकान तो खूब सजी है।" पतलून में हाथ डालते हुए ही शरद ने इधर-उधर देखकर यों ही कहा।

"रंडी का मकान और पान की दूकान—सजावट की दो ही तो जगहें है बाबू।" पानवाला पान उठाकर देते हुए बोला।

"देख लो, डायरेक्ट ज़िन्दगी से ली हुई फ़िलासफ़ी यह है।" सूरजजी ने पान मुंह में भरकर हथेली पर रखी तम्बाकू मुँह में झोंकते हुए कहा।

दोनों आगे चले। बिजली के खम्भों की रोशनियाँ सिमट गई थीं। कोहरा झूल रहा था। जब खम्भे के नीचे आते तो परछाइयाँ पैरों के पास होतीं और फिर सामने लम्बी होती जातीं। अगले खम्भे की रोशनी की जगह दो आदमियों की चार परछाइयां होजातीं, फिर पीछे दो लम्बी परछाइयाँ घिसटतीं। आस-पास कोठियो के बन्द जालीदार फाटक गुज़र रहे थे। भीतर किसी-किसी बरामदे में रोशनी दिखाई दे रही थी और कहीं-कहीं रेडियो सिनेमा के गीत गा रहा था।

"हाँ, तो मैं कह रहा था; अभी आपने देखा क्या है ?" सूरजजी ने एक और पीकका कुल्ला करते हुए कहा—"कहीं भी मीटिंग हो, यह सबसे पहले उस जगह बैठेगा जहाँ बहुत बड़े नेता बैठे हों—या बैठने की सम्भावना हो। कहीं किसी नेताकी फ़ोटो खिंच रही हो, इसने अगर कैमरे की सूरत देख ली तो बस फ़र्लाङ्ग भर से दौड़कर सामने आजायगा। इस कम्बख्त को कोई शर्म नहीं है। फ़ोटोग्राफ़र को पैसे दिलायेगा

खातिर करेगा—आप अन्दाज़ा नहीं लगा सकते कि अखबार वालों को कितने पैसे इससे बंधे हैं—एक बात है जो बताऊँ ? और एक बात हो तो बताऊँ—यहाँ सबके सब हजरत भरे पड़े हैं।" होठों को कस कर हथेली से पोंछते हुए वे बोले—"इनके यहाँ की एक प्रिंसिपल हैं—बड़ी सती-सावित्री बनती हैं, खद्दर पहनेंगी, लड़कियों को सिर नहीं खोलने देंगी। बिन्दी लगाने पर प्रतिबन्ध है, फ़ैशन या ज़रा भी रंगीनी से किसी को देखले तो स्कूल से बाहर निकाल दे, और खुद एक मासूम लड़के की जान ले ली ! डायन।"

"कैसे ?" शरद ने बड़ी उत्सुकता से पूछा।

"पहले जिस मकान में रहती थी, नीचे का हिस्सा लेकर उस मकान-मालिक का सोलह-सत्रह साल का ज़रा सुन्दर-सा लड़का था। बेचारा बी-एस० सी० में पढ़ता था। नीचे ही उसका भी कमरा था। यह उसके पास पहुँच जाती और पढ़ने नहीं देती। वह बड़ा परेशान, और आखिर एक दिन उसे बेशर्मी से इसने रात में चूम लिया। वह बेचारा किससे कहे और कौन उसकी बात का विश्वास करे ? फिर पता नहीं उससे इस कुतिया ने क्या कहा कि उसने मना कर दिया, तो खुद ही जाकर उसके बाप से शिकायत कर आई। बाप ने बेटे की बेंत लेकर उसकी खूब धुनाई की—शाम को ज़हर खाकर मर गया।"

"उफ़ !" शरद के दिल से एक गहरी साँस निकल आई। उसके आगे बार-बार मायादेवी का चेहरा आने लगा—और सिनेमा का उस दिन का दृश्य साकार हो गया। कुछ देर चुपचाप चलने पर उसने पूछा—"सूरजजी इन मायादेवी के बारे में जानने को मैं बहुत उत्सुक हूँ। यह क्या रहस्य है ?"

"रहस्य-वहस्य कुछ नहीं, बड़ी सीधी-सी बात है, लो आज बताये देता हूँ।" सूरजजी ने गुस्से में आकर पूरा पान थूक दिया, और बोले—"असल में मायादेवी की कहानी इसके कमीनेपन और बदमाशी की कहानी है। बाप ने पिछली लड़ाई में ज़बर्दस्ती पकड़वा-पकड़वाकर रंगरूट भरती कराये और रायबहादुर बन गया। लेकिन बेटा पड़ गया कांग्रेसियों के चक्कर में, पहले क्रान्तिकारियों के साथ भी गया, मगर वहाँ जान लेने और देने का सौदा था, सो भागकर गाँधीजी की शरण में जाना पड़ा। अहिंसा का दर्शन इन सब बातों से बरी था। सत्याग्रह करना और जेल जाना। मायादेवी एक अच्छे बहुत ही अच्छे घर की लड़की थी, यह कुछ लड़कियों के साथ पिकेटिंग में जाती थीं। उन्हीं दिनों इन दोनों का परिचय हुआ। रास्ता ग़लत हो या सही, देशभक्ति दोनों को घसीटकर पास लाई। परिचय घनिष्ट हुआ और घनिष्टता प्रेम बन गई—कोई अस्वाभाविक बात नहीं थी। इसने वर्षों यह छिपाये रखा कि यह विवाहित है—और प्रेम चलता रहा। और जब यह बात मायादेवी को पता चली तो इन्हें बड़ा मानसिक आघात लगा। बीमार हो गईं, लेकिन फिर इसने अपने को सँभाल लिया। और कह दिया कोई बात नहीं है—मैंने तुमसे प्रेम

किया है—तुम्हारी आत्मा और गुणों से प्रेम किया है। तुम विवाहित हो, यह बात बता देते तो अच्छा था—और अब नहीं बताया, तो खैर कोई बात नहीं है। माया-देवी ने उपन्यास पढ़े थे, कहानियाँ पढ़ी थीं, और स्वयं भी काफ़ी भावुक थीं—इसलिये इनके प्रेम को थोड़ा बहुत समझा जा सकता है। वे इसके पीछे अन्धी थीं—और कहावत की यह बात कि अगर यह माँगता तो शायद गर्दन काट कर दे देतीं, उनपर बिल्कुल सही थी। विवाह मायादेवी का हुआ, और ऐसे आदमी से हुआ जिसकी लाखों की सम्पत्ति थी, लेकिन वह पता नहीं किस ज्वार में अन्धी थीं कि कभी पति की चिन्ता नहीं की। कभी-कभा भाग आती और इस कम्बख्त के यहाँ हफ़्तों रहतीं। पति ने ज़ोर-ज़ुल्म भी किया—इसे भी धमकी भरे खत आये, लेकिन इसने साफ़ लिख दिया कि आपसे अपनी पत्नी जब नहीं रोकी जाती तो दूसरे को दोष देने से क्या लाभ है। ऐसा कुछ जादू इसने डाल रखा था। आखिर माया-देवी के पति को अपनी पुत्री पद्मा की रक्षार्थ उसका खयाल करके समझौता करना पड़ा कि साल में एकबार मायादेवी इसके पास आ सकेंगी। बच्ची को शिमला के किसी स्कूल में भेज दिया गया। बाप ने काफ़ी सम्पत्ति बच्ची के नाम करदी और इधर यह रंगरेलियाँ चलती रहीं। ऊपर से यह—देशबन्धु—और वे—मायादेवी के पति—मित्र बन गये थे। लेकिन इसने अब एक चालाकी चलनी शुरू करदी। जब इच्छा होती, दौरे का बहाना करके पड़ जाता कि व्यापार में घाटा हो रहा है। बिज़नेस नहीं चलता, अब क्या किया जाय? और मायादेवी पति के घर से ला-लाकर इसे देतीं। ठीक तो कुछ नहीं लेकिन लोगों का अनुमान यही है कि बीस-पच्चीस लाख रुपया इस तरह ला-लाकर मायादेवी ने इसके यहाँ भरा। कभी-कभी तो हीरे-पन्ने जड़े हुए गहनों से लदी आती थीं और बिल्कुल सूनी कलाइयाँ लिये जातीं। ये मिल और सिनेमा सब उसी वक्त के हैं। और तो और, यह 'स्वदेश महल' भी तभी बना। स्वदेश महल का उद्घाटन हुआ और इसने मायादेवी और उनके पतिदेव को बुलाया। किसी बड़े नेता ने—शायद महात्मागांधी ने ही—इसकी नींव का पत्थर रखा था—और उद्घाटन जवाहर लाल नेहरू ने किया। मायादेवी के पतिदेव आकर तीसरे चौथे दिन यहाँ बीमार पड़ और फिर मर गये।"

"मर गये?—यहाँ?" शरद ने झटके से पूछा।

"हाँ जी, बिल्कुल मर गये और उस समय जब उसे ज़हर दिया जा रहा था मैं उस 'दवा' की बोतल लिये खड़ा था—"

"ज़हर—?" शरद बुरी तरह चौंक पड़ा—"क्या मतलब?"

"शरद बाबू, इतना क्यों चौंकते हैं? मायादेवी के पति को ज़हर दिया गया था।" बहुत अधिक शान्ति-पूर्ण स्वर में और निहायत तुच्छ बात की तरह सूरजजी ने कहा—"यह केशव जो आप देखते हैं न, चन्द्रकान्ता के भूतनाथ की तरह इस सारे तिलिस्म की कुंजी है। यह मायादेवी का बहुत पुराना घरेलू नौकर है और इसे

देशबन्धुजी ने ठोक-पीटकर अपना बना लिया, मिला लिया। यही इन दोनों के पत्र इत्यादि सब लाता, ले जाता था और शुरू से ही जानता था इनके आपस के सम्बन्ध को। बेचारा मायादेवी का पति, जरा से जुकाम का शिकार था—और उसके लिये जो दवा दी गई, उनसे वह खाट पर जा पड़ा। अब अच्छे से अच्छे डाक्टरों के इलाज शुरू हुए। जब हालत बहुत ज्यादा बिगड़ गई तो प्रसिद्ध डॉक्टर को लेने यह देशबन्धु खुद कार से गया। मैं बीमार के पास था—केशव हर वक्त आस-पास रहता था। शायद वह दूसरे कमरे में था और कमरे में केवल मैं और खाट पर लेटा बीमार। मैं उसके सिरहाने कुर्सी पर बैठा कोई किताब पढ़ रहा था और शायद वह छत की ओर लगातार देखे जा रहा था। अचानक वह फूट-फूट कर रो पड़ा—"सूरजजी, मुझे बचाओ।" मै चौंका, शायद सोते में जागा हो, कोई सपना देखा हो। पास गया, कम्बल उढ़ाया। इसने मेरे दोनों हाथ पकड़ लिये और आँखों से लगा कर और भी ज़ोर से बिलख-बिलख कर रो पड़ा—'सूरजजी, मैंने अपने कानों से सुना है, आज मुझे ज़हर दिया जायेगा। मुझे बचाओ सूरजजी—मुझे बचाओ...।' दिल मेरा भी धड़क उठा—लेकिन मैं कर ही क्या सकता था। सोचा शायद बीमार का प्रलाप हो। लेकिन तभी यह केशव आ गया। शायद इसने कुछ सुना भी हो। डाक्टर आया, देशबन्धु आये, भाग-दौड़ शुरू हुई। छाती नब्ज़ देखने के बाद इधर-उधर कानाफूसी हुई और दवा बताई गयी। डॉक्टर के बैग में ही वह दवा भी थी। अब आप कल्पना कीजिये उस दृश्य की कि एक बीमार के चारों ओर सात-आठ आदमी खड़े हैं और उसे ज़बर्दस्ती दवा पिला रहे हैं। मेरे हाथ में शीशी थी—आवश्यकतानुसार दवा डाक्टर के पास प्याली में थी। मरीज़ दवा को मना कर रहा था—लेकिन यों सभी मरीज़ मना करते हैं! दवा नहीं पियेंगे तो ठीक कैसे होंगे—इत्यादि तर्क देकर ज़बर्दस्ती उनके हाथ-पाँव पकड़े गये—दो ने हाथ पकड़ लिये, दो ने पाँव, एक ने बीच से इन्हें दबा लिया। उस वक्त मैंने मौत से संघर्ष करते आदमी की ताक़त देखी—वह पाँच दिन का बीमार कभी इधर सिर कर लेता था कभी उधर और सात आदमियों के बस में नहीं आ रहा था। सिर पकड़ा गया लेकिन उसने कस कर दाँत भींच लिये, एक की उँगली को किचकिचाकर काट लिया। मैं उस संघर्ष को देखकर सचमुच दहल उठा। एकबार तो उसने दवा फैला दी, लेकिन दुबारा भरी गई और आखिर मुँह में चम्मच डालकर दवा पेट में पहुँचा दी गई—और यों दूसरे दिन वे चल बसे। तार पहुँचे, लोग आये और दुनियाँ भरकी बातें हुईं जो होती हैं—।" सूरजजी ने जेब से रूमाल निकाल कर ज़ोर से अपना मुँह-आँखें माथा पोंछा और थोड़ी देर चुप रहे।

शरद दम साधे सुनता रहा। उस दृश्य की कल्पना करके जैसे उसका पूरा शरीर रोमांचित हो उठा। पैण्ट की जेब में उसकी मुट्ठियाँ बँध गईं—लेकिन वह

चुप रहा। उसने चलते-चलते दो तीन बार सूरजजी की ओर देखा।

"फिर थोड़े दिनों बाद मायादेवी ने पाया कि उनकी कीमत एक रखैल से ज्यादा कुछ भी नहीं है।" अपने उद्वेग पर काबू पाकर सूरजजी ने फिर कहना प्रारम्भ किया—"यों यह भी उनके बहुत नखरे सहता है—लेकिन वह अपने दो दुर्गुणों पर विजय नहीं पा सकता। औरत और व्यापार। हर जगह यह 'बिज़नैस-मैन' है। यह इसका गुण भी हो सकता है। क्योंकि मैंने विकट से विकट परिस्थितियों में इसे दिमाग़ी रूप से खूब व्यवस्थित पाया है। ऊपर से ऐक्टिंग चाहे जो करता रहे, लेकिन इसके दिमाग़ में यह बिल्कुल साफ़ रहता है कि मुझे यह करना है और चूंकि बिज़नैसमैन है, इसलिये हमेशा लाभवाला पलड़ा ही चुनता है..."

"हाँ, इसके तो दो-एक उदाहरण मेरे सामने भी हैं।" शरद को अभी कुछ देर पहले की घटना और कल अस्पतालवाली घटना ध्यान हो आई।

"सो, यों तो मायादेवी के लिये ऐसा मरता है कि इसने अपनी पत्नी के लिये कभी चिन्ता नहीं की—वह बेचारी—टी० बी० से तड़प-तड़प कर मरी। यह सब है, लेकिन औरत-मात्र के लिये इसके भीतर भयंकर कमज़ोरी है—और यही एक बात है जिसे कोई औरत नहीं सह सकती—खास तौर से वह तो सह ही नहीं सकती जिसने आपके लिये अपनी ज़िन्दगी बिगाड़ ली हो—। काफ़ी दिनों तक इस बात पर दोनों में चखचख रही और अब भी जब इस तरह की कोई बात हो जाती है तो भयंकर महाभारत का दृश्य दिखाई देता है, लेकिन देशबन्धुजी के इस रवैये ने मायादेवी के हृदय में एक विद्वेषात्मक प्रतिक्रिया जगा दी है जो अब धीरे-धीरे उसका स्वभाव बन गई है। वह देशबन्धु को चिढ़ाने के लिये ही जैसे हर नये आदमी पर डोरे डालती है। शुरू में शायद उसने इसी तरह की प्रतिक्रिया से प्रेरित कुछ किया होगा, लेकिन पता नहीं, मैं ठीक मुहावरा स्तैमाल कर रहा हूँ या नहीं—अब उसके मुँह खून लग गया है—"

सूरजजी बातें कहे जा रहे थे और शरद के आगे, पिछले दिनों की घटनाएँ एक-एक करके सामने आती जा रही थीं। वह डूब गया। पहले दिन जब उसने मायादेवी को देखा था और वह गुसलखाने में मुँह हाथ धोने गया था तब मायादेवी का यह कहना—"मैं तुम्हारी नस-नस जानती हूँ।" अब उसके दिमाग़ में जैसे साफ़ होने लगा। उन लोगों के हर व्यवहार की एक-एक बात उसके सामने थी। उसका ध्यान टूटा सूरजजी की बात से तो उसने देखा वे लोग स्टेशन के पास आ गये हैं।

"और देखिये—यह होटल आप देख रहे हैं—" सूरजजी उँगली उठाकर कह रहे हैं—"उसके बिज़नेस का वह घृणित रूप है जिसे बहुत कम लोग जानते हैं—इसका नाम है 'होटल डी पैरिस'। सैकड़ों उसके एजेण्ट हैं—गाँवों से, शहरों से भूले भटके या बहका कर लाये हुए 'शिकार' यहाँ कटते हैं—और जिन दिनों यहाँ

शरणार्थियों के कैम्प थे उन दिनों देखते इसका बिज़नैस ! तब तो कैम्प में जाकर सिलाई की मशीनें बाँटता था—मुफ़्त में। दस्तकारी सिखाने के लिये लड़कियों के स्कूल खोल रखे थे—एक काम थे ? यह सब बातें ऊपर से नहीं दिखाई देतीं शरद बाबू। ऊपर खद्दर का चोंगा है, जो तिरंगा है। यह सब ठाठ-बाठ, नेतागीरी चलानेको बड़ी अकल और तिकड़म चाहिये—"

"हम—आप जसे लोगों से तो अच्छा ही है। नीचे से आत्मा कोंचती है, इच्छा और सपनों की बाढ़ें आती हैं, बलबले उठते हैं—और ऊपर से इस जैसे दैत्य अपने सिंहासनों के पाये हमारी छातियों पर रख कर ठाठ से ऐश कर रहे हैं। दम घुटते हैं, तड़फड़ाते हैं, भटकते है और तरह-तरह के दर्शनों से अपने भीतर की उबलती उफनती जीवनी-शक्ति को पुचकार कर सुलाने की कोशिश करते हैं।" शरद ने कड़वेपन से कहा..."हम उससे लड़ भी पड़े तो क्या करें ? बताइये भूखे मरेंगे—भटकेंगे और आत्म-हत्यायें करेंगे—जो मिलों में हो रहा है। और वह ठाठ से अपनी इन्द्र-पुरी में बैठा नित नयी लड़कियों के गले में बाहें डालेगा—कहकहे उड़ायेगा और पार्टियाँ देगा—।"

"नहीं शरदजी, यों मत टूटिये।" सूरजजी ने समझाने के स्वर में कहा—"हमारी छातियों पर रखे इन राक्षसों के सिंहासनों के पाये, एक दिन हमारे कन्धों पर होंगे और हम उन्हें दफन करने ले जारहे होंगें—और ये इन्द्रपुरियाँ—?"

"हमारे यहाँ जो इन्द्रपुरीकी कल्पना है, मैं तो समझता हूँ—वहाँ इसके अलावा और होगा ही क्या ? वही शराब के दौर, डांस—पैरिस सचमुच एक अलका-पुरी है...।" रजनीकान्त ने एक हीरो की शान से अपने स्तब्ध श्रोताओं को देखा और गैलरी से गुज़रती हुई गुलाबी रेशम की बंगलौरी साड़ी पहने, दुहरे बदन की महिला के हर पड़ते क़दम को देखता रहा। विलायती-सुगन्धि का एक झोंका जैसे गुज़र रहा हो। साड़ी में से चमकता उनका पेटी-कोट इतना ऊँचा था कि वे चलते हुए ऐसी लग रही थीं जैसे पानी भरे फ़र्श पर ऊपर ही ऊपर चली जा रही हों। हाथ में उनके छः पहलू मखमली-सुनहरी कढ़ा हुआ 'पाउच' इस तरह मुट्ठी में बन्द लटका था जैसे बिल्ला के बच्चे की गर्दन पकड़ कर लटकाये ले जा रही हों। रजनीकान्त देख कर मुस्कुराया और बोला—'आप मेरे यहाँ आइये, जो फ़ोटो मैं लाया हूँ, उन्हें अगर आप देखेंगे तो चकित रह जायेंगे। मैं तो पूरा योरुप घूमा हूँ। पैरिस के मुक़ाबले मुझे तो कोई जगह ही नहीं दीखी..." अपने प्रभाव की गहनता को अनुभव करता हुआ वह आस-पास श्रोताओंको अपने पैरिस-यात्राके अनुभव सुना रहा था।

"तो, क्यों साहब, हमने सुना है वहाँ..." काँग्रेसी-टोपी और खद्दर के कुर्ते

पर पट्टू की जाकेट पहने, गोल काँचों का चश्मा लगाये बाल-साहित्य के प्रसिद्ध लेखक 'सहृदय' जी ने आँखें मिचमिचाते हुए पूछा—वे अगली बात कहने-से झिझक रहे थे। आखिर उन्होंने हिम्मत करके कह ही डाला—"वैसे डांस भी होते हैं...?"

उनकी झिझक पर रजनीकान्त मुस्कुराया—"पैरिस में इस तरह के सैकड़ों नाच-घर हैं जिन्हें 'कैबरे' कहते हैं। वहाँ और खेलों और सिनेमाओं की तरह टिकट लगता है—सबसे छोटा टिकट लगभग साढ़े छः रुपयों का होता है। यह कैबरे अक्सर ज़मीन के नीचे होते हैं और यहाँ नग्न-नृत्य होते हैं। और आप विश्वास कीजिये, यहाँ की तरह वहाँ ऐसी जगहों को इतना बुरा नहीं माना जाता। वहाँ अच्छे-से-अच्छे आदमी जाते हैं। क्या शान और क्या शौकत कि देखें तो आँखें खुली रह जाँय। बस, आपकी जेब में पैसा होना चाहिये। वहाँ मैं साल भर घूमा—और मैंने कभी किसी को लड़ते ही नहीं देखा। ऐसी जगहें जिस तरह की गुण्डागर्दी, छुरे और घूँसे-बाज़ी के लिये मशहूर है, वहाँ इसका नाम-निशान भी नहीं होता। हाँ, यह होता है कि हर चीज़ तेज़ होती है। बाहर डेढ़-रुपये में मिलनेवाली शराब की बोतल वहाँ कम-से-कम पचास रुपये में मिलती है।" रजनीकान्त ऐसा रस ले-लेकर और सावधानी से बता रहा था जैसे किसी अलौकिक-दुनियाँ का रहस्य खोल रहा हो।

"तो क्यों सा'ब" प्रसिद्ध पत्रिका 'सदाचार' के सम्पादक विजयनारायण मिश्र ने मुंह में भर आये रस को घूंट भर कर एक साथ एकबार में लीलते हुए पूछा—"उनके शरीर पर एक भी कपड़ा नहीं होता ?"

"एक बस दो-अंगुल का रूमाल समझिये—वर्ना एक भी कपड़ा नहीं।" रजनीकांत की आँखों में वह सब दृश्य आ रहे थे। उसने लोन-भाव से बताया।

"और सा'ब, क्या-क्या शरीर, कि हिन्दुस्तान में हम उनकी कल्पना भी नहीं कर सकते। वहाँ की औरतें अपने शरीर के सौंदर्य को रखना-सँवारना और प्रदर्शन करना जानती हैं—यहाँ की तरह नहीं कि, हैं तो भैंस-सी मोटी और मिमिया-मिमिया कर बोलेंगी। गाल पोत लिये, होठ रंग लिये। ऐसा फूहड़पन आपको पूरे फ्रांस में देखने को नहीं मिलेगा। हँसी और उल्लास तो वहाँ बिखरा पड़ा है। चुम्बन और आलिंगन तो खैर—पूरे योरुप का आम-दृश्य है, लेकिन मान लीजिये अगर आपको कोई लड़की पसन्द है—आप जाइये और निहायत-नम्रता से कह दीजिये—'श्रीमतीजी या कुमारी—मादामोज़ेल—मैं आपके साथ घूमना चाहता हूँ।' अगर वह चाहेगी तो ज़रूर आपके साथ चली जायेगी। हो सकता है कभी वह खुद ही प्रस्ताव कर दे। लेकिन वहाँ इस सबका बुरा ज़रा भी नहीं माना जाता। तमाशा, मेले या बाजारों में वहाँ जैसी और जितनी अनुशासित-भीड़ रहती है, वह तो किसी भी जगह नहीं मिलेगी। वहाँ के सिनेमा देखिये ! वहाँ सबसे अच्छे सिनेमा हैं 'रैक्स' और 'गोमा पैलेस'। आपके बम्बई-कलकत्ते के लिबर्टी, लाइट-हाउस और मेट्रो तो उनके थर्ड-

क्लासों में भी बदतर हैं। मैं तो रेक्स की छत देखकर दंग रह गया। बीच-बीचमें रोशनी का इन्तज़ाम करके ऐसा कलर पेण्ट किया गया है जैसे आप खुले आसमान के नीचे बैठे हों और तारे चमक रहे हों। जितने प्रसन्न और मुक्त हृदय से फ्रांसीसी मिलते, बात-चीत करते हैं, ये साले अँग्रेज उतने ही रिज़र्व होते हैं। ये तो हिन्दुस्तानियों के साथ घुलना-मिलना भी अच्छा नहीं समझते। बड़ी नीची-दृष्टि से देखते हैं। लेकिन फ्रांस ? फ्रांस की बोल-चाल तहज़ीब, मिलना-जुलना व्यवहार...ओह एक-एक बात मैं क्या बताऊं...।" फिर सामने रखी खालो-प्लेटों की तरफ़ इशारा करके कहा—"वहाँ यह थोड़े ही कि इस तरह लाकर 'रातब' रख दिया। वहां बड़े क़ायदे से आपको खाने में पहले सूप मिलेगा, फिर वैजिटेबिल, फिर 'जैम' यानी मुरब्बा और बीफ़, या मुर्गा या ऐसी ही कोई माँस की चीज और फिर एकाध स्लाइस और मक्खन या पनीर ! पीने की जगह बढ़िया शराब कि आपकी तबियत खुश हो जाय ! मैंने बताया न, मज़ा यह कि न तो मैंने वहाँ कोई शराब पीकर उलटा होते देखा, न वाही-तबाही बकते। सब वहाँ होश में रहते हैं। ठगी-चीटिंग नुमा कोई चीज नहीं होती। बस यह है कि कोई छोकरी मिल गयी, आपके साथ शराब में खर्च करा दे, सिनेमा ले जाय—या कैबरे में पहुँच जाय...।" रजनीकांत को खुद भी ऐसा लग रहा था जैसे वह किसी परी-लोक से आया है और शेष लोगों से असाधारण है।

"हमने तो सुना है, वहाँ बहुत 'करप्शन' है ?" दोनों कुहनियाँ मेज़ पर टिका कर विमलेन्द्र बोला—यह यहीं के कॉलेज में पार्ट-टाइम मैथेमेटिक्स का लैक्चरर था, और हिन्दी में कहानियाँ लिखना अथवा उर्दू में शायरी करना उसका शौक था। विदेश जाने की उसकी बड़ी इच्छा थी।

"करप्शन ?" रजनीकांत ने विमलेन्द्र को देखा—"करप्शन और व्यभिचार की परिभाषाएं हर देश की अलग-अलग हैं। हमें वह व्यभिचार लगता है—वहाँ वह नहीं है। दूसरे, वहाँ जो खुले-आम होता है और कोई बुरा नहीं मानता, उससे ज्यादा सब कुछ यहीं होता है, और अधिक बुरी तरह होता है। यह सब कुछ यहां घुमड़न पैदा करके, घुट-घुट कर आपके दिल दिमाग़ को 'फ्रस्ट्रेट' और 'परवर्ट' करती है—वहाँ यह सब एक आम बात हो गयी है—कोई ध्यान भी नहीं देता। मिसालके तौर पर मैंने वहाँ एक भी रण्डियों का बाज़ार नहीं देखा। मैं अच्छी से अच्छी और बुरी से बुरी जगह गया।"

"हाँ—वहाँ फिर इस सबका ज़रूरत क्या ? वहाँ, वही सब कुछ खुले-आम और सब लोगों में—लार्जस्केल पर व्याप्त हो गयी है।" विमलेन्द्र ने अपनी बात को क़ायम रखा।

सफ़ेद कुर्ते और महीन-धोती पर सलेटी चदरा बंगालियों की तरह डाले ज़रा लम्बे से चेहरे के प्रसिद्ध उपन्यासकार सहायबाबू अपने भारी-भरकम फ्रेम को बार-बार पीछे सरकाकर साधते, मेज़ पर कुहनी टेके सिगरेट दो उँगलियों में लटका कर

इस तरह उसे देख रहे थे जैसे पानी में सलाई डुबाकर बूंद टपकती देख रहे हों। याद आने पर उसे पी लेते, नहीं तो उसके लाल गुल और उठते धुँएको ताकते; रजनीकांत की बात को ध्यान से सुनते। मुंह में से थोड़ा-थोड़ा धुँआ निकालते हुए उन्होने पूछा —"बाइ द वे, राजनैतिक-स्थिति वहाँ की कैसी है ?"

"वहाँ दो साल में कम्यूनिज्म आजायेगा।" बड़े दुख से रजनीकांत बोला— "लोग कम्यूनिज्म को पसन्द नहीं करते, लेकिन ग़रीबी और अन्य तकलीफ़ें इतनी हैं कि लोगोंका उधर रुझान बढ़ रहा है।"

"तो इससे तो मेरी बात ठीक निकलती है।" प्रसन्न होकर विमलेन्द्र बाला —"तो वहाँ का सारा आनन्द और मजे व्यापक-वेश्यावृत्ति ही है।"

"अब आप जिस लाइट में लें...।" रजनीकांत ने दोनों हाथ इस तरह फैला दिये कि 'मैं क्या करूं।' उसे कन्धे उचकाकर हाथ फैला देने की आदत थी।

"अरे, आप लोग यह सियासत छोड़िये..." मिश्राजी ने ज़रा खिन्न होकर कहा—और रजनीकांत से सरस-स्वर में पूछा—"हाँ, कांत बाबू, एक बात बताइये उन कब्रों में क्या सब लोग साथ नाच सकते हैं ?"

"कब्रों नहीं 'कैबरे'।" रजनीकांत ने उन्हें सुधारा और उसके प्रश्न का जवाब दिया—"आप तो वहाँ केवल दर्शक की तरह जाते हैं। सिर्फ़ देखिये, और आनन्द लीजिये। हाँ, आगे-पीछे बैठने के पैसे घटते-बढ़ते हैं। वैसे कुछ कैबरे ऐसे भी हैं, जहाँ लड़कियाँ शरीर के हिस्सों पर रूमाल लगाये होती हैं और नाचने के दौरान में ही दर्शकों में से वे लोग जो काफी पैसे देते हैं, रूमाल हटा सकते हैं। मैंने ऐसे होटलों में बैठ कर शराब पी है, जहाँ बिलकुल ही नंगी जवान लड़कियाँ बैरे का काम करती हैं।"

गहरी साँस लेकर 'सहृदय' जी ने बाटा की चप्पलोंमें रखी अपनी टाँगें हिलाईं और मुट्ठी में पकड़ हुए मिश्रजी के हाथ को ज़रा ज़ोर से भींचकर महिलाओं की ओर देखा। फिर बोले—"उन नाचो में पुरुष भी तो होते होंगे—?"

"हाँ, पुरुष होते हैं लेकिन वे जाँघिया इत्यादि पहने होते हैं।" वहाँ के किसी दृश्य को याद करके फुरहरी लेते हुए रजनीकांत बोला—"और वे लोग बड़े-बड़े मजे दिखाते हैं। उनके यहाँ कुछ नीग्रो होते हैं—उन्हें वे रंग देते हैं। उनके खेल देखकर तो हँसते-हँसते पेट में पानी हो जाता है—।"

"नीग्रो क्यों ?" विमलेन्द्र पूछ बैठा।

"तभी तो उन नाचती लड़कियों का सौन्दर्य खिलकर आता है। कन्ट्रास्ट— यानी विरोध रहता है।" अत्यन्त स्वाभाविकता से रजनीकांत ने बताया।

"ये है बात।" सहायबाबू ने गहरी साँस लेकर शरीर सीधा किया और उधर से रुचि हटा कर अपने साथियों की ओर मुड़ते हुए विमलेन्द्र से बोले—"यह रंग और रक्त का भेद साला हर कैपिटलिस्ट-कन्ट्री में है...।"

"यही क्यों, जाति का भेद, ऊँच-नीच, अमीर-ग़रीब और बीसियों भेद इस पूंजी वादी समाज के वरदान ही हैं।" बिखरे और बीच से कढ़े बालों वाले प्रगतिशील-साहित्यकार 'आनन्द' ने पास बैठे सजे सँवरे-मुथरे प्रयोगवादी कवि 'विकास' से प्रयोग-वाद की निरर्थकता पर बहस करना छोड़ कर सहायबाबू की बात का जवाब दिया। दोनों ही इस विषय में एक मत थे कि चम्पकजी जैसे 'भाट' और 'शाहे-वक्त' के प्रशंसक हर समय हुए हैं और होंगे; और ये लोग कविता के सम्मान में कलंक हैं। इन्हें कवि कहना गुनाह है। लेकिन 'विकास' का कहना था कि नये विषय और नये प्रयोग ही कविता का लक्ष्य है और इससे 'आनन्द' सहमत नहीं थे। एक कविता के विषय में टी० एस० इलियट के उद्धरण और विचार बता रहा था दूसरा बार-बार पुश्किन और मायाकोव्स्की का नाम ले रहा था। 'विकास' की इस बात से 'आनन्द' झुंझला उठा था कि मायाकोव्स्की अगर रूस के बाहर कहीं हुआ होता तो 'इलियट' से अच्छा प्रयोगवादी कवि होगया होता; क्योंकि उसमें इस तरह की प्रतिभा थी। सहाय बाबू की बात से दोनों को मुक्ति मिली।

"क्यों जी, जब आप ऊँच-नीच, अमीर-गरीब के सिद्धान्त को ग़लत मानते हैं तो रक्तकी शुद्धता के सिद्धान्त को भी नहीं मानते होंगे?" स्थानीय संगीत-विद्यालय के आचार्य न० वि० कदम ने झुक कर एकदम 'आनन्द' के पास मुँह लाकर पूछा।

"बिल्कुल-बिल्कुल ! रक्त की शुद्धता का सिद्धान्त तो वैज्ञानिक-रूप से भी ग़लत साबित हो चुका है।" डॉक्टर चक्रवर्ती ने इस विषयपर अपना अधिकार जमा कर अपने मुँह का पाइप हाथमें लेकर कहा—"जूलियन हक्सलेने लिखा है कि बच्चे में न माँ का रक्त होता है न बाप का। वह चीज़ ही दूसरी होती है। वीर्य में रक्त होता ही नहीं। आप देखिये, कितनी बड़ी चुनौती है 'रेस' के सिद्धान्त को ?उसका तो कहना है कि माँ के पेट में ब्रच्चे के खाने-पीने का इन्तज़ाम ही बिल्कुल अलग है जैसे अण्डे के अन्दर बच्चे का विकास होता है। अण्डे में बननेवाला बच्चा हर समय माँ-बापके खाने-पीनेके लिये खून की आशा नहीं करता, उसे तो एक विशेष समय और विशेष वातावरण चाहिये। इसलिये पोषण के समय भी उसे माँ के भोजन की ज़रूरत नहीं है। फिर रक्त की बात रही ही कहाँ ?"

"अजब बात है ?" मिश्राजी ने इधर मुड़कर डाक्टर की बात ध्यान से सुनी और चारों ओर ऐसी कातर दृष्टिसे देखा जैसे कह रहे हों : 'अरे भाई कोई तो विरोध करो इसका।' लेकिन सबको चुप देख कर खुद ही बोले—"न सही रक्त; जो भी है, वह है तो माँ-बाप का ?"

उनकी बात को विशेष महत्व न देकर—पाइप पर अँगूठा रखे हुए चक्रवर्ती कश खींच रहे थे—अब बोले—"और हक्सले का कहना यह है कि हम लोग सफ़ेद रंग, ऊँचे शरीर, तगड़ी गठन इस सबको अंग्रेज़ जाति की शुद्धता मानते हैं, आगे वह प्रश्न करता है—'मैं पूछता हूँ कितने इस श्रेणी में आते हैं ? पिचानवे प्रतिशत

अंग्रेज़ इस हिसाब से शुद्ध हैं ही नहीं।' हक्सले के हिसाब से मूलतः तो अंग्रेज़ों की खाल काली है—वह तो बाहरी प्रभाव से सफ़ेद पड़ जाती है..."

"सबसे बड़ी बात तो यह है कि यह रक्तके सिद्धान्तवाले लोग अभी तक कोई एक पहचान ही नहीं बता पाते—" 'आनन्द' बोला—"कोई बालों को लेता है, कोई नाक की बनावट को, कोई ठोढ़ी को, जब कि इस सबका कारण भौगोलिक है। 'रेस' का सिद्धान्त तो सहायबाबू, वहीं खत्म हो जाता है जब हम इतिहास में यह देखते हैं कि पुराने समय में हर जाति ने दूसरी जाति की औरतें भगाई हैं। आप आर्यों की शुद्धता ही लीजिये—लम्बी नाक, वृषभ-स्कन्ध, चौड़ा माथा, ताम्रवर्ण—कितने आजायेंगे इसमें? इस हिसाब से तो अनार्य ही ज्यादा है! यहाँ बकवास! मैं तो कहता हूँ जो जाति इस तरह के चक्कर में पड़ जाती है, बहुत जल्दी खत्म हो जाती है। आप पारसियों को लीजिये; पारसी मिश्रण न होने देने के बड़े पक्ष मे हैं—नतीजा क्या है? उत्पादन-शक्ति कम होती जाती है—वह लोग कम होते जाते हैं..."

"नहीं, खैर यह तो खाने पर भी है।" डॉक्टरने बात काटी—"जैसे चावल में उत्पादन-शक्ति बहुत है, बंगाली देखिये कितनी जल्दी उत्पादन बढ़ाते हैं?"

"तो भी डाक्टर साहब, आप यह मानेंगे कि धीरे-धीरे अगर मिश्रण—यानी क्रॉस न हो तो शक्ति और उत्पादन-शक्ति दोनों ही कम होती जाती हैं। कृषि के बारे में भी मिचूरिन का सिद्धान्त यही है।" 'आनन्द' ने साँवले माथे पर गिर आये बालों को पीछे हटा कर कहा।

"हाँ, यह तो है ही—फ़र्टिलिटी के लिये क्रॉस-ब्रीडिंग तो बड़ी ज़रूरी है।" डॉक्टर ने मुँह में पाइप दिये ही सिर हिलाया।

"वैसे दुनियाँ में महान् कार्य उन्हीं लोगों ने अधिक किये हैं जो मिश्रित-रक्त से पैदा हुए हैं—" सहायबाबू इतिहास खोजने हुए सोचने लगे, फिर पूछा—"क्यों डॉक्टर, यह फीचर्स या चेहरे-मुहरे का कारण सिर्फ़ भौगोलिक ही है?"

"इस बारे में 'लाइशेंको' ने बड़ी मजेदार खोज की है।" 'आनन्द' बीच में ही बोला—"भौगोलिक के साथ पेशे और विशेष अङ्गों को कौन जाति कितना प्रयोग करती है इसका भी बहुत असर पड़ता है—यह उसका कहना है। और इसी आधार पर कुछ लोगों का कहना है कि चूंकि आजकल दिमाग़ का प्रयोग बहुत बढ़ रहा है, इसलिये डर है कि शीघ्र ही लोगों के सिर अनुपात से बड़े न होने लगें। जैसे जर्मनी के लोग अधिकतर वैज्ञानिक कार्यों में लगे रहे हैं और महीन मशीन-पुर्जे देखने के कारण एक आँख को ज़रा भींच कर काम करते रहे है—उनमें से अधिकांश की जो सन्तानें हुई हैं उनकी एक आँख इसी तरह चढ़ी हुई है। वैसे ज्यादातर कारण भौगोलिक ही हैं जैसे चीन इत्यादि का। वहाँ ठण्डी हवाएँ चलती हैं, रेत उड़ती है, बरफ़ गिरती है, इसलिये लोगों को आखें खोलना मुश्किल हो जाता है—धीरे-

धीरे वह प्रकृति बन गयी है। इस तरह के भौगोलिक-प्रभावों के परिणाम उन जगहों में वास्तव में कभी-कभी बड़ा विचित्र प्रभाव उत्पन्न करते हैं जहाँ दो भौगोलिक सीमाएं मिली हों, या जहाँ राजनैतिक तथा अन्य कारणों से लोग आयें, जायें—जैसे स्लाव अर्थात् रूसी जातिमें मंगोलियनों और तातारोंका मिश्रण: कैसे सुन्दर फ़ीचर्स हैं। आसाम तक तो चीनी प्रभाव स्पष्ट दीखता है; लेकिन बंगालियों से मिलते ही देखिये वही मिची-मिची आँखें कैसी सपनों और खुमारी से भरी अजन्ता-कट हो जाती हैं ? बंगाली आँखें तो प्रसिद्ध हैं—" फिर धीरे से भौंह से आनन्द ने चक्रवर्ती की ओर संकेत किया।

"शेफाली रॉय को देख लो न !" विकास ने इतनी देर में कहा।

"खैर, आँखों का जहां तक सम्बन्ध है, जस्टिस मलहोत्रा की बड़ी लड़की—रूपा मलहोत्रा की आँखों से सब नीचे हैं—देखो वो बैठी न; सिर पर, ठीक ऊपर बड़े सुन्दर ढंग से जूड़ा बांधकर प्लेन ब्लू-साड़ी और नीला ही ब्लाउज पहने जो बैठी है न, कैसी सुराही-सी गर्दन है। आँखों में तो वही प्राइज़ ले जाएगी।" विमलेन्द्र बोला।

"क्यों, मिस पुरी की कंजी आँखें पसन्द नहीं है ?" व्यंग्य से आनन्द मुस्कुराया।

"आँखें कंजी है तो क्या हुआ ?" विकास ने उसका पक्ष लिया—"शरीर तो उस जैसा किसी का है ही नहीं—हर अंग जैसे ढाल-ढालकर बनाया हो। क्या 'स्लिम' बॉडी है। कम्बख्त पर हर कपड़ा खिलता है।"

"जी, डान्स करती है तब बॉडी ऐसी है—वर्ना डाक्टर चक्रवर्ती की तरह थुल-थुल नहीं हो जाती..." सहायबाबू हँस पड़े।

"यार, 'बोर' हो लिये ?" जँभाई लेकर रजनीकान्त बोला—"यहां क्या शरीर और क्या आँखें ? शरीर तो मैं पेरिस में देखकर आया हूँ ! दर्जन के हिसाब से माल आपके सामने खुला रखा है—आप पसन्द कर लीजिये—" रजनीकान्त ने फ़ैल्ट-हैट को ज़रा तिरछा झुकाया, चाकलेट-कलर टाई में लगी पिन को उँगलियों से टटोला और लड़कियों की तरफ देखकर पतली कटी मूँछों में मुस्कुराया।

मिश्राजी और सहृदयजी विस्मय, लालसा और उत्सुकता से आँखें फाड़े मुँह में लार भरे रजनीकान्त को इस श्रद्धा से देख रहे थे जैसे क़ाबे में ज़ियारत कर आने वाले हाजी को इसलाम का मुरीद देखता है...

तब अचानक तिरंगा-पर्दा बीच से खुलने लगा। सब लोगों की निगाहें उधर उठ गयीं...

....और बात ख़त्म हो गई

"शरद बाबू, भीतर चले जाइये न !" केशव ने शरद को देखकर कहा—शरद ने हाथ उठाकर उसे शान्त कर दिया।

लौटकर शरद हॉल के दरवाजे पर खड़ा हो गया था। कुछ आड़ बना कर जलती बत्तियों को छोड़, हॉल की प्रायः सभी बत्तियाँ बुझा दी गई थीं और सामने काले चमकदार रेशमी-पर्दे की पृष्ठभूमि पर जगमगाते प्रकाश में पद्मा 'भरतनाट्यम्' नाच रही थी। प्रकाश हल्का-हल्का फैलता और सिकुड़ जाता—कभी कोई हल्का-सा रंग उसमें झिलमिला उठता। पास ही पर्दे की ओट में तबला तथा अन्य वाद्य खनक रहे थे। सब कुछ स्तब्ध, शान्त और चुप ! केवल घुँघरुओं की ताल, झमक और काले बादलों में बिजली-सा कौंधता पद्मा का सुन्दर शरीर। रंग-बिरंगे सुन्दर वस्त्रों—राजसी ढंग से बँधी साड़ी, और मुकुट तथा मेकअप में पद्मा सचमुच अप्सरा-सी लग रही थी ! शरद के मन में हर बार प्रश्न उठता—वही सुस्त और बुझी-बुझी-सी पद्मा है यह ? अंग-अङ्गमें मरोड़ लेती हुई लास की यह तरंग, रग-रग में समाई हुई यह उन्मद उल्लसित-स्फूर्ति और हर मुद्रा मे झूमती हुई यह विभोर तन्मयता ! क्या सचमुच यह वही पद्मा ही है ? पुतलियों की गति, भ्रुओं का संचालन और संकेत, और मुस्कुराते ओठों की माधुरी देखकर हर बार शरद अपने आपको भूल जाता और उसे ऐसा लगता जैसे वह प्राकृतिक रंगों में ली हुई ऐसी फ़िल्म देख रहा हो जिसमें कैमरा घूमता हुआ खिले फूलों की क्यारियों, झूमती हरियालियों से लदे पहाड़ों और सैकड़ों फ़ीट ऊँचे से गिरते गूँजते झागदार झरनों के विभिन्न कोण दिखाये जा रहा हो ! जैसे रंग-बिरंगे कमलों से भरे तालाब से उसकी पतली-सी नाव सरसराती गुजरती चली जा रही हो—और ऊपर से सुरमई बादलों की अलस अँगड़ाइयाँ हवा में एक लजीली खुनकी और फ़िज़ाओं में संगीत भर दे—जैसे उसकी कल्पना की परी दोनों पंख फैलाकर सफ़ेद रूई के गालों में ढँकी पहाड़ी चोटियों की बगल से उड़ती बगुलों की पंक्तियों के साथ-साथ तैरती चली गई हो; और फिर वह सहसा सम पर चौंककर देखता : पद्मा उसी विभोर तल्लीनता में नाच रही है। जैसे पद्मा नहीं, जलती मशाल से कोई बड़ी तेज़-गति से शून्य में कुछ रेखाएँ बनाये जा रहा हो ; जैसे केवल घुँघरू ही बज रहे हैं, केवल हाथों के कंगन और मणिबंध चमक रहे हैं और केवल एक जूही के फूलों से लदी डाल हवा में लहरा रही है...पत्थरों और दरारों में बहती साफ़ पानी की धार के ऊपर पूर्ण-मासी का चाँद चमक रहा है, और धार भागती जा रही है, लहर-लहर के पाँवों से सरकती जा रही है ! शरद को लगा समय की धारा पर पद्मा का नृत्य कुछ इसी तरह

स्थिर होकर समा गया है—समय थम गया है, साँस थम गया है और वह अपने आपको भूल गया है ! बस कभी-कभी कैमरे के फ़्लैश चमक उठते हैं...।

अचानक उसने चौंक कर देखा नृत्य खत्म हो गया है और उसके तेज़ी से ऊपर उमड़ते हृदय ने उसका गला अवरुद्ध कर लिया है। उसकी आँखों में आँसू कब और किस लिये आ गये ? उसने हाथ से उन्हें पोंछ लिया और सिर झुकाकर धीरे-धीरे चला आया। तब क्रमशः उसे याद आया कि फाटक तक सूरजजी उसे छोड़ने आये थे, और वहीं वे लोग बड़ी देर तक खड़े बातें करते रहे थे। फिर जब उसने झाँककर यों ही उत्सुकता-वश देखा कि पद्माका नृत्य हो रहा है तो थोड़ी देर खड़े होकर देखभर लेने का लोभ संवरण नहीं कर सका। एक बड़ी ठण्डी साँस उसके होठों तक आई; लेकिन उसने उसे रोक लिया। जब वह बरामदे की सीढ़ियाँ उतर रहा था तब पीछे तालियों की गड़गड़ाहट सुनाई दी—शायद अब पर्दे खिंचे हैं...

फाटक पर विदा के समय कहे गये सूरजजी के शब्द उसके कानों में हथौड़े की तरह बज रहे थे, जिन्हें वह नृत्य में प्रायः भूल गया था—"जाओ, देखो, तुम्हारी श्रेष्ठतम-कला, तुम्हारी संस्कृति किन जड़ और मूर्ख राक्षसोंके सामने नुमायश लगाये बैठी है ! किन लोगों के बीच तुम्हारी सभ्यता और सचाई दम तोड़ रही है ! किन खूबसूरत दीवारों के भीतर बन्द तुम्हारी साधना की परम्परा क़ैद होकर, दम घोंट कर मरी जा रही है—जाओ उसे मरते हुए देखो, और देखो वे कैसे गिद्धों-से खुश-हो-होकर उसका मरना एंजॉय कर रहे हैं—! 'सांस्कृतिक-कार्यक्रम' कह-कहकर उसपर ठहाके लगा रहे हैं—यही तो उनकी संस्कृति है। 'संस्कृति' और 'मनो-रंजन' आज उनके लिये अलग अर्थ वाले दो शब्द नहीं हैं !...उनकी हर बात औरत से शुरू होती है और औरत पर खत्म होती है—उसी घेरे में वे दुनियाँ भर घूमते हैं। औरतें भी सिर्फ़ खिलौने बन गई हैं खुद!" यह सूरज कहीं-कहीं अति ज़रूर कर जाता है; लेकिन उसके भीतर एक कड़क है !

सिर डाले, नीचे देखता हुआ वह अपने क्वार्टर पर चला आया। सूरजजी ने सचमुच ऐसे-ऐसे रहस्य उसके सामने खोले हैं, ऐसी-ऐसी बातें बताई हैं कि उसकी आँखों के आगे चका-चौंध हो गया है। वह कुछ भी नहीं देख पाता। कैसा आन्दोलित, कैसी दिमाग़ी उठापटक और कितना विक्षुब्ध उसका हृदय हो उठा है—वही जानता है। जैसे एक बहुत भारी महल—लाख का प्रासाद, आग की गगन-चुम्बी लपटों में धू-धू करके जल रहा हो; उसका एक-एक कंगार—कलश, दीवारें—सब देखते ही देखते गिरे जा रहे हों...! यह देशबन्धु इतना नीच होगा, ऐसा भयंकर होगा, इसकी तो उसने [illegible] भी नहीं की थी ! औरतोंका व्यापार—यही नहीं—?

"क्यों ? बताऊँ ?" सूरजजी ने जैसे खून का घूँट पीकर कहा था—'इसका लड़ने में [illegible] इसका सबसे बड़ा दुश्मन है। उसे इसकी एक भी हरकत पसन्द नहीं है।

उसका बस चले तो इसे देश निकाला दे दे—लेकिन ऊपर से बड़ा ही पितृ-भक्त बनता है ! जिसने अपनी पुत्रबधू को नहीं छोड़ा, उसके बारे में तुम क्या सुनोगे शरद बाबू ?" घृणा से उन्होंने जमीन पर थूक दिया।

"ऐ ऽ ऽ—" शरद उछल पड़ा—"सच ?"

"जी !" दाँत भींचकर सूरजजी बोले—"एक है ? यहाँ सभी ऐसे हैं, यह केशव जो इसके हर षड़यन्त्र में दाहिने हाथ की तरह रहा है—अपनी खास लड़की को घर में डाले रहा था। मुझसे तो बेशर्मी से हँस कर कह देता था—'बाबूजी, आम लगाया है, मेहनत की है, लू-धूप में रखवाली की है तो फल खाने का हक भी तो मेरा ही है...।' शरद बाबू, यह जगह कितनी घृणित है, आप सोच नहीं सकते..."

और यह सुन-सुन कर सचमुच शरद का दम घुटने लगा था और उबकाई से उसका जी मिचलाने लगा था। क्वार्टर को ओर आते-आते जैसे सब बातें फिर दुबारा ताजी हो आईं, एक कै-सी उसकी छाती में उमड़ती आने लगी। जब उसने क्वाटर का ताला खोला तो भय से एक बार सारा शरीर सिहर उठा—कितना सुनसान है! सब लोग उधर हैं; ऐसे में कोई लूट-लाट ले जाय तो वह क्या कर सकता है ? 'स्वदेश-महल' की काँच की खिड़कियों से अब भी जगह-जगह रोशनी आ रही थी। शरद यों ही थोड़ी देर इधर-उधर टहला और फिर भीतर पलंग पर आकर पड़ गया —भीतर से चटखनी चढ़ा ली...

सचमुच उसकी तबीयत आज इस घृणित और नारकीय जगह से इतनी उखड़ गयी थी कि वह भाग उठना चाहता था : हे भगवान ! कहाँ जंजाल में आ फँसा ? इतना कुरूप—इतना घृणित—ऐसा नारकीय! वह तो शायद इस सबकी कल्पना भी नहीं कर सकता था। सबसे ज्यादा क्रोध और घृणा उसे मायादेवी के प्रति थी —लेकिन सबसे अधिक करुणा से भी वह उन्हींके प्रति पिघला आ रहा था। उस कम्बख्त ने अपनी ज़िन्दगी खराब करली—प्यार ? कैसा अन्धा प्यार है यह ? उसे पद्मा के शब्द याद आये—'किसी शरत् जैसे कलाकार की निगाह पड़ी होती तो वे ही संसार की सर्वश्रेष्ठ-महिला होतीं' इसमें क्या सन्देह है कि उसने अपने को बरबाद कर लिया और इस कम्बख्त को बना दिया।

अब सब कुछ खत्म हो जाने पर वह उठ कर किसी बहाने भीतर गया होगा और फिर घबराहट में आकर मन्त्रीजी को सूचना दी होगी—'स्वर्गवास होगया —!' एक कोलाहल यहाँ से वहाँ तक फैल गया होगा और फिर—फिर पता नहीं क्या क्या हुआ होगा। दिवंगत-आत्मा की शांति के लिये सभी लोग के सामने हाथ बाँधे, बगुलों की तरह आँखें मूँदे, चोंच लटकाए शोक प्रकट कर रहे होंगे...

कितने घटनापूर्ण रहे हैं यह सात दिन भी ! जैसे एक नई दुनिया में इन

दिनों आँखों के आगे खुल गई हों—! कोई सोच सकता है, आज के शरद और सात दिन पहले के शरद में क्या फ़र्क है ? जैसे ज़िन्दगी बदल गई है—हर चीज को देखने का दृष्टिकोण बदल गया है ! थोड़े ही दिन तो हुए हैं, वे... जया उसके बीच की सारी सैद्धान्तिक बहसें !...और किसने सोचा था कि यहाँ आकर फँसना पड़ेगा—? अब आगे ज़िन्दगी आखिर चलेगी कैसे ?—कब तक यों चल सकेगी ? फिर क्या हो ? कोई रास्ता नहीं, कोई राह नहीं···कोई दरार नहीं, कोई हल नहीं...।

शरद सूनी-सूनी खुली आँखों से छत की ओर एकटक देखता रहा। आज दिन-भर शरीर थक कर चूर-चूर हो गया था और दिमाग का तो जैसे किसी ने कोल्हू में पेल कर तेल निकाल लिया था ; केवल एक निर्जीव-स्पंज खोपड़ी में भरा था। उसके सिर में हल्का-हल्का दर्द होने लगा था और नींदमें उसकी चेतना डूबती जा रही थी। सात दिन पहले के अपने मित्रों और घरवालों के चित्र धुँधले-धुँधले 'आउट ऑफ़ फ़ोकस' जैसे दिमागके कोनों में से उमड़ने लगे थे, और धीरे-धीरे बादलों की तरह चेतना के आकाश पर छाये जा रहे थे : काश, इस समय जया उसके माथे की मालिश करती होती ! एक ज्ञान था जो बिल्कुल स्पष्ट था कि कल से अखबारों के 'वाण्टेड' कॉलम नये सिरे से देखने हैं। यहाँ निभेगा नहीं; वर्ना या तो वह पागल हो जायेगा या फिर उसकी आत्मा भी सूरजजी की तरह जड़ होकर मर जायेगी ! यहाँ की हवा में भी तो ज़हर की तरह घुटन भरी हुई है—साँस लेने में भी तो तकलीफ होती है...

और उस समय वह सोते से उछल पड़ा जब अचानक किवाड़ ज़ोर से भड़भड़ा उठे, साथ ही फटे-से गले से आवाज आई—"दादा !" बाहर जया थी।

शरद ने जब तक किवाड़ खोले, तब तक वह दो बार और किवाड़ों को अभी चुकी थी। और जैसे ही किवाड खुले, वह इस तरह झपटकर भीतर दौ औंधी होकर गिर पड़ेगी।

"क्या बात है ?—क्या बात है जया ?" घबराहट ारण शरद काँप रहा था। उसका हाथ तो इस तरह बेबस होकर थरथर था कि वह स्विच को भी बड़ी मुश्किल से ऑन कर सका।

'भक्' से रोशनी हो गई और न देखा : जया के बाल बिखरे हुए हैं, मुँह पर हवाइयाँ उड़ रही हैं और घबराहट से थर-थर काँपते शरीर में उसकी छातियाँ तेजी से ऊपर-नीचे गिर रही हैं—साड़ी अस्त-व्यस्त घिसटती आरही है। एकदम जैसे उसके दिमाग में बिजली कौंधी। उसने आगे बढ़कर ज़ोर से उसके कन्धे पकड़ लिये। काँपते भारी गले से पूछा—'जया ! जया ! मुझे बता, क्या हुआ...?"

जया ने ज़ोर से कन्धे झटक कर अपने को छुड़ा लिया और तेजी से हाँफते-स्वर में बोली—"कुछ नहीं हुआ। तुम मुझे छोड़ दो। भागो यहाँ से, हमें यहाँ

एक पल नहीं रहना—अभी चलो, अभी...!" वह यों ही बदहवास भाग कर आलमारी के पास पहुँची और झटके से उसके दोनों पल्ले खोल डाले। फिर चमड़े के छोटे सूटकेस में जल्दी-जल्दी पागलों की तरह उलटी-सीधी चीजें भरने लगी।

"जया, बता!" शरद आकस्मिक और अप्रत्याशित बज्रपात से स्तब्ध हो गया था। विभिन्न आशंकाओं के आघात से उसका चेहरा विकृत हो उठा। उसने फिर जया की बाँह सख्ती से पकड़ ली और उसे अपनी ओर मोड़ कर पूछा—"जया, मैं कहता हूँ, मुझे बताओ! मैं पागल हो गया हूँ। मैं उस हराहजादेका खूनकर दूंगा!" अनजाने ही शरद की आवाज चढ़ गई। उसके दाँत भिच गये।

कुछ क्षणों तक भयाक्रांत पत्थर की मूर्ति की तरह जया खुली आँखों से शरद की ओर देखती रही और फिर अचानक शरद के कन्धे से चिपककर फूट-फूट कर रो पड़ी—"दादा, हम यहाँ एक पल नहीं रहेंगे—अभी चलो!"

"कुछ बात भी?" शरद ने फिर उसे सीधा कर खड़ा कर दिया—"बतानी क्यों नहीं? मैं कहता हूँ बताओ।" वह पूरे गले से चीख पड़ा।

अचानक आँखों में भरे खौलते आँसुओं वाला चेहरा झटक कर सीधा करते हुए जयाने तड़पकर कहा—"क्यों मेरे पीछे पड़े हो? मैं कहती हूँ, चलना हो चलो, नहीं चलना, तो मैं जा रही हूँ। हमें आज ही यह शहर छोड़ देना है—।"

और तब शरद की उत्तेजना एमदम ढीली पड़ गयी। जया की बाँह को पकड़े हाथ की कसावट खुल गई और मुरझाये-स्वर में उसने कहा—"जया, मुझे बताओ न, मैं एकदम घबरा गया हूँ। आखिर हुआ क्या कि तुम यों भागी जा रही हो—?"

जया झुककर जल्दी-जल्दी अटैची में उलटा-सीधा सामान भरने लगी—उसके भी[illegible] की तरह उसके हाथ चल रहे थे। शरद चुरचाप खड़ा उसे घूरता रहा जैसे दिल के बहुत भीतर कोई चीज खुदबुदा रही थी।

"खड़े ह[illegible] मैं कहती हूँ—दादा चलो, जल्दी जो सामान लेना हो ले लो—जया ने अचानक सिर [illegible]कर देखा और भर्राये गले से कहा।

और जब थोड़ी देर बाद वे [illegible] क्वार्टर के बाहर आये तब चैस्टर उन्हें पहन रखे थे। शरद के हाथ में सूटकेस [illegible] और जया के हाथ में अटैची। दो चोरों की तरह इधर-उधर देखते, पिछले रास्ते क[illegible]ोर तेजी से जा रहे थे। उ[illegible] अँधेरा था और हर बार किसी न किसी चीज से पाँव[illegible] ठोकर लग जाती थी जया आगे थी—उसे जल्दी से जल्दी इस जगह से बाहर हो ज[illegible] की व्यग्रता थी वह अनुमान से ही दोनों सीढ़ियाँ चढ़ी, लोहे का चक्कर घुमाया और धीरे से नीचे उतर गयी। शरद भी पीछे-पीछे आ रहा था। लोहे का चक्कर घुमाव[illegible] बाउण्ड्री के दूसरी ओर उसने पाँव रखा ही था कि जोर से मुंह के बल सामने धरती पर [illegible]

पड़ा; सूटकेस दूर जा गिरा और उसकी दोनों हथेलियाँ सामने टिक गयीं।

"अरे—उठो— !" जया पीछे मुड़कर लौट आई। उसने इधर-उधर देखते हुए शरद की बाँह पकड़कर उठाते हुए पूछा—"लगी तो नहीं ?"

शरद कराह कर उठा। सामने पैर का अन्दाज़ ठीक नहीं बैठा था। एक हथेली पता कहीं किस चीज़ पैर पड़ी थी की कई काँटे घुस गये थे, और आग-सी लग रही थी। उसने कष्ट से दाँत भींचकर कहा—"हथेली में कुछ घुस गया है।"

जया ने अटैची नीचे रख दी थी। उसने शरद की हथेली हाथ में लेकर देखी और बोल उठी—"अरे यह तो नागफनी का पत्ता है।" उसने झटके से पत्ता खींचकर दूर फेंक दिया। शरद के जैसे प्राण खिच आये। हाथ के भीतर अबभी आग-सी लग रही थी। जब जया ने रूमाल निकाल कर उसके हाथ पर बाँधा तो दर्द से उसके होंठ विकृत हो उठे।

अटैची और सूटकेस उठे, और दोनों फिर चल पड़े—जैसे दो क़ैदी जेल से छूटकर भाग रहे हों—बार-बार मुड़कर पीछे देखते थे। दोनों के हृदय बुरी तरह धड़क रहे थे। शरद का एक हाथ दर्द से ऐंठा जा रहा था और एक बोझ से उखड़ा आ रहा था। छाती में उत्सुकता और व्यग्रता का ज्वार पछाड़ें मार रहा था। पता नहीं जया के भीतर क्या हो रहा था। दोनों चुपचाप भाग रहे थे।

स्टेशन की बत्तियाँ चमकीं—सन्तोष की साँस ली और चाल कुछ धीमी हुई।

बिना यह पता लगाये या पूछे कि यह गाड़ी कहाँ जायेगी, कब जायेगी—कहीं जायेगी भी या नहीं, जया आगे-आगे चलती, प्लेटफ़ॉर्म पर लगी गाड़ी के बिल्कुल खाली जनाने डिब्बे में चढ़ गई। गाड़ीके छूटने में शायद देर थी : इक्का-दुक्का आदमी ही बैठा दीखता था और पूरी गाड़ी में अँधेरा था। शरद ने सूटकेस उसके पास रख दिया। शरीर पसीने से लथपथ हो गया था। चैस्टर वहीं उतार कर वह सुस्ताने के लिये बौखलाया-सा नीचे की ओर आया। जया खिड़की में कुहनी रखे बैठी फटी-फटी आँखों से एकटक देखे जा रही थी। शरद को होश नहीं था—क्या हो रहा है इसका कुछ भी ज्ञान नहीं था ! डिब्बेसे उतरते ही प्लेटफ़ॉर्म पर वह जिस आदमी से टकराया—उसने इसके दोनों कन्धे पकड़ कर कहा—"देख कर भाई साह···" और फिर वह चौंक पड़ा—"अरे शरद तुम ?"

झटके से शरद होश में आगया—सामने सूरजजी थे।

"सूरजजी, आप यहाँ कैसे ?" शरद के मुँह से निकल गया।

"मेरी छोड़ो, मैं तो घूमने आ ही जाता हूँ। अरे जयाजी, आप भी हैं ? मुझे जल्दी बताओ भाई।" सूरजजी बेचैन हो उठे—"यह तुम्हारा हाथ कैसे खून से भींग रहा है भाई ? क्यों, क्या हो गया, कुछ बोलो भी ?"

शरद ने देखा, सचमुच रूमाल के पार खून फूट निकला था; लेकिन तकलीफ़ अब काफ़ी कम थी। उसने सख्त गले से कहा—"यह ? यह 'स्वदेश-महल' का

प्रसाद है। मेंहदी की बाढ़ के पीछे छिपी नागफनी का डङ्क है, जो लगता है सारे शरीर में फैलकर ही दम लेगा...।"

लेकिन उसकी बात बीच में ही रुक गई। आँखें फाड़-फाड़ कर अँधेरे में एकटक देखती जया अचानक खिड़की पर रखी बाँह पर माथा पटक कर फूट-फूट कर रो पड़ी—"पद्मा जीजी...।"

शरद बात करना छोड़कर भीतर दौड़ आया। उसके पास बैठकर रुआंसे-स्वरमें सिरपर हाथ रखकर बोला—"क्या पद्मा जीजी ? जया कुछ बताओ न...?" फिर नीचे आश्चर्य-चकित खड़े सूरजजीकी ओर देखकर भर्राये-गले से बोला—"देखिये सूरजजी, जब से पागलों की तरह कभी रोती है, कभी जोश में आजाती है, बता कुछ भी नहीं रही है। आप ही बताइये, मैं क्या करूँ ?" शरद का स्वर हृदय की व्याकुलता और उत्तेजना के गीलेपन में घुट गया।

जया ने खिड़की से सिर उठाकर ज़ोर से शरद की जाँघ पर पटक दिया और फिर और ज़ोर से बिलख उठी...हिचकियों में से बड़ी मुश्किल से स्वर फूट रहे—"पद्मा जीजी गिर पड़ीं...।"

"हैं ? कहाँ से...?" बिजली की कड़क से आसमान फट गया।

"डांस के बाद थक कर वो ऊपर के कमरे में लेटी थीं...तभी उस राक्षस ने शराब पिये हुए आकर किवाड़ बन्दकर लिये..." जया रोती रही, "फिर पद्मा जीजी, खिड़की से कूद पड़ीं..."

दोनों स्तब्ध-से एक दूसरे को देखते रहे ! किंकर्तव्य-विमूढ़ और मन्त्र-जडित, अपलक ! और गोद में पड़ी जया का शरीर कभी हिचकियों में बिजलीके झटकेकी तरह काँप जाता था—जैसे कोई भयंकर-दृश्य था जो उसकी आँखोंमें घूम रहा था···

एक ज़हर था, जो शरद की नस-नस में फैल रहा था—नागफनी का ज़हर ! बगूले की तरह उसके पेट में कुछ उमड़ा आरहा था...

एक खिचाव था जो धनुष की प्रत्यंचा की तरह सूरजजी की नस-नस को खींचे जारहा था...